अकेला आदमी

(कहानी नीतीश कुमार की)

संकर्षण ठाकुर

अकेला आदमी
(कहानी नीतीश कुमार की)

संकर्षण ठाकुर

नीतीश कुमार का कालानुक्रम

1 मार्च, 1951 : बख्तियारपुर में रामलखन सिंह और परमेश्वरी देवी के पुत्र के रूप में जन्म।

1957-64 : गणेश स्कूल, बतियारपुर में पढ़ाई-लिखाई।

1965-73 : पटना साइंस कॉलेज, बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग में अध्ययन।

22 फरवरी, 1973 : मंजू कुमारी सिन्हा से विवाह।

1974 : इंदिरा गांधी के सत्तावाद के विरुद्ध आंदोलन; आपात्काल के दौरान कारावास।

1977 : नालंदा में हरनौत से जनता पार्टी प्रत्याशी के रूप में पहला विधानसभा चुनाव हारे।

1980 : नालंदा में हरनौत से लोक दल प्रत्याशी के रूप में दूसरा विधानसभा चुनाव हारे।

22 जुलाई, 1980 : पुत्र निशांत का जन्म।

1985 : हरनौत से लोक दल प्रत्याशी के रूप में पहली बार राज्य विधानसभा के लिए निर्वाचित।

1987 : बिहार युवा लोक दल का प्रमुख नियुक्त।

1989 : बिहार जनता दल के महासचिव के रूप में नियुक्ति।

अप्रैल-नवंबर 1990 : केंद्र में वी.पी. सिंह सरकार में कृषि राज्य मंत्री।

1991 : जनता दल प्रत्याशी के रूप में लोकसभा के लिए पुनर्निर्वाचित।

1993 : जनता दल का महासचिव और संसद् में जनता दल का उपनेता नियुक्त।

1994 : लालू यादव से अलग होकर जॉर्ज फर्नांडिस तथा अन्य के साथ मिलकर समता पार्टी का गठन।

1995 : विधानसभा चुनाव में लालू यादव से पराजित।

1996 : समता पार्टी प्रत्याशी के रूप में लोकसभा के लिए पुन:निर्वाचित।

1998 : जनता दल यूनाइटेड (जे.डी.यू.) प्रत्याशी के रूप में लोकसभा के लिए पुन:निर्वाचित, वाजपेयी सरकार में रेल तथा सड़क परिवहन मंत्री के रूप में नियुक्ति।

1999 : जे.डी.यू. प्रत्याशी के रूप में लोकसभा के लिए पुन:निर्वाचित।

3 मार्च, 2000 : जे.डी.यू. प्रत्याशी के रूप में सात दिन के लिए मुख्यमंत्री बने, विधानसभा में विश्वास मत हासिल करने के पहले ही पद-त्याग।

मई 2000-मार्च 2001 : वाजपेयी सरकार में कृषि मंत्री; 2004 तक रेल मंत्री।

2004 : जे.डी.यू. प्रत्याशी के रूप में लोकसभा के लिए पुन:निर्वाचित।

जनवरी 2005 : वाजपेयी द्वारा नीतीश को बिहार के लिए राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) की ओर से भावी मुख्यमंत्री घोषित किया जाना।

फरवरी 2005 : विधानसभा चुनाव में लालू यादव को पराजित किया, किंतु अपने पक्ष में संख्या पर्याप्त न होने के कारण सरकार बनाने का दावा पेश करने से इनकार।

24 नवंबर, 2005 : बिहार में भारतीय जनता पार्टी (बी.जे.पी.) की साझेदारी में स्पष्ट बहुमत प्राप्त, बिहार के मुख्यमंत्री बने।

26 नवंबर, 2010 : विधानसभा चुनाव में भारी बहुमत से विजयी हुए, लगातार दूसरी बार मुख्यमंत्री बने।

अप्रैल 2013 : बी.जे.पी. को दिसंबर 2013 तक प्रधानमंत्री पद के लिए 'धर्मनिरपेक्ष तथा स्वीकार्य' प्रत्याशी का नाम घोषित करने की अंतिम समय-सीमा देना।

जून 2013 : बी.जे.पी. को बिहार सरकार से बाहर किया, एन.डी.ए. को तोड़ा और नरेंद्र मोदी पर हल्ला बोल की शुरुआत।

लेखकीय

इस मंच पर दो प्रतिबिंब रह-रहकर उभरते हैं, मानो दो दिवंगत आत्माएँ समय-समय पर अपनी चिरनिद्रा से उ**ठकर, खेल के मैदान में अपने** अपने बल्ले का करिश्मा दुहराने के लिए चले आते हों।

एक का नाता पूर्वी उत्तर प्रदेश में अकबरपुर के एक बनिया परिवार से है।

दूसरा पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के बीच अपरिभाषित सीमाओं पर गंगा नदी के जल से घिरे हुए एक टापू, सिताबदियारा, के एक कायस्थ परिवार से संबंध रखता है।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के दौरान युवावस्था में दोनों ने अध्ययन के लिए यूरोप का भ्रमण किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान दोनों ने कांग्रेस की छतरी के नीचे लोक-जीवन अपनाने का व्रत लिया। दोनों जवाहरलाल नेहरू के पिट्ठू थे और पार्टी में उन्हें समाजवाद के क्षेत्र में विशेष कार्य करने का दायित्व सौंपा गया। बाद के वर्षों में दोनों ने विद्रोह के तेवर अपना लिये, वे नेहरू के आलोचक हो गए और उन्होंने कांग्रेस-विरोधी राजनीति का झंडा उठा लिया। दोनों में से किसी को भी सत्ता कभी हासिल नहीं हुई।

अकबरपुर के उस व्यक्ति ने आगे अध्ययन के लिए युद्ध-पूर्व जर्मनी को चुना, संभवत: इसलिए कि वह साम्राज्य-संबंधी ब्रिटेन और उसकी शैक्षिक संस्थानों की खिल्ली उड़ा सके। वह पूँजीवादी-विरोधी के रूप में वापस आया क्योंकि वह मार्क्सवाद-विरोधी था। पूँजीवाद को वह 'अमीर आदमी की शोषण मशीन' मानता था; उसकी दृष्टि में मार्क्सवाद सिर्फ एक सनक थी और एशिया के विरुद्ध यूरोप का एक वैचारिक साधन था, एक ऐसी व्यवस्था जो लोगों पर एक पार्टी की तानाशाही थोपती है।

उसने एक गृह-निर्मित समाजवाद को अपनाया, जो सामाजिक और आर्थिक समानता, मझोले उद्यम, और एक ऐसी शासन-पद्धति की धारणा का समर्थक था, जिसमें सरकार को प्रजा-शासक नहीं, बल्कि प्रजा-सेवक माना जाए। वह शासन का विकेंद्रीकरण चाहता था और लोगों को सरकारों को वापस बुलाने का अधिकार मिले। वह लोकतांत्रिक विरोध पर पुलिस द्वारा हलकी-से-हलकी काररवाई के भी खिलाफ था। वह अंग्रेजी का कट्टर विरोधी था, क्योंकि वह अंग्रेजी को साम्राज्यवादियों तथा शासक-वर्ग की भाषा मानता था। वह नेहरू और कांग्रेस को उस वर्ग से जोड़कर देखता था। सन् 1967 में उत्तरी राज्यों में जो पहली गैर-कांग्रेस, बहु-पार्टी संविद सरकारें सत्ता में आईं, वह मुख्यत: उसके प्रयासों का ही परिणाम था।

नेहरू को उसके अंदर एक अंतरराष्ट्रीयवादी नजर आया, जिसके फलस्वरूप नेहरू ने 1930 के दशक में उसे बुलाकर कांग्रेस के विदेश-कार्य संबंधी प्रकोष्ठ का अध्यक्ष बनाया। उसने संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड स्टेट्स) में जातिवाद-विरोधी प्रदर्शनों, समग्र यूरोप में साम्राज्यवाद-विरोधी पद-यात्राओं, और भारत में जाति-तोड़ो आंदोलनों में हिस्सा लिया; जातियों के बारे में 'सौ में साठ' उसका मूल-सिद्धांत अर्थात् सूक्ति-वाक्य था, जिसका आधार था कि पिछड़ी जातियों को, जनसंख्या में उनके हिस्से के मुताबिक, राजनीति तथा शासन में 60 प्रतिशत हिस्सेदारी मिलनी चाहिए।

उसने निरंतर यात्राएँ कीं, बहुत कुछ लिखा और प्रचुर मात्रा में लिखा, अविरल राह चलते आदमी जैसा अनियत जीवन जिया, और वह अपने जीवनकाल में एक बहु-चर्चित व्यक्ति बन गया। एक ऐसा अपरिष्कृत, प्रचंड सुधारवादी जिसने समाजवाद की एक विशिष्ट विचारधारा की नींव रखी; उस विचारधारा के समर्थक, यद्यपि समस्त उत्तर भारत की राजनीतिक पार्टियों में बँटे और बिखरे हुए हैं, आज भी अपने नायक की स्मृति को सँजोए

उसके राजनीतिक उपदेशों को दोहराते रहते हैं, भले ही वे उसके आदर्शों की दुहाई न देते हों।

कांग्रेस से अलग होने और संयुक्त समाजवादी पार्टी (एस.एस.पी.) का श्रीगणेश करने के बाद उसने एक सात-सूत्री घोषणा-पत्र का उद्घाटन किया, जिसे 'सप्त-क्रांति' का नाम दिया गया; ये सात क्रांतियाँ इस प्रकार थीं : लिंग समानता, जाति एवं वर्ण पर आधारित भेदभाव का अंत, उपनिवेशवाद का समापन और एक विश्व संसद् (वर्ल्ड पार्लियामेंट) की स्थापना, बड़ी पूँजी के आधार पर उपजी असमानता को समाप्त करना, विकेंद्रीकृत योजना के जरिए विकास, व्यापक सविनय अवज्ञा तथा शस्त्रीकरण का अंत। तथापि, वह एक स्वतंत्र विचारोंवाला राजनीतिज्ञ था। सन् 1962 में चीन के आक्रमण ने भारत को जब न केवल सामरिक रूप से, बल्कि मनोवैज्ञानिक रूप से भी गंभीर चोट पहुँचाई और झकझोरकर रख दिया, तब उसने भारत को परमाणु बम बनाने का आह्वान किया।

सन् 1967 में पुरस्थ-ग्रंथि संबंधी एक लघु शल्य-चिकित्सा के बाद जल्दी ही उसका निधन हो गया, इसका एक कारण यह भी माना जा सकता है कि उसने जीवन भर अपने स्वास्थ्य के साथ अत्याचार किया और अपने शरीर की उपेक्षा की। उसे लगातार धूम्रपान करने और कॉफी तथा चाय पीने की बुरी लत थी, समय से भोजन करने की वह कतई परवाह नहीं करता था।

हमारे प्रमुख नायक को इस इनसान से कभी भेंट करने या मिलने का अवसर नहीं मिला, हालाँकि वह बहुत जल्द उसका भक्त बन गया था और उसे एक विश्वसनीय शिक्षक-दार्शनिक मानने लगा था; उक्त इनसान की पहली और एकमात्र झलक उसने सन् 1967 के आरंभ में पटना में आयोजित एक जनसभा में पाई और वह भी, कहीं दूर एक किनारे खड़े होकर।

सिताबदियारा से नाता रखनेवाला व्यक्ति 1920 के दशक के आरंभ में, कांग्रेस द्वारा संचालित एक स्कूल, बिहार विद्यापीठ से विशेष योग्यता प्राप्त छात्र के रूप में शिक्षा समाप्त करने के उपरांत समाजशास्त्र का अध्ययन करने बर्कले चला गया। वहाँ अपनी फीस का भुगतान करने के लिए, उसने अंगूर बागानों में काम किया, एक कैनिंग फैक्टरी (डिब्बाबंद कारखाने) में फल पैक करने का काम किया, प्लेटें धोईं, एक कार गराज तथा एक बूचड़खाने में काम किया, लोशन बेचे और जब कभी मिला, तो उसने पढ़ाने का काम भी किया। लेकिन बर्कले में रहने का खर्च उठाना तब भी सामर्थ्य के बाहर था। अत: वह विस्कांसिन चला गया जहाँ वह रूस में चल रहे बोल्शेविक आंदोलन से प्रभावित हुआ और उसमें सक्रिय रुचि लेने लगा, उसने मार्क्स और इंजेल्स को पढ़ा और कम्युनिस्ट बन गया। यद्यपि, घर लौटने पर, उसने अपनी युवा पत्नी प्रभावती को गांधीवादी विचारधारा के अभ्यास में गहरे डूबा हुआ पाया। प्रभावती ने उनका पटना का घर छोड़ दिया था और साबरमती के किनारे आश्रम में रहने चली गई थीं। अपने पति पर उनका कुछ प्रभाव अवश्य रहा होगा, तभी तो उसने भारत की नई-नई उभरी बेतजुर्बा कम्युनिस्ट पार्टी के बजाय कांग्रेस में शामिल होना बेहतर समझा। वह जीवन भर समाजवाद के फेबियन सिद्धांत और गांधीवादी विचारों के बीच अनिश्चितता के भँवर में डूबता-उतराता रहा; वह खादी पहनता और अकसर चरखा चलाने में अपनी पत्नी का साथ देता।

सत्ता की राजनीति से उसका मन उचटने लगा और उसने चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया। वह पटना स्थित अपने घर में एक संन्यासी की तरह रहने लगा, जिसे कठोर अनुशासन-प्रिय प्रभावती ने एक स्पार्टन गांधी आश्रम में तब्दील कर दिया था। कुछ समय के लिए वह गांधीवादी संत विनोबा भावे के साथ हो गया और उनके परोपकारी भूदान आंदोलन—स्वेच्छा से भूमि का दान करने के लिए चलाए गए आंदोलन—में शामिल हो गया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि किसी बड़ी प्रतिबद्धता या पक्के संकल्प के साथ वह इस आंदोलन में नहीं उतरा। नेहरू द्वारा

अपनी पुत्री इंदिरा को आगे बढ़ाने और बाद में सत्ता की गद्दी तक इंदिरा की पहुँच के प्रति वह सहिष्णु बना रहा। उसने इंदिरा को प्राय: सलाह देने और उनकी ओर से स्वतंत्र शिष्टमंडल ले जाने का काम किया।

लेकिन 1970 के दशक के आरंभिककाल में उसने कड़े इंदिरा-विरोधी तेवर अपना लिये और इंदिरा कांग्रेस का विरोध करनेवाली अनेक पार्टियाँ, संगठन आदि अपने कार्यक्रमों की अगुआई करने की माँग लेकर उसके पास आने लगे, जैसे समाजवादी, जनसंघ, कम्युनिस्टों का एक गुट, अतिवादी वामपंथी, मूल्य वृद्धि और राजनीतिक निरंकुशवाद के विरोध में खड़े हुए विक्षुब्ध छात्र। जब इंदिरा गांधी ने बहुरंगी, बुर्जुआ गुटों के खिलाफ सख्त काररवाई की और आपातस्थिति लागू करके अनेक नेताओं को जेल में बंद कर दिया (जिनमें सिताबदियारा का वह अग्रज भी था), तो हवा का रुख इंदिरा गांधी के विपरीत जाने लगा। उसे खराब स्वास्थ्य के आधार पर जेल से रिहा कर दिया गया, लेकिन वह संपूर्ण क्रांति के आह्वान के साथ सड़कों पर निकल पड़ा; यद्यपि संपूर्ण क्रांति का आशय कुछ स्पष्ट नहीं था, फिर भी उस समय यह नारा जनमानस का ध्यान खींचने में कारगर सिद्ध हुआ। इस प्रकार उसने एक ऐसे व्यापक आंदोलन की अगुआई की, जिसे बहुत लोग भारत का दूसरा स्वतंत्रता आंदोलन कहना अधिक पसंद करते हैं—इमरजेंसी को उखाड़ फेंकने और सन् 1977 में लोकतांत्रिक चुनावों पर लौटने के लिए छेड़ी गई जंग, जिसके फलस्वरूप स्वतंत्र भारत में पहली गैर-कांग्रेस सरकार सत्ता में आई। उसने सरकार का दिशा-निर्देशन किया, लेकिन स्वयं सरकार में कभी भागीदार नहीं बना और बंबई के जसलोक अस्पताल में बिस्तर पर पड़े हुए जब उसने आखिरी साँस ली, उस समय उसके मन में इस बात की तीखी चुभन और पीड़ा थी कि देश में गैर-कांग्रेस सरकार स्थापित करने का उसका प्रयोग असफल हो गया, जिसकी तसदीक उसके शिष्यों की आँखों में आए आँसू कर रहे थे, जिन्हें वह अपने अंतिम क्षणों में देख पा रहा था।

हमारे प्रमुख नायक ने पटना विश्वविद्यालय में उसके अधीन एक छात्र के रूप में बहुत-कुछ सीखा, हालाँकि उसे उस तरह का बढ़ावा या ध्यान कभी नहीं मिला होगा जो वह समझता था कि उसे मिलना चाहिए।

यह व्यक्ति जयप्रकाश नारायण या जे.पी. के नाम से लोकप्रिय था।

अकबरपुर से आए व्यक्ति का नाम राममनोहर लोहिया था।

आभार

विस्तृत एवं समृद्ध ओजस मैन्शॅन ब्रदरहुड का वहाँ होना बहुत बड़ा संबल था इस महती कार्य को सरल बनाने के लिए। लेकिन पहला नमन रफीक को, जो अचानक चला गया। फिर उन सभी को मेरा हार्दिक आभार : दीपक, नलिन, अशोक द्वितीय, अभयका, पाठकजी, पुष्कर, जेपी, इमरान, पुष्पराज, जुग्नूजी, भेलारी परिवार—कन्हैया और अमित, श्रीकांत, संजय सिंह, संजीव, रमाशंकर, जॉय, पीयूष, रोशन, आनंद, संभवी, शुचि, सुचिस्मिता, नगेंद्र, जय प्रकाश, प्रकाश, फैजान, आलोक, अकरम, हबीब, मकसूदभाई, मुन्ना, हनीफ, रंजन, अमजद, फीरोज। तसवीरें और पुराने दस्तावेज खोज निकालने के लिए दौड़-धूप करने तथा अलबमों एवं अभिलेखों की छान-बीन करने हेतु दीपक के प्रति विशेष आभार। धनंजय ने मुझे बढ़िया-बढ़िया व्यंजनों से बहुत तृप्त रखा और तिवारीजी की लाखों कप चाय कैसे भूल सकता हूँ। सूर्यास्त के समय...

मनीष—सारी सुविधाएँ उपलब्ध करानेवाला, पालनकर्ता, शक्ति-स्रोत, भाई; जिसके बिना मेरे लिए यह पुस्तक लिखना कभी संभव नहीं हुआ होता।

मुक्बाबा, गुरु, प्रेरक, साथी, जिसकी संगति ने मुझे सदैव चिंतन में व्यस्त रखा; प्रत्येक सुबह जिसकी चढ़ी हुई त्यौरियाँ मुझे बता देतीं कि मैं लेखन की समय-सीमा से भटक रहा हूँ।

सिंहवाड़ा में घर के रख-रखाव के लिए शांति का आभार।

मित्रवत् व्यवहार के लिए मानिनी और जगेश्वर दोनों कृतज्ञता के पात्र हैं।

अवीकबाबू को, उनकी उदारता के लिए तथा समांतर ज्ञान देने के लिए।

राजगोपाल, देवदान और शांतनु का आभार, जिन्होंने अनगिनत अखबार मुहैया कराए तथा उन्हें पढ़ने का मौका दिया।

बीच-बीच में पीने-पिलाने की सैर पर ले जाने, हॉलीब्रुक में एक और स्टैला, काफ्की पर एक और कॉफी, नदी तट पर आर्डबेग का एक और लंबा घूँट दिलाने के वादे के लिए पर्सीभइया, विवेक और राहुल का बहुत-बहुत धन्यवाद।

एक और तिकड़ी है जिसने मेरे काम को तराशने का बीड़ा उठाया है : श्रुति के संकेत करने और उल्लखित होकर समर्थन करने में एक विशेष प्रकार का लावण्य झलकता है; भद्रता कितनी हठी हो सकती है और कोई व्यक्ति किस हद तक सहनशील हो सकता है, इस बात को अमित से बेहतर कौन जान सकता है; ऐंडी की पैनी दृष्टि से निकली और सँवारी गई विषयवस्तु में एक नई चमक आ जाती है। इस त्रिमूर्ति को साधुवाद।

राशिद खाँ की सुंदर स्वरलहरी ने मुझे आनंदित रखा, मुझे ऊबने या थकने का एहसास नहीं होने दिया और उससे प्राप्त ऊर्जा के सहारे कभी-कभी तो मैं आधी-आधी रात तक काम करता रहा, भूल गया कि नींद लेना भी जरूरी है।

माँ की तरल आँखों को प्रणाम और एक घुमक्कड़, गैर-हाजिर, विकल एवं बेचैन पुत्र को सहने के लिए माँ की चरण वंदना। सोना, जो स्वयं बहुत परेशान रहती है और अनेक मुसीबतें उठाती है, धन्यवाद की पात्र है, क्योंकि मैं उसकी साहसिक आलोचनात्मक दृष्टि का कायल हूँ। जहान ने हर पृष्ठ को तीक्ष्ण और पूरी गंभीरता से देखकर इस कार्य में अपनी ओर से महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आयुष्मान की मुसकराती-चमकती आँखें और उसकी कभी किसी काम के लिए मना न करने की भावना वास्तव में कृतज्ञता की अपेक्षा रखती हैं। इस पूरे समय के लिए चित्रा, पूजा और सहर का आभार, और आनेवाले समय के लिए सारा, अइमाँ, मीशा, कबीर का आभार। बड़की काकी,

फूफी गीता, सीता तथा पारू, और दकाकों से प्राप्त कृपा-दृष्टि के लिए उनका आभार। मेरे अंतर का आवेश मुझे बैठने नहीं देता, उकसाता रहता है। मेरी दीवार पर लगे चित्र मेरे अंदर प्रेरणा की ज्योति जगाए रखते हैं।

और भी अनेक लोग हैं, जो मेरे धन्यवाद के पात्र हैं और जिनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मैं भूल गया हूँ या जिनके नाम मुझे याद नहीं आ रहे हैं; वास्तव में, इस पुस्तक को लिखने के दौरान प्राप्त कुछ अत्यंत मूल्यवान सुझावों के साथ कई अनाम लोग जुड़े हुए थे—ऐसे अनाम, अज्ञात लोगों के प्रति लेखक अत्यंत कृतज्ञ है और सदैव कृतज्ञ रहेगा।

1

भले छुटकारे की ओर वापसी

अगर कहूँ तो रहने के लिहाज से पटना कोई खास अच्छी जगह नहीं है। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरे वास्ते यह मेरा घर है और मैं कभी-कभी वहाँ वापस जाने, उस शहर के जीवन का हिस्सा बनने की ललक को रोक नहीं पाता। फिर भी मेरा कहना है : पटना रहने के लिए खास अच्छी नहीं है। मेरा जन्म पटना में हुआ, यहीं मेरी चेतना जगी और विकसित हुई। मेरे पिता जिस समय पटना मेडिकल कॉलेज ऐंड हॉस्पिटल (पी.एम.सी.एच.) में मेरे जन्म की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसी दौरान बिहार के प्रमुख अस्पताल में स्वास्थ्य की देख-रेख की दशा के बारे में अनेक रिपोर्टें तैयार करने के लिए काफी जानकारी तथ्योंसहित उनके इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गईं। ये रिपोर्टें वहाँ के सबसे लोकप्रिय दैनिक समाचार-पत्र 'दि इंडियन नेशन' में प्रकाशित हुईं। उनकी एक रिपोर्ट एक लंबे शीर्षक के अंतर्गत एक कुत्ते की तसवीर के साथ छपी थी; यह तसवीर उन्होंने खींची थी। वह कुत्ता पी.एम.सी.एच. अस्पताल के प्रसूति वार्ड से हाल ही में जन्मे बच्चे की नाल अपने नुकीले दाँतों में दबाकर बाहर भाग रहा है। अनेक वर्ष बाद, जब मैं लालू यादव के बिहार पर अपनी पुस्तक के लिए शोध कर रहा था, मैंने छुट्टा गायों को खस्ता-हाल स्ट्रेचरों पर पड़े बेहोश मरीजों की चादरें खींचते हुए देखा। शल्य-चिकित्सा के बाद स्वास्थ्य लाभ कर रहे मरीजों को भी मैंने एक बेहद भद्दी टंकी से पानी लाते हुए देखा; उस टंकी से पानी निरंतर बहता रहता था। कुछ वर्ष पहले, अस्पताल की बाहरी दीवारों को बलुआ-पत्थर की टाइलों से ढक दिया गया, लेकिन इसके वार्डों और ऑपरेशन थिएटरों की हालत वैसी ही बेदर्द बनी रही। जुलाई 2013 में जब स्कूल में विषाक्त भोजन से गंभीर रूप से बीमार हुए बच्चों को इलाज के लिए इमरजेंसी में लाया गया, उस समय विष का प्रभाव दूर करनेवाली मानक दवाएँ अस्पताल में मौजूद नहीं थीं। सेलाइन ड्रिप और पट्टियों की अकसर कमी रहती है, पी.एम.सी.एच. की स्थिति आज भी ऐसी ही है।

मैंने बिहार से पहली कहानी जो भेजी थी वह वीर बहादुर सिंह नाम के एक निर्दलीय विधायक के संबंध में थी। वह विधायक मध्य बिहार के भोजपुर का था, जो एक हट्टा-कट्टा आदमी था, बिखरी-बिखरी दाढ़ी रखता था और उसकी मूँछों के किनारे गोल-गोल मुड़े हुए उसके गालों पर कनखजूरे की भाँति चिपके रहते थे। वह रंग-बिरंगे बंदने और काला चश्मा पहनता था तथा उसे अपनी बंदूकों और अपने निजी रक्षकों के साथ फोटो खिंचवाने का बहुत शौक था। वह कैमरे में ऐसे देखता था, मानो फोटो खिंच जाने के बाद उसक इरादा सबसे पहले फोटोग्राफर को गोली मार देने का हो। एक दिन शाम के बाद वीर बहादुर सिंह अपने गुंडों के झुंड को लेकर पटना के बीचो-बीच स्थित एक चार-सितारा होटल में पहुँच गया। वह अपने साथ एक बकरा लेकर आया था, जिसे वीर बहादुर के साथियों ने लॉबी के एक कोने में मिलकर काट डाला। होटल की रसोई में बकरे का मांस पक रहा था और वे लोग लॉबी में आराम फरमा रहे थे, क्योंकि लॉबी में पहले से मौजूद लोग डर के मारे लॉबी खाली कर गए थे; उसका रोब चलता था और वह जब चाहे, वहाँ कब्जा जमाकर बैठ सकता था। उसने दावत उड़ाई और कुछ ही घंटों बाद उसके मुँह से तेजाबी डकारों के बम फूटने लगे। इसी दृश्य को उजागर करती है मेरी वह पहली कहानी। पटना एक

सबक था मेरे लिए; हमेशा रहेगा।

मैं पटना में जिस स्कूल में पढ़ने जाता था, वह स्कूल वीर बहादुर के मार-काट वाले पिकनिक स्थल से ज्यादा दूर नहीं था, लेकिन वहाँ क्लासरूम के परे सीखने के लिए हमेशा बहुत-कुछ रहता था। ये सबक तब भी हमें मिलते रहते थे, जब स्कूल लंबे समय के लिए बंद कर दिए जाते थे; ऐसे अवसर बहुधा आते रहते थे—उस दौरान हमें छोटे-छोटे, बुनियादी जिंदगी और समय से जुड़े सबक सीखने का मौका मिलता था। मेरे लड़कपन का पटना ज्वार-भाटों, उथल-पुथल के युग से गुजर रहा था, और छोटी-छोटी सफलताएँ उनकी प्रतीक्षा करती थीं जो उसे बाढ़ की ओर ले जाते थे। जे.पी. उस समय सत्तर वर्ष की अवस्था पार कर चुके थे और काफी दुर्बल हो गए थे, लेकिन उनका मन उन्हें प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सत्तावादी, निरंकुश राजनीति के विरुद्ध चल रही हवा को आँधी में बदलने के लिए मचल रहा था, जिसका उन्होंने संकेत कर दिया था। उनका वह संकेत कदमकुआँ में उनके बीमार पड़े होने के बावजूद बाहर निकल गया था और एक जीवंत सड़क विद्रोह—आपात्काल-पूर्व आंदोलन का रूप ले चुका था।

उसके कुछ वर्ष पहले ही इंदिरा गांधी ने पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान के बीच एक कठोर सैनिक काररवाई को अंजाम दिया था और उस मुल्क को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया था। उस दौरान जे.पी. ने इंदिरा का दूत बनकर विश्व का भ्रमण किया था और उस युद्ध के पक्ष में समर्थन जुटाने के लिए काम किया था, जिसने बँगलादेश को जन्म दिया। वह विश्व के विभिन्न देशों की दूरवर्ती राजधानियों से इंदिरा गांधी को बराबर सूचित करते रहते थे और उनके स्नेहशील पत्र 'मेरी प्रिय इंदु' के संबोधन से आरंभ होते थे। लेकिन उस युद्ध के कारण जो बदलाव आया, वह उप-महाद्वीप पर नक्शों के रंग में परिवर्तन से कहीं अधिक था। उस युद्ध में भारी सफलता ने इंदिरा गांधी को दुर्गा, सर्वशक्तिमान देवी की उपाधियों से विभूषित कर दिया। किंतु इंदिरा के शत्रुओं एवं विरोधियों की दृष्टि में वह 'ऐलिस'ज ऐडवेंचर्स इन वंडरलैंड' की रानी जैसी थी—घमंडी, असहिष्णु, डराने-धमकानेवाली, बदमिजाज, सनकी। गुजरात में खाद्यान्न की कमी के कारण भड़के दंगों पर उन्होंने भीषण क्रोध जाहिर किया। वहाँ के लोगों को शांत करने के लिए इंदिरा ने सेना भेज दी और फिर राज्य सरकार को बरखास्त कर दिया। एक देश-व्यापी रेल हड़ताल को उन्होंने सख्ती से दबा दिया। बंबई में जब टैक्सीवालों ने रेल-कर्मचारियों की हड़ताल में साथ देने का फैसला किया, तो वह उन पर बुरी तरह गरज पड़ीं। कोई असहमति या मतभेद उन्हें बरदाश्त नहीं था, किसी भी प्रकार के विरोध की आवाज को वह अपने खिलाफ षड्यंत्र मानने लगी थीं।

वह जितना अधिक क्रोध दिखलाती थीं, उनके विरुद्ध उतना ही अधिक उबाल निकलता था। यह उबाल सीमाओं को पार कर गया और गुजरात से पूर्व की ओर रिसते-रिसते देश के हृदय-प्रदेश में पहुँच गया। उत्तर प्रदेश और बिहार में प्रदर्शनों का सिलसिला जोरों से भड़क उठा। जे.पी. द्वारा इंदिरा गांधी का जिस स्नेह के साथ पत्र लिखे जाते थे, वह रवैया एकदम बदल गया। लगता था कि 'मेरी प्रिय इंदु' लिखते-लिखते वह तंग आ चुके हैं, वह अब रुखाई भरे पत्र लिखने लगे जो 'प्रिय इंदिरा' के संबोधन से शुरू होते थे... और फिर वह सिर्फ 'मैडम प्राइम मिनिस्टिर' लिखने लगे...। उनके अंतिम पत्रों में से एक में, जे.पी. ने लिखा : ''आपके भाषणों और भेंटवार्त्ताओं की प्रेस रिपोर्टें देखकर मुझे घोर कष्ट पहुँचा है। (यह सच्चाई कि आपको अपनी काररवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रत्येक दिन कुछ-न-कुछ कहना पड़ता है, जो यह दरशाती है कि आप अपराध-बोध से ग्रस्त हैं)। प्रेस और हर प्रकार की लोक असहमति का गला घोंटकर, आप आलोचना या खंडन के भय के बिना सच्चाई को तोड़-मरोड़कर पेश करती रहती हैं या झूठ बोलती हैं। अगर आप समझती हैं कि इस प्रकार आप जनता की नजर में स्वयं को न्यायसंगत ठहरा सकेंगी और विपक्ष को राजनीतिक नरक का रास्ता दिखाने में सफल होंगी, तो यह आपकी भारी

भूल है...बताया जाता है कि लोकतंत्र का महत्त्व राष्ट्र से ऊपर नहीं है। प्रधानमंत्री महोदया, क्या आप कुछ ज्यादा ही धृष्टता नहीं कर रही हैं?...कृपया स्वयं को राष्ट्र समझने की भूल न करें। आप अमर नहीं हैं, भारत है।''

कहा नहीं जा सकता कि उन्होंने वे खत कभी पढ़े या नहीं, लेकिन इस बात का कोई रिकॉर्ड नहीं है कि इंदिरा गांधी ने उन पत्रों का जवाब देने की कभी परवाह की हो।

18 मार्च, 1974 को छात्रों ने एकजुट होकर पटना के भिन्न-भिन्न भागों में इंदिरा गांधी के विरुद्ध प्रदर्शनों का ताँता लगा दिया। पहले तो पुलिस ने उनको तितर-बितर करने के लिए डंडा-प्रहार किया और फिर उन पर गोली चला दी। चार छात्र मारे गए, अनेक घायल हुए, और सरकार सकते में आ गई। बिहार में सर्वत्र कर्फ्यू लगा दिया गया। जे.पी. ने इंदिरा के खिलाफ 'संपूर्ण क्रांति' का नारा बुलंद कर दिया। संपूर्ण क्रांति की धारणा अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई है, लेकिन उस समय विद्रोह को हवा देने के लिए यह एक अच्छी पुकार थी। हमारे जैसे स्कूली छात्रों के लिए जे.पी. की 'संपूर्ण क्रांति' का मतलब था—मौज-मस्ती, छुट्टी!...स्कूल से आजादी।

हर रात नौ बजे हम सड़कों पर निकल आते और जो कुछ भी हमारे हाथ लगता—कंकड़-पत्थर, ईंटों, बाँस की छड़ियों, रसोई से चुराकर लाए बरतनों तथा चमचों-कलछियों से बिजली के खंभों को पीटना शुरू कर देते। वे टीन और जस्ते की मिश्र धातु से बने खंभे थे, जिन्हें पीटने पर बहुत शोर होता था। नौ बजते ही जब आकाशवाणी, अर्थात् ऑल इंडिया रेडियो अपना मुख्य समाचार प्रसारण शुरू करता था, उसी समय पटना के आस-पड़ोस से छनछनाने की आवाज आने लगती थी, जिसका मतलब था—इंदिरा का 'मौत का घंटा'...समाचार बुलेटिन हमेशा इस तरह शुरू होता 'प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा है...वास्तव में कोई भी आगे सुनने की परवाह नहीं करता था, क्योंकि हर कोई जानता था कि समाचारों में राष्ट्र के समर्थन में कोई उपदेश या कोई प्रलाप या कोई आह्वान के सिवा कुछ नहीं होगा—बस यही होगा कि 'इंडिया माने इंदिरा, इंदिरा माने इंडिया'। दिन में हम विरोध में हिस्सा लेने का नाटक करते थे, यह हमारे लिए समय बिताने का अच्छा खेल बन गया था, जब स्कूल बंद रहते थे। हम सड़क किनारे बने कामचलाऊ शामियानों के नीचे खुले में बैठते थे और स्कूल ड्राइंग बुक से फाड़े गए पन्नों पर स्लोगन लिखते तथा उनमें रंग भरते थे। 'गली-गली में मच्छर है, इंदिरा गांधी खच्चर है; तानाशाही नहीं चलेगी, नहीं चलेगी, नहीं चलेगी।' उन नारों का प्रसंग भले ही हमारे पल्ले न पड़े, पर हर सुबह इन नारों को चिल्ला-चिल्लाकर सुनाना बहुत सही लगता था। आस-पड़ोस के बच्चे किशोरावस्था में उपवास रखकर दिलेरी दिखाने लगे थे—दोपहर का भोजन बड़ी शान के साथ देश की खातिर त्याग देना अच्छा लगता था। हमारे लिए यह बात कोई अर्थ नहीं रखती थी कि हम उपवास क्यों रख रहे हैं और उसका उद्देश्य क्या है? हम केवल इतना समझते थे कि यह एक बहादुरी का काम है, एक बड़ा और ऊँचे दरजे का काम है; जो उपवास में शामिल नहीं होते थे उन्हें घर-घुस्सू, डरपोक कहलाने का कटाक्ष सहना पड़ता था। बहनें उपवास पर बैठनेवालों को शरबत पहुँचाने का काम करती थीं, कभी-कभी समोसे भी चोरी-छिपे आ जाते थे और यह जानते हुए भी कि यह धोखा है, हम बारी-बारी से टेंट के पीछे जाकर समोसे चट कर जाते। चिंतित माताएँ शाम ढले अपने बहादुर बेटों का अनशन यानी, वास्तव में अन्न त्याग से वापस आने का इंतजार कर रही होती थीं। हमारी बहादुरी और त्याग के सम्मान में हमें मालाएँ पहनाई जातीं तथा माथे पर तिलक लगाया जाता। दिन भर अन्न से दूर रहने की एवज में हमें और समोसे खाने की मंजूरी मिल जाती।

उन दिनों हमने लालू यादव या नीतीश कुमार के बारे में कभी नहीं सुना। वे उन विरोध प्रदर्शनों के नायक थे जिनके चलते हमारे स्कूलों पर ताले लगे थे और हमें सड़क पर मौज-मस्ती करने का मौका मिला था, लेकिन उन नामों का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं था। अपनी सूझ-बूझ के अनुसार हम महानायकों के बीच एक बहुत बड़े युद्ध के निष्ठावान सिपाही थे : इंदिरा बनाम जे.पी., बुराई बनाम भलाई के बीच संघर्ष में शामिल। वह हमारे अधिकारों तथा

हमारी स्वतंत्रता को हमसे छीन रही थीं, जे.पी. ने उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए एक कमजोर उँगली उठाई थी। नागरिक-शास्त्र की कक्षा में भारतीय संविधान पढ़ने से पहले हमें पता था कि उसे उलटा जा सकता है। मौलिक अधिकारों के अध्याय पर आने से पहले हमने जान लिया था कि उन अधिकारों को पाने के लिए प्राय: संघर्ष करना होगा। हमें यह भी बताया गया था कि भारत में, सामान्य रूप से चलती-चलाती दिनचर्या एवं व्यवस्था को कभी भी निडर होकर अस्त-व्यस्त किया जा सकता है।

मैं पटना का बहुत ऋणी हूँ। लेकिन अपनी किशोरावस्था के आरंभ में ही पटना से चले जाना मेरे जीवन की संभवत: सबसे बड़ी घटना थी। इस तरह विचार करूँ तो मैं कह सकता हूँ कि अगर मैं पटना में टिका रहता, तो मुझे पटना शायद इतना नहीं भाता जितना कि वहाँ से चले जाने पर मुझे पटना से लगाव की अनुभूति हुई। आपात्काल के मध्य में ही हम दिल्ली चले गए और मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि मेरी नई कक्षा देश भर में घट रहे घटनाक्रम से पूरी तरह अनभिज्ञ इसकी दुनिया केवल पाठ्य-पुस्तक तक ही सीमित थी। हमें राजनीतिक विज्ञान पढ़ानेवाले अध्यापक, एक सरदार, श्री वालिया थे, जो एक बहुत ही भले, खुशमिजाज इनसान थे और चश्मा पहनते थे, उनका मनपसंद अध्याय भारतीय संविधान था। एक दिन जब वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की अदेयता पर व्याख्यान दे रहे थे, मैंने उन्हें बीच में रोका और कहा : लेकिन सर, वे अधिकार निलंबित हैं, फिलहाल हम उन अधिकारों का लाभ नहीं उठा सकते। पूरी कक्षा मुझ पर हँस पड़ी, जिसका कारण मेरे बोलने का वह लहजा था, जिसका मैं आदी हो चुका था और जो पटना से मेरे साथ चला आया था। मेरे मन को ठेस लगी, विशेषकर इसलिए भी, क्योंकि कक्षा में लड़कों के साथ-साथ खूबसूरत, और दूर-दूर से आई लड़कियाँ भी थीं। ब्लादिमिर नबोकोव ने जो कहा था उसका क्या तात्पर्य था? 'चौदह वर्ष के लड़के के साथ जो कुछ होता है उसकी छाप जीवन भर उसके साथ रहती है।'

अपनी बात कहने के बाद, मैं हठी बनकर अपने डेस्क पर खड़ा हो गया, क्योंकि किसी ने भी मेरी बात पर समर्थन नहीं किया था। श्री वालिया एकदम स्तब्ध रह गए। वह चलकर मेरे पास आए और मेरी बाँह पकड़कर मुझे कक्षा से बाहर ले गए। मैं बहुत डर गया था शायद, क्योंकि मैं बराबर 'सॉरी' कहे जा रहा था और उसका कोई कारण भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था। श्री वालिया ने गलियारे के अंतिम छोर तक ले जाते हुए, जहाँ पूरी खामोशी थी, मुझसे कुछ भी नहीं कहा, लेकिन वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुझसे पूछा, "पर, ऐसी बातें तुम्हें किसने बताईं? तुम्हें कहाँ से पता चला कि मौलिक अधिकारों पर रोक लगी हुई है अथवा उन्हें स्थगित कर दिया गया है?" मैंने उन्हें बताया कि कुछ दिन पहले ही मैं इसके विरोध में पटना में बैठा था और मैं समझ रहा था कि सबको इस बारे में पता होगा। 'सुश्+श', श्री वालिया ने षड्यंत्रपूर्ण ढंग से अपने होंठों पर उँगली रखी। "तुम सही हो लेकिन इन छात्रों को बताने की कोई आवश्यकता नहीं है, वे भोले-भाले बच्चे हैं, दोबारा यह बात मत करना, इससे मुसीबत आ सकती है। किसी को कुछ मत बताना, समझ गए?" उन्होंने मेरी जानकारी को निषिद्ध कर दिया, मुझे वापस कक्षा में ले आए, मुझे अपनी सीट पर बैठने का पढ़ाई पर ध्यान देने का इशारा किया और फिर मौलिक अधिकारों के बारे में अपना व्याख्यान पुन: आरंभ कर दिया। लेकिन मुझे कक्षा से बाहर ले जाने और वापस कक्षा में लाने के बीच कुछ ऐसा अवर्णनीय घट गया कि मेरे बोलते समय कक्षा में मेरी खिल्ली उड़ाना हमेशा के लिए बंद हो गया। पटना से मिला कच्चा-पक्का ज्ञान निश्चित रूप से बहुमूल्य था, लेकिन अब दिल्ली को अपने ज्ञान का एहसास कराना था।

जब मैं इस पुस्तक पर काम कर रहा था और अमिताभ अपनी पुस्तक पर, उस दौरान मैंने, अमिताभ कुमार, लेखक और फैलो 'हैरिसबर्गर' को एक बातचीत में इतना तो बता ही दिया था। पटना के लिए हैरिसबर्ग एक जाना-

पहचाना उपनाम है। इसकी उत्पत्ति एक व्यंग्य से हुई मानी जाती है, जो 1980 के दशक के दौरान दिल्ली में बहुत चल पड़ा था—पिछड़े इलाकों से बड़ी तादाद में आनेवाले बिहारी छात्रों को 'हैरीज' कहकर पुकारा जाता था। यह एक अपमानसूचक शब्द था, लेकिन उस आशय को बहुत जल्द निरर्थक कर दिया गया, क्योंकि बिहारी छात्रों ने इस उपनाम को खुशी से अपनाने में देर नहीं लगाई। यह आधुनिक लगता था, कुछ-कुछ अंग्रेजी नाम जैसा भी: हैरी। उसके बाद, हमेशा के लिए यह तर्क का विषय बन गया कि पटना का नामकरण 'हैरिसबर्ग' कर दिया जाना चाहिए।

अमिताभ ने वस्सर में अंग्रेजी पढ़ाने के कार्य से छुट्टी तो ली थी, ताकि वह शोध कार्य को पूरा समय दे सके, जो बाद में पटना के बारे में एक रोचक विनिबंध बनने जा रहा था। एक सुबह वह मुझसे मिलने मेरे घर आया और हमारे बीच अधिकतर बातचीत हमारे जन्म-स्थान, पटना के बारे में हुई, हालाँकि हम पहली बार दिल्ली में यूनिवर्सिटी में मिले थे। हम दोनों पटना से आए बिहारी थे और इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि हम पटना में ही रहे होते, तो हमारे पास बात करने के लिए अधिक कुछ नहीं होता। हम किन्हीं निष्कर्षों पर नहीं पहुँच सके, हमारी मूक सहमति इस बात की गवाह थी। हमने, बराबर चुप्पी साधे, यह मान लिया कि आप ऐसी घड़ी में पटना आए जब यह हमें खींचने और रोकने लगा था। यहाँ से चले जाना सहायक सिद्ध हुआ।

पटना बहुत समय तक—और काफी हद तक आज भी—एक उग्र, अनगढ़ तथा निराशाजनक जर्जर हालत को दरशानेवाला आईना बना रहा। लेकिन जिसने भी समय गुजरते पटना को जाना-समझा है, वह आपको बता सकेगा कि अभी हाल में पटना का हुलिया किस कदर सुधरा है, बेहतर हुआ है। आज भी इसे अत्यधिक फूहड़, भद्दी राजधानी आप कह सकते हैं, लेकिन कुछ क्षण निकालकर अंधकार और अज्ञान की उन गहराइयों के बारे में सोचें जिन्होंने इसे जकड़ रखा है और जिससे यह बाहर निकलने का प्रयास कर रही है।

भीतर के हाल से परिचित व्यक्ति और बाहरी आदमी, दोनों की दृष्टि में पटना सदैव एक ऐसा स्थान रहा है, जहाँ से आपने निकल जाना चाहा। पटना, भारी उथल-पुथल! हमारे सरीखे—अंतरंग-बाहरी—व्यक्तियों के लिए हमेशा यह एक भारी उथल-पुथल, तबाही का मंजर पेश करनेवाला शहर था, कूड़ा-करकट की दुर्गंध ओढ़े मोहिनी के रूप में बार-बार इशारे से बुलाता, वापसी की गुहार लगाता हुआ।

इसके उपनिवेशीय क्वार्टरों के वैभव को झुग्गी-झोंपड़ियों और उनके साथ रहनेवाले जीवों—गायों, भैंसों, सूअरों, पशु-झुंडों तथा कचरे के ढेरों, दयनीय नग्नता और घिनौने रहन-सहन ने इस तरह ढक दिया है कि स्थिति को कभी पलटा नहीं जा सकता। पटना की नई चमक को रोजाना अपने चेहरे पर दाग सहने पड़ते हैं, जो अर्ध-शहरी अस्त-व्यस्तता के साथ घुलने-मिलने, मेल मिलाने की ग्राम्य सहायक तीव्रेच्छा के अवशिष्ट छोड़कर जाते हैं। प्रत्येक दिन करीब एक लाख लोग, जो अपना माल पहुँचाने तथा अपना धंधा चलाने के वास्ते गंगा के उत्तरी तथा दक्षिणी इलाकों से आते हैं, पटना में नहाते-धोते हैं। वे शहर को आवश्यक सुख-सुविधाएँ तो उपलब्ध कराते ही हैं, शहर के कई हिस्सों में वे सामान्य जन-जीवन की गति में घोर बाधा डालने का भी काम करते हैं। महत्त्वपूर्ण मुख्य मार्गों पर मोटर-चालित यातायात हाथ के ठेलों और रिक्शों की भीड़-भाड़ में फँस जाता है, घंटों तक निकल नहीं पाता। ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी तादाद में आए भूखे लोग काम और भोजन की तलाश में डाक बँगला चौक नामक चमक-दमक वाले एकमात्र इलाके में घूमते-फिरते रहते हैं और यदि उन्हें कुछ नहीं मिलता है या दिया नहीं जाता है तो वे जबरन हथियाने पर उतर आते हैं। डिजाइनर शोरूम खिड़कियों में मॉडलों पर गायों का रँभाना आम बात है, ताजा गोबर की गंध से आइसक्रीम पार्लर महकते रहते हैं। मानव और मवेशी का मूत्र नगर के निचले हिस्से की उन अँधेरी गलियों की टेढ़ी-मेढ़ी नालियों के जरिए बहता रहता है, जिन्हें माचिस की डिब्बी जितने छोटे-छोटे भूखंडों पर

बने ऊँचे-ऊँचे मकानों की ओट मिली हुई है। जितना बेढंगा, ऊट-पटाँग और दमघोंटू निर्माण कदमकुआँ और राजेंद्र नगर में आम तौर पर देखने को मिलता है, उतना कहीं अन्यत्र नहीं। ये पूर्वी पटना के पुराने रईसों की बस्तियाँ हैं। सामंती अभिजात-वर्ग अर्थात् जागीरदारी समाप्त हो गई है, इस वर्ग के लिए ठाट-बाट से रहने का लाइसेंस कभी नवीकृत नहीं किया गया। बड़े-बड़े बँगलों को बुलडोजरों से ध्वस्त कर दिया गया है, पुरानी भूसंपत्तियों पर छोटे-छोटे मकानों की बेलगाम फसल खड़ी हो गई है। ये मकान इतने पास-पास और एक-दूसरे से इस कदर जुड़े हुए हैं कि हवा को भी रास्ता न मिले। इसके साथ ही, आप यह अनुमान भी लगा सकते हैं कि उनका निर्माण इतना खराब है कि गुजरती हुई तेज हवा का एक झोंका उन्हें धराशायी कर सकता है।

पटना बढ़ रहा है, लेकिन ऊपर की ओर क्षैतिजीय स्तर पर कोई जगह नहीं बची है बसने के लिए। दोपहर से पहले ही पटना सचिवालय के चारों ओर की पटरियों को मछली और साग-सब्जी बेचनेवाले इस कदर घेरकर बैठ जाते हैं कि उनके बीच से निकलना मुश्किल हो जाता है। यह एक आधिकारिक—और राजनीतिक रूप से—स्वीकृत व्यवसाय है, नीतीश कुमार का आदेश है कि सड़क किनारे बैठे विक्रेताओं को न हटाया जाए, वे ईमानदारी से दैनिक निर्वाह हेतु मेहनत करने का प्रयास कर रहे हैं। ध्यान देनेवाली बात यह है कि सामान बेचनेवाले इन समुदायों में से अधिकतर अत्यंत पिछड़ी जातियों से आते हैं, जिनके बीच नीतीश की गहरी पैठ है।

पटना का गोलाकार गांधी मैदान शहर का सबसे बड़ा खुला क्षेत्र है, और यदि आप सुबह-सुबह उस तरफ जाने की हिम्मत कर सकें, तो आप वहाँ नगर के उच्चतम प्रशंसक और संतरी—कलेक्टर तथा पुलिस अधीक्षक—के निवास स्थान की बगल में सूअरों और मनुष्यों को पेट हलका करने हेतु जगह पाने के लिए आपस में होड़ लगाते हुए देख सकते हैं। मैदान के पूर्वी किनारे पर एक नया बहु-मंजिला पुलिस स्टेशन खड़ा हो गया है और उद्योग भवन बन गया है, जिसका अग्रभाग फाइबर ग्लास का है, लेकिन दोनों भवनों को बहुत जल्द कूड़े-कचरे ने घेर लिया है—परित्यक्त या जब्त किए गए वाहनों के पिंजर, कचरे के ढेर, गोबर एवं मूत्र तथा खून में सने सेनिटरी नेपकिन या कपड़ों के चिथड़े और जगह-जगह पड़ा मनुष्यों तथा पशुओं का थूक और बलगम।

भयावह झटका लगता है नगर की हालत देखकर। आधुनिक बिहार की शत-वार्षिकी के उपलक्ष्य में सन् 2012 में बनाया गया सुबोध गुप्ता का स्मारक उतना ही भयावह एवं चौंकानेवाला दृश्य उपस्थित करता है। ब्रितानवी-युग के गवर्नर हाउस से लगे एक भोंडे पार्क में स्थापित, यह रसोई में काम आनेवाली स्टेनलेस स्टील की चीजों—प्लेट, कप, छलनी, चम्मच, गिलास, कलछी, छन्नों, चाकुओं को भलाई से जोड़कर बनाया गया एक बहुत ऊँचा कैकटस है। इसके निचली तने पर गुप्ता ने किरमिजी रंग के दो गोलाकार पिंड ऊपर से जड़ दिए हैं, इस कदर उभरे हुए कि आप सोचेंगे कि वे निकलकर गिरनेवाले हैं। वे स्तन हो सकते हैं, आँखों के कोटर से खींचकर निकाली गई आँख की रक्तरंजित पुतलियाँ हो सकती हैं। बिलकुल नीचे, जहाँ कैकटस एक गोलाकार घेरे के अंदर, सीमेंट में जमाया हुआ है, वहाँ प्लास्टिक की खाली बोतलों, बीयर एवं पेय पदार्थ के तोड़-मरोड़कर फेंके गए डिब्बों, कागज की प्लेटों का बेतरतीब अंबार हमेशा ही पड़ा रहता है।

हाल के वर्षों में पटना के दूसरे भागों में भी बदलाव आया है। लेकिन जो बदलाव आया है उसे देखने तथा कहाँ-कहाँ कितना परिवर्तन हुआ है उसकी थाह पाने के लिए भी ऐसी ही एक जानी-पहचानी दृष्टि चाहिए। बीरचंद पटेल पथ अथवा पुरानी गार्डीनर रोड, पटना की शक्तिशाली सड़क, जिसके साथ-साथ बिहार की अधिकतर राजनीतिक पार्टियों के मुख्यालय स्थित हैं, दोनों तरफ सर्विस लेन से घिरे होने के कारण गाड़ियों के आने-जाने का आम रास्ता बन गया है। इस सड़क को बीच से चीरती हुई एक इतनी चौड़ी रँगी-पुती पट्टी है कि किसी भी दिन उसमें 'बोगेनविला' की कटी-छँटी दीवार सी निकल आएगी। शाम होते-होते यह सड़क नारंगी हेलोजिन के प्रकाश में

चमक उठती है। गार्डीनर रोड एक अँधेरी गली हुआ करती थी, जहाँ आप अदृश्य कुत्तों की आवाज के सहारे अपना रास्ता खोज लेते थे। लेकिन यह न सोचने लग जाएँ कि पटना के मध्य में कोई प्रांतीय-प्रासाद खड़े हो गए हैं, जिन्हें देखकर मन आनंद और उमंग से भर उठे। सर्विस लेन्स में एक अनधिकृत उपनिवेशवाद ने अपना अड्डा जमा लिया है, जो एक जबरन कब्जा जमानेवाला विके्रता-समुदाय है जिसके निमंत्रण पर मक्खी-मच्छर और महामारी का नया ताँता लग गया है—कारण, छोटे-मोटे ढाबे खुल गए हैं, रिक्शेवालों को रिक्शा खड़ी करने का ठौर मिल गया है, कपड़े धोकर सुखाने हेतु धोबियों के लिए टाटों का अंबार लगा हुआ है, विरोध-प्रदर्शन करनेवालों के झुरमुट ने सिर छिपाने के लिए कटे-फटे-चिथड़ा हुए तिरपालों की छत के नीचे आश्रय ले लिया है। बिहार में किसी-न-किसी कारण से हमेशा विरोध प्रदर्शन होते रहते हैं, जैसे कि, पेंशन, मजदूरी, बेरोजगारी, नौकरियों के लिए आरक्षण का बहुत कम या बहुत अधिक प्रावधान, भूमि हड़पने की समस्या, भूमिहीनता, बलात्कार, अत्याचार, यहाँ तक कि निजी अत्याचार के मसलों पर भी। हाल ही में एक आदमी इस बात के पोस्टर लगाकर विरोध पर बैठा था कि अब उसकी पत्नी उसे खाना नहीं परोसेगी या बच्चों की देखभाल नहीं करेगी, क्योंकि नीतीश कुमार के महिलाओं के लिए आरक्षण संबंधी कार्यक्रम ने उसकी पत्नी को एक बहुत व्यस्त, और अत्यधिक घमंडी, पंचायत प्रधान बना दिया है। 'जनाना को मर्दाना बनाया, मर्दाना को जनाना, नीतीश कुमार मुर्दाबाद!'...सर्विस लेन में रेंग-रेंगकर आगे बढ़ना भी दूभर है। यातायात (ट्रैफिक) को अलग-अलग करने के लिए कंकरीट की पटरी को उन-उन जगहों पर यू-टर्न के लिए रोक-टोक तोड़ दिया गया है जहाँ कोई यू-टर्न नहीं होना था; ट्रैफिक में फिर अराजकता आ गई है।

बीरचंद पटेल पथ के एक सिरे पर सर्किट हाउस के दो ब्लॉक हैं, जो ऊपरी कतार पर एक खुले पैदल-पथ से जुड़े हुए हैं। रख-रखाव के अभाव में बीसियों साल तक इसकी हालत खस्ता बनी रही जब तक कि नीतीश ने इसकी मरम्मत का आदेश नहीं दिया। बलुआ पत्थर के चिप्पड़ लग जाने से इसकी बाहरी शक्ल जरूर बिखर गई है, लेकिन इसके अंदर की हालत पहले जैसी ही बनी हुई है। कमरे गीले रहते हैं, एयर-कंडीशन आवाज करता है और उससे पानी निकलता है, बिस्तर की चादरें इत्यादि, नई धुली होने पर भी, धब्बेदार तथा सीली-सीली आती हैं और चाय तीखी होती है तथा प्लेटों में छलकी हुई होती हैं। ऊपरी तल के पैदल-मार्ग को जब पार करते हैं, तब अतिथि कक्षों से बाहर की ओर सूखने के लिए फैलाए हुए कच्छे, बनियान और लुंगी आदि आपको 'सम्मान गारद' पेश करते हुए दिखते हैं।

पटना की बोरिंग रोड कॉलोनी में उच्चवर्गीय और फैशनेबुल लोग निवास करते हैं, लेकिन पटना की इस हाई-क्लास बस्ती में भी सूअरों को स्वच्छंद भ्रमण करते कभी भी देखा जा सकता है। इस कॉलोनी में कुछ समय पहले सड़क के कोनों पर कूड़ा-करकट डालने के लिए लिए बड़े-बड़े डिब्बे रख दिए गए थे, और यहाँ के फुटपाथों को नई बजरी बिछाकर पक्का एवं सुंदर बना दिया गया था। लेकिन कुछ ही समय में इन डिब्बों को बंधन-मुक्त कर दिया गया। कुछ चुरा लिये गए और कुछ को चुराने की प्रक्रिया में ऐसा करके छोड़ दिया गया कि फिर उनका प्रयोग न किया जा सके। पटरियों पर अब पहले से भी ज्यादा विक्रेताओं ने अपना अड्डा जमा लिया—चीन में निर्मित छोटे-मोटे सस्ते गहने, चाऊमीन (नूडल्स) तथा मोमोज, मोबाइल फोन तथा मोटर वाहनों में लगनेवाली अतिरिक्त वस्तुएँ, गानों और पिक्चरों के चोरी से बनाए गए कैसेट, आई.ए.एस. की परीक्षा में सफलता पाने के लिए ढेरों गाइड तथा अन्य सामग्री। क्योंकि बिहार में हर किसी को यह दिखाने का बड़ा शौक है कि वह आई.ए.एस. की तैयारी कर रहा है, और सेलफोन के अंदर में सुरक्षित अश्लील साहित्य ताकि आप 'ब्राउज' न कर सकें और भुगतान किए बगैर भाग न सकें।

पटना के फूहड़पन और अशिष्टता को प्राय: जरूरत से ज्यादा बदनामी मिलती है। विलियम डेरिम्पिल द्वारा पटना के बारे में 'At the Court of the Fish-Eyed Goddess' (1998) में दी गई एक हास्य-विनोदपूर्ण कहानी में एक ऐसी अतिशयोक्ति है, जो अगर दयाभावपूर्ण अथवा कृपालु न होती, तो सिर्फ शरारत भरी कहलाती—वह लिखते हैं : अँधेरा होने के बाद पटना में सड़कों पर निकलना पागलपन है। सच नहीं है, निश्चय ही नहीं। लेकिन इस देश में अंग्रेजों ने कहीं अधिक मनमानी की है, खेद की बात यह है कि आज भी यह बात उनकी बुद्धि में बैठती नहीं है, जबकि उनका सूर्यास्त हुए बहुत समय बीत चुका है। यदि पटना शाम के बाद इतना ही खतरनाक होता कि सिर्फ पागल लोग ही बाहर निकलने का साहस करते, तो हर रात पटना की करीब तीन-चौथाई जनसंख्या को पागलखाने पहुँचाना पड़ता। जैसा कि होता है, आम तौर पर वे उचित एवं सीधे-सादे ढंग से, देर रात सड़कों पर निकल पड़ते हैं, जो उनका अपना ही पागलपन है, लेकिन चिंता करने की जरूरत नहीं है।

प्रत्येक दिन शाम के समय महिलाओं के झुंड बड़ी-बड़ी वातानुकूलित गाड़ियों से पश्चिमी पटना में नए बने शानदार शॉपिंग बाजारों (मॉल्स) में तशरीफ लाते हैं; इन महिलाओं ने इतने अधिक और भारी-भारी जेवर-गहने पहने होते हैं कि उनके लिए चलना मुश्किल होता है; उनके वस्त्रों से निकलती इत्र-फुलेल की दमघोंट खुशबू दुकानों में भर जाती है। मंदिरों के शीर्ष पर सज्जित बड़े-बड़े लाउडस्पीकरों से गीत-भजनों की तेज आवाज लगातार कानों को झनझनाती है, जिसका मुकाबला करने के लिए सड़क के दूसरी ओर से भोजपुरी के एकदम नए, हिट गाने की आवाज आ धमकती है : करेजवा लगा ले बिदेसिया, भिजौली कसल अंगिया... अरे, ओ घुमक्कड़, मुझे कलेजे से लगा ले, मेरी तंग अंगया भीग गई है। फिल्म के विज्ञापन-पट्ट पर मिस थंडर थाइज अपने पूरे जोबन के साथ मौजूद हैं, उसका नीचे को झुका हुआ वक्षस्थल ऊपर की तंग और झीनी चोली से बाहर निकला पड़ रहा है। मि. बिदेसिया दूसरे कोने में चित्रित है, उसकी उठी हुई मूँछों पर एक लंपट मुसकान है, उसका कूल्हा घूमने की असंभाव्य मुद्रा में जाम हो गया था। रात में सड़क पर ट्रैफिक का जाम हो जाना हमेशा मददगार बनता है, क्योंकि आप भीगी छातियोंवाली मिस थंडर थाइज पर अधिक देर तक नजर गड़ा सकते हैं। अफसोस मि. डेरिम्पिल को किसी ने बताया नहीं कि शाम के बाद पटना के चार-सितारा होटल के कमरे में खुद को बंद करके वह क्या खो रहे हैं।

लेकिन, डेरिम्पिल की भयभीत करनेवाली सलाह को अगर परे रख दिया जाए, तब भी बहुत कम लोग होंगे जो पटना की स्थिति से वाकिफ होते हुए, बिहार की राजधानी का निराशाजनक, प्राय: भयावह चित्रण प्रस्तुत किए जाने पर अधिक आपत्ति उठाएँगे या झगड़ा करेंगे। पटना की स्थिति के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, डेरिम्पिल द्वारा दिए गए वर्णन से पहले भी और बाद में भी; यह हो सकता है कि उसके लिखे की गणना अधिक कपटपूर्ण वर्णनों में की जाए। पटना इस बारे में प्राय: कोई अच्छा तर्क प्रस्तुत कर सकता है कि डेरिम्पिल ने सूर्यास्त के बाद का जैसा सनसनी फैलानेवाला विवरण पेश किया है, वैसा अनुचित चित्रण भी विश्वसनीय क्यों लगने लगता है। और फिर भी, आज यह लालच बना हुआ है कि डेरिम्पिल को वापस बुलाया जाए, सूर्यास्त के उपरांत रिक्शे में बैठाकर उन्हें उस रास्ते से शहर घुमाने ले जाया जाए, जहाँ मिस थंडर थाइज का होर्डिंग लगा है, और देर रात पूरे भरे सिनेमा हॉल में उन्हें बैठाया जाए, जहाँ वह लुभावना पोस्टर परदे पर जीवंत हो उठता है।

अब यह संभव हो गया है कि आप अपनी नई कार में घूमने निकल जाएँ, शाम को खरीदारी करके या मेल-मुलाकात करके घर लौट आएँ, कोई मुसीबत नहीं उठानी पड़ेगी, सिवाय इसके कि टायर की हवा निकल जाए। कुछ समय पहले तक ऐसा नहीं था; जिस समय के बारे में डेरिम्पिल ने लिखा है, उस दौरान पटना में आप यह कहने से भी डरते थे कि आपके पास कार है, क्योंकि आपकी कार आपसे छीन लिये जाने का डर था और आपकी

शिकायत कहीं दर्ज नहीं होती थी।

सन् 2010 के विधानसभा चुनावों के अभियान के बीच, मैं बिहार में जगह-जगह तीन सप्ताह की सड़क यात्रा पर निकल पड़ा, यह जानने की कोशिश में कि बिहार में 'परिवर्तन' की चहचहाट किस कारण से चल पड़ी है, चाहने या माँगने के लंबे दौर को भूलकर...'फिर, बिहार का क्या? हम बिहार के बारे में क्या कहें? इतने प्रहार और आघात राज्य ने सहे हों, उसके बारे में हम क्या कहें? उसे तो अपना दर्द महसूस करने की भी आजादी नहीं थी। उस राज्य के बारे में क्या कहें जिसे चोट पर चोट देकर इतनी दीन-हीन अवस्था में पहुँचा दिया गया कि अब यह अपना कष्ट बताने या शिकायत करने से भी इनकार करता है? हम उन लोगों की कहानी कैसे कहें, जिन्होंने आपबीती बताना बंद कर दिया है, जो सोचते हैं कि इसका कोई अर्थ नहीं रह गया है?...'

अगला अध्याय बिहार में नीतीश कुमार के शासन के दौरान परिवर्तन के उन चित्रों तथा अन्य प्रयासों की झाँकी प्रस्तुत करता है। 'कुछ हो रहा है, कुछ नहीं हो रहा' में वर्णित यात्राओं का कालनुक्रम एवं महत्त्व, भारत के बहुत से भागों की तरह, लगता है बिहार के लिए बहुत अर्थ नहीं रखता है, किंतु इतना तो तय है कि इसका अस्तित्व एक ही समय में युगों-युगों तक कायम रहता है; इसकी वास्तविकता बराबर जगह बदलती रहती है और उसके लिए इसकी वास्तविकता कम नहीं होती है।

नीतीश उन लोगों में से एक था, जिन्होंने मुझे प्रेरित किया था। 'जाइए, देखिए'...जब मैंने नीतीश से उनके पाँच वर्ष के शासन के दौरान मुख्यमंत्री के रूप में उनकी पाँच बड़ी उपलब्धियाँ बताने के लिए कहा, तो उनका जवाब था कि आप जाएँ और खुद अपनी आँखों से देखें। उन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण योजनाओं पर शानदार पुस्तिकाएँ और किए गए कार्य के बारे में मोटी-मोटी पुस्तकें छपवाई थीं, और उनके जन-संपर्क विभाग का मुख्य अधिकारी एक आवाज की दूरी पर उपस्थित रहता था, लेकिन नीतीश न उनमें से किसी का सहारा नहीं लिया। ''मैं जो बताऊँगा उससे आपको कोई खास जानकारी नहीं होगी, और हो सकता है कि आप मेरी बात पर विश्वास न करें, पत्रकारों के बारे में मैं भी कुछ ज्ञान रखता हूँ'', उन्होंने मजाक में कहा था, ''अच्छा यही होगा कि आप बाहर निकलकर देखें और खुद फैसला करें।'' सत्ता में बैठे किसी राजनेता के लिए अकसर यह एक साहस का काम होता है कि वह अपने क्षेत्र का एक अनिर्देशित (मार्गदर्शक को साथ लिये बिना) भ्रमण करने के लिए आमंत्रित करे; वे प्राय: इसे प्रायोजित करना अधिक पसंद करेंगे और सभी आवश्यक 'प्रबंध' कराने की तत्परता दिखलाएँगे। नीतीश के आत्मविश्वास में एक गरिमा थी, उनके पास छिपाने के लिए कुछ नहीं था और न प्रदर्शित करने के लिए बहुत कुछ।

नीतीश कुमार के सत्तारूढ़ रहते हुए बिहार में जो बदलाव आया उसमें से बहुत कुछ सिर्फ सौंदर्यवर्धक था—सड़कें चिकनी एवं समतल थीं, सड़कों पर रोशनी के लिए बिजली लग गई थी, परिवारों के देर रात तक बाहर रहने और औरतों को गहने-जेवर पहनकर निकलने में डर नहीं था, बस अड्डों जैसी जन-सुविधाएँ मुहैया कराई गई थीं और स्कूलों में बच्चों की संख्या बढ़ गई थी, तथा शिक्षकों की भी। पटना से हर दिशा में—गंगा के उत्तर और दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम—महत्त्वपूर्ण तथा केंद्रीय स्थल की ओर जानेवाले मार्गों के साथ-साथ नए निर्माण-कार्यों की हलचल थी : धूल-मिट्टी, कंकरीट, तारकोल, मिट्टी हटानेवाली और सड़कें समतल करनेवाली बड़ी-बड़ी मशीनें (अर्थमूवर और रोडरॉलर) मौजूद थीं, बड़ी तादाद में मर्द और उनकी स्त्रियाँ काम में जुटे हुए थे, उनके बच्चे रोड़ी-बजरी डालने में मदद कर रहे थे और धूल-मिट्टी तथा तारकोल के कारण काले भूत बने हुए थे। बिहार में सड़क पर होना बड़ी हिम्मत और जीवट का काम था। क्योंकि बहुत समय से वहाँ सड़क नाम की कोई चीज नहीं थी, आप सड़क की कल्पना भर कर सकते थे। अब सड़कें बनाने का काम जोरों से चल रहा था और इसी कारण

रास्ते में बाधा पड़ रही थी—जगह-जगह पथांतरण, धुआँ, धूल-कालिख, अवरोधों आदि का सामना करना था।

लेकिन उस पर ध्यान देने और उसके परे न देखने का मतलब वास्तव में आ रहे परिवर्तन को न देख पाना था। इसमें कुछ भी प्रकट या स्पर्श्य नहीं था। असल परिवर्तन बिहारियों के मन के अंदर और उनकी मानसिकता में हो रहा था। स्पष्ट था कि उन्हें अपने कुचक्री दिमाग से मकड़जाल को साफ करने की प्रेरणा और ऊर्जा कहीं से मिल रही थी, वे अपने स्वार्थवाद तथा स्वार्थ के आगे कुछ भी न सोच-समझ सकने की भावना को त्याग देने के लिए तैयार हो गए थे। वास्तव में जो परिवर्तन आ रहा था वह फिर से जगी आशा के रूप में आ रहा था—सड़कों और टूटे पुलों को पुन: बनाया जा सकता है, सड़कों को रोशन किया जा सकता है, स्कूलों को अध्यापन कार्य में व्यस्त किया जा सकता है, अपराधियों को सलाखों के पीछे भेजा सकता है, वादों को पूरा किया जा सकता है, भले ही धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके किया जाए। बिहार के अधिकतर अँधेरे हिस्सों में बिजली अभी पहुँची नहीं है, लेकिन पहुँच जाने की पूरी उम्मीद बँध गई है। नीतीश के प्रथम कार्यकाल में, छोटे-से-छोटे शहरों तथा ग्राम-ब्लॉकों में पुराने सब-स्टेशनों की मरम्मत की गई या उन्हें बदल दिया गया; दूसरे कार्यकाल के आरंभ होते ही नई विद्युत् परियोजनाओं पर काम शुरू करने के बारे में विचार किया गया। निस्संदेह, वे केवल आश्वासन थे, लेकिन जब किसी वादे के अनुसार सड़क बनना शुरू हो जाता है, तो यह संभावना पक्की होने लगती है कि किसी दिन वहाँ रोशनी भी पहुँच जाएगी।

बिहार या इसकी राजनीति से अपराध अभी मिटा नहीं है। नीतीश कुमार स्वयं अपने मंत्रियों में कुछेक गुंडों को पाले हुए हैं। उनमें सबसे अधिक कुख्यात है अनंत सिंह, जो मोकामा से जनता दल (यूनाइटेड) का विधायक है। यह निर्वाचन-क्षेत्र मध्य बिहार में नदी तट पर स्थित है और गुंडाराज के लिए बदनाम है। नीतीश के लिए अनंत बार-बार परेशानी का कारण बन जाता है। उसे दरबार सजाकर नचनियों (नर्तकियों) को बुलाने, उनका नाच देखने और उनकी तारीफ के पुल बाँधने का बहुत शौक है, ऐसे मौकों पर वह बंबइया फिल्मों के बिगड़े नवाबों की नकल करता है, या उन नाचनेवालियों को एक के बाद एक घिसे-पिटे गाने पर थिरकने-मटकने के लिए उकसाता है। वह देखने में बहुत ही हास्यास्पद लगता है—साइकिल के हैंडिल जैसी मूँछें रखता है और मूँछों को मरोड़ते रहने में उसे मजा आता है। पार्टी में उसे मसनदों के सहारे अधलेटी मुद्रा में बैठना, कलाइयों पर मालाएँ लपेटे रखना, और एक वरदीधारी सेवक से अपने पैरों का मसाज कराते हुए तसवीर खिंचवाना बहुत अच्छा लगता है। वह जगदीशपुर के उस दिवंगत वीर बहादुर सिंह से किसी मायने में भिन्न नहीं है, जिसके लिए कोई शोक नहीं मनाया गया। उसे धमकी के साथ कैमरे को डराने में मजा आता है। वह पेट हिला-हिलाकर नाच दिखानेवाली नर्तकियों को प्यार से छूता और सहलाता है, बोतल मुँह से लगाकर व्हिस्की पीता है तथा नशोन्मत्त होकर अपनी ऑटोमैटिक पिस्तौल से गोलियाँ छोड़ता है। इन कार्यक्रमों का वीडियो बनाना और वितरित करना उसे खुश करता है। वह अपनी ऐसी ही छवि के साथ शान से जीता है और शायद यह उसको अच्छा भी लगता है। वह वास्तव में बाहुबली, अथवा माफिया सरगना है, शेष लोग ढोंग करते रह सकते हैं। कहा जाता है कि उसने बीच पटना में बहुमूल्य वाणिज्यिक भूमि पर कब्जा कर लिया है और किसी में भी इतनी हिम्मत नहीं दिखती है कि उसे ऐसा करने से रोकने के लिए कुछ कर सके—न तो पुलिस, न कानूनी अदालत, न उसका राजनीतिक बॉस नीतीश कुमार साहस कर सकता है।

लेकिन अनंत सिंह की गति बिहार की राजनीति में घटती हुई दिख रही है। संगठित अपराध अतीत था, हिस्सा बनने से तो अभी बहुत दूर है, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अब यह राजनीतिक आश्रय या संरक्षण को निश्चित मानकर नहीं चल सकता। लालू यादव के शासन-काल में अकसर इसका उलटा होता था; राजनीतिक हलकों में तब यह चर्चा गरम रहती थी कि किसी अपहरण कांड को हल करना हो तो उसके लिए सबसे अच्छी

जगह मुख्यमंत्री का निवास-स्थान है।

बिहार में लगभग अदृश्य रूप से आए बदलाव का अगर जायजा लेना है, तो इसके लिए पटना के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान, मुख्यमंत्री का शासकीय आवास, 1, अणे मार्ग की ओर रुख करना बेहतर होगा। लालू प्रसाद के दिनों में, यह एक तरह से खुला चौपाल-घर बना हुआ था, जिसके पिछवाड़े मवेशियों का बाड़ा था और सामने का बरामदा हर समय आराम-परस्ती करनेवालों से भरा रहता था, जैसे कि, समाजवादी और घोटालेबाज, लिपिक और कृपा-दृष्टि चाहनेवाले, चापलूस और गुंडे-बदमाश, ससुरालवाले और भगोड़े, सबकी मिली-जुली एक ऐसी बड़ी जमात जिसने पहले तो लालू को उसकी जमीनी हकीकत से दूर कर दिया और फिर उसे सत्ता की गद्दी से भी उतार दिया। इस महासंघ का प्रधान—लालू यादव—पीछे की तरफ एक पुराने जमाने की कुरसी पर पालथी मारकर बैठ जाता, डकारें लेता। मुट्ठी भर तंबाकू चबाना और लगातार चाय पीते रहना उसकी आदत बन चुकी थी; इससे शायद उसकी कब्जियत दूर होती थी और हाजमा दुरुस्त रहता था। फिर वह ढेर सारा चावल फिश या मटन-करी के साथ खाता जबकि चारों तरफ बैठे चाटुकार उसका गुणगान करते रहते। वह चाटुकारों, बाबुओं और अकसर राबड़ी देवी तक को भी हुक्म देता रहता, जो लंबे समय तक मुख्यमंत्री भी रही थीं। लालू ने सत्ता पर अपना कब्जा बनाए रखने के लिए अनेक कुचक्र रचे थे। 1, अणे मार्ग, मुख्यमंत्री आवास में उसने अधिकतर समय एक फिजूलखर्ची दरबारी राजा की तरह बिताया।

नीतीश कुमार ने धीरे-धीरे वह सारा सिलसिला समाप्त कर दिया और प्रवेश-द्वार पर यह लिखकर टाँग दिया : 'आदमी काम में विघ्न न डालें।' कोई काम होने पर ही आप अंदर जाएँगे, काम के बिना अंदर जाने का कोई मतलब नहीं है। प्रार्थना, आवेदन और संपर्क के लिए सप्ताह में एक घंटे का समय निश्चित है, बाकी समय 1, अणे मार्ग के द्वार समय लेकर आनेवालों के लिए खुलते हैं। निंदक, जिनमें से कुछ नीतीश के गुट में भी हैं, आपको बताते हैं कि नीतीश 'पहुँच के बाहर' होने की कीमत चुका रहे हैं, लेकिन जो कोई भी हो, नई व्यवस्था की अच्छाइयों का वह स्वयं भी समर्थन और अनुसरण करते हैं। ''सारे समय मेला लगाए रखने की क्या जरूरत है? राज्य के मुख्यमंत्री को काम करना होता है, लोग अंतत: यह बात समझ जाते हैं और इस नई व्यवस्था का सम्मान करते हैं। काम से आए लोगों से मिलने के लिए मैं कभी इनकार नहीं करता हूँ, यह मुख्यमंत्री का घर और काम करने का स्थान है, कोई राजनीतिक अखाड़ा नहीं है।'' उन्होंने कहा जब मैंने उनसे पूछा कि क्या वह खुद को लोगों से दूर कर रहे हैं। लालू का तरीका विपरीत था, लेकिन वही तो एक अंतर है, नीतीश ने अव्यक्त रूप से कहा।

भारत के मुख्य अधिशासक की बेजोड़ पिटारी में जितनी भी प्रशंसित उपलब्धियाँ हैं, उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि पर कभी गौर नहीं किया गया है : यह उपलब्धि है—बिहार के बारे में एक धारणा को ध्वस्त करके दूसरी धारणा का निर्माण करना। नीतीश कुमार का बिहार लालू यादव के उस बिहार की तुलना में बिलकुल अलग तसवीर पेश करता है जिस पर लालू यादव की कार्य-प्रणाली का ठप्पा लगा हुआ था—अर्थात् असल में काम न करके भड़कीले शब्दों का पहाड़ खड़ा करना, करिश्मा कर दिखाने के लिए बटोरी गई प्रसिद्धि के बदले प्रदर्शनीय वचनबद्धता, खोखला प्रचार करके सपने दिखाना। नीतीश कुमार द्वारा सोच-समझकर बनाई गई नई नीति को त्यागना जितना कठिन होगा, उस पर चलना और भी अधिक कठिन हो सकता है। यह कल्याणकारी योजनाओं तथा विकास संबंधी आँकड़ों का बिहार में सर्वत्र प्रचार एवं चर्चा करने की अपेक्षा कहीं ऊँचे दरजे की चीज है, यह ऐसी प्रेरणा है, जो लोगों की मन:स्थिति बदल रही है और बदलाव दिखने भी लगा है—उन्हें विश्वास होने लगा है कि वे न केवल आकांक्षा कर सकते हैं, बल्कि उसे हासिल भी कर सकते हैं। पटना के दक्षिण की ओर जानेवाले राजमार्ग पर 24 घंटे खुले एक ढाबे के मालिक उपेंद्र सिंह ने बताया, ''पाँच साल पहले मुझे यहाँ अपनी कार में आने की

हिम्मत नहीं होती, डिश टी.वी. और म्यूजिक लगाने की मैं सोच भी नहीं सकता था। लेकिन अब मैं यहाँ सारी रात रहता हूँ और मेरे ग्राहक भी। मैं नहीं चाहूँगा कि यह जाए।''

बिहार के उस भ्रमण पर निकलने से ठीक पहले मैं एक इंटरव्यू के लिए नीतीश से मिलने गया। वह अपने बँगले के लॉन पर छप्पर पड़े एक सायबान के नीचे अकेले बैठे हुए थे, एक कॉर्डलैस (बिना तार का) फोन और एक पानी का गिलास उनकी बगल में रखा था, दूर-पास देखने का चश्मा उनकी नाक पर नीचे की ओर ढलका हुआ था और वह प्रश्नात्मक ढंग से फाइलों पर ध्यान लगाए हुए थे। बिहारियों की सारी पीढ़ी ने इस तरह के दुर्लभ दृश्य की कभी कल्पना भी न की होगी। अपने मुख्यमंत्री को फाइलें पढ़ते हुए उन्होंने अंतिम बार कब देखा था? मुझे पास आते देखते ही उन्होंने फाइलों को एक तरफ रख दिया : ''अब क्या?''

''तो? पाँच साल निकल गए, चुनाव सिर पर आ गए, आगे क्या होनेवाला है?''

''देखिए'', नीतीश ने कतरे गए लॉन और फूलों की सुंदर क्यारियों की ओर देखते हुए बड़े शांत-संयत स्वर में कहा, ''बदलाव तो आया है बिहार में, और वह चुनाव में दिखेगा, मुझे कोई चिंता नहीं है...।''

क्या उन्हें इस बात से चिंता होती है कि बिहार का अभूतपूर्व मुख्यमंत्री कहलाए जाने की प्रशंसा ने उनको अभिभूत कर दिया है?

''यह एक मिला-जुला भाव है'', उन्होंने कहा, ''प्रशंसा मुझे और विनम्र बना देती है तथा मुझे हिम्मत दिलाती है, मुझे खुशी है कि बिहार की वास्तव में ठीक-ठाक देखभाल हो रही है। लेकिन मैं उतना ही दबाव भी महसूस करता हूँ। अभी बहुत कुछ करना बाकी है, और यहाँ से उस कार्य का तारतम्य बनाए रखने की एक नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। हमने अभी शुरुआत की है। प्रशंसा हमें अपने कार्यों के प्रति सजग रहने की चेतावनी देती है।''

तब मैंने उनसे यह पूछा कि राज्य में अपने पहले पाँच वर्ष के शासन के दौरान वह अपनी किस उपलब्धि को सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वह थोड़ा रुके, फिर बोले, ''मैं समझता हूँ कि आज बिहार में कुछ ऐसा है, जो इस सबसे ऊपर है, एक नई आशा और गर्व की भावना दिख रही है, एक ऐसी भावना जिसे मैं एक नई बिहारी भावना, एक नई चेतना कह सकता हूँ। और वही एक भावना है जो स्वयं कभी पटरी से उतरना या हारना नहीं चाहेगी। यहाँ सरकार-विरोधी भावना नहीं है, सरकार-समर्थक भावना है। समाज में कोई तनाव नहीं है, सुकून है...सामाजिक शांति है। और वही इस आशा को बढ़ावा दे रही है कि जो भी बदलाव होगा, बेहतरी के लिए होगा। लोग अतीत की ओर लौटना नहीं चाहते हैं। 'लकड़ी की हाँडी दोबारा आग पर नहीं चढ़ती...' बिहारियों की एक नई पहचान बनी है, जो जाति और धर्म से ऊपर उभरी है।''

फिर भी, क्या उन्हें इस बात से चिंता नहीं होती कि राजनीति और सरकार में बी.जे.पी. उनकी सहयोगी पार्टी थी, वह पार्टी जिसे अधिकतर सांप्रदायिक रूप से फूट डालनेवाली पार्टी समझा जाता है, जिस पार्टी के वास्ते उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन में बहुत समय तक संघर्ष किया था?

उस समय नीतीश ने इस सवाल को कोई खास महत्त्व नहीं दिया, बल्कि कहना चाहिए कि परेशान करनेवाली एक मक्खी की तरह सवाल को झटक दिया। ''आप बी.जे.पी. को एक अनावश्यक बेताल बना रहे हैं। उन्होंने कहाँ दखल दिया है, या दखल देने का प्रयास कर सके हैं। मेरा एक बिलकुल अलग अल्पसंख्यक समर्थक एजेंडा है और उसे मैंने बहुत अच्छी तरह लागू किया है। हम अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी की एक स्थानीय शाखा खोल रहे हैं, हमने भागलपुर दंगों के दोषियों को दंड दिया है, हमने केवल मुसलमानों को ध्यान में रखकर विशेष आरक्षण की व्यवस्था की है और कल्याणकारी योजनाएँ बनाई हैं। बी.जे.पी. का अपना ही एजेंडा है, लेकिन बिहार में हम

स्वीकार किए गए एक सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर सरकार चलाते हैं और अल्पसंख्यक समुदाय का हित उस कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मैंने कहाँ और कब यह संकेत दिया है कि मैं बी.जे.पी. को अपने धर्मनिरपेक्षवाद के साथ समझौता करने दूँगा?''

मैंने निर्वाचन-क्षेत्र का निर्माण करने की उनकी शैली के संदर्भ में उनसे पूछा कि क्या वह स्वयं फूट डालने की राजनीति करनेवाले एक नेता नहीं हैं। उनकी नीतियाँ पसमांदा (पिछड़े) मुसलमानों, अत्यधिक पिछड़ी जातियों तथा कमतर दलितों की तरफदारी विशेष रूप से निर्मित निर्वाचन क्षेत्रों के रूप में करने लगी थीं। बहस चली कि नीतीश सरकार विकास की बात नहीं करती है, यह सामाजिक इंजीनियरिंग अर्थात् वैज्ञानिक सिद्धांतों को सार्वजनिक उपयोगिता के व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु लागू करने की बात करती है, इसे छोटे-से-छोटे तबकों तक पहुँचाने की बात करती है। तो उनकी नीतियाँ विकास के बारे में हैं या अभेदता को लेकर?

नीतीश ने कहा कि उन्हें कोई विरोधाभास नजर नहीं आता। उनके विचार में विकास सबके लिए होता है, सड़कें केवल दलितों या मुसलमानों के लिए नहीं होती हैं; यही बात स्कूलों, अस्पतालों तथा सार्वजनिक शौचालयों के निर्माण तथा अन्य सुविधाओं को मुहैया कराने संबंधी योजनाओं पर भी लागू होती है; ये सभी समावेशित योजनाएँ हैं जिन पर सरकार काम कर रही है। स्थानीय निकायों में 50 प्रतिशत आरक्षण के फलस्वरूप बिहार में महिलाएँ बाहर आ रही हैं, वे सभी जातियों तथा धर्मों से आती हैं। सरकारों का दायित्व बनता है कि उनके लिए लीक से हटकर कुछ किया जाए, सरकारों द्वारा ऐसा न किए जाने के कारण ही नक्सलवाद का जन्म हुआ, गरीबों की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है।

क्या उन्हें उच्च जाति द्वारा विद्रोह कर दिए जाने का डर नहीं है? क्या उन्हें ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने भूमि पुनर्वितरण का मसला उठाकर उच्च जातियों के हितों को खतरे में डाल दिया है?

नीतीश ने वापस कुंडली मारी और आपत्ति जताई। उन्होंने कहा कि भूमि का पुनर्वितरण ऐसा भूत है जिसे कुछ लोग जिंदा करने की कोशिश में लगे हैं, उनकी सरकार ने इस पर एक रिपोर्ट माँगी थी लेकिन उस रिपोर्ट पर सरकार ने अभी कोई विचार नहीं किया है। उन्होंने इसे एक 'मिथ्या भय' बताया और कहा कि इसके पीछे उनके शत्रुओं का हाथ है। 'मेरा पक्का विश्वास है,' उन्होंने मुझसे कहा, ''पिछले कुछ वर्षों में जाति और वर्ग से उठकर बिहारियों की एक नई पहचान प्रकट हुई है, यह गर्व अथवा आत्मसम्मान की एक नई भावना है, जिसे हमने उत्पन्न किया है और मुझे यकीन है, लोग इसे समझेंगे, इसे महत्त्व देंगे। मैं इसे महत्त्व दिलाऊँगा। मैंने अपना जीवन इसी उद्देश्य तक पहुँचने में लगाया है।''

वह नीतीश की सर्वाधिक विख्यात, सबसे बढ़कर चुनावी विजय की पूर्वसंध्या थी। यह जबरदस्त जीत उन्हें बिहार विधानसभा में दो-तिहाई बहुमत दिलाने जा रही थी। उस समय यह संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि समस्याओं का एक घना बादल घिरकर आनेवाला है और सर्वाधिक प्रशंसित मुख्यमंत्री तथा उसकी सरकार के भविष्य पर अपनी काली छाया मँडरानेवाला है। बिहार को ऐसा मुख्यमंत्री तथा ऐसी सरकार बहुत लंबे समय के बाद प्राप्त हुई थी।

अपने द्वितीय कार्यकाल के मध्य में नीतीश कुमार बिहार के बाहर कदम रखेंगे और नरेंद्र मोदी की भारत का प्रधानमंत्री की महत्त्वाकांक्षा को ध्वस्त करने का भारी जोखिम उठाएँगे। वह अपने प्रतिरूप, गुजरात के मुख्यमंत्री को फूट डालनेवाला, एक फासीवादी कहेंगे, एक ऐसा व्यक्ति घोषित करेंगे, जिसने बहुलतावादी भारत की बुनियादों

के लिए खतरा उत्पन्न किया। मोदी जैसे आदमी के साथ वह काम करने के लिए तैयार नहीं थे, वह उससे लड़ेंगे। नीतीश जानते थे कि वह कितना बड़ा जोखिम लेने जा रहे हैं, लेकिन यह ऐसा जोखिम नहीं था, जिसे उठाने से वह पीछे हट जाएँगे : 'इस आदमी के साथ कोई कम्प्रोमाइज नहीं होगा, इससे हमारे समभाव को खतरा है'... नरेंद्र मोदी के साथ विचारों के उस शब्दाडंबरपूर्ण संघर्ष का अनावरण करने की प्रक्रिया में, नीतीश एक पुराने सहयोगी को खो देंगे और खुद एक आक्रामक शत्रु कहलाने का अभियोग अपने ऊपर ले लेंगे। बी.जे.पी. के साथ अपनी सत्रह वर्ष की साझेदारी की कटुता को प्रकट करने से घटनाओं का एक ऐसा सिलसिला आरंभ हो जाएगा, जो नीतीश के आमने-सामने उनके जीवन की सबसे बड़ी, भीषण चुनौती खड़ी कर देगा और उस प्रतिज्ञा को ही संकट में डाल देगा, जो प्रतिज्ञा उन्होंने एक युवा राजनीतिक आदर्शवादी के रूप में अपने आपसे की थी, बिहार के लिए कुछ हासिल करने का प्रण।

❑

2

कुछ हो रहा है, कुछ नहीं हो रहा

नीतीश का बिहार लालू यादव की कर्तव्यविमुखता एवं लापरवाही के कारण बिहार के बदन पर पड़ी खरोंचों पर पुलटिस के समान था। इसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नया लक्षण वास्तव में आशा की एक नई किरण के रूप में प्रकट हो रहा था, नागरिकों में फिर यह उम्मीद जगने लगी थी कि परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। लेकिन लालू युग की कमियों को पाटने और सुधारने का काम आसान नहीं था और उस दिशा में कोई भी प्रयास इतनी जल्दी कभी पर्याप्त नहीं हो सकते थे। नीतीश ने आकांक्षाओं की जो भूख स्वयं जगाई थी उसका सामना बहुत शीघ्र नीतीश को ही करना था। उस भार को सहना, वहन करना और भी मुश्किल हो गया, विशेषकर उनके दूसरे कार्यकाल के दौरान, विशेष तौर पर उस समय जब उन्होंने बी.जे.पी. के साथ अपनी साझेदारी तोड़ दी और अपने मित्रों को शत्रु बना लिया।

नीतीश कुमार के सत्ता में आने के समय से बिहार में जब-जब कोई अच्छा काम हुआ है, तब-तब दूसरी समस्या सिर उठाकर खड़ी होती रही है या फिर यथास्थिति को ही गले लगाती रही है, क्योंकि बिहार के लोग अब किसी और समस्या को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। नीतीश ने सन् 2005 में जब सत्ता सँभाली, तब बिहार एक खाई जैसा था और उस खाई को पाटना एक बड़ा कठिन कार्य था। बिहार को किसी उच्चतर स्तर पर लाने की कहानी उपलब्धियों और विफलताओं की कहानी है, जो एक खुरदरी तसवीर पेश करती है। नीतीश का राज्य, उनकी सारी कोशिशों के बावजूद, एक असमान, प्राय: विपरीत दृश्य प्रस्तुत करता है, बुरी तरह अधूरे छोड़े गए कार्य की एक कहानी। अपने दूसरे कार्यकाल के उत्तरार्ध में कदम रखते ही नीतीश को मुख्यमंत्री के रूप में अपने सबसे खराब समय का सामना करना पड़ा, उन्हें अनेक राजनीतिक एवं प्रशासनिक झटके लगे, उन्हें अपने पहले कार्यकाल के दौरान शासन में जो सफलताएँ मिली थीं, उन सफलताओं को वह बी.जे.पी. की आक्रामक तथा प्रचंड चुनौती के कारण और अधिक ऊँचे स्तर तक ले जाने में असमर्थ रहे। राजनीतिक रूप से उनका ध्यान भटक गया, शासन पर उनकी दृष्टि की पकड़ धुँधला गई प्रतीत होती थी, उन्हें तत्काल कुछ करने की आवश्यकता थी, ताकि शासन की गाड़ी को पटरी से उतरने से रोका जा सके।

बिहार के दूर-दराज के कोनों से आनेवाले भ्रमणार्थी आपको आँखों देखी सुनाकर शायद यह एहसास करा सकेंगे कि बिहार में क्या कुछ होने लगा है और क्या नहीं हो रहा है।

पटना से हम एक दिन सवेरे-सवेरे महात्मा गांधी सेतु पर चढ़कर गंगा के पार उत्तर की ओर चल पड़े। सेतु के गर्टर काँप उठे। पुल का आधा हिस्सा मरम्मत के लिए बंद था, शेष हिस्सा रुके हुए ट्रैफिक के नीचे कराह रहा था। पत्थर की चिनाई पटरियों से निकल गई थी और रैंप कहाँ-कहाँ एक-दूसरे से जुड़ते हैं कुछ पता नहीं था। जब भी कोई वाहन गुजरता, स्टील के इंटरलॉक (अर्थात् जोड़) किसी बूढ़े आदमी के दाँतों की तरह बजने लगते थे। संभवत: वे चाहते थे कि पुल से गुजरनेवाले उन पर ध्यान दें। हम लड़खड़ा गए और किसी तरह हम नदी के पार हाजीपुर में शुल्क-द्वारों तक पहुँचने में सफल हुए। बूथ खाली पड़े थे, ऐसा लगता था जैसे उन्हें लूट लिया गया हो —खिड़कियों से शीशे गायब थे, चौखटों से दरवाजे निकले हुए थे। जहाँ बैरियर होने चाहिए थे, वहाँ खाटें पड़ी थीं और एक-एक खाट पर दो-दो लोग सोए हुए थे, अपने ऊरुमूल को खुजलाते हुए, डीजल की साँसें भरते हुए।

ट्रैफिक उन्हें परेशान करता, मच्छर उनका खून चूसते रहते जब तक कि सूरज निकलकर उन्हें भगा नहीं देता। लेकिन वे सोने की कोशिश करते रहे। उनके टट्टू, सड़क से उठकर आए, मैले-कुचैले, नंगे पाँव लड़के शुल्क-द्वारों की रखवाली कर रहे होते। वे वहाँ से जानेवाले वाहनों का पीछा करते, जैसे सड़क के कुत्तों का झुंड अकसर पीछे लग जाता है। उनके हाथों में बेंत की छड़ी होती थी और जब कोई शुल्क-द्वार की उपेक्षा करके निकल भागने की कोशिश करता, तो छड़ी दिखाते, बोनट पर, सामने के शीशे पर मारते, गंदी-गंदी गालियाँ देकर धमकाते, 'रुको और पैसे दो!' बहुत से लोग झाँसा देकर निकल जाते, लेकिन कुछ को रोकने में वे सफल भी हो जाते।

जो भी रुपया-पैसा उन्हें दिया जाता, वे मुट्ठी में दबा लेते और उसके बदले कोई रसीद नहीं देते थे। उनमें से एक चिल्लाया, 'सस्पेंड है, सस्पेंड है,' कहने का मतलब शायद यह था कि चुंगी-घर का लाइसेंस सस्पेंड हो चुका है। जो कुछ भी उनके हाथ लग जाता उसे वे निलंबित टोल-ठेकेदार की जी-हुजूरी बनानेवाले निद्रामग्न लोगों के अधिकार से जेब में रख लेते थे।

पटना से गंगा पार करके उत्तर बिहार में प्रवेश करना अतीत में लौटने जैसा अनुभव है। ऐसा ग्राम्य-जीवन समय में पीछे जाने पर ही देखा जा सकता है। यह क्षेत्र, सदा की तरह, प्रकृति द्वारा प्रदत्त संपन्नता और प्राकृतिक आपदाओं में जीता है, उन तत्त्वों की तलवार के नीचे रहता है, जो बारी-बारी से क्षति पहुँचाते हैं और रक्षा भी करते हैं। इसे बाढ़ और सूखे का सामना करना पड़ता है, यह मानसून की दया और उस महान गंगा के पैरों में जीवन व्यतीत करता है, जो जितना देती है, उतना ही छीन भी लेती है। यह प्राचीन भारत कृषि प्रधान देश की एक तात्त्विक झलक है। यह अनेक भूतपूर्व और वर्तमान मुफस्सिल जागीरदारों का घर, उनकी जन्मभूमि भी है और ये जागीरें नदी के पार पूर्व से पश्चिम तक एक-दूसरे की सीमा से सटी हुई हैं—अपराधी गिरोह के सरदार शहाबुद्दीन का सिवान, लालू यादव का छपरा, राम विलास पासवान का हाजीपुर, रघुवंश प्रसाद सिंह का वैशाली, जॉर्ज फर्नांडिस का मुजफ्फरपुर : बिहार का अंधकारपूर्ण सुनहरा मार्ग सिवान से मुजफ्फरपुर का फासला 150 किलोमीटर से अधिक नहीं है, लेकिन इस सफर को तय करने में आधा दिन लग जाता था, क्योंकि सड़क इस कदर खराब थी कि आपकी हड्डियों को तोड़कर रख देती थी।

मैंने इस हालत के बारे में सन् 2004 में शहाबुद्दीन से एक बार जिक्र किया था, जब वह सिवान से लालू यादव का सांसद था। उस समय उसे जेल में होना चाहिए था, क्योंकि उस पर एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी की हत्या का आरोप था (बाद में उसे आजीवन कारावास की सजा मिली, जिसे वह अब काट रहा है), लेकिन उसने बीमार होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर किया था। वह सिवान के जिला अस्पताल के एड्स वार्ड में भरती हो गया; उस अस्पताल के एक नए ब्लॉक के दो फ्लोर शहाबुद्दीन ने अपने निर्वाचन-क्षेत्र के लिए आबंटित राशि से बनवाए थे। उस वार्ड के बाहर एक प्लेट पर उसका नाम अंकित था, जो यह संकेत करता है कि इसके निर्माण का श्रेय शहाबुद्दीन को जाता है : 'माननीय सांसद मोहम्मद शहाबुद्दीन के सौजन्य से'। शहाबुद्दीन को एड्स नहीं था, एड्स वार्ड पर उसका केवल अधिकार था।

प्रथम तल पर उसके दो निजी कमरे थे। उसके आदमी, जिन्हें वह 'मेरे कर्मचारी' कहता था, उन कमरों पर कब्जा किए हुए थे, जबकि उनमें से एक-एक कमरा एड्स के एक-एक मरीज को मिलना चाहिए था। वह मुख्य हॉल में हर रोज अपना दरबार लगाता था। वह लोहे की बनी एक कुरसी पर बैठता था, जिसकी पीठ किसी सिंहासन जितनी ऊँची थी, उसके सामने लंबी-लंबी बेंचों की दो कतारें थीं जैसी किसी चर्च में हुआ करती हैं। उसके पास याचिकाएँ, अर्जियाँ लेकर आनेवालों का ताँता लगा रहता था। बेंचों से छोटी-छोटी परचियाँ आगे भेजी जाती थीं और एक वरदीधारी सेवक परची में लिखा मजमून धीरे से पढ़कर डॉन को सुनाता, जबकि डॉन खुद मुट्ठी भर लौंग तथा

इलायची मुँह में भरे हुए कुछ-कुछ बोलने का दिखावा करता। जब कभी उसे ठीक लगता, वह अपना सेलफोन उठाता और बात करता, लेकिन कभी अपना नाम नहीं बताता था; कहा हुआ काम हो जाने का उसे पूरा यकीन रहता था : जिला मजिस्ट्रेट हो या पुलिस प्रमुख, राजस्व अधिकारी या कचहरी रजिस्ट्रार, किसी से भी बोलते हुए वह अपनी बात की शुरुआत इस तरह करता था—'हम बोल रहे हैं...' जिन परचियों के बारे में वह बात कर चुका होता, उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता, बाकी परचियाँ बेंचों को लौटा दी जाती थीं। ऐसा कभी नहीं होता था कि डॉन किसी भी अर्जी पर काररवाई करने में असमर्थता दिखलाए, लेकिन संकेत यही मिलता था कि फिलहाल कुछ नहीं हो सकता। फिर कभी आएँ, अर्जी लगाने में थोड़ा और कष्ट करें।

शहाबुद्दीन को देखकर आप ऐसा नहीं सोचेंगे कि वह एक सफल उद्यमी था, लेकिन एक तरह से वह अपने काम में कामयाब था। सिवान अधिकतर एक ग्रामीण जिला है, जहाँ कुछ इलाकों में खुदरा व्यापार होता है; शहाबुद्दीन को सिवान में 'मारा-मारी, तोड़-फोड़ और छीन-झपट' के कारोबार पर एकाधिकार प्राप्त था। शहाबुद्दीन के आदमी अनेक प्रकार के धंधे करते थे : छोटी-मोटी लूट-खसोट, जमीन हथियाना, अपहरण, लूट, हत्या, बंदूक बेचने का कारोबार। उन्होंने सिवान क्षेत्र में पुलिस पार्टियों के साथ बहुत बार बंदूकों की लड़ाई लड़ी है—कभी अपने सरदार को सुरक्षित निकल जाने का मौका देने के लिए, कभी दूसरों को उस साक्ष्य तक पहुँचने से रोकने के लिए, जिस साक्ष्य के आधार पर उनके सरदार को दोषी ठहराया जा सकता है। शहाबुद्दीन बंदूक चलाने में खुद बहुत माहिर था, अकेले में वह अपनी निशानेबाजी की शेखी बघारता था, 'एक शॉट, शूटर को उससे ज्यादा नहीं लगना चाहिए...'। लेकिन अगर आप उसे देखें, तो आप कभी उसे सिवान के भयावह 'शहाबू' से नहीं जोड़ेंगे। वह हमेशा खाकी रंग की पैंट और सफेद कमीज के पहनावे में बना-ठना रहता था। उसके काले, घने बाल ब्रोकली की शक्ल में कटे हुए एकदम सजे-सँवरे रहते थे, लेकिन मूँछें उसके सिर के सजीले बालों से मेल नहीं खाती थीं। उसका असली रूप तभी सामने आता, जब वह जुबान खोलता था।

मैंने उससे सवाल किया कि आपने सिवान तक एक अच्छी सड़क का निर्माण करने के लिए उसके अधिकार का उपयोग करने के बारे में क्यों नहीं सोचा। उसने मुझे इस तरह देखा जैसे मेरे प्रश्न की अविश्वसनीयता पर उसे हँसी आ रही हो। ''आपको सड़क का इस्तेमाल करने की क्या जरूरत है? ट्रेन पकड़ो, मैं भी यही करता हूँ, सड़कें हम जैसे लोगों के लिए नहीं होती हैं।'' लालू यादव के जमाने में यही ढंग था सोचने का : सड़कें क्यों? नेताओं को सड़कों की जरूरत नहीं है, उन्हें रेलगाड़ियों में सबसे बढ़िया सीटें मिलती हैं, या फिर, वे हेलिकॉप्टरों का इस्तेमाल करते हैं। उनके लोगों को सड़कों की जरूरत नहीं है, उनके पास कारें नहीं होती हैं।

सन् 2010 के चुनावों की पूर्व संध्या पर सिवान से मुजफ्फरपुर पहुँचने में तीन घंटे से कम समय लगा, पहले की तुलना में सड़क बहुत बेहतर थी और सफर आरामदायक। शहाबुद्दीन अब हत्या के आरोप में सलाखों के पीछे सजा भुगत रहा था—जिला अस्पताल के एड्स वार्ड में अब उसकी कोई पहुँच नहीं रह गई थी।

महनार, गंगा दियारा : गंगा पार करने के कुछ ही समय बाद हम सहसा बाईं तरफ एक तंग रास्ते पर आ गए; वह रास्ता आगे जाकर खंड-खंड हो गया, जिसके आगे जाने पर एक धूल भरा रास्ता था, जो बाद में गंगा के विशाल तटों के दोनों तरफ जलोढ़ भूमि के खुले मैदान में मिल गया। वहाँ हमें बाँस, ताड़ के पत्तों और मिट्टी से बनी झोंपड़ियों का एक झुरमुट दिखाई दिया। इन झोंपड़ियों की शक्ल डिब्बों जैसी थी। उधर एक आदमी खाली बैठा हुआ था; उससे जब हमने पूछा कि यह क्या जगह है, तो उसने मुँह उठाकर देखा और बोला कुछ नहीं। वह निठल्ला बैठा रहा। हमने फिर पूछा और इस बार उसने कहा 'गंगा जी'। उसके कहने में एक प्रकार की खीझ थी, जो इशारा कर रही थी कि 'क्या तुम खुद नहीं देख सकते?' धूल का गुब्बार उठा। नदी घट गई थी, दूर जाकर धूप

से विवर्ण हुई एक लकीर जैसी दिख रही थी। वहाँ और कुछ नहीं था; ऐसा लगता था जैसे दुनिया भाप बनकर उड़ गई है और पीछे छोड़ गई है—एक नदी तथा उसका नंगा तट। हम एक दियारा, अथवा नदी के टापू पर थे, जो गंगा की इच्छा के अनुसार डूब जाता है और फिर ऊपर आ जाता है। जब पानी नीचे चला जाता है, दियारा सबसे उपजाऊ मैदान बन जाता है, लेकिन नदी में पानी चढ़ जाने पर यह सबसे खतरनाक स्थान हो सकता है। दियारा अस्थिरता-अनिश्चितिता का एक निर्दयी चक्र है, और यह प्रकृति की आदिकालीन अवस्था में ही घटित हो सकता है।

हमें पटना से चले हुए मुश्किल से एक घंटा हुआ था।

हाथ-पर-हाथ धरे, खाली बैठे व्यक्ति ने काफी देर बाद अपनी जुबान खोली और अपना नाम खीर जतन बताया। कुछ अजीब सा नाम लगा, लेकिन उसने यही बताया था : खीर जतन, हड्डियों के पिंजर जैसा आदमी, जो प्रकृति की मार सहते-सहते एकदम काला पड़ गया था। उसने कमर पर एक धोती बाँधी हुई थी और धोती को घुटनों के ऊपर उठाया हुआ था। उसकी दाढ़ी कहीं-कहीं सफेद और खूँटी जैसी थी। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं था। ''यहाँ गंगाजी हैं, उर्वरता है और कुछ नहीं है'', उसने कहा, ''लेकिन, अगर यह नदी न होती, तो हम कहाँ होते? किस्मत से कोई साल अच्छा रहा, तो मैं खूब काम करके एक वक्त का खाना जुटा लेता हूँ, खराब समय में हम बाढ़ से दूर भाग जाते हैं और अगले साल का इंतजार करते हैं।''

खीर जतन एक भूमिहीन किसान था, वह केले के पेड़ लगाता और, अच्छे साल में, मकई तथा धान की खेती भी कर लेता था। लगता था पटना से उसका बहुत दूर का नाता है, जिसका क्षितिज नदी के पार धुँध में एक फूहड़, मैली उपच्छाया का निर्माण करता है। ''सुनते तो हैं कि बदलाव हो रहा है, लेकिन हमारे यहाँ आवेगा तब ना''...बिहार में बदली हवा का उसे कुछ-कुछ आभास था, लेकिन ऐसा कुछ नहीं था जिससे लगे कि उस बदलाव से वह भली-भाँति परिचित है। उसने सुना था कि बढ़िया राजमार्गों का निर्माण हो रहा है, उसको यह भी बताया गया था कि पटना पर चमक चढ़ा दी गई है, उसने स्वीकार किया कि जब कभी उसका बिलकुल करीबी शहर, हाजीपुर की ओर जाना होता था, उसने अधिक-से-अधिक लड़कियों को एक जैसी पोशाक पहने, साइकिल पर सवार होकर निकटतम स्कूल तक जाते हुए बड़े आश्चर्य से देखा था। ''लेकिन इससे मुझे क्या मिला है?'' उसने कहा, ''विकास की गूँज है चारों तरफ, लेकिन हमको भी तो मिले कुछ...''

नीतीश कुमार अच्छी तरह समझ रहे थे कि कितना कम हुआ है और कितना अधिक करना अभी बाकी है। सन् 2010 के चुनाव के दौरान जब कभी वह अपने हेलिकॉप्टर के रुकने के चबूतरे चढ़ते, वह अपने ही दावों की ओर उँगली उठाते हुए चेतावनी जारी करने से नहीं चूकते थे—विकास अभी तक नहीं हुआ है, इसकी अभी शुरुआत हुई है, बड़ी चुनौती आगे दिख रही है, मुझे एक और अवसर दो, बड़े बहुमत से जिताओ। वह इस बात से कतई अनभिज्ञ नहीं थे कि बिहार के बड़े भागों में विकास बुरी तरह नदारद है। हम पटना से केवल एक घंटे की दूरी पर थे और फिर भी जो हमें दिख रहा था, आदिकालीन युग की याद दिलाने के लिए काफी था। खीर जतन की गंगाजी में हमारी कार एकमात्र आधुनिक वस्तु थी देखने के लिए। जहाँ तक हमारी यात्रा का संबंध है, हमें इधर-उधर इस बात के संकेत अवश्य मिले कि कहीं कुछ है जो ऊपर आने के लिए मचल रहा है, लेकिन जो दिख रहा था, उसमें विकृतियों के संकेत भी कम नहीं थे।

सड़क का सफर रहस्य खोलनेवाला साबित हुआ : सड़क मौजूद थी। इससे पता चल रहा था कि नीतीश कुमार के बिहार में कुछ हो रहा है। सड़क हमारे आगे किसी रिबन की तरह बिछी हुई थी। कुछ वर्ष पहले तक सड़क के रास्ते इतनी दूरी तय करने का आप साहस भी नहीं करते बशर्ते कि आप कष्ट भोगने में आनंद प्राप्त करने के आदी

होते अथवा इस सड़क के आजू-बाजू रह रहे होते, जिनके पास और कोई विकल्प नहीं था। तब वहाँ सड़क नाम की कोई चीज नहीं थी। गाड़ी चलाकर सीधे चलते जाना असंभव था, आपको खाइयों तथा गहरे गड्ढों से बचते हुए टेढ़े-मेढ़े रास्ते से जाना पड़ता। कार में बैठकर जाना ऐसा लगता था जैसे किसी ट्रैक्टर ट्रॉली में पीछे बैठे हों और सड़क के धक्के कभी भी आपको उछालकर बाहर फेंक देंगे। उस सुबह हमारी गति को पंख लग गए थे, काली-चिकनी सड़क ने हमारी धारणा को गलत साबित कर दिया। वाकई कुछ हो रहा था।

हम सबसे पहले उस जगह रुके जिसकी अनदेखी करके जाना मुमकिन नहीं था, ग्रामीण बिहार में ऐसा सुंदर एवं आकर्षक दृश्य कल्पना के परे था; हमें रुकना ही पड़ा। यह एक स्कूल था, ईंटों का बना हुआ और ताजा रंग-रोगन में चमकता हुआ। सभी लड़कियाँ, एक जैसी साफ-सुथरी पोशाक पहने, गलियारों में हँस-खेल रही थीं या अपनी कक्षाओं में तेज बोल-बोलकर अपना सबक याद कर रही थीं। दो-चार कामगार उस जगह की झाड़ू-बुहारू कर रहे थे, जहाँ मध्याह्न से काफी पहले बच्चों को मध्याह्न-भोजन (मिड-डे मील) परोसा गया था। एक अध्यापक एक खुली रसोई में बड़े-बड़े भगौनों में पकाए जा रहे भोजन—चावल, दाल और सब्जी—का निरीक्षण कर रहा था। ''डेली सप्लाई के हिसाब से बच्चे बहुत ज्यादा हैं,'' एक आदमी ने क्षमाप्रार्थी शब्दों में कहा, उसने अपना परिचय 'दिलीप सिंह, क्लास VI मास्टर, गवर्नमेंट मिडिल स्कूल' के रूप में दिया। ''हम छोटी कक्षा को पहले खिलाते हैं। वी हैकिंग मल्टीपुल फीडिंग हीयर (हम यहाँ कई गुटों में खाना खिलाते हैं, बारी-बारी से)'', उसने आगे जोड़ा।

पहली पंक्तियों में बैठे बच्चे जैसे ही अपना खाना—दाल, चावल और रसेवाला फूलगोभी—समाप्त कर चुके होते हैं, दूसरा गुट उनकी जगह आ बैठता है। खाना ढाक पत्तों की बनी प्लेटों में परोसा जाता है। रोज होता है? ''रोज यही हो रहा है, सर'', मास्टर दिलीप सिंह ने सच्चे मन से कहा, ''हर दिन, रोजाना, कुछ वर्षों से, जब से यह सरकार आई है सर, कभी-कभी हम भी यहीं खाते हैं। बचा हुआ, केवल बचा-खुचा खाना, मेरा मतलब है कि जो खाना बच जाता है, कभी-कभी सर। यह हमारे लिए भी अच्छा है, मेरा मतलब है, वही भात खाना हमारे लिए भी अच्छा है, जो विद्यार्थी खाते हैं, सर।'' वह करीब चालीस वर्ष का रहा होगा, कुछ ज्यादा भी हो सकता है, लगता था कि वह नहाया नहीं है; उसने सीने के नीचे तक बटन-खुली कमीज पहनी हुई थी। उसकी गंदी बनियान के छेदों से छल्लेदार बाल बाहर झाँक रहे थे। वह 'इंगलिस मास्टर है,' उसने थोड़े गर्व के साथ कहा, ''इंगलिस और जोग्रेफी।'' लड़कियाँ खा रही थीं, इसी बीच एक और अध्यापक उसके पास आ गया। ''सूरजकांत सर, मैथ और बाइलॉजी,'' उसने अपना परिचय दिया, ''आज प्रिंसिपल हाजिर नहीं है सर, कांता मैडम, उसकी गाय तकलीफ दे रही है, इसलिए उसे जाना पड़ गया, लेकिन स्कूल खुला है, क्लास इज इन मोशन (क्लास चल रही है)।''

लड़कियाँ यूनीफार्म पहनकर स्कूल आती हैं। लड़कियों को खाना मिल रहा है। लड़कियाँ सरकार से मिली साइकिलों पर सवार होकर घर लौटती हैं, एक लंबी कतार बनाकर, जो इस तरह दिखती है जैसे सड़क के किनारे नीले रंग की सुंदर सी झालर लगी हो और हवा से लहरा रही हो। कुछ हो रहा था। शिक्षक स्कूल आ रहे हैं और क्लास ले रहे हैं। शिक्षक स्कूल के साफ-सुथरे चौक में छात्रों के साथ भोजन कर रहे हैं। कुछ तो हो रहा था।

लेकिन पटना में शिक्षा के बारे में संशय जाहिर करनेवाले भी कम नहीं थे, जिनका विचार था कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर शिक्षा में जो सैलाब दिख रहा है, कुछ-कुछ धोखे का परदा है। शिक्षा मित्र या सहायक अध्यापकों के रूप में, बड़ी तादाद में, अल्पशिक्षित पुरुषों एवं स्त्रियों को अंधाधुंध तरीके से, अध्यापक पद पर नियुक्त किया गया है। इन अध्यापकों में से अधिकतर को नियुक्ति-पत्र स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों, ग्राम प्रधानों तथा सरपंचों की सिफारिश से दिए गए हैं और इस तरह भरती हुए अध्यापकों में से बहुतों को तो अपना नाम भी ठीक से लिखना नहीं आता है। उन्हें उदारतापूर्वक वजीफा दिया जा रहा है, यह पक्का वोट-बैंक बनाने का तरीका

है, न कि शिक्षा को प्रेरित करने का साधन, आलोचकों ने कहा। इससे छात्रों की शिक्षा का आधार कमजोर रह जाता है और फिर आप जिंदगी भर उन्हें कोसते रहते हैं।

शिक्षाविद् रुक्मिनी बनर्जी ने, जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में पथप्रदर्शक के रूप में प्रशंसनीय कार्य किया है, सन् 2011 में 'द इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली' में एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने प्राथमिक शिक्षा में भयंकर कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। वह लिखती हैं, ''बिहार सरकार को प्राथमिक शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण कमी की ओर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है; उस कमी को तभी दूर किया जा सकता है, जब ऐसे शिक्षक रखे जाएँ, जो प्राइमरी स्कूलों में पढ़ाने की काबिलियत रखते हों...यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है; शिक्षकों को प्रतिशत निकालने संबंधी एक सवाल हल करने के लिए दिया गया था। यह सवाल कक्षा 5 की पाठ्यपुस्तकों में दिए गए सवालों जैसा ही है। इसमें कार्य के दोनों पहलू—'क्या आप जानते हैं' और 'क्या आप समझा सकते हैं'—जुड़े हुए हैं : एक कक्षा में अड़तीस बच्चों के नाम दर्ज हैं। इनमें से, आज तेईस बच्चे उपस्थित हैं। आज कितने प्रतिशत बच्चे अनुपस्थित हैं? सिर्फ 25 प्रतिशत अध्यापक इस प्रश्न को हल कर सके। भाषा से जुड़े जिन कार्यों को अध्यापकों ने पूरा किया था, उनके जाँच-परिणाम भी कुछ कम चौंकानेवाले नहीं थे; 50 प्रतिशत से भी कम अध्यापक कक्षा 5 के स्तर के एक पाठ का संक्षेपण सार्थक रूप से कर सके।'' 'दि टेलिग्राफ' के पटना संस्करण के रिपोर्टरों द्वारा किए गए सहायक अध्यापकों के एक सांयोगिक सर्वेक्षण में अंकगणित का एक ऐसा अध्यापक पाया गया, जिसे ग्यारह को और ग्यारह से, उसके आगे गुणा करना नहीं आता था। एक और अध्यापक, जो मिडिल-स्कूल स्तर पर विज्ञान, समाज-विज्ञान, अंग्रेजी और अंकगणित पढ़ाने का दावा करता था, यह नहीं बता सका कि पॅटेटो (आलू) या टॅमेटो (टमाटर) का क्या मतलब हो सकता है। इतिहास पढ़ानेवाले एक अध्यापक से जब भारत के राष्ट्रपति का नाम बताने के लिए कहा गया, तो उसने कहा कि वह अभी पता लगाकर आता है। अंग्रेजी का एक अध्यापक Literature को 'Litrachur' लिखता था और William Shakespeare को 'Sexpeer' कहता था। अगर यह कोई पैरोडी होती, तो हँसना वाजिब हो सकता था।

उनके घटिया प्रत्यय-पत्रों की बात न करें, तब भी, सहायक अध्यापकों की बिना-विचारे की गई भरती नीतीश कुमार पर उलटी पड़ेगी, वे कोई राज्यव्यापी मोरचा बना लेंगे और प्राय: जबरदस्ती से स्थायी नौकरियों के साथ-साथ नियमित अध्यापकों को दिए जा रहे वेतन के समान वेतन की भी माँग करेंगे। लेकिन सरकार ने अपने प्रयासों का बचाव किया। नीतीश कुमार ने सन् 2005 में जब मुख्यमंत्री का पद सँभाला, उस समय स्कूलों में प्रत्येक 300 छात्रों के लिए एक अध्यापक था। अध्यापक-छात्र अनुपात की इस चौड़ी खाई को देखते हुए, सरकार ने अध्यापकों की भरती में तेजी लाई और 2,70,000 से अधिक सहायक अध्यापक नियुक्त कर लिए। ''सबसे पहले असंतुलन को सही करना अत्यावश्यक था,'' शिक्षा मंत्रालय में एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझे बताया।'' गुणवत्ता के प्रश्न बेशक उठते हैं लेकिन उनका समाधान बाद में किया जा सकता है, हमारी पहली प्राथमिकता कक्षाओं को चलाना है; अध्यापकों के न होने पर कौन अपने बच्चों को स्कूल भेजेगा? क्या हमें प्राइमरी शिक्षा तक पहुँचने से पहले अध्यापकों को प्रशिक्षित करने में एक दशक और प्रतीक्षा करनी चाहिए थी? एक पूरी-की-पूरी पीढ़ी अनपढ़ रह जाती।''

बिहार में नाम-लिखाई तथा साक्षरता के आँकड़ों में बहुत वृद्धि हो गई, लेकिन पढ़ाई की गुणवत्ता को लेकर एक विद्वेषपूर्ण बहस भी छिड़ गई। दिल्ली यूनिवर्सिटी में अपूर्वानंद नाम के एक प्राध्यापक हैं, जो बिहार के हैं और बिहार के मामलों में गहरी रुचि रखते हैं। वह इसे एक घोटाला कहते हैं। उनका कहना है, ''नीतीश कुमार शिक्षा का निर्माण करने के नाम पर शिक्षा का विनाश कर रहे हैं, वह ऐसे लोगों की पीढ़ियाँ तैयार कर रहे हैं, जिनके पास

शायद डिग्री तो होगी लेकिन कोई योग्यता नहीं होगी, बिहार का भविष्य तबाही की ओर ताक रहा है। जो कुछ हो रहा है, आपराधिक एवं मूर्खतापूर्ण है।'' कुछ-कुछ हो रहा था, लेकिन अपूर्वानंद की दृष्टि में वह सही नहीं था।

मधेपुरा, सीमांचल : कोसी एक स्वेच्छाचारी नदी है। इसका उद्गम तिब्बत की बर्फीली पहाड़ियों में है, जहाँ से यह तेज प्रवाह के रूप में फूटती है, नेपाल में घेरा बनाती है और फिर उत्तराखंड में हिमालय की निचली पहाड़ियों से होते हुए पश्चिम से लेकर बिहार के उत्तर-पूर्वी किनारे तक विस्तृत रूप से फैल जाती है। कोसी मात्र एक नदी नहीं है, यह एक नदी प्रणाली है अर्थात् नदियों का जाल है, सप्त कोसी, सात बहनें; स्वभाव से यह चंचल, मनमौजी है। यह नदी जब उफान पर होती है, तो एक विशाल मैदान, जलोढ़ भूमि को उर्वर कर देती है; लेकिन यह अपने ही क्षेत्र में प्राय: तबाही भी मचा देती है। अगस्त 2008 में इसने अचानक अपना मार्ग बदल दिया और भारत-नेपाल सीमा पर कुसाहा में अपने तटों को तोड़ते हुए निकल गई। कुछ ही वर्ष निकले होंगे कि इसने पूरी प्रचंडता के साथ बहते हुए सीमांचल की घनी आबादीवाली पट्टी को चपेट में ले लिया, और जो भी इसके रास्ते में आया उसे पूरी तरह मिटा दिया। पूरी-की-पूरी बस्तियों को तहस-नहस कर दिया, 600 लोग मारे गए, हजारों लोग अपनी जमीन, घर-बार और जीवनयापन के साधनों से महरूम हो गए। पहली सदी में कुषाण साम्राज्य से लेकर अब तक का इतिहास देखें, तो पहली बार ऐसा हुआ कि मधेपुरा गले तक पानी में डूब गया। यह एक झटके में आया प्रलय था। यह महाबाढ़ पटना तक जा पहुँची, जहाँ कुछ लोगों ने यहाँ तक कहना शुरू कर दिया कि यह जल-प्लावन नीतीश कुमार को ले डूबेगा—उसकी सरकार सोई हुई थी, जब कोसी ने रौद्र रूप धारण किया, वरना कैसे संभव था कि किसी ने बाढ़ को आते नहीं देखा, किसी ने चेतावनी देने का भी प्रयास नहीं किया? शुरू में तो पटना में हाहाकार जैसी स्थिति हो गई, लेकिन बहुत जल्द हालात् काबू में कर लिये गए। राहत और पुनर्वास का काम युद्ध-स्तर पर किया जाने लगा, जिसे कई तरह से सन् 2010 के लिए चुनाव-प्रचार अभियान के रूप में भी देखा जा सकता था।

कोसी की विनाशलीला के निशान कई वर्ष बाद भी अपनी दु:खभरी कहानी कहते दिख जाते थे; जगह-जगह भूमि के सीने पर ऐसी खरोंचें थीं जैसे डाइनासोर की पूरी एक पलटन ने उसके ऊपर रस्साकशी की हो।

हमने जो एक सड़क पकड़ी, वह सड़क तीन-चौथाई सदी तक वहाँ नहीं थी; हाँफती हुई कोसी नदी के ठीक ऊपर से पार जा रही उस सड़क ने हिमालय की पहाड़ियों के आंदोलित उदर से निकली एक और त्रासदी की याद दिला दी। जनवरी 1934 में हिमालय पर्वत के नीचे कुछ हिल गया लगता था, जिसके कारण जमीन बुरी तरह हिल गई। भारत के लोग उस भयंकर भूकंप को शायद ही कभी भूल पाएँ। तब महात्मा गांधी ने हरिजनों के सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध एक आवेशपूर्ण अभियान छेड़ा था; उसी दौरान आए उस भीषण भूकंप को महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता के पाप के लिए दैवी दंड घोषित करके विवाद उत्पन्न कर दिया। 35,000 से अधिक लोगों की जान चली गई और भारत-नेपाल सीमा के इस तरफ और उस तरफ, पूरा विशाल क्षेत्र चौरस हो गया था। मिथिला के दो भागों को जोड़नेवाला एकमात्र पायेदार पुल ध्वस्त हो गया और बाढ़ में बह गया। उस भीषण तबाही के समय से मिथिला का समस्त क्षेत्र नदी के खतरनाक तटों के साथ-साथ विभाजित होकर रह गया था; एक हिस्से से दूसरे हिस्से को देखा जा सकता था, लेकिन उनके बीच कीचड़, दलदल और जगह-बदलती खाइयाँ थीं, तेज धाराएँ तथा धुआँ छोड़ती चिमनियाँ थीं जो लंबवत् अवस्था में नदी-तल में डूब गई थीं। कुछ दिन पहले तक मधुबनी से मधेपुरा जाने में करीब-करीब एक दिन लग जाता था; वे एक-दूसरे के बहुत करीब होने के बावजूद इतने दूर थे कि आपको एक भाग से दूसरे भाग में जाने के लिए बरौनी के रास्ते यू-टर्न लेकर जाने का कष्ट करना पड़ता था।

लेकिन अब ऐसा नहीं है। कोसी के असंभव तटों पर कुछ हुआ था। एक आधुनिक पुल खड़ा हो गया था। हम

मिथिला के ग्रामीण परिवेश, जो मधुबनी के पूर्व में पड़ता है, के रास्ते चलते-चलते, एक रेतीले ढलुआ मार्ग पर चढ़ गए, जिसने हमें एक दोहरे-रास्ते पर पहुँचा दिया। दाएँ मुड़ें, तो वह रास्ता आपको दिल्ली ले जाएगा और बाईं तरफ मुड़ें तो आप गुवाहाटी तक चलते-चले जा सकते हैं। हम ईस्ट-वेस्ट कॉरिडोर पर थे, बिहार का पहला द्रुतगामी मार्ग।

यह विशाल पुल—जिसे अंतत: कोसी महासेतु नाम दिया गया—एक चार-सड़कों का 11 किलोमीटर लंबा पुल है, जो नदीतल के आर-पार डाली गई कड़ी पर खड़ा है। लेकिन तटों को अभी तक जोड़ा नहीं गया था और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अत्यधिक विशिष्ट व्यक्तियों (वी.वी.आई.पी.) ने अब तक वह तारीख नहीं बताई थी कि जब के अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर रिबन काटने तथा स्मारक-पट्ट लगाने की औपचारिकता का निर्वाह करने और पुल पर पधारने का कष्ट उठा सकेंगे। वे जब भी आएँ, पुल पर पहला कदम रखने का हक उन्हीं का है। उस पुल के सतीत्व की रक्षा की जिम्मेदारी सी.आई.एस.एफ. की एक टुकड़ी के हवाले थी। हमने याचना की, फिर बहस की, फिर हम दूसरे, धूल भरे रास्ते पर नीचे चले गए, जिसका इस्तेमाल वहाँ कार्य-स्थल पर मौजूद निर्माण-दल के सदस्यों द्वारा किया किया जाता था। जब हम गेरुए-रंग के धुँधले गुब्बार से बाहर आए, तो हमने स्वयं को सीमांचल में पाया, मिथिला के एक भाग से दूसरे भाग में; और समय इतना लगा, जितना एक कुत्ते को पेशाब के लिए बाहर ले जाने में लगता है।

हमने रात बीरपुर में जल-कल विभाग के एक गेस्ट-हाउस में बिताई। यह एक बड़ी बेकार सी जगह है, जहाँ घटिया स्तर के बदरंग मकानों का एक झुरमुट है; उनमें से अधिकतर सरकारी आवास हैं। वे यहाँ इसलिए हैं कि पानी की निगरानी करनी होती है। बीरपुर कोसी बराज का नियंत्रण-कक्ष है। यह एक बड़ी रिहाइश है, जो सन् 2008 की अचानक बाढ़ की चपेट में आ गई थी। जिस व्यक्ति ने हमें रात का भोजन परोसा, उसका नाम सुरेंदर था, जो वहाँ की देखभाल करता था। सुरेंदर ने बताया कि जब वहाँ भीषण बाढ़ आई थी, तब बीरपुर में अकेला वही रह गया था। ''मुझे इस जगह की चौकसी करनी थी, मेरा काम था और मुझे अपनी नौकरी बचाए रखनी थी, पानी छत के ऊपर चढ़ गया, मैंने एक मेज को ध्वजदंड (झंडे के खंभे) से बाँध दिया और किसी तरह बहते पानी के ऊपर बना रहा। मुझे लगा कि यह 'प्रलय' आ गया है, कयामत ढानेवाली प्रचंड बाढ़, मैंने कभी नहीं सोचा कि मैं बचा रह जाऊँगा। हर कोई भाग गया था या पानी में बह गया था।''

बराज बीरपुर से नेपाली किनारे तक जाता है लेकिन गेस्ट हाउस से यह कुछ ही कदम की दूरी पर है। उसे भारतीय इंजीनियरों द्वारा संचालित किया जाता है और इसकी रक्षा नेपाल के सुनसरी जिले के प्रहरियों अथवा पुलिसकर्मियों द्वारा की जाती है। सन् 2008 की महाविपत्ति की पूर्वसंध्या पर दोनों तरफ के लोग अड्डा छोड़कर भाग गए थे। बराज सिर्फ इस कारण तबाह होने से बच गया, कोसी के तेज बहाव का रुख बहाव के कुछ विरुद्ध चला गया था।

अगला पूरा दिन हमने कोसी के आर-पार उत्तर और पूर्व में सपाट निर्जन भूभाग, सुपौल से अररिया और अंतत: किशनगंज तक का दौरा किया, जो नेपाल और पश्चिम बंगाल के संगम से सटा एक बहुत छोटा सा कस्बा है; वहाँ से बँगलादेश भी कोई अधिक दूर नहीं है। हम बिहार के उन जिलों में थे जो पटना से अधिकतम दूरी पर हैं और जहाँ परिवर्तन की हवा अभी पहुँच नहीं पाई थी।

प्रगति कोई संस्थागत धारणा नहीं थी, इसका जुड़ाव व्यक्तित्व से था। सुपौल जिले में शहर के पास रुके। वहाँ पंकज नाम का एक पत्रकार हमें चाय के लिए एक 'रेस्टूरेंट' (Resturent) में ले गया, जहाँ 'भूजा चिकन मंचू' (Bhuja Chikan Manchu) और 'फिस अलौकीकी' (Phis Alaukiki) भी मिलता है। लेकिन अभी तक लंच-टाइम

नहीं हुआ था, इसलिए वे अपनी इन विशिष्ट चीजों को तैयार नहीं कर पाए थे या परोसने के लिए तैयार नहीं थे, हम उनका स्वाद चखने से वंचित रह गए और चाय से ही तसल्ली कर ली। पंकज ने हमें बताया कि सुपौल में बिजली की आपूर्ति दिल्ली से बेहतर है—लगातार चौबीसों घंटे बिजली रहती है, वोल्टेज में जरा से भी कंपन के बिना। हम उससे कहते, ''क्योंकि बिहार के बिजली मंत्री बिजेंदर यादव सुपौल के थे, उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि उनके निर्वाचन-क्षेत्र को बिजली संकट न सहना पड़े।'' इसके पहले ही उसने सफाई देनी शुरू कर दी, ''यह सही नहीं है,'' पंकज ने समीपवर्ती सहरसा या मधेपुरा के प्रतिस्थानिक गर्व के साथ कहा, ''विजेंदर बाबू एक कुशल मंत्री हैं, सुपौल धन्य है उनको पाकर।'' मैंने संदेह जताया कि अगर उनका विभाग बदल गया तब क्या होगा। ''ना, ना'', पंकज ने आपत्ति व्यक्त करते हुए कहा, ''भगवान ना करे...''

सुपौल एक अस्त-व्यस्त, गंदा अर्ध-शहरी क्षेत्र था, जैसा हमने सहरसा या अररिया या किशनगंज को पाया। इधर-उधर पड़ी गंदगी पर सूअर आराम कर रहे थे, कुत्ते घूम रहे थे, लगातार चलते ट्रैफिक के दबाव के नीचे सड़कें जगह-जगह टूटी हुई थीं, बिजली के नीचे लटकते तारों के गड्ड-मड्ड जाल से चिनगारियाँ छूटती रहती थीं, मच्छर-मक्खियों ने बीमारी फैलानेवाले कीटाणुओं से लैस होकर बाजारों में आतंक मचाया हुआ था, पटरियाँ पेशाब की धारियों से सजी हुई थीं, धूल इतनी कि हर साँस के साथ निगलते और थूकते रहो, गुजरती बसों के कंडक्टर गरदन बाहर निकाले रहते और आगे जानेवाली सवारियों के लिए इतनी जोर से चिल्लाते जैसे कि वे शोर-शराबे और कोलाहलपूर्ण, मुसीबतों से भरी इस दुनिया से निकल भागने का आखिरी मौका दे रहे हों। ऐसी चिल्ल-पौं के बाद, देहाती परिवेश अपनी विषादपूर्ण कमियों के बाजवूद बहुत सुकून देनेवाला था।

बेतिया, पश्चिमी चंपारन : सड़क की शक्ल बदली लेकिन पर्याप्त नहीं। बिहार के उत्तर-पूर्वी किनारे तक का मार्ग—जंगल, सीमांत प्रदेश, अन्नदायी—विशेषत: गेहूँ उत्पादक क्षेत्र, मूर्खों और गुंडों से भरा इलाका—सन्निकट परिवर्तन संबंधी तैयारियों के साथ जद्दो-जहद कर रहा था। स्टोनक्रशर और भारी-भारी क्रेनें थीं, जमीन तोड़नेवाली मशीनें और रोलर थे, बजरी थी और पिघला कोलतार था, और धुएँ, धूल-मिट्टी तथा कोलतार के बीच काले हुए काम करते मजदूर थे। चंपारन और राज्य के केंद्र-स्थल के बीच की दूरी अब पहले की अपेक्षा बहुत कम होने जा रही थी। मोटरवाहनों के आने-जाने के लिए बहुत जल्द एक पक्की सड़क बनकर तैयार होनेवाली थी, जो इस क्षेत्र को दूरी के एहसास से छुटकारा दिला देगी। मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर जाने का रास्ता बहुत अच्छा था, लेकिन कुछ-कुछ हिस्सों में। जैसे ही आप इंजन चालू करते तथा आपकी गाड़ी रफ्तार पकड़ती और आप सफर का मजा लेने के मूड में आते, तभी बड़े-बड़े गड्ढ़े सामने आ जाते और आपका लुत्फ उठाने का सपना चकनाचूर हो जाता था; आप समझ जाते थे कि यह बिहार की सड़क है।

चंपारन की ओर जानेवाली सड़क के साथ-साथ चलते मील के पत्थरों पर पुरातन पैगंबरों तथा मुनाफाखोरों, संतों तथा विख्यात महापुरुषों के नाम उकेरे हुए मिलेंगे, जैसे कि—जॉर्ज ऑर्वेल और मोहन दास करमचंद गांधी, निल्हा साहिबों, अंग्रेज नील-बागान मालिकों और मिल्हा साहिबों, अंग्रेज चीनी मिल मालिकों का वंशक्रम और बहुत हाल ही में ख्यातिप्राप्त फिल्म निर्माता प्रकाश झा का नाम, जिन्होंने सन् 2009 में बेतिया लोकसभा सीट के लिए चुनाव लड़ा, लेकिन चुनाव हार गए और फिर अपने ही कला-क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए तुरत-फुरत मुंबई चले गए; फिल्म जगत में पहुँचकर उन्होंने बेतिया में राजनीति से बेहतर 'राजनीति' की।

वे सब यहाँ आ चुके हैं, उन्होंने अपने यश या अपयश की चकाचौंध दिखलाई और चलते बने। तब से पूर्व और पश्चिम चंपारन, हमेशा उनके विदा होते हुए व्यक्तित्व के उदास एवं धुँधले साए की शरण में रहता रहा है। प्रकाश झा कुछ वर्ष पूर्व इस सघन वन प्रदेश—''मेरी जन्मभूमि मेरे बालकाल की क्रीड़ा-स्थली''—पर लगभग मसीही

उत्साह एवं जोश के साथ अवतरित हुए, उनका इरादा था, ''मैं चंपारन के भाग्य को उसी तरह चमका दूँगा जैसे चंपारन के दूसरे हिस्सों की किस्मत चमकी है।'' एक नया अस्पताल वार्ड बनाया गया, एक चीनी मिल का निर्माण किया गया, जिसका अपना विद्युत्-संयंत्र यानी पावर-प्लांट था, एक गैर-सरकारी रोजगार गारंटी योजना चालू की गई और एक विस्तृत कार्यालय स्थापित किया गया—सबकुछ एक दो एकड़ के प्लॉट पर—चंपारन की दरिद्रता पर परदा डालने के लिए। झा चंपारन के भूसे के ढेरों को सोने में बदलने के लिए आए थे। लेकिन बेतिया शायद झा की नए रूप की राजनीति के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि यह राजनीति जाति और धर्ममत की संबद्धता से उठकर, मतदाता एवं प्रत्याशी के बीच, दे और ले के सिद्धांत पर आधारित एक सीधा संबंध स्थापित करना चाहती थी। झा ने बहुत मेहनत से चुनाव-प्रचार किया, लेकिन बात नहीं बनी। झा को भरोसा था कि वह चुनावों के अब तक के सारे गूढ़ एवं जटिल गणित को उलटकर रख देंगे और कामयाब होकर दिखाएँगे। लेकिन उनका यह विश्वास गलत साबित हुआ।

पराजय से वह इतने निराश हुए कि उन्होंने सपनों की निर्माणशाला रातों-रात बंद कर दी। आश्रय गिरा दिया गया, चीनी मिल और उसके साथ-साथ रोजगार की सभी गारंटियों का परित्याग कर दिया गया। चंपारन के भविष्य को चमकाने की जो विशाल योजना उन्होंने बनाई थी—बॉलीवुड के विशेष योग्यता-प्राप्त सेट निर्माताओं द्वारा जालीदार बाँसों से खड़ा किया गया एक अलंकृत मुख्यालय—उस योजना को सुला दिया गया। कई एकड़ भूमि पर खड़ी की गई वह स्वप्न-नगरी, बेतिया से कुछ ही पहले, ठीक राजमार्ग के किनारे, नालीदार चादरों में मुँह ढाँपे, मृतप्राय: पड़ी थी। चंपारन की उपेक्षित आत्मा में प्रसिद्धि की एक और कील ठोक दी गई।

बेतिया अभी गुजरे हुए प्रचार-अभियान के मलबे को साफ नहीं कर पाया था, इसकी गंदी, दूषित गलियाँ पुराने वायदों को नई आवाजों में पेश करनेवाले रंगीन पोस्टरों, इश्तहारों के फटे टुकड़ों से भरी पड़ी थीं—मुझे वोट दो और तुम्हें स्वर्ण-मुद्राओं से भरा एक घड़ा मिलेगा, उससे कतई कम नहीं। किसी ने उस पोस्टर पर राहुल गांधी के चेहरे पर उसी जगह एक छड़ी लगा दी थी, जिस जगह राहुल गांधी के गाल पर एक प्यारा सा गड्ढा (डिंपल) दिखता है। एक बहुत बड़ी पी.वी.सी. सीट पर दीपिका पादुकोण आनंदित होकर शहर के बीचोबीच अपनी बिजली गिरा रही है। किसी नए सेलफोन का विज्ञापन है। उस सेलफोन की सुंदर-से-सुंदर रिंगटोन उसके होंठों पर स्वरों के एक झरने के रूप में उतर रही थी, उसकी उर-प्राचीर एक डीजल जेनरेटर से निकलते धुएँ से काली पड़ गई थी, जो बाजार की बकबक के ऊपर शोर कर रहा था। दोपहर का बाजार गरमाने लगा था और दैनिक खुदरा खरीद-फरोख्त का कोलाहल चरम सीमा पर था। सारा ट्रैफिक—चमकती हुई शानदार गाड़ियों (एस.यू.पी.) से लेकर गुड़ से लबालब भरी और मुफ्त में सवार मक्खियों के भार के नीचे चरमराती घोड़ागाड़ियों तक—ठहरा हुआ था। हॉर्न बज रहे थे, ड्राइवर बेचैन हो रहे थे और बार-बार पैडल दबाकर धूल-मिट्टी उड़ा रहे थे मानो हवा में धूल पहले ही काफी नहीं थी। ट्रैफिक को मिमियाती बकरियों और मेमनों के सड़क पार करते झुंड ने रोक रखा था, जिन्हें गोश्त में बदलने के लिए ले जाया जा रहा था। चंपारन के बकरों का गोश्त बड़ा रसीला, गूदेदार और स्वादिष्ट होता है। कहते हैं कि यहाँ की घास में ही कुछ ऐसी बात है जो उनके मांस को इतना सुस्वादु बनाती है।

हम चंपारन शुगर फैक्टरी (सी.एस.एफ.) पहुँचने की कोशिश कर रहे थे, जो शहर के दूर किनारे पर स्थित थी, लेकिन रुका हुआ ट्रैफिक हमें निकलने नहीं दे रहा था। नवीकरण के लिए आतुरता के बावजूद सी.एस.एफ. में पुन: जान डालने के लिए उठ रही बेकल आवाजों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा था, कोई सुन ही नहीं रहा था। करीब 600 मिल मजदूर दया-याचना कर रहे थे कि उन्हें नौकरी से निकाले जाने के समय तक की उचित मजदूरी का भुगतान किया जाए। मृत, दिवंगत सी.एस.एफ. के भारमुक्त टैंक-कीपर, अशोक कुमार पांडे ने बताया कि यह

संघर्ष अब उन्हें छोड़ देना होगा। ''इससे तो मर जाना अच्छा'', उसने कहा, ''कम-से-कम आशा नहीं करनी पड़ेगी''... उन्होंने एक दिन फैक्टरी बेच दी, फैक्टरी को ताला लगाया और विदा कहना तो दूर, हमसे यह भी नहीं पूछा कि 'अब हम कहाँ जाएँगे!'

''मॉर्टन टॉफी याद है?'' फैक्टरी के भूतपूर्व दंत-मार्जक और मुसीबत में पांडे के साथी महाबीर प्रसाद ने अकस्मात् पूछा। उसकी सिकुड़ी हुई आँखों में विरह के आँसू भर आए थे, ''याद है क्या? हमने मॉर्टन टॉफी बनाई, क्या आप यकीन कर सकते हैं? और याद करें लाल इमली सूटिंग, जिसके ब्लेजर पहनकर आप स्कूल जाते रहे होंगे, याद है? हमारी कंपनी, हमारी यह कंपनी कानपुर के सदरलैंड हाउस की थी।'' लेकिन उसकी आँखें टीन की प्लेट के आगे, एक कब्रगाह जैसे गलियारे के परे, अहाते में उग आए जंगली झाड़-झंखाड़ और उस ध्वस्त ढाँचे को देख रही थीं, जो कभी कानपुर शुगर का गौरव हुआ करता था; जल्दी ही वह वास्तविकता में लौट आया। ''पुरानी चीजें, बीते कल की बातें,'' उसने अफसोस के साथ बड़बड़ाते हुए कहा, ''बेकार चीजें।'' और फिर, मानो वह अपने मन की कारुणिक व्यथा को प्रासंगिकता प्रदान करना चाह रहा हो, उसका रुख कटु क्षोम में बदल गया; मॉर्टन टॉफी का स्वाद कड़वा हो गया। ''बताइए मुझे, मैं समझता हूँ, चारों तरफ बहुत विकास हो रहा है, क्या यह सच है? हर समय, हम घोषणाएँ सुनते रहते हैं, यह हो गया है, वह हो गया है, क्या यह सब सच है? हमें देखिए, हमारी तरफ कुछ नहीं आता है, कोई देखने नहीं आता है। हम बिहार में जीवित भी मरे हुए हैं।''

गुल-गपाड़े से भरे चंपारन के नगर-क्षेत्र के अंतर्गत मोतीहारी, बेतिया, चनपटिया, नरकटियागंज की हालत देखकर लगता है जैसे इन्हें ऐसा कोढ़ लग गया हो, जिसका कोई इलाज नहीं है; इस क्षेत्र के आगे मन को प्रसन्न कर देनेवाला ग्रामीण परिवेश पसरा हुआ था। जिस दिन मौसम साफ और खुला-खुला होता है, उस दिन तो दूर का पृष्ठ-पट एक विस्मित कर देनेवाला दृश्य प्रस्तुत करता है : पश्चिम से पूर्व तक एक-दूसरे से सटी हुई, हिमालय की बर्फ ढकी पहाड़ियाँ आकाश से गिराई गई यवनिका जैसी लगती हैं। रात का दृश्य ऐसा होता है जैसे चंद्रमा भूमि पर उतर आया हो।

हम अर्ध-शहरी कोलाहल से बचते हुए, उत्तर की ओर बढ़ गए, और अचानक हमें ऐसा महसूस हुआ कि हम दमघोंट वातावरण से निकलकर विस्तृत भूमि और खुले आकाश की अनंतता में आ गए हैं, जहाँ खुलकर साँस लेने के लिए अपरिमित स्वच्छ वायु मौजूद है। इस घने वन-प्रांतर में शीत ऋतु की घनिष्ठता अधिक स्पष्ट थी। इसने धरती को ओस की वर्षा में पूरी तरह भिगो दिया था, हवा के झोंकों को वृक्षों के बीच कानाफूसी करने भेज दिया था। पहाड़ की ढाल के अंतिम भागों में प्रकृति सब जगह नख-प्रसाधन करने में व्यस्त थी। मानसून की मिट्टी से रहित, स्वच्छ जल धाराओं और नहरों, रोएँदार सेवार की पंक्तियों को हवा में सिर हिलाते, तालाबों में सिर उठाती कुमुदिनी, पकी ईख और धान के मोहक खेतों और ऐसी मादक सुगंध से फूले एक भू-दुश्य को देखकर हम यह भूल ही गए कि सड़क समाप्त हो गई है और नीचे कच्ची सड़क आ गई है तथा सिर के ऊपर बिजली के तार कहीं नजर नहीं आ रहे हैं। ग्रामीण परिवेश को दरशानेवाली कोई उत्कृष्ट बंबइया फिल्म यहाँ बनाई जाए, तो सेट बनाने की कोई जरूरत नहीं होगी। फिर भी ग्रामीण चंपारन के बारे में सबकुछ सुंदर या दोषरहित नहीं था। चंपारन कभी कैसा था, इसका बखान करने से एकदम चकित हुए, मुन्नाशेख ने नाटकीयता से पूछा, ''अपराधों का इलाका? 'अपराध क्षेत्र' कहना तो बहुत हलका शब्द है, यह इलाका अराजकता का विश्वविद्यालय था, यहीं से सारे अपराधों की शुरुआत हुई : डकैती, राजनीतिक हत्या, तस्करी, छुड़ाई के लिए अपहरण, अंग-भंग, किसी भी अपराध का नाम लो, चंपारन उसमें सबसे आगे था। हम भयभीत रहते थे, असल में, हम यहाँ रहे ही नहीं। हम तभी यहाँ आते थे, जब बहुत जरूरी हो जाता था।''

शेख एक जमींदार किसान था, उसकी संपत्ति चारों ओर बिखरी पड़ी थी और इसी कारण उसे अपनी जमीन-जायदाद हर समय खतरे में नजर आती थी। ''मेरे पास छह बंदूकधारी थे, मेरी यह निजी फौज हमेशा मेरी रक्षा में तैनात रहती थी; मैं शौच के लिए जाऊँ, तब भी। मैंने अपने फार्महाउस के शिखर पर एक छोटा कंगूरा यानी बुर्ज बनवाया था, जिसमें चारों तरफ छेद थे, ताकि मेरे बंदूकधारी रात में चौकसी रख सकें। तब और आज में बहुत फर्क है, तब हम यहाँ बैठकर बेफिक्री से बातचीत नहीं कर रहे होते, हम अंदर होते, सुरक्षाकर्मी हमारी रखवाली कर रहे होते और मैंने आपको कह दिया होता कि मुझे कुछ नहीं कहना है, चाय पीजिए और चलते बनिए। लेकिन अब हालात बहुत सही-सलामत हैं, खतरे की कोई बात नहीं है, और मुझे अपने चारों ओर बंदूकों का घेरा रखना अच्छा नहीं लगता है, वे हैं लेकिन उनका प्रदर्शन करने की कोई जरूरत नहीं है। लोग देखेंगे और मेरे बारे में सोचेंगे कि मैं कोई अपराधी प्रवृत्ति का आदमी हूँ, बहुत बुरा आदमी हूँ।'' उसने छत के साथ बने कंगूरों की ओर इशारा किया; बंदूकों के साथ चौकसी के लिए बनाए गए उन कंगूरों को उसने रहने दिया था, क्योंकि उनके साथ जीने की उसे आदत पड़ गई थी। ''और कौन जाने?'' उसने शरारती अंदाज में कहा, ''किसी दिन हमें उनका इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ जाए।''

हम सनौला में थे, जो नेपाल से लगी सीमा पर एक छोटा गाँव है। किसी भी दिशा से कोई सड़क सनौला तक नहीं पहुँचती है और मीलों का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता तय करके अंततः जब हम यहाँ पहुँचे, उससे पहले राज्य या सरकार का कोई साइनबोर्ड भी नहीं दिखाई दिया; रास्ते में अगर कुछ था तो वीरान पड़े छोटे-मोटे घर या झोंपड़ियाँ थीं, जिन पर पंचायत की निशानी थी, और नालों पर बने अंग्रेजों के जमाने के पुल थे, जिनकी हालत बेहद खस्ता थी। और लकड़ी के बने ग्रीष्मावकाश के नीचे शेख जहाँ बैठा हुआ था, वहाँ से हम नेपाल से लगी बेनिशान सीमा के पार थारु आदिवासियों की बस्ती की चहल-पहल देख सकते थे; और उन बस्तियों के परे हिमालय की पर्वतमालाएँ प्राकृतिक रंगों की विविध छटा बिखेरती नजर आ रही थीं।

शेख अब खुद को जर्मन नस्ल के अपने तीन कुत्तों—धोलू, धन्ना और छमिया—की संगति में बहुत सुरक्षित महसूस करता है और अधिक-से-अधिक समय अपनी खेती योग्य भूमि का निरीक्षण करने में बिताता है। उसके पास बोलनेवाली एक पहाड़ी मैना भी है, जो उसे किसी ने भेंट की थी। जब कभी उसका मालिक उसे बोलने के लिए उकसाता, या उसके पालतू जर्मन कुत्ते मैना के निकट आकर गुर्राते, तो मैना, ''फक, फक, फक, फक, फक, फकफ, फक, फक...'', बोलती थी; 'मेरे पास आने की हिम्मत मत करना' उसका पसंदीदा प्रलाप था। मैना के पास बोलने के लिए और भी रंगीन शब्दों का भंडार था, लेकिन वे किसी दूसरी किताब से थे। शेख का कहना था कि मैना को यह सब उसने नहीं सिखाया है, बल्कि इसका श्रेय उसके दोस्तों को जाता है। ''वे न जाने क्या-क्या सोचकर आते हैं और इसे सिखा जाते हैं, मुझे तो बस सुनना पड़ता है।''

धुँधलका होने जा रहा था, चकाचौंध और अंधकार के बीच का अज्ञात समय, लेकिन शेख हमें विदा करने की जल्दी में नहीं था, शायद भूल गया था कि अभी-अभी वह बीते दिनों के खतरों का बखान कर रहा था। ''अब खतरे की कोई बात नहीं है, भले ही आधी रात को आओ, आधी रात को जाओ; सरकार ने सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से ऐसे कदम उठाए हैं कि आप हर समय सुरक्षित महसूस करें। लोग अब समझते हैं कि कोई सरकार है, पुलिस है।'' अभी भी सनौला में बहुत कुछ है, जिसके बारे में वह झिकझिक कर सकता था, शेख ने कहा, ''सड़कें नहीं, बिजली नहीं, बीमारों के इलाज और देखभाल के लिए कोई इंतजाम नहीं, सचमुच कोई सरकारी एजेंसी नहीं—लेकिन डर और खतरे से छुटकारा दिलाना वाकई काबिले-तारीफ है। अगर मैं खुद डरा हुआ होता, तो मैं आपको इतनी देर तक कभी नहीं रोकता।''

जब हम वहाँ से चले, तब तक आकाश में तारे चमकने लगे थे और ओस की सतत बूँदों से चाँदनी टपक रही थी, ग्रामीण चंपारन के बिखरे प्रलोभनों पर एक नाजुक महीन नकाब डालते हुए। हमें यह देख-जानकर राहत महसूस हुई कि सड़क रात में उतनी ही सुरक्षित है जितनी दिन के समय सुंदर थी।

शिकारपुर, चंपारन : घटनाक्रम की आगे की कड़ी के बारे में हमने सोचा भी नहीं था, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसकी ओर ध्यान न देने के लिए हमें लंबी यंत्रणा सहनी पड़ गई। मोतीहारी जाने के मार्ग में एक अनामी, अनिवासित हिस्से में सड़क के दोनों ओर करीब दो मील लंबा जाम लगा हुआ था। आड़ी-तिरछी फँसी गाड़ियों के बीच सीधे होकर निकलने में एक घंटा लग गया और जब हम उस भँवर-जाल के मूल कारण के निकट पहुँचे, तब एक असंभव-सी बिहारी कहानी के मुख पर से घूँघट उठने लगा। राजमार्ग पर जहाँ से जाम लगना शुरू हुआ था, वहाँ हाल ही में एक नया ट्रैक्टर शोरूम बना था; उस शोरूम के लिए ट्रैक्टरों का पहला ऑर्डर आ पहुँचा था और ये ट्रैक्टर दुतल्लेवाले आधा दर्जन ट्रकों पर सवार थे तथा एक-एक ट्रक करीब सौ मीटर लंबा था। माल उतारने के लिए डाला गया रैम्प सड़क के पार जा पहुँचा था, मानो वह सड़क भी उनकी अपनी जागीर हो। हम भड़क गए और कोसने लगे। इस दूर-स्थित, अनजानी जगह में ट्रैक्टरों को उतारने की इतनी उतावली का क्या मतलब है? ''वाह, लेकिन आप किस जमाने में रह रहे हैं?'', एक ट्रक चालक ने व्यंग्यपूर्वक पूछा, ''यह फसल कटने का समय है, ये ट्रैक्टर देखते-ही-देखते शोरूम से गायब हो जाएँगे, इनकी बुकिंग पहले ही हो चुकी है, हमें कुछ देरी हो गई इन्हें लाने में, चुनाव की वजह से सड़क प्रतिबंध लगे हुए थे। ट्रैक्टर है सर, डिमांड हाई है।''

ग्रामीण-क्षेत्र में सब जगह ट्रैक्टर थे, दो-दो या तीन-तीन, इससे अधिक नहीं, लेकिन थे हमेशा से फिर भी आप हलों पर आदमी और बैल जुते देख सकते थे। लेकिन अब ऐसा नहीं था। अब यह नया बदलाव था, ग्रामीण बिहार में ट्रैक्टर अब गर्व से इतराने लगा था। दस साल पहले वे मुश्किल से इक्का-दुक्का ही दिखाई देते थे। लेकिन वह दस साल पहले की बात है।

उस रात हमने रामनगर राजसी परिवार के भूतपूर्व दीवान की शिकारपुर रियासत के यहाँ भोजन किया। शिकारपुर को अपना यह कुछ अजीब सा नाम—डी.के. शिकारपुर—इन भूतपूर्व दीवानों के परिवार से मिला, यह था दीवान का शिकारपुर। वर्मा दीवान वंश की पुरानी महिमा लुप्त हो चुकी थी, परिवार की जमीन-जायदाद का परिवारजनों में बँटवारा हो गया था और वे अब कई एकड़ में फैले एक खेत तथा उसके इर्द-गिर्द बने अलग-अलग मकानों में रहने लगे थे। रियासत के मध्य में एक दर्पहीन हवेली थी, जिसके चारों ओर ईंटों की एक ऊँची दीवार थी। अब इसका भी विभाजन हो गया था, ताकि बिगड़े नवाबों को रहने की जगह मिल सके और वृक्षों के बीच वहाँ इधर-उधर कई नए-नए, छोटे-छोटे मकान थे। वर्मा वंश के कुछ लोग राजनीति में भी कूद पड़े थे, लेकिन कोई विशेष नाम या सफलता हासिल नहीं कर सके। उनमें से एक का नाम था—रोमेल वर्मा; इस नामकरण की वजह यह बताई जाती है कि उसकी सूरत-शक्ल द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल जर्मन पंजेर डिवीजन के कल्पित कमांडर से मिलती थी। उसने दून स्कूल में राजीव गांधी के साथ शिक्षा पाई, बाद में उनके दोस्त बने रहे और एक बार कांग्रेस के टिकट पर सिकटा लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव भी लड़ा, लेकिन हार गए। एक और वंशज, आलोक ने बेतिया सीट से सन् 2010 में फिर कांग्रेस की ओर से चुनाव लड़ा पर जीत नहीं सके। उस चुनाव के कुछ ही माह पहले, आलोक ने (इस पुस्तक के लिखे जाने के दौरान अचानक दिल का दौरा पड़ने से उसका निधन हो गया) मुझे बताया था कि उसका मुख्य उद्देश्य चुनाव लड़ना और जीतना था, पार्टी चाहे जो भी हो; जिस भी पार्टी की ओर से चुनाव लड़ने के लिए उसे औपचारिक टिकट मिलेगा, वह उसके अनुसार ही अपने संबंध बनाएगा और प्रचार-अभियान की तैयारी करेगा।

हमारा मेजबान आलोक का चचेरा भाई मधुप था, जो मुख्यत: खेती करने में लगा रहा, लेकिन इसके साथ ही स्थानीय राजनीति में सक्रिय भाग लेना भी उसे दिलचस्प एवं उपयोगी लगने लगा था। वह अपने इलाके का मुखिया निर्वाचित हो गया, जिसका एक कारण यह भी था कि वह आस-पड़ोस के भद्र एवं खानदानी किसानों में शायद अधिक समृद्ध था। ''ट्रैक्टर्स? वे नए बिहार की रीढ़ बन गए हैं।'' मधुप ने कहा जो शरीर से हट्टा-कट्टा था और मेहमानों की खातिरदारी का पूरा ध्यान रखने का यत्न कर रहा था; उसने पहला जाम डालकर देने के लिए आलमारी से गुलाबी रंग के मग निकाले और उन्हें मुँह पोछने के तौलिए से साफ किया। ''खेतों पर ट्रैक्टर चल रहे हैं, निर्माण का कार्य जहाँ-जहाँ चल रहा है, वहाँ ट्रैक्टर हैं, रेल स्टेशनों पर माल उतारने-चढ़ाने के काम में ट्रैक्टर लगे हुए हैं, वे अब हमारे लिए अनिवार्य पालतू जानवर हैं।'' मधुप ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा। उसे अथवा उसकी पत्नी को काले धब्बोंवाले सफेद कुत्ते (डैलमेशन) पालने का शौक था। उनमें से कई कुत्ते हाल में धीरे-धीरे इधर-उधर इस ताक में घूम रहे थे कि उन पर भी ध्यान दिया जाए; उनमें जो बाकी कुत्तों से अवस्था में बड़ा था कालीन के कोने पर सिकुड़ा हुआ पड़ा था, जिसे खरोंच-खरोंचकर उन्होंने अपने सोने-बैठने लायक बना लिया था। मधुप का सोफा नीचा और मोटी गद्दियोंवाला था, बहुत साल से इस्तेमाल में रहने के कारण उसकी स्प्रिंग धचकने लगी थी और आवाज करती थी।

शाम के दौरान, मधुप एक नौकर को कभी कुछ, कभी कुछ लाने के लिए इशारा करता—टिशू पेपर का डिब्बा, लॉन में खुली अँगीठी पर पक रहे कबाबों के लिए काँटे, एक लंबा तार, ताकि वह झाड़-फानूस को जला सके। यह एक काफी बड़ा झाड़ था—'पिछली सदी में इसे एक विशेष संदूक में रखकर कलकत्ता से लाया गया था; एकदम असली, बेल्जियम में निर्मित'—लेकिन उसकी महीन दरारों में धूल जमी हुई थी और केवल विशेष अवसरों पर ही उसे रोशन किया जाता था। ''नौकर-चाकर नहीं हैं,'' मधुप ने शिकायत के लहजे में कहा, ''पुरानी शान-शौकत से जीने के लिए इन दिनों नौकर-चाकरों की एकदम कमी हो गई है...एक वे दिन थे जब हर चीज चमकती थी, हर कोना रोशन रहता था, लेकिन कर भी क्या सकते हैं, जब उतने सेवक न हों, एक पेग और लें...'' वर्मा गार्डन्स में कहीं जेनरेटर आवाज कर रहे थे और डीजल का धुआँ मोगरा तथा हुस्नहिना की खुशबू से आकर मिल रहा था। बिजली होती नहीं थी और ऐसी रातों में, जब भूतपूर्व दीवान मेहमानों की खातिर किया करते थे, रोशनी का अलग से इंतजाम करना पड़ता था।

इन इलाकों में शिकारपुर परिवार ने सबसे पहले ट्रैक्टर खरीदा था और उस समय जिसके पास ट्रैक्टर होता था, उसे बड़ा दबदबेवाला और कुलीन-वर्ग का समझा जाता था। लेकिन अब, वर्मा ने कहा, ''हर कोई छोटे किसान भी ट्रैक्टर का उपयोग करते हैं। अगर वे खरीद नहीं सकते, तो किराए पर ले लेते हैं, ऐसा नहीं करेंगे तो वे पीछे रह जाएँगे।'' शिकारपुर वंश ने अपने खेतों को जोतने के लिए अनगिनत ट्रैक्टरों का इस्तेमाल किया, लेकिन फिर ट्रैक्टर कोई ऐसी चीज नहीं रहे कि साधारण किसान उनका उपयोग न कर सकें। ''ट्रैक्टर भाड़े पर लेना हल के साथ काम करने की अपेक्षा अधिक सस्ता पड़ता है आगे चलकर,'' प्रशांत महतो ने बतलाया, जो शिकारपुर रियासत के खेत-खलिहानों में काम करके गुजारा करता है, ''काम जल्दी हो जाता है और भाड़े पर लिये गए मजदूरों के काम से बेहतर होता है।''

एक ट्रैक्टर निर्माता कंपनी के पटना स्थित क्षेत्रीय कार्यालय के प्रमुख अरशद करीम अपनी खुशी का इजहार करने से रुक नहीं सके जब मैंने कुछ दिन पहले इस बारे में उनसे जानना चाहा। ''बिहार में यह उद्योग तेजी से पनप रहा है।'' करीम ने मुझे बताया, और जो आँकड़े दिए, वास्तव में अविश्वसनीय थे : राज्य में प्रत्येक माह 3,900 नए ट्रैक्टर बिक रहे हैं। पिछले साल बिक्री दर में 55 प्रतिशत वृद्धि हुई और इसके घटने की फिलहाल कोई संभावना

नहीं है। ''अखबारों में देखिए,'' करीम ने सुझाव दिया, ''पहले अखबारों में मोटर पंप तथा ट्यूबवैल के विज्ञापन बहुत हुआ करते थे, अब केवल ट्रैक्टरों के विज्ञापन होते हैं, भारत में ट्रैक्टर बनानेवाली ऐसी कोई कंपनी नहीं है, जिसने बिहार में दुकान न खोली हो; कई विदेशी कंपनियाँ अब यहाँ कूद पड़ी हैं।''

इतना बदलाव एकदम कैसे? करीम के अनुसार, इसका मुख्य कारण था किसानों के लिए सरकारी कर्ज आसानी से मुहैया कराना और बैंक वित्तपोषण का सरलीकरण; अगर माँगने से ही कर्ज मिल जाए तो और क्या चाहिए। लेकिन शिकारपुर के वर्मा के विचार में, कारण सिर्फ एक नहीं था, कई कारण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। ''हर चीज आगे बढ़ती हुई प्रतीत होती है,''मधुप ने अपना तर्क दिया, ''यह सकारात्मकताओं की केंद्राभिमुखता है, सकारात्मक नीतियों का एक संगम है। सड़कें अच्छी होने का मतलब है कि ट्रैक्टर कंपनियाँ दूर-देहात में जाने और ग्राहकों के निकट अपना व्यवसाय स्थापित करने के लिए तैयार हैं। ग्राहकों की दृष्टि से देखें, तो उन्हें लगता है कि ट्रैक्टर ज्यादा सस्ते मिलेंगे और ज्यादा जल्दी मिलेंगे। शहरों और नगरों में, कानून एवं व्यवस्था की स्थिति में सुधार का मतलब है कि लोग अपनी मुट्ठी खोलकर निवेश करने के लिए आगे आएँगे। भूसंपत्ति में तेजी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण है, लेकिन वे समृद्धि के एक सक्रिय लूप का ऐसा हिस्सा है, जो केवल धीरे-धीरे ही दिखेगा।''

मधुप अपनी रहन-सहन की शैली के हिसाब से सामंती युग का है, लेकिन उसकी सोच पूँजीपतियों जैसी है, वह धीरे-धीरे लेकिन निश्चित कदम उठाते हुए परंपरागत खेती से औद्योगिक-श्रेणी की जल्दी उगने तथा अधिक लाभ देनेवाली उपज की ओर बढ़ गया है, वह अपने लक्ष्य से अधिक दूर नहीं लगता है। बिहार उद्योग संगठन के एक अनुमान के अनुसार, पिछले पाँच साल के दौरान बिहार में स्टील और सीमेंट की बिक्री में 800 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी समय के दौरान, संपत्ति के मूल्य 500-700 प्रतिशत बढ़ गए थे और बढ़ोतरी में अंतर इस बात पर निर्भर था कि आप किस जगह संपत्ति खरीदने के इच्छुक हैं। ''हम समझते हैं कि समृद्धि के संकेत, बिहार के मानदंडों के अनुसार, सर्वतोमुखी तथा काफी प्रबल हो गए हैं,'' राज्य के बहुत बड़े उद्यमियों में से एक ओ.पी.शाह ने मुझे बताया, ''और यह स्थिति पटना तक ही सीमित नहीं है, छोटे शहरों और गाँवों में भी स्थिति तेजी से बदल रही है, विशेषकर निर्माण जैसे क्षेत्रों में। इस बदलाव का बहुत समय से इंतजार था। लेकिन इसके लिए हमें विपुल पूँजी, बड़े उद्योग, बड़े इंजनों की आवश्यकता है; हमें अगर एक और छलाँग लगानी है, तो उसके लिए सबसे पहले हमें बिजली चाहिए।''

बिहार, जैसा कि नीतीश ने अकसर तत्परतापूर्वक स्वीकार किया, आड़ी-तिरछी सड़कों का जाल बिछ जाने के आधार पर ही चमक-दमक का दावा नहीं कर सकता; उस दावे की हकदारी सड़कों के दोनों तरफ दिखनी चाहिए। वह एक क्षेत्र है, जो अधिकतर अँधेरे में रहा, लाक्षणिक रूप से और शाब्दिक रूप से भी। एक करोड़ से अधिक की जनसंख्यावाले राज्यों में, बिहार में बिजली की खपत देश में सबसे कम थी। पटना के बाहर हमने एक रात भी ऐसी नहीं गुजारी जब हमें डीजल जेनरेटर का इस्तेमाल न करना पड़ा हो।

नीतीश कुमार ने मतदाताओं से यह सुनिश्चित करने का बड़ा वादा किया था कि वह सन् 2014 तक बिहार को बिजली के मामले में आत्म-निर्भर बना देंगे। ऐसा वचन देना कठिन कार्य था, क्योंकि बिजली की कमी बहुत अधिक थी और उस कमी को पूरा करने की सहायता के संकेत अभी तक कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। बिहार का अधिकांश भाग अभी भी अँधेरे में था। इसे औसतन 2300 मेगावाट विद्युत् आपूर्ति की आवश्यकता थी। इसके पास 1855 मेगावाट की स्थापित क्षमता थी, जो अधिकतर राष्ट्रीय ताप विद्युत् निगम (एन.टी.पी.सी.) और राष्ट्रीय जल विद्युत् निगम (एन.एच.पी.सी.) जैसी केंद्रीय एजेंसियों से आती थी। यह आपूर्ति अधिकतर बहुत कम रहती थी, कागजों पर 1855 मेगावाट का वादा करने के बावजूद कभी 100 मेगावाट से अधिक नहीं मिलती थी। 'इलैक्ट्रिकल

मॉनिटर' जैसी विश्वसनीय तथा निष्पक्ष विद्युत्-प्रहरी वेबसाइट्स ने बिहार में विद्युत् आपूर्ति के औसत को निर्धारित मात्रा की अपेक्षा नियमित रूप से 50 प्रतिशत के आस-पास पाया। लेकिन नीतीश अपने वचन पर गंभीर बने हुए थे : वचन को पूरा करेंगे। ''बिजली हमारी प्रगति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार है,'' पटना से हमारे प्रस्थान से पहले एक भेंटवार्त्ता में उन्होंने मुझसे कहा था, ''अगर सरकारी क्षेत्र नहीं देगा, तो हम बिजली खरीदेंगे, बाजार से खरीदेंगे। अगर हमें पर्याप्त बिजली नहीं मिलेगी, हमारी जनता भूखी रह जाएगी।''

लेकिन बिहार में इससे भी अधिक अंधकार दूर-दूर तक व्याप्त था और उन लोगों को चिंता में डाले हुए था, जिनके मन में बिहार के भविष्य को लेकर शंकाएँ बनी हुई हैं। यह अंधकार था—राज्य से ज्ञान का पूरी तरह उड़ जाना। बिहार में हर जगह जाकर हमने युवा पीढ़ी की आँखों में खुशी और आशा की चमक के बावजूद ज्ञान और अनुभव का जो अभाव देखा, उससे कतई ऐसा नहीं लगता था कि बिहार बहुत पहले लुप्त हुई अपनी संस्कृति को पुनर्जीवित करने की दिशा में बढ़ रहा है।

श्रेष्ठ विद्या के केंद्रों को तो भूल ही जाएँ, उनकी कल्पना भी न करें। कोई ऐसी अंतरस्नातक संस्था भी नहीं थी, जिसमें दाखिला पाने के लिए छात्रों में लालसा हो। एक अच्छी समकालीन लाइब्रेरी—पटना की ब्रिटिश काउंसिल लाइब्रेरी—बची थी। लालू यादव के आरंभिक शासनकाल में वह भी कोई शोक मनाए बगैर अपने कपाट बंद करके चली गई। पटना की सच्चिदानंद सिन्हा लाइब्रेरी अब धूल-धक्कड़ भरे एक तहखाने से अधिक कुछ नहीं है। ''प्रतिभा का नितांत अभाव हमारे लिए आज सबसे भयावह कारण बन गया है,'' पटना विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने मुझे बताया, ''और हम इस संबंध में कुछ कर नहीं रहे हैं। मेरे समय में, बिहार स्थित विश्वविद्यालयों से निकले छात्रों को यू.के. और यू.एस. की सर्वोत्तम शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश मिलता था, आज स्थिति यह हो गई है कि अगर आप एक छात्र के रूप में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं, तो आपको जल्दी-से-जल्दी बिहार से निकल जाना चाहिए। प्रतिभावान् छात्रों के लिए यहाँ अवसर ही कहाँ हैं, वे कहाँ जाएँ और उन्हें पढ़ाएगा कौन? हमारे स्कूल व्यापार कर रहे हैं, हमारे विश्वविद्यालयों से राजनीतिज्ञ और गुंडे पैदा होते हैं।''

अब पटना में एक आई.आई.टी. है और नालंदा में प्राचीन विश्वविद्यालय जहाँ हुआ करता था उस जगह एक महत्त्वाकांक्षी वैश्विक विश्वविद्यालय बनाने की योजना है। आई.आई.टी. के अंकुर फूटनेवाले हैं और वैश्विक विश्वविद्यालय दूर का सपना है। अगर वे उसका खर्च उठा सकें, बिहार के श्रेष्ठ छात्र बाहर चले जाते हैं और कभी लौटकर नहीं आते। भावी संभावनाएँ दिखती नहीं हैं। बिहार को एक ज्ञान-आधारित समाज बनने की अपनी आकांक्षा को पुन: जाग्रत् करना है। आंध्र प्रदेश में करीब 330 इंजीनियरिंग कॉलेज हैं, बिहार में मुश्किल से दस हैं, और उनमें से भी अधिकांश संदिग्ध-व्यापारिक संगठन हैं। मान्यता-प्राप्त मेडिकल कॉलेजों की संख्या नाममात्र है। बिहार में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ आप एक अच्छी उद्देश्यपूर्ण शिक्षा प्राप्त करने की आशा कर सकें।

सिंहवारा, गृह : दु:ख भरे एक दशक से भी अधिक समय तक—इस बात को अजीब मानें या उतना अजीब न भी मानें, यह वह समय था, जब लालू-राबड़ी राज चल रहा था—मानसून के दौरान हिमालय की लटों से निकलकर उच्छृंखल रूप से बहनेवाली एक नदी-प्रणाली, बुढ़नद के ऊपर बना ब्रिटिश-युग का पुल किसी बूढ़े आदमी की छिन्न-भिन्न हुई पसलियों की तरह टूटकर पड़ा रहा। जंग खाया यह लोहे का बूढ़ा पुल, जो मरम्मत के लायक नहीं रहा था, 1990 के दशक के बीच में एक मूसलधार वर्षा के दौरान टूट गया और तट के दोनों ओर लटक गया, किसी पुराने पेड़ के मोटे, गाँठदार, टूटे तने की तरह। नदी का विस्तार अचानक फैल गया। जो हजारों-हजार लोग इस व्यापक देहाती-क्षेत्र और दरभंगा, मुजफ्फरपुर तथा पटना जैसे नगरों से भी रोजाना पुल पार करके इधर-से-उधर आया-जाया करते थे, उनके लिए नदी पार जाने का अब कोई रास्ता नहीं रह गया था। एक किनारे से दूसरे किनारे

तक जाने में जहाँ दो मिनट का समय लगता था, वह अब एक साहसिक यात्रा बन गई क्योंकि लोगों को अब विवश होकर पानी के बीच से लिथड़ते हुए पार जाना पड़ रहा था। और जब मानसून में नदी उफान पर होती थी, तब नाव का सहारा लेना आवश्यक हो जाता था और वही एकमात्र साधन रह जाता था। लेकिन इस सड़क के यात्रियों के लिए खुशी की बात यह थी कि नदी पार करने का पुल भले ही न रहा हो, लेकिन एक सड़क जरूरी थी, जिससे आप सीधे नेपाल पहुँच सकते थे।

अब आप एक घंटे में जाले पहुँच जाते हैं, जो बिहार-नेपाल सीमा पर बसा एक शहर है, इसके लिए आपको ईस्ट-वेस्ट कॉरिडोर से अतरबेल चौराहे पर उत्तर की ओर मुड़ना पड़ता है। चार सड़कोंवाला यह राजमार्ग इक्कीसवीं सदी का एक द्रुतगामी मार्ग है, जो अधिकांशत: उन्नीसवीं सदी के भारत की सड़कों को कतरता हुआ जाता है। यह राजमार्ग एक कालदोष की तरह प्रतीत होता है, जैसे इंजीनियरिंग के किसी कला-चित्र को किसी ऐसे भू-दृश्य पर चिपका दिया गया हो, जो अभी भी अभावग्रस्त है। इसके दोनों तरफ देहाती-क्षेत्र हैं, जहाँ खेतों की जुताई अभी भी जानवर के खुर और आदमी के हाथ करते हैं। झोंपड़ियों के प्रकाशहीन झुरमुट हैं। नंगे बदन मछुआरे हैं, जो हाथों में जाल लेकर कीचड़ भरे तालाबों, पोखरों में मछली पकड़ने जाते हैं। सब्जी-भाजी की खेती करनेवाले लोग हैं, जो हर रोज भारी-भारी टोकरियों को सिर पर रखे हुए, मीलों पैदल चलकर, गाँव के हाटों में अपना सामान बेचने जाते हैं। खुला अनाज बेचनेवाले अनाज भरी बोरियों को ठेलों और साइकिलों पर लादकर, हाँफते, धकियाते हुए जाते हैं और पसीने में लथ-पथ हो जाते हैं और उस रफ्तार एवं आराम से महरूम रह जाते हैं, जो ऐसे राजमार्ग से मोटरगाड़ियों से जानेवालों को प्राप्त होता है। ट्रक और बसें हॉर्न बजा-बजाकर कान फाड़ते हुए तेजी से निकल जाती हैं। बड़ी-बड़ी कारें इतनी द्रुतगति से निकल जाती हैं कि आप इन्हें ठीक से देख भी नहीं पाते हैं। छोटे-छोटे रिक्शों ने भी अपने मालिकों को ज्यादा कमाई करके देना शुरू कर दिया है। इस सड़क के बनने से पहले, मैं जाले और अतरबेल के बीच दो या अधिक-से-अधिक तीन चक्कर लगा पाता था और इतने में ही मेरी हालत खराब हो जाती थी, एक तिपहिया चालक किशन कामती ने कहा, ''अब मैं कम-से-कम आठ और कभी-कभी दस चक्कर भी मार लेता हूँ, यह सड़क तो मक्खन जैसी है।''

ऐसी सड़क थी, जो हमें जाले लेकर आई, बंदूक की गोली की रफ्तार से। हम बुढ़नद पार कर गए और हमें पता भी नहीं चला कि यह सड़क कभी मुश्किल भरी हुआ करती थी; कंकरीट का एक नया पुल बन गया था, जो यात्रियों को पलक झपकते नदी पार पहुँचा देता है। हम तेजी से उस पुल पर चढ़े और जाले की तरफ निकल गए, जहाँ से आप बीस रुपए में, रिक्शे पर सवार होकर, आधे घंटे के अंदर एक बहुत ही विरल अंतरराष्ट्रीय भ्रमण अर्थात् नेपाल जाने का आनंद उठा सकते हैं, किसी पास या परमिट की जरूरत नहीं।

सीमा के पार पहुँचते ही सड़क ऊबड़-खाबड़ और टूटी-फूटी होने लगती है; नामौजूद बाड़ के इस तरफ सड़क इतनी चिकनी थी कि कुछ लोग शिकायत करने लगे थे, क्योंकि शिकायत करना लोगों की आदत बन चुकी है। मियाँ मोहिउद्दीन ने नई सड़क को आफत करार दे डाला। जाले की इकहरी सड़कवाले बाजार में उसका गंदा सा दवाखाना है, वहाँ से मसजिद तक पैदल जाना बेफिक्री का सफर हुआ करता था। अब यह रोज-रोज का खतरा बन गया था और उस बूढ़े आदमी को एक सच्चा मजहबी होने के नाते दिन में पाँच बार यह खतरा उठाना पड़ता था। ''पागलों की तरह चलते हैं चिकनी सड़क पर, सड़क न हुई जहन्नुम हो गया, चिल्ल पूँ, चिल्ल पूँ, हर वक्त...''

लेकिन बूढ़ा मियाँ मोहिउद्दीन बीते समय की यादगार निशानी जैसा था, जाले बाजार में हँसी-मजाक का विषय; बोलचाल में लोग उसे सठिया-सनकी पुकारते थे। ''इस सड़क ने हमारी जिंदगी को पूरी तरह बदल दिया है, मियाँजी चाहे जो कहें।'' बद्री साहू ने बूढ़े के मुँह पर कहा। साहू उसका पड़ोसी था, एक सामान्य वस्तु भंडार का

मालिक, जिसने अपना कारोबार, पिछले दो-चार साल में कई गुना बढ़ा लिया था। इस सड़क के कारण, ''वस्तुएँ सस्ती, ताजा और कम समय में यहाँ पहुँच जाती हैं,'' साउ ने कहा, ''और हम सरहद पर हैं, इधर नेपाल, उधर बिहार, आयात-निर्यात जल्दी-जल्दी।'' वह 'रुपया-पैसा, रुपया-पैसा' भी जोड़ सकता था, लेकिन उसकी आवाज में झलक रही खुशी बहुत कुछ इशारा कर रही थी, और एक सच यह भी था कि उस बाजार में आगे की कई दुकानों से साहू का व्यवसाय फल-फूल रहा था। ''बनिया हैं न, सर माल बना रहे हैं, खुश हैं।''

जैसे ही हम वहाँ से चलने लगे, उसने हमें शहर के दूर किनारे, जहाँ जाले शहर का विलय देहात में होता है, अपने 'मकान' पर नजर डालते हुए जाने को कहा। ''यह बड़ा सा मकान आपके बाएँ हाथ की ओर पड़ेगा,'' साहू ने अभिमान के साथ कहा, ''आप उसे अनदेखा नहीं कर सकते।'' वाकई हम कोशिश करते, तब भी उसे अनदेखा नहीं कर सकते थे। माचिस की डिबिया जैसे प्लाट पर मंजिल के ऊपर मंजिल चढ़ी हुई थी, बाहर की दीवारें तोतई हरे रंग की थीं, सायान नारंगी रंग के तिरपाल से आच्छादित था, दरवाजों और खिड़कियों पर किरमिजी रंग किया हुआ था। मकान क्या था, किसी पेंट कंपनी का विज्ञापन ज्यादा लगता था। जब भी आप रंगों की छटा देखेंगे, बद्री साहू के बारे में अवश्य सोचेंगे।

वह रात मैंने सिंहवाड़ा में अपने खेतों से घिरे मकान के बर्फ से ठंडे कमरों में गुजारी; यह घर मेरे दादाजी ने पचास साल से भी पहले बनवाया था। इस जागीर पर कई छोटे-छोटे मकान भिन्न-भिन्न परिवारों ने समय-समय पर बना लिए थे, लेकिन अब एक मकान को छोड़कर बाकी सब खाली पड़े हुए थे। ये खाली पड़े, निर्जन घर, पूरे सिंहवाड़ा, वस्तुत: ग्रामीण उत्तर बिहार की कहानी संक्षेप में बयान कर रहे थे। जो लोग हिम्मत कर सकते थे, उनमें से अधिकतर काम की तलाश में घर छोड़कर चले गए थे। गाँव के अधिकांश घर खाली पड़े थे, केवल वृद्धजन और औरतें तथा बच्चे पीछे रह गए थे। मेरे एक चाचा, जो अविवाहित थे और अस्सी वर्ष के आस-पास थे, एक अजीब सी बैरक में रह रहे थे और उन्होंने वहाँ से कहीं न जाने का फैसला कर लिया था। सिंहवाड़ा के लोग उस बैरक को 'आश्रम' कहने लगे थे। यह नाम जम गया। बैरक में अगल-बगल सटे हुए तीन कमरों का सेट था; बीच में छोटा सा चौक था, जिसके आधे हिस्से में लाइब्रेरी थी और आधे हिस्से में पहली मंजिल पर जाने के लिए घुमावदार सीढ़ियाँ थीं। एक लकड़ी की सीढ़ी पहली मंजिल के ऊपर बने हॉल तक ले जाती थी, जिसके आगे छत थी। एक खंभेदार बरामदा उस आश्रम का अग्र भाग था जहाँ मेरे चाचा लकड़ी के पलंग पर बैठकर झुके हुए पढ़ते और लिखते थे। वर्षों तक उन्होंने पटना यूनिवर्सिटी में, और उसके बाद काठमांडू स्थित त्रिभुवन यूनिवर्सिटी में उत्तर अमेरिका में तुलनात्मक धर्म और अंग्रेजी विषय पढ़ाया था। लेकिन न जाने क्यों, सिंहवाड़ा उन्हें बार-बार अपनी ओर खींचता रहता था। अब उन्होंने अपना घुमक्कड़पन छोड़ दिया था, जो एक प्रकार से उनके लिए अच्छा ही था। उन्होंने मैथिली, बँगला और हिंदी की पुरातन एवं उत्कृष्ट कृतियों का पठन किया और लिखा अंग्रेजी में, और अंग्रेजी से मैथिली, बँगला एवं हिंदी में अनुवाद किया—वह अपनी कला को अनुवाद की अपेक्षा लिप्यंतरण कहलाना अधिक पसंद करते थे—उनका यह कार्य अत्यंत श्रम-साध्य था, जिसके लिए साहित्य अकादमी द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया था। जब वह बीच-बीच में थोड़ा विराम लेते, वह अहाते में गिरी पत्तियों को बुहारकर अहाता साफ कर देते और अंदर घुस आई बकरियों को बाहर खदेड़ देते थे। अहाते के चारों ओर ईंट की दीवार थी, लेकिन कोई लापरवाह आदमी बाहर का गेट खुला छोड़ देता था। उस सूनी-उजाड़ जागीर के वह अकेले रक्षक थे, और किसी संगी-साथी के बिना, रॉबिन्सन क्रूसो की भाँति अकेले ही वहाँ रहते थे।

मेरे चाचा एक और मामले में धुन के पक्के थे; वह दुनिया से जुड़े रहना चाहते थे, जो उन्हें आश्रम के पीछे के अपने कमरे से बहुत दूर लगती थी। अत: वह बैटरी से चलनेवाले ट्रांजिस्टर के कान बराबर उमेठते रहते थे, ताकि

बी.बी.सी. का समाचार बुलेटिन सुन सकें। दुनिया भर की घटनाओं के बारे में उनकी जानकारी कभी-कभी मुझे भी हैरान कर देती थी, जबकि मैं खुद एक संवाददाता था।

जब कभी मैं उनसे मिलने जाता था, हम व्हिस्की के घूँट-पर-घूँट भरते हुए देर रात तक बातें करते रहते। जाड़ा बढ़ने लगा था, हमने ताप लेने के लिए छोटी-मोटी आग का इंतजाम कर लिया। बिजली भी नहीं, हालाँकि सिंहवाड़ा और उसके आस-पास के क्षेत्र को सन् 1969 में ही कागजों में 'विद्युतीकृत' घोषित कर दिया गया था। बिजली ने सिंहवाड़ा को उदासीन बना दिया था—यहाँ के निवासियों को बिजली आने की न तो खुशी होती थी, न बिजली के जाने का गम। वे रोजाना शाम को अपनी-अपनी लालटेनें और मिट्टी के तेल की कुप्पी जला लेते थे। हमने मैंटलपीस के ऊपर रखे एक बड़े दीपदान में लगी मोमबत्ती जलाकर रोशनी कर ली।

मैंने अपने चाचा से पूछा कि 'नव बिहार' के बारे में इतना जो शोर मच रहा है, उसके संबंध में उनका क्या कहना है और यह भी कि क्या वह समझते हैं कि हालात असल में बदल रहे हैं। उन्होंने 'हाँ' और 'न' कहा। ''स्थितियाँ बदलती हैं और नहीं भी बदलती हैं,'' उन्होंने मुझसे कहा, ''और अपरिवर्तनीय परिवर्तन धीरे-धीरे आएगा, वे कुछ दूरी तक एक नई सड़क बनाते हैं और अगले दिन सिंचाई का एक पाइप डालने के लिए कोई उसे खोदकर चला जाता है या अँधेरे में किसी ने उस पूरी सड़क पर हल चला दिया होता है अर्थात् सड़क को बुरी तरह खराब कर दिया होता है। बदलाव आने में समय लगता है, लोगों को बदलना होगा, आप लोगों को नहीं बदल सकते, जब तक कि वे अपने आपको बदलने का फैसला न करें।''

बिहार में जिंदगी कैसे गुजरती है और किस परिवर्तन की आशा करना समझदारी होगी, इस बारे में उन्हें कुछ बातें मालूम थीं।

अगले दिन जब मैं वहाँ से चलने लगा, उन्होंने पिछली रात हमारे बीच हुई बातचीत पर कष्टकारी अंतिम टिप्पणी टाँक दी। यह याद रखना मेरे विचार से उचित होगा कि हमने अपने वास्ते जो लोकप्रिय गीत अपनाया है, इस प्रकार है—'बिहार ना सुधरी', वह हँसे। 'उस टिप्पणी पर...।' वह विनय बिहारी द्वारा रचे गए उस आत्म-विरोधी गाथा-गीत की ओर इशारा कर रहे थे, जो लालू शासनकाल के दौरान अत्यधिक लोकप्रिय हुआ—बिहार ना सुधरी। नीतीश के कानों के लिए यह गीत अभिशाप होगा, लेकिन इसकी गूँज में सच्चाई थी।

❑

3

निर्मल और धुन का पक्का घुमक्कड़

सत्ता तक पहुँचने का सपना बहुत जल्दी उनकी आँखों में दृढ़ होकर बैठ गया था, इतनी जल्दी कि स्वयं उनके पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं था कि यह एक सनक, एक युवा मन के दुस्साहसी आवेग से अधिक कुछ हो सकता है। उन्होंने अपनी इस महत्त्वाकांक्षा को प्रकट न करने और परे रखने में देर नहीं लगाई; शायद वह इस बात से परेशानी और उलझन में पड़ गए थे कि उनके मन में कौंधा यह विचार कहीं एक विभ्रम तो नहीं। उसके बाद अनेक वर्ष तक, उन्होंने अपना यह विचार किसी के सामने प्रकट नहीं किया, यहाँ तक कि अपने घनिष्ठतम मित्रों तथा अपने परिवार को भी इसके बारे में नहीं बताया। लेकिन उन्होंने अपने आरंभिक तथा बार-बार विपरीत जानेवाली परिस्थितियों के नीचे राख में दबी चिनगारी को जिंदा रखा। लेकिन नीतीश कुमार की अपरिपक्व महत्त्वाकांक्षा के एक सांयोगिक साक्षी तथा एक जाने-माने पत्रकार सुरेंद्र किशोर ने उनकी नब्ज तुरंत पहचान ली और उस क्षण को उन्होंने अपनी डायरी में भविष्य के लिए बचाकर रख लिया।

किशोर अब पटना में रह गए उन मुट्ठी भर लोगों में से एक हैं, जिनके पास समकालीन राजनीतिक स्मृति का गहरा भंडार है और उन स्मृतियों का वर्णन वह विश्वसनीयता के साथ और निष्पक्ष भाव से करते हैं। सुरेंद्र किशोर यदि कभी इकतरफा होकर बोलते भी हैं, तो उसे छिपाते नहीं हैं, उसका ऐलान कर देते हैं। वह राम मनोहर लोहिया विचारधारा के समर्थक होने के नाते एक समाजवादी—लोहिया के अनुयायी हैं, ठीक वैसे ही, जैसे नीतीश कुमार हैं—और पत्रकारिता को उन्होंने कुछ समय राजनीतिक सक्रियतावाद को देने के बाद अपनाया। उस दौरान कुछ समय के लिए वह बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर के राजनीतिक सचिव भी रहे। राजनीति छोड़ने और पूर्णकालिक पत्रकार बनने के बाद भी किशोर एक अंतरंग-बाहरी व्यक्ति बने रहे, एक ऐसा व्यक्ति जिसके लिए दरवाजे हमेशा खुले रहे और यह दुर्लभ स्वतंत्रता उन्हें आज भी प्राप्त है, तभी तो वह बिहार के बारे में अंदरूनी हालात की असलियत से वाकिफ करानेवाली कुछ अत्यंत विचारोत्तेजक रिपोर्टें हिंदी दैनिक 'जनसत्ता' के लिए लिखने में आज भी सफल हैं। वह एक छोटे कद के आदमी हैं, चश्मा लगाते हैं, दुबले-पतले और फुर्तीले हैं, कुछ-कुछ वूडी ऐलन जैसे, लेकिन उसके जैसे बालों के बिना। वह अभी भी खुद को जवान समझते हैं और लंबी-लंबी दूरियाँ, कोई रिक्शा, गाड़ी या बस आदि लेने के बजाय पैदल तय करना ही पसंद करते हैं। उनकी आयु साठ-सत्तर के बीच है, लेकिन उनकी चाल-ढाल और चेहरे-मोहरे से उनकी अवस्था का पता नहीं चलता है।

अपने समय के बहुत से युवाओं की तरह किशोर 1960 के दशक के उत्तरार्ध और 1970 के दशक के आरंभिक काल में बिहार के अपरंपरागत गुटों में जाकर बैठने लगे थे। यह एक ऐसा समय था, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की किसी अन्य पीढ़ी ने नहीं देखा, ऐसे शोरगुल और कोलाहल का दौर, जो अठारहवीं सदी के अंत में किसी जॉर्ज लिचेन्बर्ग को नशे में चूर रहनेवाले शासन की याद दिलाता है : 'फ्रांस में खमीर उठ रहा है, किंतु अभी यह निश्चित नहीं है कि शराब बनेगी या सिरका।'

राजनीतिक आकांक्षाओं की होड़ धीरे-धीरे तेजी पकड़ने लगी थी।

सत्ता पर कांग्रेस का एकाधिकार घटने लगा था। यह एक महत्त्वपूर्ण घड़ी थी, वास्तव में उपनिवेशवादोत्तर संसार में बहुपार्टी राजनीति का ध्वज फहराने का समय आरंभ हो गया था। सन् 1967 में, पहली बार बिहार, उड़ीसा,

पश्चिम बंगाल, पंजाब, मद्रास और केरल में गठबंधनों के विरुद्ध कांग्रेस की हार हुई—ये गठबंधन मार्क्सवादियों, समाजवादियों, रूढ़िवादियों और अत्याधुनिक दक्षिणपंथियों की अधपकी खिचड़ी थी। उन्होंने कांग्रेस को स्तंभित कर दिया। लोकसभा में पार्टी की सीटों की संख्या घटकर 283 रह गई, अर्थात् करीब 100 सीटें घट गईं। इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री की कुरसी मिल गई, लेकिन कांग्रेस में फूट के आसार नजर आने लगे थे। प्रभावशाली प्रतिद्वंद्वियों की चुनौती का सामना करने के उद्देश्य से इंदिरा गांधी ने राजनीतिक पहल पर कब्जा करने के लिए जल्दबाजी में कदम उठाने शुरू कर दिए। उन्होंने प्रतिद्वंद्वियों का दमन करने के लिए कांग्रेस के आधिकारिक नामजद व्यक्ति को राष्ट्रपति के निर्वाचन में पराजित करा दिया और अपनी पार्टी के उस एक गुट को आधा कर दिया, जिस पर उन्हें अपने विरुद्ध साजिश रचने का संदेह था। उन्होंने प्रिवीपर्स खत्म कर दिए, बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया और 'गरीबी हटाओ' का एक बड़ा जनप्रिय नारा बुलंद किया। उन्होंने पाकिस्तान के पूर्वी भाग के समर्थन में पाकिस्तान के साथ युद्ध किया और बँगलादेश को जन्म दिया। यह सब करके उनके व्यक्तित्व को एक नई छवि मिली और वह एक मजबूत, धीर-गंभीर नेता के रूप में पहचानी जाने लगीं। सन् 1967 की वह गूंगी गुडि़या—जिसे कांग्रेस सिंडिकेट अपने इशारे पर नचाता था—अब आदेश जारी करने लगी और आदेशों के अनुपालन की अपेक्षा करने लगी। कार्टून कलाकार आर.के. लक्ष्मण ने उनके इस कायाकल्प को बहुत अच्छे तरीके से व्यक्त किया : उसने इंदिरा गांधी के हर रेखाचित्र में एक रोबीली, घमंडी नाक लगानी शुरू कर दी।

लेकिन वह स्वयं को जितना अधिक थोपने की कोशिश करती थीं, उतनी ही अधिक चुनौती उन्हें मिलती थी। बिहार उनके लिए एक कड़ी परीक्षा बन गया। फोटो-पत्रकार रघुराय ने बिहार से उठे आंदोलन के उबाल का इतिवृत्त 'बिहार शोज दि वे' (Bihar Shows the Way) शीर्षक के अधीन प्रकाशित पुस्तक के रूप में श्याम-श्वेत चित्रों के साथ बखूबी प्रस्तुत किया। पुस्तक के आवरण पर एक बस की खिड़की का क्लोज-अप था, शीशा गोली के व्हिसल-होल (सीटी-छिद्र) के चारों ओर चटका हुआ था। जे.पी. की हथेली उसके ऊपर थी। उस पर महीन रेखाएँ थीं, उनसे भी बहुत अधिक रेखाएँ जो गोली ने शीशे पर छोड़ी थीं। त्वचा की रेखाएँ और शीशे की रेखाएँ, अस्थायी युद्ध-विराम के एक नाजुक लम्हे में जाल की तरह दिख रही थीं : त्वचा का दबाव शीशा तोड़ेगा, या शीशा त्वचा को काट देगा, या दोनों बातें होंगी।

तसवीर पर कोई तारीख या समय अंकित नहीं था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह तसवीर उस आंदोलन के दौरान जे.पी. तथा उनके समर्थकों की अनेक गिरफ्तारियों की तसवीरों में से एक रही होगी, जिस आंदोलन के कारण इमरजेंसी (आपात्स्थिति) लागू की गई। उन्हें सरकारी बसों में भरकर, जैसा कि इस चित्र में दिख रहा है, बिलकुल करीब के पुलिस थाने तक ले जाया जाता, हवालात में रखा जाता और कुछ घंटों की हिरासत के बाद छोड़ दिया जाता था। जे.पी. को उनके अनेक समर्थकों के साथ पकड़कर शायद अभी-अभी ऐसी ही एक बस के अंदर धकेला गया था, या वह बस से उतरने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बात की संभावना नहीं दिखती थी कि गोली बस की खिड़की के पार जे.पी. की हथेली को छूकर गई हो, ताकि एक यादगार चित्र बन सके; शीशे में वह छेद पहले का रहा होगा लेकिन कैमरे ने घेराबंदी और समय की हड्डियाँ चटकने का भाव बखूबी उस चित्र में जड़ दिया था। जेल के कपाट तो जैसे चक्र-द्वार बन गए थे, राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय लोग जेल के अंदर ऐसे जा-आ रहे थे जैसे चाय पीने या रोजाना के सामान्य कार्य करने आए हों। आँसू-गैस की कसैली गंध पटना की हवा में घुली हुई थी और विद्रोह की कहानी को विस्तार दे रही थी। फ्रेजर रोड से थोड़ी दूर, इंडिया कॉफी हाउस स्थापित-सत्ता विरोधी उपदेशों का लोकप्रिय केंद्र बना हुआ था। सभी पेशों, व्यवसायों से संबंधित लोग, जैसे कि कवि और लेखक, चित्रकार और राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद् एवं पत्रकार, विद्यार्थी तथा मजदूर यूनियनों के सदस्य आदि

वहाँ हर समय अड्डा जमाए रहते थे और वे सभी मानते थे कि संकट के बादल छाए हुए हैं और गहरा रहे हैं, किंतु उससे निपटने के तरीकों एवं उपायों के बारे में उनके विचार अलग-अलग होते थे। हर मेज पर गरमागरम बहस चलती थी। इंदिरा को रोका जाना चाहिए। लेकिन कैसे? कॉफी पब के ऊपर किसी बीयर-हॉल जैसा शोर-शराबे भरा माहौल तैरता रहता था। बहस में एक-दूसरे को पछाड़ने की कोशिश में कॉफी प्यालों की टकराहट सुनाई देती, क्रोधजन्य शायरी सिगरेटों का दम खींचकर धुआँ उड़ाती रहती। कॉफी हाउस के वरदीधारी वेटर न जाने किस-किस तरह रास्ता बनाते हुए मेजों के इर्द-गिर्द पहुँचते, खुशबूदार कॉफी और सांभर ग्राहकों के सामने रखते, बिल मेज पर चिपका देते और आना-दो आना टिप का इंतजार करते। उनके हैट में कलफ लगी झालर होती थी। वे गुल-गपाड़े के बीच से अपना रास्ता निकाल लेते, जैसे कलगीवाले सारस कीड़े-मकोड़ों भरे दलदल में रास्ता बना लेते हैं।

मैं अकसर अपने पिता से जिद करता था कि मुझे भी अपने साथ ले चलें। स्कूल बंद पड़े थे। मैं अपनी किशोरावस्था में था और घर में बहुत बेचैन हो जाता था। इंडिया कॉफी हाउस बड़ी लुभावनी जगह थी वयस्कों के लिए; वहाँ का खुला हँसी-मजाक और गुल-गपाड़े के भरा माहौल छोटों को ललचाता था, जिनकी नजर में कॉफी हाउस एक ऐसा मनमोहक ग्रह था, जहाँ हर तरह की छूट होती है—कोई बेल्ट या टाई पहनना जरूरी नहीं होता है, न जूतों पर पॉलिश की जरूरत होती है, आने या जाने का कोई निश्चित समय नहीं होता है, कोई हुक्म देनेवाला नहीं होता है। अगर कुछ था, तो वहाँ एक प्रकार की मुग्ध कर देनेवाली सुसज्जित अव्यवस्था थी, जो उस समय के मिजाज के अनुकूल थी। दुनिया में सबकुछ उलटा-पुलटा हो रहा था और यह अव्यवस्था इस बात की खीझ प्रतीत होती थी कि दुनिया को सही रास्ते पर कैसे लाया जाए। हमेशा बड़ी-बड़ी, भारी-भरकम बातें होती थीं, मैंने फ्यूहरर और फासीवाद जैसे शब्द पहली बार यहीं सुने, श्रमजीवियों का वर्ग, पूँजीपतियों का वर्ग, कमिंटर्न और नाटो और सर्वहारा तथा समाजवाद, सत्ता, साम्राज्यवाद एवं तानाशाही जैसे शब्दों से मेरा परिचय हुआ। लेकिन इस वजह से किसी को भी यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कॉफी हाउस कोई वामपंथियों का अड्डा था, बात सिर्फ इतनी है कि उनके पास बेहतर तर्कपूर्ण, जोरदार प्रभाव छोड़नेवाले शब्द थे और वे अत्यंत भावावेश के साथ बोलते थे।

यह एक बड़ी सरगरमी, मानसिक ऊष्मा देनेवाला स्थान था, जो आज के पटना में मुझे अकसर बहुत याद आता है। जहाँ इंडिया कॉफी हाउस हुआ करता था, उस जगह अब बड़ा-बड़ा कारोबार करनेवालों की छोटी-छोटी दुकानें, ऑफिस, शो-रूम बन गए हैं, जिनके नाम आपके शब्द-भंडार में अवश्य ही वृद्धि करेंगे—चिट फंड, फास्ट-फूड, डिजाइनर फैशन, इलैक्ट्रॉनिक्स, बाथरूम टाइल्स, पाके फ्लोरिंग (लकड़ी का फर्श), यूनिसेक्स सैलॉन्स, कोल्ड कट्स, सीडी-डिवीडीज, रीयल इस्टेट, इटालियन शूज एवं बूट इत्यादि। यही तरक्की है, 'नया-उन्नत' पटना, सी.एफ.एल. की रोशनी में नहाया, सेलोफेन में लिपटा हुआ।

सन् 1970 के दशक के आरंभिक काल में उस समय के जो प्रतिष्ठित और जाने-माने व्यक्ति अंधकार की भविष्यवाणी किया करते थे, उनके लिए इंडिया कॉफी हाउस पसंदीदा घोषणा केंद्र हुआ करता था। प्रत्येक दिन एक नवजागरण मंडली इंदिरा शासन की भर्त्सना करने के लिए, वहाँ अड्डा जमाया करती थी। इस मंडली में शामिल थे उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु और बाबा नागार्जुन—एक लंबा-ऊँचा और धूसर बालोंवाला, दूसरा छोटे कद का—संयोजक उप्पल-बंधु, गुरु एवं हरि, बौद्ध लघु-चित्रकार उपेंद्र महारथी, महाकवि रामधारी सिंह दिनकर, जिन्होंने एक पंक्ति में विप्लव का ऐसा बिगुल बजाया, जो कॉफी हाउस में हर किसी की जुबान पर गूँजने लगा : 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' दिनकर जब-जब कॉफी हाउस में प्रवेश करते, सब लोग उन्हीं की पंक्ति में, एक सुर में, उनका स्वागत करते थे। उनका एक संकोची चेला था, दुष्यंत कुमार नाम का। वह उत्तर प्रदेश के एक दूर इलाके का था, लेकिन उसने बहुत जल्दी बिहार को अपना लिया था, क्योंकि तब बिहार की साहित्यिक, राजनीतिक

गतिविधियों का सक्रिय अखाड़ा माना जाता था। दुष्यंत कुमार ने हिंदी काव्य को उर्दू द्विपदी जैसा मोहक रंग देने का असाधारण काम किया। व्यंग्य प्रधान कविता में उसे विलक्षण प्रतिभा प्राप्त थी और इसकी पैनी धार का प्रयोग उसने इंदिरा गांधी के संदर्भ में बहुत निराले ढंग से किया। 'वो कहती हैं हमसे को-ऑपरेट कीजिए, चाकू की पसलियों से गुजारिश तो देखिए?'... आपात्कालीन आदर्शों के राष्ट्रव्यापी अनुपालन की अपेक्षा के संदर्भ में उसने लिखा था और उनकी असहिष्णुता के विषय में दुष्यंत कुमार ने लिखा : 'मत कहो आकाश में कोहरा घना है, यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।' आपात्काल के आरंभिक महीनों में एक सड़क दुर्घटना में दुष्यंत कुमार की मृत्यु हो गई। सेंसरशिप ने उनकी रचना को अमर बना दिया।

एक लंबा, हट्टा-कट्टा आदमी, जिसके कपड़ों में सिलवटें पड़ी होती थीं और जो अपने-आपको गोपालजी कहता था, कभी-कभी कॉफी हाउस में आकर चुपचाप बैठ जाता था और वहाँ हो रही चर्चा को सुना करता, जैसे अकसर मैं सुनता था। मैंने उसे पहचान लिया, क्योंकि कई बार देर रात को हमारे घर आया करता था और उसके आने से पहले मेरे पिता घर की सारी बत्तियाँ बुझा देने के लिए कहते थे। वे एक अस्त-व्यस्त पड़े बैठकखाने में, जिसे मेरे पिता ने अपना ऑफिस भी बनाया हुआ था, मोमबत्ती की रोशनी में बातें करते रहते थे; उस कमरे में एक तरफ अखबारों और कॉपियों का ढेर लगा रहता था और एक कोने में बड़ी भारी टेलेक्स मशीन रखी हुई थी, जो अकसर सोई रहती थी। आपात्स्थिति लागू हो जाने के फलस्वरूप उस कमरे में एक नई श्रेणी, एक नई शैली की पुस्तकों की घुसपैठ शुरू हो गई थी, एडोल्फ हिटलर और नाजीवाद पर लिखी पुस्तकों का अध्ययन—विलियम एल. शाइरर की पुस्तक—The Rice and Fale 07 the Third Reicx, अलबर्ट स्पीअर्स की किताब—Inside the Third Reich, जोकिम सी. फेस्ट द्वारा लिखित हिटलर की जीवनी, जोसेफ गोबेल्स की डायरियाँ, Mein Kamph। इंदिरा गांधी का अध्ययन फासिस्टवाद के एक लक्षण के रूप में किया जा रहा था।

घर में गोपालजी को हम सत्येंद्र नारायण सिंह के रूप में जानते थे। मेरे पिता ने जब उनके साथ बातचीत के आधार पर रिपोर्टें लिखने का सिलसिला शुरू किया था, तो वह एक तीसरे नाम—श्यामजी का प्रयोग करते थे। बहुत वर्षों बाद मुझे पता चला कि वह एक भूमिगत नक्सली था, जो देहात में सशस्त्र क्रांति की साजिश रच रहा था और आपात्स्थिति हटाए जाने के कुछ समय पहले ही आरा के निकट पुलिस के साथ एक मुठभेड़ में मारा गया। बड़े सारे उपनामों के बावजूद, मार गिराए जाने के वास्ते वह केवल एक शरीर था।

उन दिनों रात के किसी भी समय सूचना दिए बिना आ धमकनेवाले और भी लोग थे, जिनकी मुझे याद है। एक बार आधी रात के बाद मैंने किसी के लिए दरवाजा खोला था। मेरे पिता घर पर नहीं थे, वह अकसर कई-कई दिनों के लिए किसी काम से बाहर चले जाते थे, और मुझे कोई जानकारी नहीं होती थी कि वह कहाँ होंगे। एक वृद्ध आदमी हमारे पहली मंजिल के फ्लैट की अँधेरी सीढ़ियों पर खड़ा था। मैं लड़खड़ाता हुआ दरवाजे तक पहुँचा लेकिन मैंने उसे तुरंत पहचान लिया, क्योंकि मैं कॉफी हाउस में उससे मिल चुका था : कवि, बाबा नागार्जुन, जिनकी इंदिरा-विरोधी व्यंग्य रचनाएँ आपात्कालीन आकाश में हर्षातिरेक के साथ गूँजा करती थीं—'इंदुजी, इंदुजी का हुआ आपको, क्या हुआ आपको!'

उनकी धोती मैली-कुचैली थी, कुरता मसला हुआ, दाढ़ी बढ़ी हुई, उनकी आँखें उनके चश्मे के मोटे शीशों को भेदती हुई। 'बउआ, घर में कड़ु तेल छौ' बेटे, घर में सरसों का तेल है क्या? उन्होंने अपना परिचय देने की परवाह किए बिना लगभग करुण बनते हुए, दीनभाव से पूछा। इससे पहले कि मैं आधी रात में उस खब्ती सवाल का जवाब दे पाता, उन्होंने अपने कुरते की जेब से दो कच्चे अंडे निकाल लिये थे। ''मैंने कई दिनों से खाया नहीं है, मैं भागता रहा हूँ, क्या तुम्हारे घर में थोड़ा सा भी सरसों का तेल है?''

उन्होंने मुझे मेरी माँ को जगाने से मना कर दिया, अतः हम चुपके से रसोई में घुस गए; मैं अपने ही घर में चोर बन गया और एक सह-अपराधी को उसके (अर्थात् मेरी माँ) खिलाफ साजिश करने दे रहा था। कवि महोदय ने स्टोव जलाया, अंडे तले, जो बना उसे जल्दी-जल्दी भकोसा और फिर कुछ कहे बिना ही रात के अँधेरे में बाहर निकल गए। नागार्जुन ने अपनी कलम से इंदिरा गांधी का मजाक उड़ाने की हिम्मत की थी, घोड़े पर सवार हिटलर के साथ उनकी तुलना की थी। पुलिस बाबा नागार्जुन के पीछे लगी हुई थी। वह एक मामूली इनसान थे और दो अंडे खाकर कई दिन गुजार सकते थे; शायद उनकी यह सादगी ही उनके लिए मददगार साबित हुई।

इंडिया कॉफी हाउस आपात्काल के दौरान और उसके बाद तक एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक अड्डा बना रहा। राजनीतिक खलबली सन् 1977 में इंदिरा गांधी की पराजय और उत्तर भारत में जनता सरकारों के आगमन के साथ समाप्त नहीं हुई थी। ये अनाड़ी और फूहड़, अनगढ़ एवं विकृत गठबंधन थे, जिनकी विचारधाराओं में सामंजस्य नहीं था और भिन्न-भिन्न गुटों के अंदर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा बार-बार सिर उठाने लगी थी। वे जल्दी बिखरने लगे, दिल्ली सरकार का पतन हो गया। कर्पूरी ठाकुर ने जैसे ही बिहार के जनता मुख्यमंत्री के रूप में कार्यभार सँभाला, उनकी सरकार को बाहर के लोगों के बजाय अंदरूनी लोगों की ओर से आलोचना अधिक सहनी पड़ी। यही वह समय था, जब नीतीश कुमार के बारे में सुरेंद्र कुमार की दूरदर्शी भविष्यवाणी स्मृति में कौंध जाती है।

नीतीश कुमार अपनी पहली परीक्षा में फेल हो गए थे, वह मध्य बिहार में अपनी जन्मभूमि, नालंदा जिले में जनता पार्टी प्रत्याशी के रूप में हरनौत विधानसभा सीट से चुनाव हार गए। लालू यादव समेत उनके अधिकतर साथी चुनाव जीते और आगे बढ़ गए। सन् 1977 का चुनाव एक लहर पर सवार था। कांग्रेस को राष्ट्रीय सिंहासन से उतार दिया गया था। एक गैर-कांग्रेस टिकट हासिल करना आधी लड़ाई जीतने के बराबर था। लेकिन नीतीश जीत का जश्न मनानेवालों के बीच एक दुःखी आत्मा थे। उसका मन खट्टा हो गया होगा। उसके पास न तो विधानसभा में कोई सीट थी, न पार्टी में कोई पद। कोई ऐसा रिकॉर्ड नहीं है, जिससे यह पता चले कि नीतीश ने कोई राजनीतिक संरक्षक खोज लिया था। उसके पास करने के लिए कुछ नहीं था। वह सत्ता की परिधि के आस-पास घूमता रहता था। इंडिया कॉफी हाउस उस दायरे में सबसे अच्छी जगह थी। वहाँ कोई-न-कोई जानकार और प्रभावशाली व्यक्ति हमेशा मिल ही जाता था—कोई मंत्री या कोई पिछलग्गू, विपक्ष का कोई व्यक्ति, अंदर के हाल से परिचित व्यक्ति को घेरे हुए पत्रकार, कोई ऐसा अफसर जिसने बहुधा, अनैतिक एवं अप्रिय पहलू में झाँकने का जोखिम या लुत्फ उठाया हो, सरकारी आदमी, जिनके पास कोई सरकारी पद नहीं। नीतीश भी बराबर जाया करते थे।

एक दिन दोपहर की बैठक में यह बहस छिड़ गई थी कि मुख्यमंत्री पद पर कर्पूरी ठाकुर का चयन क्या सही निर्णय था। उनकी सरकार में मुश्किल चल रही थी। हर रोज किसी-न-किसी मंत्री के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप निकलकर आ रहे थे। ठाकुर जो एक नाटा, किंतु सच्चा, ईमानदार, समाजवादी था और निहायत ही सरल एवं विनम्रशील था, इन सब पचड़ों से ऊपर रहा, लेकिन उस पर निरंतर यह प्रहार किया जा रहा था कि वह घोर 'जातिवादी' है और पिछड़े समुदायों तथा अनुसूचित जातियों में कुछ विशेष वर्गों को आगे बढ़ा रहा है, क्योंकि वह खुद उन्हीं वर्गों में से किसी एक से संबंध रखता है। राजनीति में, और अधिकारी तंत्र में गहरी पैठ बनाए हुए उच्च जाति के प्रभावशाली गुट उसके विरुद्ध हो गए थे। कर्पूरी ठाकुर के सन्निकट पतन के बारे में चर्चा का बाजार गरम था।

नीतीश उस दुपहरी में कॉफी हाउस के अंदर एक मेज पर सुरेंद्र किशोर के साथ बैठे थे और कर्पूरी के बारे में हो रही चबड़-चबड़ सुन रहे थे। नीतीश स्वयं कर्पूरी सरकार से बहुत जल्द निराश हो गए लगते थे। उनके विचार में, कर्पूरी सरकार ने जे.पी. आंदोलन के वादे के साथ विश्वासघात किया था, लोहिया के सबको साथ लेकर चलनेवाले

समतावादी घोषणावादी-पत्र से सरकार भटक गई थी। वह एक आलोचक बन गए थे और गोष्ठियों एवं सभाओं में जा-जाकर जोरदार शब्दों में इस बात की चर्चा करने लगे थे कि यह वह छुटकारा नहीं है, जिसके लिए हमने संघर्ष किया था।

उसके बाद जो कुछ हुआ, उसका विवरण किशोर ने मुझे इस तरह दिया, मानो वह घटना अभी-अभी उनकी आँखों के सामने घटी हो : ''मुझे ठीक से याद नहीं, किस बात ने उन्हें इस कदर उकसाया, लेकिन इसका कुछ नाता दूसरी मेज पर हो रही बकवास से अवश्य था, भ्रष्टाचार से था या जातिवाद से था, बता नहीं सकता कि क्या था?'' मैंने नीतीश को अचानक उत्तेजित होते हुए देखा। गुस्सा उनके चेहरे तक आ गया था। उन्होंने मेज पर मुक्का मारा और किसी व्यक्ति विशेष को संबोधित न करते हुए ऐलान किया, ''सत्ता प्राप्त करूँगा, किसी भी तरह से, लेकिन सत्ता लेके अच्छा काम करूँगा।'' उसके बाद वह खड़े हो गए और अपने दुस्साहसपूर्ण वचन को पूरा करने की दिशा में करीब तीस वर्ष तक भटकने के लिए निकल गए।

बहुत कम लोगों को उन दिनों के नीतीश की याद है, जब उन्होंने राजनीति में कदम रखा था। उस व्यक्ति को भी याद नहीं जो एक दिन सरकार में उनका विश्वस्त डिप्टी बनने जा रहा था, बी.जे.पी. के सुशील मोदी। ''ऐसा कुछ याद नहीं, वह उस समय के ज्यादा महत्त्वपूर्ण छात्र नेताओं में शामिल नहीं थे,'' मोदी ने मुझे पटना में उनके पोलो रोड स्थित बँगले में एक बातचीत के दौरान मुझे बताया, ''एक समय वह यूनिवर्सिटी छात्रों की एक पुलिस सूची में थे, जिन छात्रों को निवारक नजरबंदी में लिया जाना जरूरी था। जिस समय पुलिस पार्टी आई थी, नीतीश हमारे साथ थे, लेकिन किसी को मालूम नहीं था कि नीतीश कुमार दिखता कैसा है और इसी कारण वह गिरफ्तार होने से बच गए। हमें पकड़ लिया गया, नीतीश कोई जानी-मानी हस्ती नहीं थे।'' शिवानंद तिवारी जाने-पहचाने थे, नरेंद्र सिंह थे, लालू यादव थे। नीतीश सबसे पीछे खड़े थे और बिहार में सबको पछाड़कर सत्ता पर काबिज होने में सफल हुए। पहले तीनों ने या तो उनकी पार्टी में काम किया या उनकी सरकार में। उस समय उनमें से किसी के पास यह संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि आगे दौड़नेवाला भीड़ में कहीं पीछे की तरफ खड़ा हुआ है।

नीतीश सन् 1966 में, दूर-देहात के एक मुफस्सल क्षेत्र, बख्तियारपुर से पटना आए थे—इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने। उन्हें एक छोटी छात्रवृत्ति मिल गई थी और उनके पिता ने उनके लिए एक भत्ता बाँध दिया था। दोनों मिलाकर करीब 300 रुपए हो जाते थे, जो उन दिनों किसी छात्र के लिए एक बड़ी मासिक रकम थी। वह पंद्रह साल के थे।

उन्होंने पटना साइंस कॉलेज में दाखिला ले लिया और शुरू-शुरू में, कुछ समय के लिए कैंपस से दूर, किंतु कृष्णा लॉज के निकट, स्नातकों के साझा क्वार्टरों में रहे, फिर पटेल छात्रावास में; गंगा के किनारे-किनारे कैम्पस से सटे हुए मुसल्लापुर और सईदपुर के घनी आबादीवाले गंदे इलाके में निजी छात्रों के लिए ऐसे बहुत सारे निवास स्थान थे। शुरू के कुछ महीनों तक नीतीश सुरेंद्र कुमार के छोटे भाई नगेंद्र के साथ एक कमरे में रहते रहे। इसी दौरान सुरेंद्र कुमार के साथ पहली बार उनकी भेंट हुई। सुरेंद्र के छोटे भाई में उन्हें कोई विशेष बात नजर नहीं आई, सिवाय इसके कि वह कमरा साफ-सुथरा रखता था और निर्धारित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पढ़ाई करता था। वह अपने कपड़े बड़े अच्छे ढंग से तह लगाकर रखता था, उनका बिस्तर बहुत साफ रहता था, उनकी चप्पलें दीवार के सहारे लाइन से रखी होती थीं और उनकी किताबें खिड़की की चौखट के सहारे तरतीब से लगी रहती थीं। वह सनलाइट और लाइफबॉय साबुन की टिकिया हॉस्टल के रसोइयों को देने के लिए अपने पास रखते थे, ताकि वे रसोई में घुसने से पहले अपने हाथ-पाँव अच्छी तरह धो लें। वह नीचे जाकर अकसर उनके नाखूनों की जाँच करते थे कि नाखून ठीक से कटे हुए और साफ हैं या नहीं। वह सामान्य स्नानगृह में नहाने से पहले फर्श को रगड़-

रगड़कर साफ करते थे। वहाँ रहनेवालों में शायद वही पहले, एकमात्र व्यक्ति थे, जिसने खोज निकाला कि नेफ्थेलीन की गोलियाँ कॉकरोच आदि को दूर रखती हैं। पटना से दक्षिण-पूर्व की ओर, बख्तियारपुर तक ट्रेन से एक घंटे का सफर था और वह नियमित रूप से वहाँ जाया करते थे, लेकिन वह जरूरत पड़ने पर हाजत-फिराकत के लिए प्रथम श्रेणी विश्राम कक्ष के टॉयलेट का ही इस्तेमाल करते थे। नीतीश कुमार के पास रेलवे मासिक पास हुआ करता था, लेकिन इस पास के आधार पर नीतीश को उस टॉयलेट का इस्तेमाल करने का हक नहीं था, लेकिन उनकी अपनी एक निजी पहुँच थी, क्योंकि उनकी सबसे बड़ी बहन, ऊषा का पति, नीतीश का बहनोई, देवेंद्र प्रसाद सिंह एक रेलवे कर्मचारी था और पटना जंक्शन पर तैनात था। प्रथम श्रेणी की सुविधा के लिए द्वारपाल को उसका नाम बताना ही काफी था।

व्यक्तिगत स्वच्छता के प्रति इस कदर वहमी होने का कारण यह हो सकता है कि उनका लड़कपन बख्तियारपुर में ऐसे माहौल और परिवेश में बीता था, जहाँ चारों तरफ गंदगी का साम्राज्य था और गंदगी के खिलाफ एक अतीव घृणा उनके अवचेतन में बस गई थी; परिवार के वफादार नौकर-चाकरों को अभी तक याद है कि छुटका नीतीश किस तरह हर रोज उन्हें नहाने और सफाई करने के लिए तंग किया करता था। जो लोग नहाने से बचते थे, वह दंडस्वरूप उन पर डिटॉल छिड़क दिया करते थे। वह घर में किसी के भी नाखून एक सप्ताह से अधिक बढ़े हुए नहीं देख सकते थे। वह बराबर नाखूनों की जाँच करते रहते थे। आज भी, जब वह जिलों में दौरे पर जाते हैं या पार्टी का सम्मेलन बुलाते हैं, तो उनका सबसे पहला काम रसोई तथा बावर्चियों की स्वच्छता का मुआयना करना होता है। कागजी हैट और सेलोफेन के दस्ताने पहनता, जिनका रिवाज बिहार में केटरिंग व्यवस्था में कुछ समय पहले ही शुरू हुआ और आवश्यक हो गया है, विशेषकर नीतीश जब मौजूद हों।

सुरेंद्र कुमार बताते हैं कि नीतीश को कभी भी बिना नहाए या गंदे कपड़े पहनकर निकलना पसंद नहीं था और वह कुछ-न-कुछ पढ़ने के लिए हमेशा अपने साथ ले जाते थे। अकसर यह 'दिनमान' या 'धर्मयुग' का नवीनतम अंक होता था; ये दोनों हिंदी में प्रकाशित उस समय की सर्वाधिक प्रभावशाली, सामाजिक-राजनीतिक पत्रिकाएँ थीं। वह बहिर्मुखी कभी नहीं थे। अपने छात्र जीवन में उन्होंने जो गिने-चुने मित्र बनाए, उनके साथ मैत्री लंबे समय तक मजबूत बनी रही : नरेंद्र सिंह (वह नहीं, जो नीतीश सरकार में मंत्री रहे), सुदूर सीमांचल से आए एक मिलनसार राजनीतिज्ञ, जो जीवन भर एक सहयोगी बने रहे और जिन्हें नीतीश ने सन् 2010 में दोबारा मुख्यमंत्री चुने जाने पर बिहार के उच्च जाति आयोग का अच्छे वेतन और सुविधा-संपन्न अध्यक्ष पद देकर पुरस्कृत किया; अरुण सिन्हा, साइंस की कक्षा में उनका एक सभ्य, सुसंस्कृत सहपाठी, जो बाद में एक प्रशंसित एवं पुरस्कार विजेता पत्रकार बना तथा जिसने सन् 2011 में नीतीश कुमार पर एक पुस्तक भी लिखी; सुरेश शेखर, एक अत्यंत प्रतिभाशाली और बिहार में सन् 1967 की स्कूल की अंतिम परीक्षा में उच्चतम स्थान पानेवाला छात्र, जिसने भारतीय रिजर्व बैंक में अधिकारी पद को सुशोभित किया, लेकिन शरीर के कई अंगों द्वारा काम करना बंद कर देने के कारण, जिसका असमय ही निधन हो गया। शेखर और नीतीश एक ही प्री-यूनिवर्सिटी क्लास में थे, लेकिन नीतीश उसे अपनी तुलना में बौद्धिक रूप से उत्कृष्ट मानते थे और उसे—'तेजस्वी मस्तिष्क'... कहते थे। यह शेखर का ही प्रभाव था कि नीतीश ने राम मनोहर लोहिया की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (एम.एस.पी.) के युवा मोर्चा समाजवादी युवजन सभा (एस.वाई.एस.) में शामिल होने का निर्णय किया और अपने सार्वजनिक जीवन पर उठाऊ पुल गिरा दिया। लेकिन उन्होंने शेखर द्वारा उकसाए जाने से पहले ही खुद को लोहियावादी विचारधारा में गोता लगाने के लिए पूरी तरह तैयार कर लिया था।

उनके साथ बातचीत की बैठकें तो कई बार हुईं, लेकिन एक बातचीत के दौरान, नीतीश ने मुझे बताया कि जितने

भी राजनीतिक विचारकों को उन्होंने पढ़ा है या पढ़ने की कोशिश की है, उनमें से लोहिया को वह सबसे अच्छा मानते हैं। ''मार्क्स का 'दास कैपिटल' पूरा पढ़ गए और सर के ऊपर से निकल गया...'' उन्होंने अपनी हथेलियाँ फैला दीं और हँस दिए। स्पष्ट था, अपने ऊपर हँसे, न कि मार्क्स पर। वह शायद कहना चाहते थे कि मार्क्स को वह अच्छी तरह समझ नहीं पाए, लेकिन उन्होंने वास्तव में यह कहा नहीं। ऐसा कहने के बजाय, वह लोहिया की प्रशंसा करने लगे। ''हमारे संदर्भ में और जिस सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि से हम आए हैं, उसके संदर्भ में लोहिया की विचारधारा सर्वाधिक स्वस्थ, सुबोध और तर्कसंगत प्रतीत होती है। वह जाति को समझते थे और सामाजिक-राजनीतिक संबंधों तथा सत्ता के स्वरूप पर उसके मूल प्रभाव की भी समझ रखते थे। मार्क्स में कहीं कास्ट का जिक्र ही नहीं है, अटपटा सा लगा, कास्ट हमारी सबसे बड़ी रियलिटि है...'' वह गांधी का समादर करते थे, नीतीश ने कहा, ''लेकिन किसी राजनीतिक इंजीनियर के रूप में नहीं, बल्कि अधिक बड़े और व्यापक सिद्धांतों के एक दार्शनिक के रूप में।'' 'लोहिया ने समाज और राजनीति को, विशेषकर उत्तर भारतीय संदर्भ में जिस पैनी दृष्टि से देखा-समझा, उसमें लोहिया का मुकाबला करनेवाला कोई नहीं है। जब मैंने उनको पढ़ना शुरू किया, मैं उनका मुरीद हो गया, मैं उनकी पुस्तकें और उनके विनिबंध (अर्थात् मोनोग्राफ) बुक-पोस्ट से मँगाया करता था और बेचैनी से प्रतीक्षा किया करता था, वह देखने और सोचने के नए-नए तरीके प्रेरित करने में सक्षम थे। सच तो यह है कि गांधी को मैं लोहिया के लेखों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह समझ सका, क्योंकि उन्होंने गांधीजी द्वारा अपनाए गए अनेक तरीकों, जैसे कि भजन और रामराज्य की संकल्पना आदि के संदर्भ में विषय एवं परिस्थितियों को विस्तार से समझाया। बात केवल जाति की वास्तविकता की नहीं थी, जो वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका ध्यान स्त्रियों को समझने जैसी बातों पर भी जाता था। आपको पता है, लोहियाजी ने एक बार (जवाहरलाल) नेहरू को क्या कहा था? उन्होंने नेहरू से कहा कि यदि आप भारत की सभी महिलाओं को शौचालय सुविधाएँ मुहैया करा दें, तो वह उनका विरोध करना छोड़ देंगे, वह महिलाओं की समस्याओं को समझने की इतनी पैनी दृष्टि रखते थे।

मैंने उनसे पूछा कि उनका झुकाव कभी कांग्रेस की तरफ क्यों नहीं रहा? क्या उनके मन में इसकी टीस थी कि उनके पिता के साथ उस पार्टी ने बहुत बुरा बर्ताव किया? या कांग्रेस और उसके नेताओं के लिए उनके द्वारा जीवन भर किए गए कार्य का अंत में कोई फल उन्हें नहीं मिला था, इसलिए? नीतीश ने कुछ ऐसा संकेत दिया कि वह अब गड़े मुर्दों को उखाड़ने की दिशा में नहीं जाना चाहेंगे। जो भी थे, उनके अपने ही कारण थे, नीतीश ने कहा। जब उन्होंने अपने इर्द-गिर्द दुनिया को समझना शुरू किया, उस समय तक कांग्रेस अपनी चमक खोने लगी थी, यह ऐसी पार्टी नहीं रह गई थी, जो भर्त्सना से ऊपर हो। ''आँख खोलते ही सदमा दिया इस पार्टी ने, और नेहरू ने। जो पहली न्यूज हमको याद है वह थी कि चीन की फौज ने करारी मात दी, रोज पढ़ते-सुनते थे कि बॉमडिला हार गए, चीन की फौज नेफा में घुस आई और हम कुछ नहीं कर पाए। देश के साथ धोखा हुआ...''

उस समय तक लोहिया भी उदित हो चुके थे। अटल बिहारी वाजपेयी के साथ-साथ लोहिया द्वारा भी नेहरू की भूलों की समीक्षा अत्यंत तीक्ष्ण एवं जोरदार शब्दों में की गई थी। उनके शब्द नीतीश के कानों में गूँजते रहे। लेकिन यह नहीं हो सकता कि नीतीश का कांग्रेस से बहुत जल्द हुआ मोह-भंग किसी बहुत ही व्यक्तिगत विकार से पूरी तरह मुक्ति पाना था; एक छोटी उम्र के लड़के ने बख्तियारपुर में घर में पलते-बढ़ते हुए अपने पिता के साथ हो रहे जिस बर्ताव को देखा था, वही कांग्रेस से उनके मोह-भंग का कारण बना हो।

गंगा नदी इलाहाबाद तथा वाराणसी के बड़े-बड़े घाटों से बहाव के विरुद्ध आते हुए और बंगाल की खाड़ी का हिस्सा बनने के लिए पूर्व की ओर तेजी से जाते हुए एक अक्षांशीय धुरी पर पटना से गुजरती है। वह सड़क जो

पटना से निकलकर बख्तियारपुर की तरफ जाती है—जिस सड़क से हम सन् 2011 के फरवरी माह की एक सुबह हम नीतीश का घर देखने और परिवार से मिलने के लिए गए थे—कुम्हरार के आगे जाती है, जहाँ पाटलिपुत्र, मौर्य साम्राज्य की तबाही के अवशेष, नदी के दक्षिणी तट को स्पर्श करते हुए बिखरे हुए पड़े हैं। यहाँ नदी से निरंतर भरण-पोषण पर निर्भर बस्तियाँ हठपूर्वक बसी हुई हैं, जिन्हें खिलाते रहना अब नदी की क्षमता के बाहर हो गया है। मैंने सारा जीवन इस सड़क का भरपूर उपयोग किया है। उत्तर बिहार में अपने गाँव सिंहवाड़ा जाने के लिए हम इसी रास्ते से जाया करते थे। यह एक लंबा, थकानेवाला भरा रास्ता हुआ करता था, जो मोकाया, बरौनी और दलसिंहसराय का चक्कर लगाते हुए जाता था। इस सफर को पूरा करने में उन दिनों बारह घंटे लगते थे और अब केवल तीन घंटे लगते हैं। हमने दक्षिण जाने के लिए यही रास्ता पकड़ा, बीच में एक कूबड़ जैसी पुलिया को पार करना पड़ता है, जिसे हम 'गिरगिटिया पुल' कहते थे, क्योंकि इसकी शक्ल बाग-बगीचों में पाई जानेवाली छिपकली जैसी थी, जिसकी पूँछ छल्लेदार होती है। इस पुल को पार करके नालंदा, हजारीबाग और राँची के लिए छोटानागपुर घाटों के साथ-साथ घूमते हुए जाना होता था। मेरी मानें तो यह सड़क भूखा मार देती है।

हम पटना से अधिक दूर नहीं और बख्तियारपुर के आस-पास ही थे, जहाँ हमें खानपान इत्यादि की दुकानों का एक व्यस्त झुरमुट दिखाई दिया। चाय और मिठाइयाँ, गाड़ियों के अतिरिक्त पुरजे और मरम्मत का काम, रजाइयाँ और गद्दे, कच्ची तंबाकू के बंडल, मशहूर शराब की बोतलों में दोबारा भरी हुई देशी शराब—'नारंगी', 'जमुनिया', चौथाई कीमत में दुगुना नशा—जाल से अभी-अभी निकाली गई घबराई मछलियों का ढेर, विविध रंगों की छटा बिखेरती सब्जियाँ, ताजा कटे बकरों के साफ किए हुए अस्थि-पिंजर हुकों पर उलटे लटके हुए, सड़क किनारे पेशाब की बू से भरी नालियाँ, मक्खियों और मधुमक्खियों के उड़नदस्ते, दयालु और आक्रामक, किसी रौजा (समाधि या मकबरा) की ग्रिल के चारों ओर जमा लोगों की भीड़—इसे 'कच्ची दरगाह' कहा जाता है, जो किसी पीर की पवित्र समाधि है, जिनके बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं है—कोई मखदूम बाबा...इतना ही परिचय काफी है; मकबरे के ऊपर तीन गुंबद बने हुए हैं और आपके अंदर बाबा का आशीष पाने की भावना जाग जाती है।

कच्ची दरगाह कभी शिल्पकारों की सिकुड़ी हुई बस्ती का स्टेशन भी था, जिनका भरण-पोषण उस महान नदी पर निर्भर करता था : नाव बनानेवाले, हट्टे-कट्टे, कुशल कारीगर जो पेड़ की पूरी लंबी बल्ली को मोड़ सकते थे, उसे धनुष जैसा आकार दे सकते थे और उन्हें लोहे की पट्टियों से बाँधकर पानी पर सवार होने लायक बना सकते थे और यह सारा काम वे अधिकतर नंगे हाथों किया करते थे। अपने काम के लिए मशहूर होने का दावा तो वे कर सकते हैं आज भी, लेकिन भरपेट खाना मिलने का दावा नहीं कर सकते। उनका एक इतिहास था, लेकिन स्पष्टतया भविष्य की झोली में, उनके लिए बहुत अधिक नहीं था। उनको पुरखों से विरासत में विशिष्ट ज्ञान की लकीर एक प्राचीन वंश-परंपरा तक ले जाती है—वे उस कबीले के बचे हुए लोग थे, जिन्होंने कुछेक सदी ईसा पूर्व मौर्य सम्राटों के लिए पानी पर चलने-योग्य जहाजों का निर्माण किया था। उनके ग्राहकों में एक उल्लेखनीय समकालीन भी था। जब गेट्स फाउंडेशन के श्रीमान बिल गेट्स सन् 2011 में गंगा नदी की घाटी से लगे क्षेत्रों में स्वास्थ्य परियोजनाओं का सर्वेक्षण करने के लिए पधारे, उन्होंने खगड़िया के निकट एक कच्ची दरगाह नौका में बैठकर नदी को पार किया। ''लेकिन वह सिर्फ एक है, सिर्फ एक काफी नहीं है,'' बचे-खुचे कबीले के सबसे वृद्ध सदस्य शगुन ने हमें बताया, ''जब मैं बच्चा था, मैं नाव बनाने में अपने पिता और चाचाओं की मदद किया करता था और हम मिलकर एक साल में पचास, कभी-कभी साठ नाव बना लेते थे। नाव बनाने के प्रस्ताव फरक्का और अयोध्या से गंडक और सोन तथा यमुना पर नौका-विहार करनेवालों से आते थे, लेकिन नदी पर नाव की माँग अब नहीं रही, उस तरह की नाव की तो बिलकुल नहीं, जैसी नाव हम बनाते हैं।''

जीवन भर लकड़ी चीरते और हथौड़ा चलाने के कठोर परिश्रम से शगुन की पसलियाँ खाल से चिपक गई थीं। उसे अपनी उम्र का कुछ स्पष्ट अनुमान नहीं था, लेकिन वह पचहत्तर के आस-पास जरूर रहा होगा; उसे अपने लड़कपन के वे दिन याद आ रहे थे, जब व्यापारिक वस्तुओं से भरी हुई और 'गोरा लोग' द्वारा खेई जा रही नावें कानपुर या उसके भी आगे बहाव के विरुद्ध और कलकत्ता के बीच नदी में एक ओर से दूसरी ओर आती-जाती रहती थीं। ''उनमें से कई नावें तो यहीं की थीं, हमने बनाई थीं इसी जगह, जहाँ आप खड़े हैं,'' शगुन ने बताया, ''मुझे गोरा लोग की याद है।'' लेकिन वह सोच-सोचकर अपने समय से पहले की भाषा बोल रहा था। ''बड़े-बड़े राजाओं और व्यापारियों तथा घुमक्कड़ों ने इन किनारों से नावें ली हैं, मौर्य राजाओं ने, ह्येन त्सेंग ने, जब उसे वैशाली की ओर जाने के लिए नदी पार करके उत्तरी तट पर जाना था, महान् बादशाह शेरशाह सूरी, अंग्रेज साहिबान, बड़े-बड़े लोग आते थे, कच्ची दरगाह की नौका लेने...'' शगुन अब वैसी नौकाएँ नहीं बनाता है, जैसी वे चाहते थे, हालाँकि वह बना सकता है, उसने कसम खाकर कहा, ''आप मुझे कोई आर्डर और पेशगी दिला दें और आज से छह महीने बाद आएँ, मैं आपको अपने हाथों से बनी ऐसी खूबसूरत नाव दूँगा, जो मशीनों से भी नहीं बन सकती।'' लेकिन माँग खत्म हो गई थी। शगुन ने शायद कुछ लोगों की एक टीम बनाने की भी कोशिश की होगी, जो एक बड़ी नाव बनाने में सहयोग करते। ''एक विशाल नौका, सर'' उसने खुशी से चीखते हुए कहा, ऐसी संभावना से ही उसकी आँखों में चमक आ गई, ''एक बड़ी चीज जिसे बनाने में कई सप्ताह लगेंगे और उसे धक्का देकर पानी में उतारने के लिए भी बहुत आदमियों की जरूरत होगी।'' पर, ऐसा कुछ होने नहीं जा रहा था और शगुन यह बात समझता था। कच्ची दरगाह की बड़ी नौकाओं में से आखिरी नौका उसकी धुँधलाई आँखों के सामने पड़ी थी। वह इतने भर से अपने-आपको भाग्यशाली समझ रहा था कि उसके पास छोटी नौकाओं का निर्माण करने के करीब 20,000/- रुपए के ऑर्डर थे, जिन्हें बनाने में छह महीने का समय लगा और इस रकम में से उसके लिए और उसके कर्मी दल के लिए मजूरी तथा कारीगरी का मूल्य चुकाने हेतु 5000/- रुपए बचे। उसके बेटे और भतीजों ने नाव बनाने से बेहतर कोई काम-धंधा करने का फैसला किया; वे छोटा-मोटा खुदरा व्यवसाय करने लगे, एक मौसम में बने-बनाए कपड़े बेचना और दूसरे मौसम में चीन में बने छोटे-मोटे गहने बेचने का काम करना, उनकी कमाई शगुन की कमाई से कहीं अधिक थी। काम मिलने के इंतजार में निष्क्रिय पड़े औजारों, छिली हुई लकड़ी के ढेर और कोयले की ठंडी पड़ी भट्ठी के बीच शगुन अकेला रह गया था और अपने शिल्प को पूरी तरह मिटने से बचाने की बौखलाहट में हाथ-पैर मार रहा था।

नदी तट से सड़क के पार कृषि-भूमि का प्रचुर हरित क्षेत्र था। ताड़ के बड़े-बड़े पेड़ों का घना जंगल उगा हुआ था; ताड़ी पीनेवालों की पीढ़ियाँ उन पर निर्भर करती हैं। वहाँ की मिट्टी बहुत उर्वर है, हर मौसम में भरपूर फसल देती है, जाड़ों में सैकड़ों टन टमाटर और फूलगोभी निकलता है, गरमियों के मौसम में लौकी, कद्दू आदि की बढ़िया पैदावार होती है; आलू, चुकंदर, मूली, हर प्रकार की साग-सब्जी इन भागों में पैदा होती है। लेकिन प्रकृति की उदारता के दावेदार इतने अधिक थे कि प्रति व्यक्ति आय बहुत कम थी। सड़क के साथ-साथ मिट्टी और टट्ठर की बनी झोंपड़ियाँ थीं जो कभी भी गिर सकती थीं, ईंधन के लिए आस-पास से बीनी हुई लकड़ी और गोबर के कंडे थे, खान-पान वही पुराने ढर्रे का था और कुपोषण अत्यधिक था, बिजली का हाल गरीबों की बस्ती में कभी गलती से चले आनेवाले किसी महान् राहगीर जैसा था, शौचालय कहीं नजर नहीं आते थे। पूरा इलाका बिहार में अनेक क्षेत्रों की तरह गंदगी और कीचड़ से भरा एक खुला विस्तृत मैदान था। लकड़ी और कंडों का धुआँ तथा मानव और पशु के मल-मूत्र की बू कभी पीछा नहीं छोड़ती थी, हर समय स्वागत के लिए तैयार रहती थी। इस गंध से मेरा परिचय बचपन से रहा है।

बख्तियारपुर की रिहाइश कच्ची दरगाह से बहुत अलग नहीं थी, सिवाय इसके कि नदी बिलकुल पास में नहीं थी और शोर-शराबे में दौड़-धूप करनेवाले बहुत अधिक लोग थे। जिस सड़क को राष्ट्रीय राजमार्ग 30 कहा जाता है, वह सड़क एक स्थान पर पहुँचकर, सड़क के दोनों और बेतरतीब बने छोटे-छोटे डिब्बीनुमा मकानों की भरमार की वजह से एक तंग गली जैसी लगने लगती है, क्योंकि बीच में कहीं जरा भी जगह नहीं छोड़ी गई है। सड़क के दोनों तरफ काम-धंधा करनेवाली दुकानों की कतारों का कब्जा है, छोटे लुहारों से लेकर किराए पर टेंट, मवेशियों का चारा सबकुछ उपलब्ध है, बिजली और टेलीफोन की तारों का जाल सिर के ऊपर लापरवाही से लटका रहता है, केबल और सैटलाइट नेटवर्क की आपस में होड़ लगी नजर आती है, सड़क के आर-पार, एक बालकनी से दूसरी बालकनी तक तारों या रस्सियों पर कपड़े-ही-कपड़े लटके रहते हैं। कुछ पर से कपड़े के बैनर नीचे लटके रहते हैं, बिक्री तथा अन्य सुविधाओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करते हुए—'हकीम उस्मानी, हज तूफानी'; 'मर्द की शान, डोरा जाँघिया और बनियान'; 'टुल्लु पंप, दमदार पंप'; 'दर्द हो जिस्मानी, तो तेल लगाओ रूहानी।'

हम उस टूटी-फूटी, रंग-बिरंगी भूलभुलैया में नीतीश कुमार का पैतृक घर देखने से वंचित रह गए होते, वह घर इतना साधारण है। जरा कल्पना करें कि बंबई की मंजिल-पर-मंजिल चढ़ी हुई किसी खस्ताहाल चॉल के बीच फँसे एक मकान की, जिसकी जर्जर होती दीवारों की बीसियों साल से मरम्मत तक नहीं कराई गई है, जिसकी छत कच्चे टाइलों अर्थात् खपरैल है, और सोचें कि जिसके नीचे लकड़ी का एक जीर्ण-शीर्ण तख्ता दो खिड़कियों को प्लास्टिक की शीट के सहारे ऊपर तक थामे हुए है; यह इस कदर कमजोर और खस्ता हो चुका है कि आप सोचेंगे कि छूते ही कहीं यह खिड़कियों के साथ भरभराकर गिर न पड़े। इतना ही नहीं, और भी नीचे जाकर लगे लोहे के उस कमजोर दरवाजे की भी कल्पना करें, जो एकदम खुला पड़ा है और जिसकी पहरेदारी सर्दी से सिकुड़ा पड़ा एक दुबला-पतला कुत्ता कर रहा है। आप कैसे कल्पना कर सकते हैं कि यह पैतृक घर किसी ऐसे मुख्यमंत्री का होगा, जिसने अपने लिए बहुत नाम कमाया है? उसके ऊपर कोई वी.वी.आई.पी. तोरण नहीं था, उसकी ऐसी दशा की कोई शिकायत नहीं थी, न उसके बारे में कोई चर्चा। आप उसके पास से गुजर जाएँ, उसकी ओर देखें भी नहीं, तब भी आपको कोई दोष नहीं देगा, क्योंकि पहचान की किसी निशानी के बिना उसकी उपेक्षा करते हुए गुजर जाना स्वाभाविक सी बात है। जिसने उस घर का पता दिया, वह एक अकेला संतरी था, पालथी मारे, दीवार के सहारे बैठा हुआ, राइफल उसने जंघाओं के बीच, खड़ी मुद्रा में फँसाई हुई थी और लगातार आते-जाते वाहनों से निकलते डीजल का धुआँ तथा उठती धूल का मिश्रण उसकी साँसों के साथ दोस्ती निभा रहा था। सड़क किनारे की नीरस गहमागहमी के बीच, इसी मकान में, रामलखन और परमेश्वरी देवी ने 1 मार्च, 1951 को अपने पुत्र नीतीश कुमार को जन्म दिया था।

कुत्ता उठकर तेजी से भाग गया, संतरी दीवार से पीठ लगाए ऊँघता रहा, लोहे का खस्ताहाल दरवाजा खुला हुआ था, जिसके आगे सीढ़ियाँ थीं, जो ईंटों के एक छोटे आँगन में उतार देती हैं। आँगन इतना छोटा कि उसकी चौड़ाई में मुश्किल से एक कमरा समा सके और पीछे की तरफ घुमावदार तंग सीढ़ियों के लिए जगह निकल सके। इसके एक ओर ध्वजदंड (झंडा फहराने का डंडा) सीमेंट में गड़ा हुआ था, जो सबसे ऊपर के फर्श से भी ऊँचा निकला हुआ था। उस पर झंडा फहराने की डोरी नीचे लटक रही थी, लेकिन झंडा नहीं था। इसके पास ही एक घुँघराला चंपा वृक्ष था, जिसकी सिर्फ डंडियाँ निकली हुई थीं, पुष्पविहीन। शायद अभी उसके खिलने का समय नहीं था। आँगन के दूसरे कोने में एक गोल चबूतरा था, जिस पर एक हैंडपंप लगा था। रसोई से सुबह निकले कुछ बरतन धुलने के लिए वहाँ पड़े हुए थे। मैले-कुचैले कपड़ों का ढेर लगा हुआ था; नाड़ेवाले जाँघिए और छेदीली बनियानें शायद उन कामचलाऊ कोठरियों से निकलकर आई थीं, जहाँ दो और पुलिस गार्ड सोए हुए थे, दीवार के सहारे

बैठकर ऊँघने की उनकी शिफ्ट शायद समाप्त हो गई थी।

एक आयताकार मेज के एक किनारे के पीछे एक प्रसन्नमुख वृद्ध आदमी बैठा हुआ था, मेज की ऊँचाई इतनी थी कि टेबल-टेनिस खेलने के काम आ सकती थी, लेकिन मेज का टॉप कई असमतल तख्तों का बना हुआ था, जिनमें दीमक लग गई थी और जोड़ों में दरारें निकल आई थीं—दरवाजों और खिड़कियों का भी यही हाल था। मुंडी इधर-उधर घुमानेवाला एक पंखा मजबूती से मेज पर रखा हुआ था और एक लंबी तार, जिस पर धूल की काली पर्त जमी हुई थी, भूमि तल पर एकमात्र कमरे की बंद खिड़की में से अंदर जा रहा था और वहीं अंदर किसी प्लग में लगा हुआ था। उस कमरे की खिड़की से एक और तार बाहर खींचा हुआ था, जिसे अंदर की बदरंग छत में लगे हुक में लपेटकर, एक सी.एफ.एल. बल्ब जलाने के लिए लटकाया हुआ था। उस मेज और दीवार में ताक के बीच केवल एक खाट की जगह बची थी, जो उसने घेर ली थी।

टेबल के किनारे बैठा वृद्ध आदमी मुसकराता रहा। उसने सफेद कुरता-पाजामा पहन रखा था, जो अब उतना सफेद नहीं था, लेकिन नील के धब्बों के बीच कहीं-कहीं सफेदी जरूर चमक रही थी। उसकी चप्पलें घिस चुकी थीं, उसके काले-सफेद खिचड़ी बाल पीछे की ओर कंघी किए हुए थे; वह शायद अभी-अभी नहाकर, तंग सीढ़ियों से नीचे उतरा ही था मेज के पीछे उस समय तक बैठे रहने के लिए, जब तक कि बख्तियारपुर सोने की तैयारी न करने लगे। ''कहिए'', उसने कहा, ''क्या सेवा करें आपकी?'' फिर, सड़क पर एक लड़के को आवाज लगाकर कहा, ''आई बाबू, जरा चाय-मिठाई लाओ तो...'' वह आदमी था—सुशील कुमार, आयुर्वेदिक औषधि की पारिवारिक गद्दी का उत्तराधिकारी।

चाय आने तक वह कुछ नहीं बोले। चाय तार के बने एक छींके में पतले-पतले गिलासों में आई थी। मिठाई ढाक पत्तों के बने दोनो में थी; ये नारंगी रंग की गरमागरम इमरतियाँ थीं, जिन्हें देखते ही खाने के लिए जीभ ललक जाए। सतीश ने अभी भी कुछ नहीं कहा, सिवाय इसके, ''खाइए, खाइए और क्या सेवा करें आपकी?'' उनका मुसकराना, हँसना जारी रहा। उनके चेहरे पर सौम्यता थी। उन्होंने इस बारे में कोई बात नहीं की कि उनका भाई बचपन में कैसा था। उसकी किशोरावस्था कैसी थी? क्या उस समय की कुछ यादें, कोई अंदरूनी बात वह बताना चाहेंगे? क्या उसका राजनीति में जाना परिवार को सहन था? उसके मुख्यमंत्री बन जाने पर उनको कैसा लगा? ''खाइए, खाइए, आने दीजिए...''

किसी को आना था, शायद उसके आने का ही इंतजार था, पर हमें नहीं पता था कि कौन आनेवाला है और उसके आने तक सुशील कुमार ने विनम्रता से मिठाई खाने का आग्रह करने के अलावा कुछ भी नहीं कहा। फिलहाल, सोए हुए सिपाहियों में से एक बिस्तर से निकला और अपनी जंघाओं के बीच खुजाता हुआ, अपने पाजामे को उठाकर बाँधता हुआ तथा अपनी बनियान को नीचे खींचकर ठीक करता हुआ उस बरामदे की ओर आया, जहाँ हम बैठे हुए थे। खाट के पास आकर वह थोड़ा इधर-उधर हुआ और फिर अपने हिसाब से सही जगह में बैठ गया। ''बहुत अच्छे लोग हैं भाई, क्या पूछिएगा?...'' उसने वहाँ से बात पकड़ते हुए पूछा, जहाँ से सतीश कुमार ने बात शुरू की थी। ''और लोग आएँगे...'' सतीश कुमार ने हमें पुलिसवाले की दखलअंदाजी की उपेक्षा करने का इशारा करते हुए कहा, ''और लोग हैं, खाइए न, लीजिए, ठंडा हो जाएगा...''

लोहे के उस बंद दरवाजे के पास दो लोग तशरीफ लाते हुए दिखे, एक लुंगी में था, दूसरे ने पाजामा पहना हुआ था और दोनों ने शॉल लपेटा हुआ था। ''लीजिए'', सतीश कुमार ने राहत की साँस ली, ''अब पूछ लीजिए जो पूछना है...'' मुन्नाजी के साथ एक और व्यक्ति था, जिसे बिहार की भाषा में 'लटक' कहते हैं। लुंगी पहनकर आया पिछलग्गू चाहे जो हो, मुन्नाजी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं, उन दोनों को आते हुए देखकर सुशील कुमार

ने धीरे से कहा, ''वह आपको बतानेवाली हर बात बताएँगे, नीतीशजी के सबसे पुराने मित्र हैं। मेरे मुँह से अच्छा नहीं लगेगा, शोभा नहीं देता...'' तब पता चला कि सतीश कुमार सुबह से इतने हठी क्यों बने हुए थे।

उन्होंने अपने छोटे से परिसर का मुआयना कराने में कोई संकोच नहीं किया। उन्होंने सबसे नीचे का कमरा खोला, जिसमें दो खाटें थीं, एक कोने में एक मेज थी और बिस्तरे एक के ऊपर एक तह लगाकर रखे हुए थे और उनके ऊपर एक मच्छरदानी पड़ी हुई थी। सर्पिलाकार सीढ़ी, अर्थात् जीना इतना सँकरा था कि दो व्यक्ति साथ-साथ नहीं चढ़ सकते थे; सतीश कुमार पीछे-पीछे आ रहे थे और घुमावदार सीढ़ियों पर ध्यान से चढ़ने की बराबर हिदायत दे रहे थे। बालकनी, जिस पर लकड़ी के पतले डंडों का गुलाईदार जंगला लगा था, बंद की हुई थी। वहाँ एक कमरा था—नीतीशजी का कमरा, उन्होंने कहा, जिसमें अब कोई नहीं रहता है। इसे एक स्टोर में बदल दिया गया था, इस पर ताला लगा था, शायद अब यह ऐसी हालत में नहीं था कि इसे खोलकर दिखाया जाए। हम रसोई के अंदर कभी नहीं गए; रूढ़िवादी घरों में आकस्मिक आगंतुकों को रसोई के अंदर कभी नहीं बुलाया जाता है, जहाँ भोजन पकता है उस स्थान को प्रार्थना कक्ष के समान ही पवित्र माना जाता है।

मुन्नाजी को जिस अपेक्षा से बुलाया गया था और उन्हें 'महत्त्वपूर्ण स्रोत' बतलाया गया था, उस अपेक्षा को वह उस हद तक पूरा नहीं कर सके जैसी हमें उम्मीद थी। वह निश्चय ही नीतीश के सबसे पुराने मित्र थे, संभवत: उनके पास नीतीश से जुड़ी अनेक स्मृतियों का खजाना था, नीतीश की अंतर्दृष्टि के अनेक सुराग उनके पास हो सकते थे। लेकिन वे या तो उनके ध्यान से निकल गए थे या उनको ठीक से जोड़ नहीं पा रहे थे या स्पष्ट करने में अक्षम थे। या हो सकता है, वह इस बात का भी खयाल रख रहे हों कि बचपन की यारी-दोस्ती के अंतरंग किस्सों का उनके घनिष्ठ मित्र श्री नीतीश कुमार, माननीय मुख्यमंत्री...की नई छवि, नए व्यक्तित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। उन्होंने जितना बताया, सागर में एक बूँद के बराबर था और वह बराबर सतीश कुमार की ओर देखे जाते थे, मानो सावधानी बरतने के नाम पर वह उनकी मंजूरी से बड़ी चतुराई के साथ गलतियाँ कर रहे हैं।

''कुछ याद है बचपन का नीतीशजी के साथ?''

''बहुत कुछ याद है।''

''कुछ बताइए।''

''क्या बताएँ?''

''क्या किया करते जब छात्र थे आप लोग?''

''बहुत मजा करते थे।''

''कुछ खास याद?''

''नहीं, खास कुछ नहीं, ऐसे ही बालक लोग, संगी-साथी,...अब यहाँ, ऐसा जगह में क्या होगा?''

''कहाँ मिले आप दोनों?''

''स्कूल में, घर में, सब जगह, मिलते ही रहते थे, बचपन से ही साथ था, साथ रहते थे। ऊ पढ़-लिख लिए, हम लोग रह गए, छोटा-मोटा बिजनेस करते हैं।''

''कोई खास आदत या तरीका? कुछ तो याद होगा?''

''यही सब, साफ-सफाई रखना, कभी बहनों का किताब-कॉपी छुपा देना, नौकरों की गंदगी के लिए डाँट-डपट करना, यही सब। चौक पर बालूशाही और भूजा खाने जाते थे कभी-कभी, बस और क्या होगा यहाँ।''

''कभी लगा नीतीशजी मुख्यमंत्री बन जाएँगे?''

''ओह, क्या कहते हैं हमेशा, हमेशा, देखकर ही लगता था बहुत आगे जाएँगे।''

मुन्नाजी के लिए आज यह कहना उनके साथी द्वारा बाद में हासिल की गई उपलब्धियों के प्रति अन्याय करने के समान होगा कि नीतीश को देखकर ऐसा लगता नहीं था कि बख्तियारपुर छोड़कर वह अन्यत्र कहीं जा सकता है। ऐसा कैसे हो सकता है कि बिहार का भावी मुख्यमंत्री, बिलकुल उनके, अर्थात् मुन्नाजी सरीखा ही एक लड़का रहा हो और बख्तियारपुर के गणेश हाईस्कूल में एक ही बेंच पर साथ बैठकर स्लेट रगड़ता रहा हो? और यदि ऐसा था, तब भी उस धारणा पर एक कूची फेरना और स्मृति की जादुई फोटोशॉप में उस पर ऊँची कल्पनाओं के चित्र ऊपर से लगाना आवश्यक हो गया लगता था। क्या नीतीश कभी सिलवट पड़ा निक्कर और रबड़ की चप्पलें पहनकर स्कूल गए? बेशक गए होंगे। मगर उस बात को दिमाग से निकाल दें यदि आप मुन्नाजी हैं; वह केवल उसी नीतीश को याद कर सकते हैं, जो कलफ लगा, प्रेस किया हुआ कुरता-पाजामा पहनता है, बड़ी-बड़ी जगहों पर जाता है, यद्यपि वे दोनों, हाथों में हाथ डाले, पाँव तले धूल को थपड़ियाते हुए बख्तियारपुर में गणेश हाईस्कूल के गेट तक जाया करते थे।

बिहार में समस्या यही है कि महत्त्वपूर्ण समकालीन शख्सियतों के जीवन के बारे में लिखा हुआ मुश्किल से मिलता है। नेहरू की पीढ़ी शायद अंतिम पीढ़ी थी, जिसने लिखने और पढ़ने तथा उत्तर देने की परंपरा का निर्वाह किया और अपने युग की विशेष घटनाओं एवं व्याख्यानों का दर्ज किया हुआ रिकॉर्ड पीछे छोड़ा। भारत के तेरह प्रधानमंत्रियों में से केवल एक ने संस्मरण लिखने का कष्ट उठाया और वह भी संयोग से अल्पकालिक प्रधानमंत्री बने आई.के. गुजराल ने। गणतंत्र के राष्ट्रपतियों की एक पूरी पंक्ति राष्ट्रपति भवन से जा चुकी है—कुछ तो संसार छोड़कर भी चले गए हैं—लेकिन किसी ने भी ऐसा कुछ लिखकर हमारी जानकारी के लिए नहीं छोड़ा है, जिससे पता चले कि वहाँ क्या-क्या होता है और किस तरह होता है। यह तो तब है, जब उस अतिशय खर्चीले महल का सारा खर्च करदाताओं की जेब से जाता है।

वे भाषणों के भारी-भारी खंड पुस्तक रूप में प्रकाशित कराते हैं, जिनमें से अधिकतर भाषण पहले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखे गए होते हैं। वे अपने लिए संतों जैसी जीवनियों के लेखन को बढ़ावा देते हैं और चाहते हैं कि लोग उनके बारे में लिखें तथा उनको समर्पित करते हुए लिखें। लालकृष्ण आडवाणी और जसवंत सिंह समकालीन अपवाद हैं, दोनों ही बी.जे.पी. के हैं। उन्होंने बहुत लिखा है और विवादात्मक रूप से लिखा है। उन्होंने निर्णयन-प्रक्रिया के पहलुओं पर प्रतिकूल दृष्टि डाली है। उन्होंने घटना-क्रम को जिस तरह पढ़ा और प्रस्तुत किया है, उसने बहस को मशाल देने का काम किया है। उनका लिखा इतिहास का हिस्सा बनेगा। लेकिन अधिकतर ऐसा होता है कि हमारे राजनेताओं की कृतियों और उनके संसार को धुएँ के बादल में लटकने के लिए छोड़ दिया जाता है। इससे संशय की धारा फूट सकती है, अफवाह निकलेगी और फैलेगी, तीर-तुक्के छूटेंगे, विश्वस्त सूत्रों को बेनामी प्रचार करने का काम सौंपा जाएगा, स्वतंत्र पत्रकार ऐसे-ऐसे किस्से गढ़कर सुनाएँगे, जिन्हें कोई अस्वीकार न कर सके, लेकिन कोई भी उनकी कभी तसदीक नहीं करेगा। जाँच के विरुद्ध कवच चढ़ाए, एक अस्पष्ट तसवीर प्रस्तुत की जाती है, जिससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। नीतीश कुमार और लालू यादव क्यों झगड़े और उनका रिश्ता कब और किस घड़ी में टूटा, इस बारे में एक नहीं, अनेक विवरण पेश किए जाएँगे। आप एक विवरण को पकड़ लें या कई विवरणों में से कुछ को ले सकते हैं; वे सभी तथ्यात्मक हो सकते हैं, किंतु वे सब मिलकर निष्कर्षत: सच्चाई तक नहीं पहुँच सकते।

बिहार सरकार के भद्दे तरीके से रखे गए अभिलेखों तथा विधानसभा में हुई बहसों के कुछ अंशों के अलावा कागज का एक टुकड़ा तक मुझे ऐसा नहीं मिला, जिस पर मैं भरोसा कर सकता जब सन् 2000 में मैंने लालू यादव की जीवनी लिखी थी। सुने-सुनाए और जुबानी किस्से-कहानियों को ही आधार बनाया जा सकता था। मेरी नोट-

बुक्स में जो कुछ दर्ज था, उसका अधिकांश हिस्सा मैंने अविश्वसनीय तथा बेकार पाया। वह सबकुछ जुबानी जमा खर्च था और उसके कुछ चुनिंदा अंश ही सारगर्भित माने जा सकते थे। जाओ और हवाओं से पूछो, पहाड़ों का हवाला दो। लोग खबर चला देते हैं और फिर उसकी जिम्मेदारी ओढ़ना नहीं चाहते। लोग बहकाते हैं, लोग बातों को गलत ढंग से पेश करते हैं, लोग झूठ बोलते हैं, लोग आपको अधूरा सच बताते हैं। लोग याददाश्त के साथ जान-अनजान बनने का नाटक खेलते हैं। इसे बदली हुई या बदलती निष्ठाओं के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाता है? इसको ऐसा रंग दिया जाता है, जिससे वर्तमान प्रयोजन सिद्ध हो सके या विगत के पूर्वग्रहों को पुनः उभारा जा सके। कभी-कभी सिर्फ याद न रख पाने के कारण भी याद करने में गलती हो सकती है। जब एक आदमी की बात दूसरे आदमी की बात से मेल नहीं खाती है, बल्कि उसके विरुद्ध चली जाती है, तो सच्चाई पकड़ के बाहर जाने लगती है। आपकी दर्ज टिप्पणियाँ आपस में झगड़ने लगती हैं, वे एक ही घटना के बारे में आपको भिन्न-भिन्न बातें बताती हैं और यह भी कि उनसे किसने क्या अर्थ निकाला। पटना यूनिवर्सिटी में नीतीश कुमार के एक समकालीन थे—शंभू श्रीवास्तव, जो बाद में जॉर्ज फर्नांडिस के एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी बने; शंभू श्रीवास्तव ने मुझे बताया कि नीतीश कुमार सन् 1995 के विधानसभा चुनावों में 300 विधानसभा सीटों में से मात्र सात सीटें हासिल करने के बाद लालू यादव के साथ शांति समझौता करना चाहते थे। ''नीतीश बहुत निराश और दु:खी थे,'' श्रीवास्तव ने कहा, ''वह जॉर्ज साहिब के पास आए और कहा कि उन्हें लालू से समझौता कर लेना चाहिए, अन्यथा आगे कोई आशा नहीं बची है।'' जॉर्ज साहिब ने कहा, ''बिलकुल नहीं।'' नीतीश का बयान इसके बिलकुल विपरीत है : यह जॉर्ज ही थे, जो मेल-मिलाप करना चाहते थे, क्योंकि उनके विचार में लालू अजेय था, मैंने ही दृढ़ता के साथ इनकार कर दिया, ''जब एक बार हमने अपना रास्ता अलग कर लिया, फिर लालू के पास वापस जाने का कोई सवाल ही नहीं उठता है, यह एक बात एकदम स्पष्ट थी, इस सवाल पर मेरे मन में कभी भी कोई हिचक नहीं थी।'' नीतीश के बख्तियारपुर स्थित घर के आँगन में इसी तरह की परस्पर विरोधी सच्चाइयाँ सामने आईं। मुन्नाजी ने कहा कि लालू यादव मुख्यमंत्री बन जाने पर जब कभी उधर से गुजरते थे, तो बख्तियारपुर के घर में अकसर मिलने आ जाया करते थे। हर बार वह इस घर की दशा पर अफसोस जताते थे और इसका जीर्णोद्धार कराने का वादा करके जाते थे, कहते थे कि मार्बल का फ्लोर होगा, लकड़ी का काम नए सिरे से होगा, दरवाजा बहुत अच्छा लगवा दिया जाएगा, लेकिन वैसा कभी हुआ नहीं। लालूजी आते रहे और जाते रहे, परंतु उन्होंने अपना वादा कभी पूरा नहीं किया। सतीश कुमार ने असहमति में धीरे से अपना सिर हिलाया, जो इशारा था कि मुन्नाजी अपने-आपको सही कर लें। उन्होंने कहा कि उन्हें कुछ याद नहीं है कि लालू ने कभी ऐसा कुछ कहा हो। वह प्राय: आया करते थे, सच है, लेकिन वह एक तूफान की तरह आते थे, और उसी तरह चले जाते थे, उन सब बातों के लिए समय कहाँ होता था? कौन था जो इस बात की तसदीक करता कि सच क्या है?

सच्चाई यह थी कि घर की हालत जैसी थी वैसी ही रही, कहीं कोई मरम्मत नहीं हुई थी। और जहाँ तक नीतीश का संबंध है, लालू ने घर की मरम्मत कराने का कोई वचन दिया हो, या न दिया हो, या वचन देकर भी पूरा न किया हो, लालू से कोई एहसान लेने से नीतीश का कुछ भला नहीं होता। घर को चमकाकर रखना कभी उनके नाम और उनकी छवि के अनुकूल नहीं बैठता। वह अपनी छवि जैसी बनाए रखना और जतलाना चाहते हैं, उसे ध्यान में रखते हुए पैतृक घर को जीर्ण-शीर्ण स्थिति में रहने देना ही उपयुक्त था। वास्तव में, वह इस मकान को किसी समय स्वेच्छा से गिरा देने के हक में थे; एन.एच. 30 को चार सड़कोंवाला मार्ग बनाने के लिए विस्तृत करने की योजना को मंजूरी मिल गई थी, इसलिए सड़क किनारे की जमीन-जायदाद को हटाना जरूरी था। लेकिन उस परियोजना पर काम चालू होना अभी बाकी है। जल्दी शुरू हो जाएगा। नीतीश ने अपने पैतृक घर को गिरा देने के कागजात पर

दस्तखत कर दिए हैं।

बख्तियारपुर से प्रस्थान करने पर हम राजमार्ग से हटकर एक उपमार्ग की ओर मुड़ गए और अर्ध-शहरी उथल-पुथल से बचते हुए हमने एक टेढ़ा-मेढ़ा देहाती रास्ता पकड़ लिया, जो नीतीश के जन्मजात गाँव, कल्याणबीघा की ओर जाता था। भूमि बहुत समृद्ध थी, यद्यपि भूमि की देख-भाल करनेवाले समृद्ध नहीं थे। अधिकतर घर-मकान मिट्टी और छप्पर के थे। सैटलाइट टेलीविजन और मोबाइल फोन की प्रचुरता तो थी, लेकिन बिजली का नितांत अभाव था। डीजल जैनरेटर सेट काला धुआँ उगलते रहते थे और काले धुएँ के बादल आकाश में छितराते रहते थे। उनसे घरों को बिजली मिलती थी और खेतों की सिंचाई के पंप भी उनसे चलते थे। हमें कोई उद्योग नजर नहीं आया, सिर्फ एक ईंट का भट्टा था। शौचालय कहीं नहीं थे, सड़क किनारे टट्टियाँ पड़ी हुई थीं और हमें बार-बार दुर्गंध से ऊब हो रही थी और बचकर निकलना पड़ रहा था।

मुख्य सड़क से दो मोड़ के बाद कल्याणबीघा था, एक साधारण सा गाँव, एक उथले तालाब के चारों ओर बसा हुआ। उसके कीचड़ भरे किनारों पर भैंसें धूप खा रही थीं। नीतीश के पिता, कांग्रेसी और आयुर्वेद चिकित्सक, राम लखन सिंह का बनवाया हुआ मकान फूहड़ ढंग से चिनी गई ईंटों का था और वहाँ तक पहुँचने के लिए तालाब के साथ-साथ एक पगडंडी से घूमकर पैदल जाना पड़ता था। उसके आगे एक खुला रास्ता था—कोई गेट या दरवाजे नहीं थे—और फिर एक कच्चा अहाता आ गया। सारी जगह पर एक भैंस और उसके चारे के कुंड द्वारा कब्जा किया हुआ था। उस अहाते के तीन तरफ एक गलियारा था, नीचा और सँकरा। मिट्टी के फर्श थे, अंदर की दीवारों पर भी प्लास्टर नहीं किया गया था। देखकर लगता नहीं था कि बिजली के प्रकाश की कोई भावी योजना रही हो, गलियारे के साथ-साथ बने कुछ कमरे खाली पड़े थे। सिर्फ सीताराम वहाँ रह रहे थे, गाल पिचके हुए, चेहरे पर ऊबड़-खाबड़ बाल और पिंजर जैसा बदन, शरीर-रचना की कक्षा में प्रदर्शित करने के लिए बिलकुल सही। वह गलियारे में एक खाट पर सोते थे, भैंस के खूँटे के इतने समीप कि रात में भैंस की फुफकार चुपके से उनके चेहरे पर पड़ती होगी। वह लालटेन का इस्तेमाल करते थे और ताप के लिए जलाने की लकड़ी तथा गोबर के कंडों का।

सीताराम बाल्यकाल से ही परिवार के साथ रहते रहे हैं, उन्होंने कहा, मवेशी की देखभाल, जमीन की देख-रेख का काम सँभालने आए हैं—कुल मिलाकर सोलह बीघा जमीन, सतीश कुमार ने हमें बताया था, दो भाइयों के बीच, न बहुत कम और न बहुत ज्यादा। ''अब ज्यादा कुछो बचा नहीं है साहेब, एक यही भैंस है और कुछ बीघा जमीन, थोड़ा-मोड़ा अनाज होता है, अपने लिए बस...नीतीश का आना नहीं होता है, एक साल से भी अधिक समय हो गया, जब वह आए थे। पिछले बार आए रहे तो हम बोले घर का हालत थोड़ा ठीक करा दीजिए, गुस्सा गए, पलट के बोले, बिहार बनाना है कि पहले अपना ही घर बना लें...''

बाहर जाते हुए हम बाड़ लगे हुए एक पार्क के पास से गुजरे जिसके अंदर फूलों की खूबसूरत क्यारियाँ थीं और जवान होते वृक्ष थे। इस पार्क के दो किनारों पर सीमेंट की दो छतरियाँ बनी हुई थीं और दोनों दो आवक्ष प्रतिमाओं को छाया दे रही थीं—एक छतरी का निर्माण नीतीश के पिता की स्मृति में किया गया था, और दूसरी छतरी नीतीश की पत्नी, मंजू को समर्पित थी, जो पत्थर में तराशी हुई एक प्रतिमा के रूप में ही कल्याणबीघा आई थी।

क्या यह हो सकता है कि बख्तियारपुर में नीतीश के साथ बीते बचपन के बारे में मुन्नाजी की बिखरी-बिखरी यादें शुद्ध, निर्मल रही हों या उनमें कोई लाग-लपेट या स्वार्थ न रहा हो? क्या वह बचपन की दिनचर्या का उबाऊ विवरण देकर यही बताना चाहते थे कि बख्तियारपुर जैसी जगह में और क्या हो सकता है? 'बस अब यहाँ ऐसा जगह में क्या होगा?'

सोचने की बात है कि 1950 और 60 के दशक के बिहार में एक तुच्छ बस्ती में निम्न-आय के एक घर में जन्मे

बालक का जीवन कैसा रहा होगा। यह डिकिन्स की लिखी किसी कहानी का हिस्सा नहीं है, लेकिन उस जगह का खाका वास्तव में एक अत्यंत दुष्कर जीवन की तसवीर प्रस्तुत करता है।

बख्तियारपुर एक अनजानी सी जगह है, जिसके पास से राजमार्ग सरपट दौड़ता है, लेकिन जिसे न तो गाँव कहा जा सकता है और न शहर। दोनों का मिला-जुला सबसे बुरा स्वरूप यहाँ देखा जा सकता है—किसी गाँव के विपरीत, यह एक सँकरी, घुटन भरी जगह है; यह एक गया-गुजरा, गंदा स्थान है जिसे नहीं मालूम कि नगर-पालिका किसे कहते हैं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के घाटों ने जिसे जीवन-निर्वाह के लिए सड़क के किनारे धकेल दिया है। वहाँ बिजली का न तो कोई सवाल है, न कोई संभावना। जेनरेटर सेट उनके लिए भविष्य के लुभावने सपने के समान है। रूई की बत्तियों वाली, मिट्टी के तेल की कुप्पियाँ या लालटेनें धुएँ और धूल से भरी इस विषादपूर्ण नगरी में रोशनी का एकमात्र सहारा हैं। यहाँ का निराशपूर्ण वातावरण सारे साल मच्छरों का आतंक सहता है; मानसून के लंबे अत्याचार के दौरान, कीड़े-मकौड़ों की फौज लगातार धावा बोलती रहती है। वे काटते हैं, वे बीमारी फैलाते हैं, कम-से-कम खिझाते तो जरूर हैं। वे मद्धिम रोशनी को सोख लेते हैं, छतों से ऐसे गिरते हैं जैसे कोई उन्हें बना-बनाकर जिंदा नीचे फेंक रहा हो।

दिल्ली-कोलकाता रेलमार्ग बख्तियारपुर से गुजरता है; इस बस्ती को बाहर की दुनिया से जोड़नेवाला शायद यही एकमात्र गतिशील साधन है; इसके जरिए पूर्व और पश्चिम से लगातार खबरें आती रहती हैं। वहाँ एक स्टेशन है और कुछ गाड़ियाँ रुकती हैं, सभी नहीं। एक ही प्लेटफॉर्म है, ए.एच. व्हीलर का एक पुस्तक-ठेला भी है, लेकिन उसके पास पुस्तकें बहुत नहीं होतीं। सामयिक पत्रिकाएँ अवश्य मिलती हैं, उनमें भी अधिकांश हिंदी पत्रिकाएँ होती हैं, क्योंकि अंग्रेजी पाठक नगण्य हैं, और दैनिक अखबार होते हैं। रेलवे की वजह से इस नगरी की नीरस दिनचर्या में कुछ जान आ जाती है। आनेवाले समय में रेलवे इस ठहरी हुई दुनिया से निकल भागने के लिए नीतीश की जीवनरेखा बन जाएगी।

किंतु अभी तो बख्तियारपुर में ऐसा कुछ नहीं है, जो उस जैसे होनहार जवान लड़के की कल्पना-शक्ति को उद्दीप्त कर सके। स्कूल में, आरंभ में ही वह गणेश हाई स्कूल में अपने दो अध्यापकों—आनंदी प्रसाद सिंह तथा रामजी चौधरी का चहेता बन गया है। लेकिन उनके पास अपने शिष्यों को देने के लिए प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तकों के ज्ञान के अलावा कुछ नहीं है, और युवा नीतीश को खुद ही अन्यत्र देखना होगा। वह पटना से प्रकाशित चार पृष्ठों के एक दैनिक हिंदी समाचार-पत्र 'प्रदीप' को पढ़ना अपनी आदत बना लेता है। नीतीश के पिता इस समाचार-पत्र के नियमित ग्राहक थे।

कुमार बंधुओं का परिवार आयुर्वेदिक चिकित्सकों का एक सम्मानित परिवार है और उनका एक छोटा किंतु जमा हुआ सामाजिक दायरा है। पीछे से, कल्याणबीघा में उनकी कुछ जमीन है, किंतु इतनी नहीं कि परिवार के भरण-पोषण का आधार बन सके। वे इतनी उपज कर लेते हैं, जिससे रसोई चलती रहे—इसे वे खाता-पीता घर कहते हैं—लेकिन नकदी का बहुत अभाव रहता है। घर में स्कूल जाने लायक दो लड़के हैं—सतीश और नीतीश—और तीन लड़कियाँ—उषा, प्रभा तथा इंदु—जिन्हें शिक्षित करना है और उनका विवाह करना है। यह एक सही दिशा में जा रहा नियंत्रित जहाज है।

परिवार का एकमात्र रोजी-रोटी कमानेवाला रोटी नहीं कमाता है। वह एक स्वतंत्रता-सेनानी रहा है, अंग्रेजों के शासन में कई बार कारावास भोग चुका है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वह कांग्रेस का एक वफादार सक्रिय कार्यकर्ता रहा है, कांग्रेस के लिए सारा जीवन काम करने का कोई परिणाम नहीं निकला। पार्टी लेती है, देना नहीं जानती। रामलखन का इस्तेमाल किया जाता है, फिर उपेक्षा की जाती है। उसे लगातार दो बार विधानसभा के लिए कांग्रेस

की ओर से स्थानीय टिकट देने से इनकार कर दिया जाता है, उसकी वैध दावेदारी के बावजूद। दोनों बार यह टिकट एक बाहरी व्यक्ति—लाल बहादुर शास्त्री की बहन, सुंदरी देवी को दिया जाता है, जिसका विवाह पटना में कायस्थों के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ है। बिहार सरकार में सुंदरी देवी के कई प्रभावशाली संरक्षक भी हैं—उपमुख्यमंत्री अनुग्रह नारायण सिंह एक करीबी दोस्त और अल्पकालिक भारवाहक हैं। रामलखन सिंह एक साधारण कांग्रेस कार्यकर्ता हैं; उनका कोई मौका नहीं बनता है।

लेकिन जब सन् 1957 में दूसरी बार उन्हें कांग्रेस का टिकट नहीं मिलता है और सुंदरी देवी को दे दिया जाता है, वह पार्टी छोड़ देते हैं और नव-गठित, अनुभवहीन समाजवादी गुटों के साथ मिल जाते हैं। पड़ोस के एक निर्वाचन-क्षेत्र, बाढ़ से वह हार जाते हैं, लेकिन राजपूत जाति से एक प्रभावशाली निर्दलीय उम्मीदवार को समर्थन देकर वह बख्तियारपुर से सुंदरी देवी की पराजय सुनिश्चित करने में सफल रहते हैं। रामलखन सिंह जाति से कुर्मी हैं, जो खेती-बारी करनेवाली एक मध्यवर्ती जाति है; जिसके सदस्यों में पढ़े-लिखे और तरक्की-पसंद अधिक होने के कारण यह जाति बिहार के बड़े हिस्सों में राजनीतिक रूप से प्रभावशाली बनी हुई है तथा नीतीश के घरेलू नगर को घेरे हुए जिलों में अपना प्रभुत्व बनाए हुए है। लेकिन कांग्रेस जैसी विशालकाय पार्टी के विरुद्ध अपने विद्रोह को जारी रखने की सामर्थ्य उसके पास नहीं है। इसके अलावा एक बड़े परिवार की जरूरतों को पूरा करने तथा भरण-पोषण की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है, जिसके कारण रामलखन सिंह के लिए पुन: अपनी वैद्यक की गद्दी पर लौटना आवश्यक हो जाता है। वह अपने बरामदे में इसी मेज पर बैठकर—जिस पर सतीश कुमार के साथ हम बैठे थे—दवाइयाँ देता है और रोजाना फीस के रूप में दस रुपए, कभी-कभी पंद्रह रुपए तक अर्जित कर लेता है। गद्दी पर बैठे-बैठे राजनीति की चर्चा भी अकसर होती रहती है; राजनीति की धुन वैद्य रामलखन सिंह के सिर से पूरी तरह उतरी नहीं है, हालाँकि इसके कारण उसे अनेक कटु अनुभव हुए हैं और बाद की आधी जिंदगी उसे खिन्नता, चिड़चिड़ेपन में बिताने के लिए छोड़ दिया है। ''मेरे पिता को घेरे हुए बैठे लोग हमेशा कुछ राजनीतिक चर्चा करते रहते थे'', नीतीश बताते हैं, ''यह आयुर्वेद निदान-केंद्र कम, एक राजनीतिक अड्डा अधिक था, यद्यपि मेरे पिता ने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया था।''

यह एक छोटा घर है। बढ़ते लड़के के लिए, अपने पिता को मिली पराजय और घोर निराशा से खुद को अलग रख पाना संभव नहीं है—इतने वर्षों की सेवा के बाद उनके साथ यह व्यवहार! बहुत बार, वह बड़े लोगों की बातचीत और गपशप सुनना बंद कर देता है : अधिकतर बातचीत चीन के हाथों भारत को मिली करारी हार के बाद राष्ट्रीय अवसाद की मनोदशा के इर्द-गिर्द घूमती है। टेबल को घेरे लोग नेहरू को दोष देते हैं, सबसे तीखे शब्द उसके पिता के मुँह से निकलते हैं—वह चीन के बहकावे में आ गया, राष्ट्र को कीमत चुकानी पड़ी। नीतीश के कान खड़े हो जाते हैं। एक दिन वह अपने पिता की मेज पर पड़ी हिंदी पत्रिका 'धर्मयुग' उठा लेता है, जो कोई व्यक्ति वहाँ छोड़ गया था। पत्रिका से वह अपना ध्यान हटा नहीं पाता है।

मिडिल स्कूल में पहुँचने के काफी समय बाद वह एक जेबी डायरी रखना शुरू कर देता है और वह जो कुछ भी पढ़ता है, उसमें से चुनी गई कुछ खास-खास बातें—कोई प्रेरक पंक्ति, कोई प्रभावपूर्ण भाषण, कोई नाम जिसके बारे में आगे जाँच-पड़ताल करना आवश्यक है—अपनी उस डायरी में नोट करता रहता है। उन नामों में सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाला नाम राम मनोहर लोहिया का है : वह आदमी जो चीन के विषय में हाथ-धोकर नेहरू के पीछे पड़ गया है और कांग्रेस के मुकाबले में एक राजनीति खड़ी कर रहा है।

स्कूल से आने के बाद नीतीश ऊपर के कमरे में जाकर काफी समय तक पढ़ता या कुछ लिखता रहता है। घर में कोई टेलीविजन होने की तो बात ही क्या, कोई रेडियो सेट या ट्रांजिस्टर तक नहीं है।

बख्तियारपुर में घर के बाहर समय बिताने के भी कोई साधन नहीं हैं, कोई सिनेमा हॉल या रंग-मंच नहीं है, कभी-कभी नौटंकी या स्वाँग देखने को मिल जाता है। कोई पुस्तकालय या वाचनालय भी नहीं है, स्कूल में भी नहीं। नीतीश को खेल-कूद (स्पोर्ट्स) में कोई रुचि नहीं है, यार-दोस्त भी नहीं हैं। बस एक मुन्नाजी हैं। नीतीश के शिक्षक, रामजी चौधरी की बेटी पारो है। रामजी चौधरी अकसर वैद्यजी के साथ शाम को गपशप लड़ाने आ जाते हैं। लड़के और लड़की के बीच प्रेम-अनुराग का अंकुर फूट निकला है। लेकिन यह 1960 के दशक के बीच का बख्तियारपुर है, कोई दूसरी जगह नहीं, और न यह समय है, जो ऐसे अंकुरों को फलने-फूलने दे। नीतीश स्कूल में एक स्कॉलरशिप अर्थात् वजीफा पाने में सफल हो जाते हैं और इंजीनियर बनने के लिये पटना चले आते हैं। रामजी चौधरी को निकट के ही एक स्थान, हाथीदह के एक ग्रामीण परिवार में पारो के लिए एक वर मिल जाता है।

बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग में इलेक्ट्रिकल शाखा में दाखिला मिलने के कुछ ही समय बाद, नीतीश को बिहार अभियंत्रण महाविद्यालय छात्र संघ अर्थात् बी.एम.एस.यू. का अध्यक्ष चुन लिया जाता है। उनके घनिष्ठ मित्रों—सुरेश शेखर, अरुण सिन्हा, नरेंद्र सिंह—ने उनके चयन के लिए जोरदार प्रचार किया था। कैंपस में कांग्रेस-विरोधी माहौल छाया हुआ था : नीतीश के लिए चुनाव में मुकाबला कड़ा नहीं था। वह पहले से ही कॉलेज की सीनेट में थे और अपने कॉलेज के बाहर भी छात्र सभाओं को संबोधित करने लगे थे; नीतीश ने कदमकुआँ स्थित एक गांधीवादी मिशन, महिला चरखा समिति में छात्र शिष्टमंडलों के साथ जाना शुरू कर दिया था, जहाँ उन्हें दिशा-निर्देश मिलते थे कि आंदोलन को किस दिशा में ले जाना है। जे.पी. का निवास भी कदमकुआँ में था। छात्रों का आक्रोश आखिरकार उनकी अपनी माँगों के आगे चला गया था; यह आक्रोश इंदिरा-विरोधी आंदोलन को और भड़काने, प्रचंड करने का काम कर रहा था।

सन् 1972 में नीतीश ने ऊँची फीस और घटिया हॉस्टल तथा वाचनालय सुविधाओं के विरोध में इंजीनियरिंग छात्रों के एक रोषपूर्ण, लगभग हिंसक आंदोलन का नेतृत्व किया था। उन्होंने सरकारी बसों का अपहरण किया और उन्हें पश्चिम पटना के वी.आई.पी. जिलों में हाँककर ले गए। उन्होंने स्वेच्छा से गिरफ्तारी दी और पटना जेल को भर दिया। उन्होंने सरकार में तहलका मचा दिया, जिसके फलस्वरूप सरकार को सुविधाओं में सुधार की सिफारिशें करने के लिए तुरंत एक उच्चाधिकार समिति का गठन करना पड़ा।

लेकिन इन सक्रियताओं के बावजूद नीतीश को इतना संबल नहीं मिल रहा था कि वह स्वयं को छात्र नेतृत्व के क्षेत्र में अग्रणी समझ सकें। नीतीश के एक समकालीन व्यक्ति ने (जिसने अपने नाम का उल्लेख करने से मना कर दिया) इसके लिए युवा नीतीश को ही दोषी बतलाया। ''उसका स्वभाव कुछ अधिक ही सावधानी भरा था और उस समय की सड़क-छाप राजनीति के लिए शायद वह बहुत अधिक सभ्य था'', उसने मुझे बताया, ''युवा रक्त को जनसाधारण की भावनाएँ भड़काने, कुछ तमाशा खड़ा करने में मजा आता है; वह एक ऐसा नायक होता है, जो हालात को मथ सके, उनमें उफान पैदा कर सके। नीतीश इस मामले में बहुत साधारण प्रकृति के थे। उन्हें सम्मान मिलने लगा था लेकिन वह अपने श्रोताओं को उस तरह प्रेरित नहीं कर सके, जिस तरह उनके कुछ समकालीन नेताओं को सफलता मिल रही थी। अन्यथा लालू यादव जैसा कोई व्यक्ति क्यों नीतीश से आगे निकल जाता? नेतृत्व करने का यह उसका अपना तरीका था।''

लालू यादव के विपरीत, जो उस समय तक अपने हँसमुख मिजाज, चुटीले अंदाज और चतुराई के बल पर पटना यूनिवर्सिटी छात्र संघ (पी.यू.एस.यू.) का अध्यक्ष बन गया था, नीतीश में आत्म-विज्ञापन जैसी भी कोई प्रतिभा नहीं थी। वह एक अच्छा वक्ता था, लेकिन श्रोताओं को बाँधे रखने की कला नहीं जानता था। उसकी वक्तृत्व कला में तत्त्व होता था, किंतु भाषण में चमक पैदा करना उसे नहीं आता था। लालू यादव का अंदाज उलट था, उसके

बोलने का अंदाज असभ्य, गँवारू, लज्जाहीन था, उसमें एक तरह का पशुवत सम्मोहन था—अंदाज करिश्माई होता था, तत्त्व की बात कुछ नहीं होती थी। लालू ने एक बार, यूनिवर्सिटी में लोहिया पर छात्रों द्वारा आयोजित एक सेमिनार का रिबन काटा, फिर छिपकर वह हॉल से बाहर निकल गया और पूछने लगा—''ई चीज क्या है लोहिया?''

लेकिन वह भीड़ जुटाने में माहिर था, जो नीतीश कभी नहीं कर सकता था। वह अपने-आपको आगे बढ़ाने में कोई भी ऐसा तरीका अपना सकता था, जिसके बारे में सोचने भर से नीतीश को शर्म महसूस होती। कैंपस घेराव के दौरान घंटों तक उन पर फब्ती कसने, चुहलबाजी करने के बाद, लालू चुपके से शिक्षकों के कमरों में घुस जाता और उनसे यह कहकर कुछ पैसे वसूल लेता कि उसने कई दिनों से कुछ खाया नहीं है। उसने यूनिवर्सिटी कर्मचारी संघ में कर्मचारियों के साथ खैनी और पान में हिस्सा बाँटकर दोस्ती गाँठ ली। खैनी की आदत नीतीश को भी थी, लेकिन अपनी इस आदत को लेकर वह तब भी उतने ही सयाने थे, जितने कि आज हैं। लालू को अगर पता चल जाए कि ऐसा करने से उसके निर्वाचन-क्षेत्र का विस्तार होगा, तो नचनियों के अश्लील लटकों-झटकों की नकल करके दिखाने के लिए लालू को ज्यादा फुसलाने की जरूरत नहीं होती थी। उसकी तुलना में, नीतीश, कड़े और संकोची थे, लगभग दब्बू किस्म के। दोनों पिछड़े इलाकों से पटना आए थे, लालू गंगा के उत्तरी तट से, नीतीश नदी के एकदम दक्षिण की तरफ दूर-देहात से। दोनों ग्रामीण परिवारों से थे, दोनों का संबंध वर्गीकृत पिछड़ी जातियों से था। फिर भी एक महत्त्वपूर्ण अंतर था। डेवलपमेंट रिसर्च इंस्टीट्यूट (ए.डी.आर.आई.), पटना के निदेशक शैबाल गुप्ता, जिन्हें इन दोनों महानुभावों के लिए उस समय शोध एवं सुझाव पत्र लिखने के दुष्कर कार्य का श्रेय प्राप्त है, जब वे सत्ता में थे, किसी परा-मार्क्सवादी आधार को उन दोनों के बीच अलगाव का कारण बतलाते हैं। ''लालू एक कॉकनी (लंदन के पूर्वी सिरे का निवासी) पिछड़ा है, समाज और बाजार के हाशिए से आनेवाला, अपरिष्कृत, एक अर्थ में अधिक मौलिक, मूल प्रकृति से जुड़ा हुआ। नीतीश पिछड़ी जातियों में उस अभिजात वर्ग से आते हैं, जिसकी बोलचाल की भाषा और व्याकरण परंपरागत उच्च जाति अभिजात वर्ग की भाषा से अधिक मेल खाती है, न कि लालू यादव और उसकी किस्म के लोगों की भाषा से। वे उच्च जाति के मूल्यों को पाने की इच्छा रखते थे। लेकिन जब लालू प्रकट हुए, वे उनके विरुद्ध एक विद्रोह बनकर आए थे, न कि उनकी जैसी अभिलाषा लेकर।''

नीतीश से पहले की कम-से-कम तीन पीढ़ियाँ शिक्षित हो चुकी थीं; लालू अपने परिवार में ऐसी पहली पीढ़ी से था, जिसने अक्षरों के साथ प्रारंभिक परिचय स्थापित करने का प्रयास किया। नीतीश के बारे में ऐसा नहीं सोच सकते कि वह भैंस की पीठ पर बैठकर कभी देहाती दलदल में घूमने-फिरने निकला होगा; लालू को गोपालगंज में अपने जन्मजात गाँव, फुलवरिया में लड़कपन के दौरान अपने ढोर-डंगर, गाय-भैंस को चराने के लिए हर दिन इसी तरह आगे-आगे जाना पड़ता था। नीतीश को मुफस्सिल बख्तियार के रहन-सहन, तौर-तरीकों, बोली, व्यवहार, गंदगी और माहौल से परहेज था, वहाँ के मूल्य उनकी दृष्टि में तुच्छ थे और वह एक सुसंस्कृत, नागर सभ्यता और आचार-विचार को अपनाने की चाहत रखते थे। लालू जब पटना आए तो उनके साथ हुड़दंगी, कमर-ठोक फुलवरिया चौपाल भी पटना चली आई। लालू ने यूनिवर्सिटी में खुद को अधिक लोकप्रिय प्रदर्शनकर्ता साबित किया और जिस समय तक सन् 1974 की कक्षा राज्य की सत्ता पर काबिज होने जा रही थी, सन् 1977 में इंदिरा गांधी की हार के बाद, वह नई पीढ़ी का अग्रणी नायक बन चुका था। लोहिया की समझ उसे अभी भी नहीं थी, लेकिन गलियों में रहनेवालों, सड़क पर काम करनेवालों की समझ रखने और उनकी भावनाओं को पकड़ने तथा भड़काने की अद्‍भुत कला उसके पास थी। उसकी प्रचार करने की प्रतिभा भी उतनी ही बेजोड़ थी। मार्च 1974 में एक विरोध प्रदर्शन के दौरान, पुलिस के साथ विशेषकर एक हिंसक भिडंत के बाद, लालू ने अपनी मौत की झूठी

कहानी गढ़कर इतनी सच्चाई के साथ स्थानीय समाचार-पत्रों में छपवा दी कि अगले दिन पटना में वह खबर सुर्खियों में थी। वास्तव में, घेराबंदी पर तैनात सुरक्षा-कर्मियों की ओर से पहले ही हमले के पहले वह मौके से भाग गया था और किसी सार्वजनिक फोन से उसने खुद ही वह 'खबर' सनसनी फैलाने के लिए दी थी। पूरे पटना में तेजी से यह खबर फैल गई —'लालू यादव मारा गया!' इस बीच लालू अपने किसी रिश्तेदार के फ्लैट में छिप गया था और मजे से गोश्त पका रहा था।

कैंपस में दोनों की दोस्ती हुई थी—पी.यू.एस.यू. के चुनावों में नीतीश ने लालू की जीत में बहुत योगदान किया था, इंजीनियरिंग कॉलेज के अधिकांश वोट उसके लिए जुटाने हेतु जोरदार प्रचार किया था—लेकिन वे असल में कभी दोस्त नहीं बन सके। नीतीश का दायरा बढ़ गया था—सुशील मोदी, सरजू राय, शिवानंद तिवारी, रवि शंकर प्रसाद, शंभू श्रीवास्तव उस समय के सभी अग्रणी छात्र नेताओं में नीतीश की पैठ होने लगी थी। लेकिन उनका अंतरंग मंडल सुरेश शेखर, अरुण सिन्हा, नगेंद्र सिंह तक ही सीमित रहा। वह कॉलेज छात्रों की तरह अपनी इस मित्र-मंडली के साथ बाहर घूमा करते थे, पिक्चर देखने और खाने-पीने जाया करते थे। गांधी मैदान के उत्तरी किनारे पर खुले आकाश के नीचे, खान-पान की एक मशहूर जगह थी—फ्लोरा फाउंटेन, जो उनका मनपसंद अड्डा था। यूनिवर्सिटी इलाके से फ्लोरा फाउंटेन कुछ ही मिनट की दूरी पर था। नीतीश के पास महीने भर के खर्च के लिए कॉफी पैसे होते थे, इसलिए वह रिक्शा लेकर जा सकते थे, जबकि अधिकतर लोग पैदल या साइकिल से जाते थे। फ्लोरा फाउंटेन फास्ट-फूड की श्रेणी में आने से पहले ही फास्ट-फूड के लिए प्रसिद्ध था—पकौड़े, समोसा, चाट, तरह-तरह के दोसे, बड़ा, ठंडी लस्सी आदि सबकुछ मिलता था—वहाँ। यह जगह इसलिए भी अच्छी थी, क्योंकि यह पटना के दो सबसे अच्छे सिनेमा हॉल—ऐल्फिंस्टन और रीजेंट—के बीच में था। ''बहुत सिनेमा देखते थे, अनगिनत'', महेंद्र सिंह ने पटना सर्किट हाउस के भूमि तल पर स्थित उच्च जाति आयोग के कामचलाऊ कार्यालय में मुझे बताया, ''कभी-कभी एक के बाद एक शो, खासकर देवानंद या दिलीप कुमार का पिक्चर हो तो। और सब बालकनी क्लास, उससे कम नहीं...''

समय चुराना पड़ता था। राजनीतिक उथल-पुथल के कारण पटना में सामान्य जन-जीवन अस्त-व्यस्त रहता था। इंजीनियरिंग की डिग्री हासिल करनी थी और सड़कों पर संघर्ष भी करना था। नीतीश कुल मिलाकर एक अच्छा विद्यार्थी था, लेकिन उसके दोस्तों का कहना है कि उसका ध्यान राजनीति की तरफ ज्यादा जाने लगा था। ''उसके पिता कभी नहीं चाहते थे कि उनका बेटा राजनीतिक जीवन की ओर कदम रखे,'' नगेंद्र सिंह ने बताया, ''राजनीति की वजह से उन्होंने कष्ट सहा, और अपने परिवार को कष्ट सहते देखा था। वह चाहते थे कि नीतीश एक व्यवसायी बने, यही कारण है कि वह अपनी हद से बाहर जाकर भी अपने बेटे की यूनिवर्सिटी की पढ़ाई का खर्च उठाने के लिए तैयार थे। नीतीश अकसर इस बात का जिक्र करते थे कि घरवालों को उनसे बहुत आशाएँ हैं, वे चाहते हैं कि मैं पढ़ाई खत्म करूँ और किसी नौकरी में जम जाऊँ, लेकिन उनका मन नौकरी में नहीं था, वह गहरी दुविधा में थे, अपने पिता को निराश करना नहीं चाहते थे, लेकिन वह खुद को राजनीति में अधिकाधिक डुबोने लगे थे, लोहिया द्वारा लिखी हुई और लोहिया के बारे में लिखी पुस्तकें लगातार मँगाते रहते थे। लोहिया को पढ़ने और उनके विचारों का अनुसरण करने की धुन सवार थी नीतीश पर।''

वह जे.पी. के मार्गदर्शन और संरक्षण में बनी छात्र संघर्ष समिति की संचालन समिति के सदस्य बन गए थे। लेकिन यह समिति उन्होंने अकेले अपने दम पर नहीं बनाई थी। बी.ए.एम.एस.यू. का अध्यक्ष होने की खातिर इस समिति का गठन बड़े परिश्रम से उन्होंने किया था। यूनिवर्सिटी की एक हड़ताल का उन्होंने सफल नेतृत्व किया था, उनको जेल जाना पड़ा था; वह लोहिया विचार मंच के सक्रिय सदस्य बन गए थे, जो लोहिया सहायकों का एक

अखिल भारतीय संगठन था। वह राजनीति में धीरे-धीरे अपनी पींग बढ़ा रहे थे। सहयोगियों को नीतीश की उपयोगिताओं का पता चल गया था—एक संयमी, अच्छा पढ़ा-लिखा लड़का, जिसका उपयोग प्रस्तावों और प्रेस-विज्ञप्तियों का प्रारूप तैयार करने के लिए भरोसे के साथ किया जा सकता था, जो लोहिया और गांधी की विचारधारा की समझ रखता था और उनके जरिए राजनीति की उभरती दोषपूर्ण प्रवृत्तियों के बारे में भी कुछ जानकारी रखता था। लालू से बिलकुल भिन्न व्यक्ति। लालू यादव को लोग स्पष्ट रूप से मंच पर देखना पसंद करते थे, नाटक करने और जन-भावनाओं को भड़कानेवाले नेता के रूप में; अखबारों की खबरें तो उस नाटक से ही बनती थीं। नीतीश प्रेस-विज्ञप्तियाँ लेकर अकसर समाचार-पत्रों के दफ्तरों और तार एजेंसियों के पास जाते थे, साथ में भावी पत्रकार अरुण सिन्हा भी होते थे। शिष्ट-भाषी और सुव्यक्त नवयुवक, नीतीश और अरुण सिन्हा, प्रेस के वास्ते छात्रों के योग्य संदेशवाहक सिद्ध हुए; समाचार कार्यालयों में लोग उनकी बात ध्यानपूर्वक और धैर्य से सुनते थे। ''वे अधिकांश छात्र नेताओं जैसे लफंगे, लोफर नहीं थे,'' फर्जंद अहमद ने बताया, जिसने पटना में यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यू.एन.आई.) के लिए अभी-अभी एक रिपोर्टर, अर्थात् संवाददाता की हैसियत से काम करना शुरू किया था। ''जब नीतीश या अरुण सिन्हा या दोनों कोई वक्तव्य या प्रेस विज्ञप्ति लेकर आते थे, तो उसे तत्काल रद्दी की टोकरी के हवाले नहीं किया जाता था। उनका वार्त्तालाप सोद्‌देश्य होता था और आप उनकी बातचीत के तरीके से समझ सकते थे कि आंदोलन की मुख्यधारा में अपने लिए उपयुक्त स्थान बनाने में उन्हें समस्याओं का सामना क्यों करना पड़ रहा है। वे बहुत शिष्ट थे।'' अहमद ने एक पत्रकार के रूप में लंबे समय तक बहुत परिश्रम करके ख्याति पाई थी और सन् 2011 में वह बिहार का सूचना आयुक्त बन गया था। अहमद का कहना है कि युवा नीतीश में कुछ ऐसी बात थी, कुछ ऐसी झलक उसने देखी थी, जो नीतीश को उन सबसे अलग करती है, जिनसे वह परिचित था। ''मैंने उसे कभी कसम खाते या किसी फालतू शब्द का प्रयोग करते नहीं सुना, बाकी लोग निकृष्टतम शब्दों, निरी घटिया भाषा का प्रयोग किए बिना एक वाक्य भी पूरा नहीं कर सकते थे। वह भी उन्हीं परिस्थितियों से निकलकर आया था और फिर भी उसने खुद को धब्बा नहीं लगने दिया था।''

छात्र संघर्ष समिति में नीतीश ने अपेक्षतया अधिक लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों को अपने दूसरे गुणों से परिचित कराया। वह मंच पर आग नहीं भड़का सकता था, लेकिन परदे के पीछे ऐसे काम कर देता था, जो कुछ ही लोग कर सकते हैं। जब किसी संकट से निकलने का प्रश्न हो, तो सबसे पहले उन्हें नीतीश से सलाह लेने का विचार आता। ऐसी ही एक समस्या उस समय उत्पन्न हुई जब छात्र आंदोलन ने निर्णायक रूप से इंदिरा-विरोधी और कांग्रेस-विरोधी मोड़ ले लिया था। कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सी.पी.आई.) संभवत: अकेली पार्टी थी, जो अभी भी इंदिरा गांधी के साथ थी। बाद में सी.पी.आई. ने इमरजेंसी का भी समर्थन किया, हालाँकि अपने इस निर्णय पर उसे खेद हुआ तथा निर्णय को बदलना पड़ा। लेकिन सी.पी.आई. द्वारा इंदिरा गांधी का समर्थन किए जाने से छात्र संघर्ष समिति के लिए एक विशेष प्रकार की उलझन पैदा हो गई। पार्टी की छात्र शाखा, ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन (ए.आई.एस.एफ.) संघर्ष समिति का एक हिस्सा थी और बहुत लोगों को यह संदेह होने लगा कि संस्थान की यह शाखा देशद्रोहियों के गुप्त संगठन की तरह काम कर रही है। लेकिन वे अपने ही साथी छात्र संघवादियों को कैसे निकाल बाहर करते? उनमें से अनेक शंभू श्रीवास्तव जैसे लोग, घनिष्ठ मित्र थे, जिन्होंने आंदोलन को अपना दृढ़ समर्थन दिया था। लेकिन ए.आई.एस.एफ. को तिलांजलि देने के लिए कोई तरीका निकालना आवश्यक था, क्योंकि इंदिरा गांधी के समर्थक इंदिरा गांधी के ही विरुद्ध चलाए जा रहे आंदोलन का हिस्सा शायद नहीं हो सकते थे। एक अजीब सी गाँठ फँसी हुई थी : यह समस्या नीतीश कुमार के सामने रखी गई।

अगली बार जब संघर्ष समिति की महासभा की बैठक हुई, नीतीश एक जटिल घरेलू संकट की घड़ी में,

अंतरराष्ट्रीय स्थिति पर एक असूचीगत प्रस्ताव पेश करने के लिए उठे। यह एक लक्ष्यहीन, ऊटपटाँग मसौदा था, जिसमें निरर्थक और घिसी-पिटी बातें थीं। नीतीश केंद्रीय मुद्दे पर आने से पहले अपना समय ले रहे थे, इसीलिए घुमा-फिराकर बातें कर रहे थे। यह उनकी सोची-समझी चाल थी। नीतीश ने अमेरिकी सेना द्वारा 1960 के दशक में लंबे समय तक वियतनाम में किए गए दुस्साहस और दुनिया के अन्य भागों में वाशिंगटन द्वारा 'चल रहे साम्राज्यवादी कुचक्रों' की भर्त्सना की। जैसे ही ए.आई.एस.एफ. के कार्यकर्ताओं ने ताली बजाना शुरू किया, नीतीश ने चेकोस्लोवाकिया और हंगरी में सोवियत यूनियन की सैनिक दखलअंदाजी को भी 'उतना ही साम्राज्यवादी तथा लोकतंत्र विरोधी' बतलाकर उसकी आलोचना की। स्तब्ध और क्रुद्ध, ए.आई.एस.एफ. प्रतिनिधि सभा भवन से बाहर चले गए। छात्र संघर्ष समिति को बिना किसी प्रयास के ही इंदिरा समर्थक साम्यवादियों से छुटकारा मिल गया और उन्हें ऐसा भी महसूस नहीं होने दिया कि छात्र संघर्ष समिति की मंशा यही थी कि ए.आई.एस.एफ. के लोग बाहर चले जाएँ। नीतीश अकसर ऐसी चतुर योजनाएँ बनाने और उन पर अपना ठप्पा लगाने में माहिर थे, यह उनकी शानदार कूटनीति का ही कमाल था कि वह स्थितियों और उपलब्ध अवसरों को अपने प्रयोजनों के अनुरूप ढाल लेते थे।

लेकिन फिलहाल उनकी कोई भी विशेषता या योग्यता व्यक्तिगत रूप से उनके काम नहीं आ रही थी। वह अभी भी अग्रपंक्ति में नहीं थे। वह इधर-उधर भटकते रहे, बहुत लोगों के बीच। जे.पी. ने भी उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। राजनीतिक जीवन में कदम बढ़ाने की इच्छा से प्रवृत्त किसी भी उदीयमान व्यक्ति के लिए पटना में जे.पी. की नजर पर चढ़ना और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना बहुत महत्त्वपूर्ण था। जे.पी. राजनीति में किसी नीतीश कुमार की मौजूदगी से अनभिज्ञ नहीं थे, लेकिन जे.पी. ने अभी तक नीतीश को उन प्रयोजनों के लिए चुना नहीं था, जिन प्रयोजनों के लिए नीतीश उनकी शरण में जाना चाहते थे। वह नीतीश को 'अध्यवसायी' कहते थे। नीतीश के विचार में यह जे.पी. की ओर से संरक्षण देने से मना करने के समान था। जे.पी. का तात्पर्य भी नीतीश को कोई बधाई या शुभकामनाएँ देने का नहीं होता था।

किसी निजी मामले की वजह से वह पहली बार जनसाधारण की व्यापक दृष्टि में आए। उन्होंने विवाह रचाया और उसको लेकर एक बड़ा तमाशा किया। यह फरवरी 1973 की बात है, उनके इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनने से कुछ पहले की; अभी उनकी आयु के बाईस वर्ष पूरे होने में भी कुछ समय बाकी था।

पटना में नीतीश की गतिविधियों के कारण बख्तियारपुर में वैद्य रामलखन के घर-बार में चिंता के बादल मँडराने लगे थे। नीतीश का घर जाना कम हो गया था, अखबारों में उनका नाम—छात्र नेता नीतीश कुमार के रूप में आने से परिवार में बेचैनी बढ़ने लगी थी। एक-दो बार, जब वैद्य रामलखन पटना में अपने बेटे से मिलने के लिए गए, तो नीतीश उन्हें न तो क्लास में मिले और न बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग के हॉस्टल नं. 1 में। उस समय वह कहीं विरोध या प्रदर्शन कर रहे होते, छात्रों को संबोधित कर रहे होते, ज्ञापन तैयार कर रहे होते या आंदोलन की योजना बना रहे होते। वैद्य की उत्कंठा एक दिन उन्हें वहाँ खींच ले गई, जहाँ नीतीश यूनिवर्सिटी के अंदर एक भीड़ को संबोधित कर रहे थे। नरेंद्र सिंह बताते हैं कि पिता को सुनकर अच्छा लगा, ''बड़ी बातें करने लगा है, पॉलिटिक्स और इशूज पर पकड़ है...'' उन्हें कुछ संतुष्टि की गंध मिली होगी, इस बात का कुछ एहसास हुआ होगा कि उनके जीवन में जो कमी रह गई उसे उनका बेटा पूरा करेगा, कि एक दिन उनका बेटा लोगों की नजर में छा जाएगा, बड़ा आदमी बनेगा और यश बटोरेगा। किंतु उनकी आशा के विपरीत उनका बेटा नीतीश जिस दिशा में बढ़ रहा था उसे लेकर उनके मन में शंकाएँ अधिक थीं। राजनीति एक कठोर, बेरहम मार्ग था, पूरी तरह थका देनेवाला रास्ता था और इस बात की हर संभावना थी कि यह आपको भँवर के बीच भटकने के लिए छोड़ देगा। वैद्य के साथ यही

हुआ था। वह अपने बेटे के लिए ऐसा जीवन नहीं चाहते थे। उन्होंने सोचा कि लड़के को उस रास्ते से हटाने और उसे एक सीधी, सँकरी राह की ओर मोड़ने के लिए उसका विवाह कर देना एक उत्तम उपाय सिद्ध हो सकता है।

सियोदा गाँव में नीतीश के वास्ते एक मेल मिल गया; यह गाँव न तो कल्याणबीघा से अधिक दूर है और न बख्तियारपुर से। कृष्णनंदन सिन्हा गाँव में स्कूल के प्रधानाध्यापक और कुर्मियों की एक सुसम्मानित वंश परंपरा से थे। उनकी पुत्री मंजू पटना के मगध महिला कॉलेज में समाजशास्त्र की छात्रा थी। पति इंजीनियर और शिक्षक बनने की चाह रखनेवाली लड़की, जोड़ा अच्छा बन रहा था।

नीतीश के घनिष्ठ मित्रों को ऐसा लग रहा था कि नीतीश इतनी जल्दी विवाह के चक्कर में पड़ना नहीं चाहते थे, लेकिन एक सीमा के आगे उन्होंने विवाह का विरोध भी नहीं किया। विवाह के लिए मान जाने पर, उन्होंने अपने मित्रों को उकसाया कि वे मंजू को मगध महिला कॉलेज के द्वार के बाहर बुलाकर देख लें और आकर उन्हें बताएँ कि उनकी भावी वधू कैसी रहेगी। दुबली-पतली, सीधी-सच्ची, तुनक-मिजाजी से दूर, रंग गेहुँआ। नीतीश को अच्छा लगा सुनकर। नरेंद्र सिंह को ऐसा ही संकेत मिला नीतीश की तरफ से, ''सबकुछ बढ़िया चल रहा था कि एक दिन बवाल हो गया।''

स्पष्ट नहीं है कि किस तरह, लेकिन नीतीश को भनक लग गई कि उनके पिता ने मंजू के पिता से दहेज के रूप में 22,000/- रुपए लिये हैं। उन दिनों जातिगत गुटों के अंदर दो परिवारों के बीच परस्पर बातचीत के द्वारा तय की गई शादियों में ऐसा चलन था, आज की अपेक्षा तब अधिक था। परिवारों में इस तरह का लेना-देना खुशी से होता था। यह एक तरह से समझौते पर पक्की मुहर लगाने जैसी एक औपचारिकता हुआ करती थी। लेकिन वृद्ध वैद्य को यह संदेह रहा होगा कि उनका बेटा इसके लिए हामी नहीं भरेगा। उन्होंने नीतीश की पीठ पीछे दहेज लिया। नरेंद्र सिंह ने बताया कि जब उन्हें इस बात का पता चला नीतीश आग-बबूला हो गए। वह तुरंत बख्तियारपुर जाकर अपने पिता से इस संबंध में सवाल-जवाब करना चाहते थे। ''वह शादी रद्द कर देंगे,'' उन्होंने कहा। रात ज्यादा हो रही थी और आखिरी गाड़ी जा चुकी थी, लेकिन नीतीश जिद पर अड़े थे, इस कारण हमने एक तिपहिया वाहन लिया और बख्तियारपुर के लिए चल पड़े। उसने हमसे सौ रुपए से अधिक माँगे, जो हमारे पास नहीं थे। नीतीश ने अपने पिता से भाड़ा चुकता कराया। फिर, एक शब्द भी बोले बिना, वह सीढ़ियों से ऊपर चले गए। सारी बातचीत का जिम्मा मेरे ऊपर छोड़ दिया गया था।

नरेंद्र सिंह को संलापन न करने योग्य कई विषयों पर बातचीत करने की जिम्मेदारी दी गई थी : कोई दहेज नहीं, एक पैसा भी नहीं, इस तरफ या उस तरफ से कोई उपहार नहीं, कोई रीति-रिवाज नहीं, कोई जश्न या समारोह नहीं, विवाह पटना में रजिस्ट्रार के ऑफिस में होगा, अर्थात् कोर्ट मैरिज होगी। अन्यथा विवाह की बात खत्म समझी जाए।

वैद्य रामलखन ने नीतीश के दूत को समझाने का प्रयास किया कि दहेज स्वीकार करना कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी, यह कोई बड़ी रकम भी नहीं थी, वधू के परिवार ने खुशी से वह रकम दी थी, और अब अगर वह दहेज की रकम लौटाने जाते हैं, तो उन्हें खुद कितनी परेशानी से गुजरना पड़ेगा।

नरेंद्र सिंह ये सारी बातें नीतीश के बताने के लिए ऊपर गए।

''लिया हुआ धन वापसी? तुम्हारा मतलब है कि दहेज पहले ही मेरे परिवार के पास जमा हो चुका है?'' नीतीश ने शिकायत की, ''यह विवाह नहीं हो सकता, नहीं होगा, जाओ और मेरे पिता तथा सियोदा के लोगों को जाकर बता दो, यह विवाह और यह लेन-देन की बातचीत पूरी तरह अस्वीकार्य है।''

नरेंद्र सिंह सियोदा भी गए। कृष्णनंदन सिंह ने नरेंद्र से कहा कि उन्हें नीतीश के इतने पक्के विचारों की जानकारी नहीं थी और वह समझते थे कि नया-नया लड़का है, मान जाएगा या उसे मना लिया जाएगा, अब चूँकि नकदी का

हस्तांतरण हो चुका है—इसके बारे में हो-हल्ला या शिकायत करने का कोई अर्थ नहीं है, यह हमारी प्रथा है, जाकर उसे कह दो कि यहाँ सब ठीक है, हमने जो दिया है खुशी से दिया है और हम खुश हैं। नरेंद्र सिंह ने अपना सिर झटका और उसके संदेश का दूसरा भाग सियोदा के प्रधानाध्यापक को सुना दिया, ''दहेज स्वीकार न करने के अलावा, मेरे दोस्त ने एक और शर्त रखी है। कोई समारोह, अनुष्ठान या रीति-रिवाज नहीं मनाया जाएगा; यह एक कोर्ट मैरिज होगी। उसने कहा है कि आप इस पर विचार करें : क्या आप और आपकी बेटी ऐसे विवाह के लिए तैयार हैं? वह एक समाजवादी है, राम मनोहर लोहिया का अनुयायी है, वह अपना जीवन भिन्न नियमों के अनुसार जीता है।''

नीतीश का दहेज से खुलेआम इनकार करना सनसनीखेज चर्चा का विषय बन गया। उस समय के एक उदीयमान पत्रकार जुगनू शारदेय ने 'धर्मयुग' के लिए नीतीश का इंटरव्यू लेने का मन बनाया। इस भेंटवार्त्ता के माध्यम से वह जानना चाहते थे कि बिहार के नवयुवकों के मन में महिलाओं, विवाह और समाज के बारे में यदि कोई नए विचार, नई धारणाएँ जन्म ले रही हैं, तो वे क्या हैं? नीतीश उस भेंटवार्त्ता में दहेज तथा आडंबरपूर्ण विवाहों के विरोध में बोले। उन्होंने कहा कि महिलाओं को चाहिए कि वे स्वयं को शिक्षित करें और व्यवसायी बनें तथा सिर्फ घर एवं चूल्हा-चौके से ही बँधे न रहकर कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण काम करने की ओर कदम बढ़ाएँ, जैसा कि लोहिया तथा किशन पाठक ने महिलाओं की वकालत करते हुए कहा था। जब महान् उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु ने इंटरव्यू पढ़ा, तो उन्होंने शारदेय से कहा कि वह नीतीश जैसे ही किसी नवयुवक को अपने दामाद के रूप में देखना चाहेंगे।

लेकिन कृष्णनंदन सिंह एक रूढ़िवादी समुदाय के एक रूढ़िवादी सदस्य थे। संभव है नरेंद्र सिंह ने स्वयं अपने विवेक से सियोदा में उनके सामने यह सवाल रखा हो। क्या वह नीतीश जैसा दामाद और अपनी पुत्री के लिए उसके जैसा पति पाने के लिए तैयार हैं?

उन्होंने उज्ज्वल भविष्य की संभावना रखनेवाले एक योग्य इंजीनियर, सुशिक्षित, मध्य-वर्ग के लड़के से पुत्री का विवाह करने के लिए बातचीत आगे बढ़ाई थी। उसके बजाय उन्हें एक ऐसा युवक मिलनेवाला था, जो आंदोलन फैलाने में विश्वास रखता है और समय की चिंताओं में व्यग्र रहता है, लोक जीवन की अनिश्चितताओं ने जिसे पहले ही अपनी गिरफ्त में ले लिया है, जिसके जीवन में आगे कठिन राह और अस्थायित्व के सिवा कुछ नजर नहीं आता है, जो किसी ऐसी मंजिल को पाने की चाह में एक पक्का घुमक्कड़ बना हुआ है, जिसके बारे में खुद उसे निश्चित रूप से कुछ पता नहीं है। लेकिन वे उस समय कैसे इन सब बातों को जान पाते? और अगर जान भी गए होते, तब अब पीछे हटने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। नरेंद्र सिंह उस विवाह को बचाने का प्रयास कर रहा था, जो वेदी तक पहुँचने से पहले ही टूटने के कगार पर आ गया था। कोई दहेज नहीं लिया जाना था, कोई परंपरागत अनुष्ठान नहीं होना था, हालाँकि नीतीश को इस बात के लिए अवश्य मना लिया गया कि वह रजिस्ट्रार की अदालत के सामने विवाह रचाने की जिद छोड़ दें। नीतीश ने पटना के गांधी मैदान के पश्चिम में स्थित लाला लाजपत राय भवन के स्वागत कक्ष में मंजू के साथ मालाओं का आदान-प्रदान किया। दोनों परिवार मौजूद थे। और बेशक मित्रगण भी मौजूद थे, जिनमें से अधिकांश मित्र दूल्हे के साथ इंजीनियरिंग कॉलेज छात्रों द्वारा अपहृत सरकारी बसों में भरकर आए थे। उस अवसर पर खींची गई नीतीश की एक तसवीर है, जिसमें वह अपनी नव वधू की बगल में खड़े हुए हैं, गले में एक चमकदार किंतु साधारण माला पहने तथा मस्तक पर सिंदूर का एक तिलक लगाए। उस चित्र पर नजर डालने से आपको ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे उस क्षण वह किसी यंत्रणा से गुजर रहे हों। उन्होंने कैमरे से आँख मिलाने से मना कर दिया। उनके चेहरे पर एक उदासी झलक रही है, उनकी दृष्टि कहीं और टिकी हुई है, मानो वह कहना चाहते हों कि वहाँ उनकी मौजूदगी प्रकाशनार्थ नहीं है। नीतीश ने इस अवसर के लिए

अपनी ट्रेड मार्क दाढ़ी पर उस्तरा फेर दिया था और एक टू-पीस सूट पहना था तथा टाई लगाई हुई थी। दाढ़ी के बगैर और अंग्रेजी पोशाक में यह उनका इकलौता चित्र है। माला उन्होंने बेपरवाही से पहनी हुई थी और टीका किसी चुनौती के रूप में।

औपचारिकताओं से मुक्ति पाकर, वर एवं वधू एक सफेद रंग की फिएट कार से बख्तियारपुर के लिए रवाना हो गए, जो वहाँ से करीब सौ किलोमीटर के फासले पर था। गाड़ी पर वी.आई.पी. नंबर प्लेट लगी थी : बी.आर.पी. 111। चालक की सीट पर थे हट्टे-कट्टे भोला प्रसाद सिंह, नीतीश के अपने इलाके के एक लब्धप्रतिष्ठ कुर्मी, एक पारिवारिक मित्र और वह आदमी जिसने सिर्फ चार वर्ष बाद, सन् 1977 में नीतीश को पहले ही चुनाव में हरनौत से हराया।

नीतीश ने मंजू के साथ बख्तियारपुर में ज्यादा समय नहीं बिताया। वह सड़क संघर्ष पुनः आरंभ करने के लिए पटना लौट गए और श्ीघ्र ही उन्हें आंतरिक सुरक्षा अनुरक्षण अधिनियम (मीसा) के तहत गिरफ्तार कर लिया गया। मंजू भी बहुत समय तक नहीं ठहरी। उसे जल्द इस बात का एहसास हो गया कि उसका पति कोई नौकरी तलाशने और घर-गृहस्थी जमानेवाला इनसान नहीं है। वह प्रक्षेपण-पथों के साथ-साथ भटकता रहेगा, क्योंकि उसमें अभी तक यह निर्णय करने की क्षमता नहीं है कि कौन सा पथ चुनना है, लेकिन वह भटकना नहीं छोड़ेगा। उसने बख्तियारपुर में दांपत्य-प्रेम के कोमल क्षणों में मंजू को शायद बता दिया था कि उसे कोई पारंपरिक जीवन नहीं चाहिए। कुछ महीनों बाद ही जब उसने शिक्षित नवयुवकों में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या के विरोध में आयोजित एक प्रदर्शन में अपनी इंजीनियरिंग की डिग्री फूँक डाली, मंजू को तभी विश्वास हो गया होगा। अधिकतर छात्रों ने फोटोस्टेट प्रतियाँ जलाई थीं, नीतीश ने अपनी डिग्री की मूल प्रति ही आग के हवाले कर दी।

❑

4

लालू के लिए, अनिच्छा से

इस पुस्तक के लिए इंटरव्यू के सिलसिले में कई बैठकें करनी पड़ीं; सन् 2011 में जाड़े की एक रात ऐसी ही एक बैठक के दौरान मैंने नीतीश से पूछा कि राजनीति में अपने आरंभिक दिनों में उन्होंने लालू यादव को आगे बढ़ाने में इतनी सक्रियता क्यों दिखलाई। उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे कहना चाहते हों : वाह, क्या सवाल पूछा है!

हम लोग सहरसा में थे, जो पटना के उत्तर-पूर्व में करीब 300 किलोमीटर दूर, जहाँ नेपाल और बँगलादेश की सीमाएँ भारत को छूती हुई नजर आती हैं, धुएँ से भरा, अस्त-व्यस्त सा, एक सीमांचल शहर है। वह अपनी सेवा-यात्रा के एक चरण पर थे; यह यात्रा दूर-दराज बसे लोगों के मुख्य द्वार तक सरकार को ले जाने के एक प्रयास स्वरूप बनाई गई जिला भ्रमण योजना की शृंखला की एक कड़ी थी। ऐसी यात्राओं पर वह अपना लगभग पूरा सचिवालय उठाकर ले जाते थे—महत्त्वपूर्ण विभागों के सचिव, पुलिस महकमे के हाकिम, दो चार विश्वसनीय मंत्री, जो उनकी शामों को खुशमिजाज बना सकें। विजय चौधरी, दलसिंहसराय के एक भद्र भूमिहार और जल संसाधन मंत्री, मुख्यमंत्री की यात्रा मंडली में लगभग हमेशा ही शामिल रहते थे। वह एक हँसमुख व्यक्ति थे, चेहरे पर लड़कपन विराजता था, परदे के पीछे की अनकही कहानियों का प्रचुर भंडार उनके पास था, किसी बिहारी राजनीतिज्ञ के घिसे-पिटे साँचे में बड़ी आसानी और भव्यता से फिट हो जाने के सारे गुणों से संपन्न। क्या इसी कारण नीतीश ऐसी भ्रमण-यात्राओं पर उसका साथ चाहते थे, क्योंकि बचपन से ही उन्हें साफ-सुथरे, सजे-सँवरे लोग अच्छे लगते थे? अथवा क्या इसका एक कारण यह हो सकता था कि चौधरी भूमिहार समुदाय के थे, जो खुशहाल, प्रभावशाली, महत्त्वाकांक्षी, उच्च जाति के लोग थे, न कि नीतीश के उस राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्र का हिस्सा जो नीतीश के लिए बहुत महत्त्व रखता था अथवा जिस तबके के बीच नीतीश की गहरी पैठ थी। पिछड़े वर्ग के नीतीश जैसे किसी नेता को किसी महत्त्वपूर्ण भूमिहार का साथ मिल जाना उसके लिए मददगार साबित हो सकता था। बहुत संभव है, जे.डी.यू. विधायक अनंत सिंह इसी कारण पार्टी में खूब फल-फूल रहा है बावजूद इसके कि वह एक जाना-माना गुंडा है : वह भी एक भूमिहार है।

सहरसा सर्किट हाउस शहर के शोर-शराबे से दूर आम और बाँस की मनोरम वृक्षावली तथा अंग्रेजों द्वारा निर्मित खंभेदार प्रशासननिक ब्लॉकों में स्थित है। सर्किट हाउस की दसियों वर्ष से ठीक से देखभाल नहीं हुई थी, रख-रखाव का बहुत अभाव था—पुराने, गंदे परदे और गलीचे, बाथरूम के नलों से निरंतर टपकता पानी, चूँ-चूँ करता फर्नीचर, मरम्मत को तरसती सीलन और गंध से भरी दीवारें, एक लंबा-चौड़ा भोजन-कक्ष जहाँ बहुत समय से किसी शानदार भोज का आयोजन नहीं हुआ था; अगर आप खानसामा या रसोई की देखभाल करनेवाले महाराज को कुछ घूस दे दें, तो शायद वह कुछ अच्छा आपको परोसने का विचार कर सकता है। साम्राज्य-युग की याद दिलानेवाले जितने भी सर्किट हाउस और निरीक्षण बँगले राज्य भर में स्थित हैं, उन सबकी भव्यता छिन्न-भिन्न पड़ी हुई है। लेकिन जब से नीतीश कुमार ने जिलों का भ्रमण करना शुरू किया—और पिछड़े इलाकों में शिविर लगाकर रात गुजारने का सिलसिला आरंभ किया—इन उजाड़, परित्यक्त शिविर केंद्रों का हुलिया एक-एक कर सुधरने लगा था। उनको पाँच-सितारा जैसा दरजा भले ही न दिया गया हो, लेकिन व्यवस्था काफी अच्छी और विस्तृत हो गई थी : नया फर्नीचर, नई कटलरी, टाइल लगे स्नानागार, अच्छी तरह तराशे गए लॉन, बाहरी दीवारों, खिड़कियों आदि पर नया रंग और पॉलिस, कर्मचारियों के लिए नई वरदी। हाउसकीपिंग काम करने लगा : परिचर को बुलाने के

लिए घंटी लग गई और जब भी घंटी दबाई जाती, कोई-न-कोई सेवक दरवाजे पर अवश्य उपस्थित हो जाता। सहरसा सर्किट हाउस में एक और उपेक्षित परंपरा को पुन: चालू किया गया—पास में ही एक खुले फुटबॉल स्टेडियम में पूरे दिन जनता दरबार के लिए जाने से पहले, मुख्यमंत्री को स्थानीय पुलिस-दल द्वारा एक दमदार सम्मान सलामी दी जाती थी।

उस दिन का दरबार आशा से अधिक लंबा खिंच गया। स्टेडियम में आने के लिए लोगों का अंतहीन ताँता लगा हुआ था, जैसे कि मुख्यमंत्री के दर्शन पाने से ही सारी समस्याओं का निवारण अपने-आप हो जानेवाला हो।

बिहार जैसी जगह में लोक-शिकायत-निवारण के लिए जनता को आमंत्रित करने का मतलब है समुद्र को न्यौता देना; हर व्यक्ति एक याचिका लहराता हुआ चला आता है, कोई-कोई जोड़ा भी आ जाता है, बशर्ते कि दिन उनकी किस्मत से अच्छा हो। परेशान विधवाएँ और परित्यक्त पत्नियाँ, पेंशन भोगी और परिवीक्षार्थी, वृद्ध और विकलांग, कर्मचारी और बेरोजगार, यहाँ तक कि अजीब-अजीब, बेसिर-पैर के दावे लेकर आनेवाले भी। स्टेडियम के जमघट भरे मैदान में, विपिन कुमार शाह नाम का एक व्यक्ति अपनी सुनवाई की प्रतीक्षा में खड़ा था, जिसके हाथ में एक ईंट जितना मोटा कागजों का बंडल था, जिसे ऊपर उठाकर वह जोर से चिल्ला रहा था, ''मेरे पास बिहार की बिजली समस्या का पूरा समाधान है, लेकिन कोई सुनता नहीं है। मैंने एक मशीन बनाई है, जो उसी तरह बिजली पैदा करती है जैसे चरखे से सूत निकलता है। यह मशीन सस्ती और सरल है। यहीं है मेरे पास, देखिए और ध्यान से सुनिए।''

शाह के पास दिखाने के लिए वह अद्भुत चीज नहीं थी। उसके बॉलपेन और पेंसिल से बनाया हुआ सरकिटों के जाल का एक रेखाचित्र था और साथ में टिप्पणियाँ दी गई थीं, जिन्हें वह खुद ही समझ और समझा सकता था। यह डायग्राम एक तंत्र चार्ट जैसा था और उसके साथ 300 फुलस्केप पन्नों का लंबा-चौड़ा विवरण संलग्न था। शाह ने इसे बनाने में बहुत परिश्रम किया था और इसका प्रणेता होने का दावा किया था, लेकिन सिर्फ इतना ही नहीं वह ब्रह्मा-विष्णु-महेश को लेकर अपने सुने जाने की अपील कर रहा था और भविष्यवाणी कर रहा था कि जो कोई भी उसकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं है उस पर त्रिदेव का वज्र गिरेगा। उसकी योजना के बारे में जानकर नीतीश का अवश्य ही कुछ मनोरंजन हुआ होता, जो खुद एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर हैं। किंतु, खेद है कि उसकी बारी नहीं आ पाई; शाह दरबार छोड़कर चला गया, मन मसोसते हुए : ''कोई मेरी बात नहीं सुनता है।'' मगर, शाह को अगर समय दिया जाता, उसकी योजना का विस्तृत विवरण सुना जाता, तो करीब एक हजार दूसरे लोग रह जाते, जिनकी समस्याएँ सुनना निहायत जरूरी था।

पहले महिलाएँ, फिर वृद्ध और उनके बाद विकलांग, सब लोग अवरोध के पीछे कंधे-से-कंधा भिड़ाए हुए संयम से खड़े थे। नीतीश, सुरक्षाकर्मियों से घिरे हुए नीतीश ऊपर-नीचे लगी कतारों के पास जाते, एक-एक कर याचिकाएँ, प्रार्थना-पत्र, आवेदन आदि हाथ में लेते और जल्दी से पढ़ते तथा जिस पर तत्काल काररवाई करना आवश्यक समझते, उसकी ओर पदाधिकारियों का ध्यान दिलाते एवं जरूरी हिदायतें देते।

उनके वैयक्तिक सहायक के पास एक मेगाफोन था और वह जब-तब राज्य के किसी-न-किसी उच्चतम अधिकारी को आने के लिए कहता : कृपया कल्याण सचिव आएँ, कहाँ हैं वह? विकास आयुक्त, कृपया तशरीफ लाएँ; आई. जी. साहेब, मुख्यमंत्रीजी आपको बुला रहे हैं; सिंचाई मंत्री साहेब, मंत्री साहेब, आपका मामला है, कृपया जल्दी आएँ! वे सारा दिन सतर्क एवं सन्नद्ध रहते, पता नहीं किस मामले को सुलझाने के लिए फिर बुलाया जाए। ''यह तो कुछ-कुछ कक्षा में उपस्थित रहने जैसा है,'' उनमें से एक ने चुपके से कहा, ''न जाने कब मास्टरजी इशारे से बुला लें, न जाने कब आपको किसी सवाल का जवाब देने, किसी समस्या को हल करने के लिए कहा जाए।''

बाँध में दरार पड़ जाने और भूमि पर कब्जा किए जाने से लेकर भ्रातृघात या भगिनीघात और अदत्त पेंशन तक विविध प्रकार की अनेक शिकायतें पूरा दिन मुख्यमंत्री के पास पहुँचती रहती थीं। एक क्षण तो ऐसा भी आया जब एक औरत उनके सामने यह शिकायत लेकर पेश हुई कि उसका पति उसे छोड़कर उससे कम उम्र की किसी स्त्री के पीछे चला गया है और उसके पास जीवन निर्वाह का कोई साधन नहीं है। निरा व्यक्तिगत मामला, जिसमें मुख्यमंत्री कुछ नहीं कर सकता। फिर भी नीतीश ने हिदायत देने का फर्ज निभाया, ''इनका पहले देखिए, कुछ बातचीत से सोल्यूशन निकल आए अगर।''

इस प्रकार की जनसंपर्क यात्राओं के दौरान प्रशासन के सामने रखी गई सभी समस्याएँ हल हो जाएँ, यह जरूरी नहीं है। बल्कि, बहुत लोग ऐसी शिकायत भी करने लगे हैं कि नीतीश की यात्राएँ व्यक्तिगत जनसंपर्क कवायद, जनता के पैसे से अपनी छवि का संवर्धन करनेवाले समारोह से अधिक कुछ नहीं है। लेकिन दो बातें स्पष्ट थीं : सर्वोच्च अधिकारी को जन-साधारण की समस्याओं को सीधे सुनने का अवसर मिला और चिल्ल-पौं करनेवालों को यह जानकर कदाचित् ही तसल्ली प्राप्त हुई कि उनकी बात सुनी गई। दिखावटी तमाशा? शायद। लेकिन इन यात्राओं के जरिए बिहार के वरिष्ठतम मंत्रियों तथा अधिकारियों को उन हिस्सों तक ले जाया गया, जहाँ उन्होंने वर्षों में कभी जाने की परवाह नहीं की थी। मुख्यमंत्री के दरबार में हाजिर होने के लिए अकसर उन्हें बहुत कष्टप्रद रास्तों से होकर जाना पड़ता था; अकसर असुविधाग्रस्त एवं घटिया रख-रखाववाले गेस्ट हाउसों में रात बितानी पड़ती थी, जहाँ पीने योग्य पानी नहीं होता था, बिजली आती-जाती रहती थी, जरूरी सुविधाओं का अता-पता नहीं था या उन्हें त्याग दिया गया था। एक वरिष्ठ अधिकारी को सहरसा में मुख्यमंत्री की मंडली के साथ ठहरने की जगह न मिल पाने पर, उसने चिड़चिड़े होकर यह शिकायत की थी कि उसे अपने होटल के सीले, गंदे कमरे में सोने के लिए नींद की गोली लेनी पड़ी; क्योंकि सड़क से नालियों और कूड़े-करकट की जबरदस्त दुर्गंध आ रही थी। ''लेकिन कभी-कभी उन्हें इसी बात का एहसास कराना तो जरूरी होता है,'' नीतीश ने कहा, ''जब बाद में उन्हें उस अधिकारी की शिकायत के बारे में बताया गया; वह अंदर-ही-अंदर खुश थे कि उस अधिकारी को पता तो चला कि बेचैनी की चुभन कैसी होती है। इसी उद्देश्य से हम यहाँ आते हैं, ताकि हम उन हालात का सामना कर सकें, जिन का सामना लोगों को करना पड़ता है और सोचना आरंभ करें कि क्या किया जा सकता है उन हालात से निपटने के लिए; करने को तो बहुत कुछ किया जा सकता है, लेकिन समस्या का एक पहलू यह भी है कि हमें समस्याओं की जानकारी ही नहीं होती है।'

जनता दरबार का प्रयोजन एक तीर से दो निशाने लगाना था : प्रशासनिक और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति। लोगों को मौका मिलेगा कि वे एक ही मंच पर अपनी समस्याओं का समाधान पा सकें, और नीतीश को जमीन से जुड़े रहने में मदद मिलेगी। उनके सचिवालय के एक वरिष्ठ सदस्य ने मुझे बताया, ''यह एक प्रभावकारी प्रति- सूचना माध्यम और सुरक्षा-वाल्व बन गया है, क्योंकि सरकार समय-समय पर लोगों के बीच आती है और उन्हें अपनी भड़ास निकालने देती है, हताशा और कुंठाओं का पहाड़ नहीं बनता है।'' लेकिन इस जन-संपर्क योजना का सदैव एक दूसरा पहलू भी रहा है, जिसके बारे में नीतीश के आलोचकों ने प्राय: कटाक्ष किया है और करीबी सहयोगियों ने उसे खतरे की घंटी माना है। ''जब आपकी बात राज्य के सर्वाधिक शक्तिशाली इनसान के कानों में पड़ चुकी होती है और उसके बावजूद कुछ नहीं होता है, तो निराशा बहुत बढ़ जाती है'', उनमें से एक ने कहा, ''प्रस्तुत की गई हर समस्या को हल करना संभव नहीं है और जिन लोगों की समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है वे जोर-जोर से चिल्लानेवाले शिकायती बन जाते हैं। वे ही लोग कहने लगते हैं कि नीतीश सिर्फ अपनी छवि बनाने के अलावा कुछ नहीं कर रहा है, शिकायतों का कारोबार संक्रामक और राजनीतिक रूप से खतरनाक हो सकता है।''

वह पिछली दोपहर ही हेलिकॉप्टर द्वारा पटना से आए थे, जाड़े की धुँध छाई हुई थी और उनका हेलिकॉप्टर उसी धुँध को अपने पंखों से चीरता हुआ पहुँचा था। नीतीश को एक उजाड़, नदी की मार से तहस-नहस एक रेतीले तट, बलुआ घाट से कोसी के पार अपेक्षाकृत एक लघुतर पुल का शिलान्यास करना था। यह पुल कहीं अधिक विशाल, चुनौती भरे, कोसी महासेतु के समानांतर, कुछ किलोमीटर बहाव के विरुद्ध (अपस्ट्रीम) जाएगा, और मिथिला के मध्य भाग के इर्द-गिर्द दो और स्थानों को जोड़ेगा। तत्पश्चात्, वह घिरते धुँधलके के बीच सड़क के रास्ते सहरसा चले गए। इस एक घंटे के सफर को पूरा करने में करीब तीन घंटे का समय लगा। काफिले को अँधियारी सर्पीली गलियों से गुजरते हुए पहले से निश्चित कई जगहों पर भी थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुकना पड़ा, जो कार्यक्रम में शामिल नहीं थे—जैसे कि सड़कों के किनारे मंदिरों व मसजिदों में मत्था टेकना, पंचायत भवनों और ब्लॉक समितियों में हाजिरी देना, क्योंकि पार्टी के स्थानीय उच्चाधिकारियों ने वफादार समर्थकों को मुख्यमंत्री की जय, जयकार करने के लिए सड़क किनारे इकट्ठा कर रखा था। मुख्यमंत्री की मंडली जब तक सर्किट हाउस पहुँची, तब तक काफी देर हो चुकी थी और वहाँ पहुँचते ही नीतीश अपना कमरा पुन: व्यवस्थित कराने में लग गए—पलंग गलत जगह पड़ा था, सोफे गलत दीवार के सहारे लगे हुए थे, पलंग की बगल में, शीर्ष के निकट, हमेशा एक छोटी मेज होनी चाहिए और बाथरूमों में फिनाइल की गोलियाँ क्यों नहीं हैं? वह सर्किट हाउस के अपने विस्तृत विश्राम-कक्ष के बीच खड़े हुए थे और सर्किट हाउस के खुशामदी-टट्टू घबराहट में, चुप्पी साधे हुए, जल्दी-जल्दी, कमरे के साज-सामान को दोबारा ठीक से लगाने में जुटे हुए थे। वह चाहते कि हाल ही में खरीदे गए ढलवाँ लोहे के पलंग को, क्वायर के सख्त गद्दों सहित, दीवार के साथ लगाने के बजाय कमरे के बीच में डाला जाए। सोफों को उन्होंने हॉर्स-शू की शक्ल में एक तरफ लगवाया।

उनके प्रमुख सेवक, बसंत सिंह ने—जो एक महोगनी वृक्ष के तने जैसा था और अपनी मूँछों को हमेशा ऊपर की ओर तानकर रखता था—अपने स्वामी के सामान और संदूकों को छोटे कमरे में रख दिया और उसे चुपके-चुपके या संकेतों में जो आदेश मिलते थे, उन्हें वह मुख्यमंत्री के व्यक्तिगत खानसामा और धोबी, हरिंदर के कानों में डाल देता था। हरिंदर सब्जी का थैला लेकर सर्किट हाउस से निकल जाता और निकटतम बाजार से सब्जी, फल आदि स्वयं लेकर आता तथा सर्किट हाउस की रसोई में रात का भोजन तैयार करने के काम में जुट जाता। आज की रात भी वही सब पकना था : सादा चावल और दाल, मौसम की दो सब्जियाँ (फूलगोभी और मटर, क्योंकि यह सर्दी का मौसम है, कुछ पालक या कद्दू या कटी हुई फ्रेंच बीन्स की तली सब्जी), पतले-पतले कटे हुए तले आलू, रायता, हरी मिर्च और धनिए की ताजा चटनी तथा दही चपातियाँ गरम-गरम आएँगी मेज पर, और खाने के साथ-साथ पीने के लिए गरम पानी। नीतीश को खाने के साथ गरम पानी पीने की बहुत आदत है, उनकी धारणा है कि इससे जीव-विष (टॉक्सिंस) इकट्ठा होने से पहले ही बाहर निकल जाता है, वसीय अम्ल घुल जाता है।

स्वास्थ्य को सही-सलामत रखने के लिए अब वह घरेलू आयुर्वेद के नुस्खों पर निर्भर नहीं करते हैं, हालाँकि पटना में अपने बँगले के पीछे उन्होंने जड़ी-बूटियों का भंडार बड़े शौक से रखा हुआ है; वह सुबह के समय प्राय: उधर जाते हैं और कोई ताजा वनस्पति तोड़कर मुँह में डाल लेते हैं और चबाते रहते हैं। वह अब डॉक्टरी चिकित्सा तथा योग पर अधिक भरोसा करने लगे हैं।

कितना भरोसा करते हैं, इसका प्रमाण मुझे बाद में किसी और स्थान पर मिला। नवंबर 2012 में हम उनके साथ आठ दिन की पाकिस्तान यात्रा पर थे, जो उनकी यात्रा का अंतिम से ठीक पहला चरण था। विभाजनोपरांत भारत के किसी अन्य नेता को पाकिस्तान के राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी से लेकर दावेदार इमरान खान तक से इतना अधिक मान-सम्मान या इतनी जगह जाने-देखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है—हमने पिंगल सिंध देहात में दूर तक

जाकर मोहनजोदड़ो के अवशेष देखे और फिर पंजाब में उत्तर की ओर ऊपर जाकर काटसराज के दूरस्थ अवशेष के दर्शन किए। लेकिन उन्हें सर्वाधिक आनंद और संतोष प्राप्त हुआ जौलियाँ पहुँचकर, जो प्राचीन बौद्ध मठ-विश्वविद्यालय का वह स्थान है, जहाँ चाणक्य करीब ईसा से 300 वर्ष पूर्व शिक्षा दिया करते थे, और जहाँ से चलते हुए उन्होंने पुरातन पाटलिपुत्र में आकर कदम रखे, ताकि नंद राजाओं को सिंहासन से उतार सकें और चंद्रगुप्त के लिए मौर्य साम्राज्य का निर्माण कर सकें। नीतीश ने स्वयं को उस प्राचीन दार्शनिक-प्रशासक का शिष्य भले ही न माना हो, लेकिन यह समझ पाना कुछ मुश्किल नहीं है कि उन्हें चाणक्य से प्रेरणा मिलती है। वह अर्थशास्त्र के लेखक को प्रोफेसर चाणक्य कहते हैं। जिस भूमि पर कभी चाणक्य ने अपने चरण रखे थे, उस भूमि का स्पर्श किए बिना वह लौटना नहीं चाहते थे।

जौलियाँ पहुँचना आज भी आसान नहीं है। यह तक्षशिला में एक साधारण किंतु परिश्रम से बनाए गए गांधार तथा भारत-यूनानी संग्रहालय के अवशेष के करीब आधा मील ऊपर एकदम खड़ी चढ़ाई पर एक पथरीली चट्टान में झूले की भाँति टँगा हुआ प्रतीत होता है। यह एक अद्भुत, अति-वास्तविक दृश्य है, वह संग्रहालय आधा मील तक फैला हुआ एक शिक्षण संस्थान जिसका वर्णन या व्याख्या करना असंभव है, इस बात का साक्षी है कि जब एक धारणा या एक मत दूसरे मत का अतिक्रमण करता है, तो उसका क्या परिणाम सामने आता है। जब बौद्धमत के हजारों वर्ष बाद इसलाम आया, तो मूर्ति पूजा पर तलवार गिरी। तक्षशिला में बुद्ध की सभी मूर्तियों का भंजन कर दिया गया, फिर भी एक मूर्ति नए शासन के पैरों तले आने से बची रह गई। मूर्तियों के धड़ एक खंड में प्रदर्शित हैं, सिर दूसरे खंड में, ठंडे शीशे के पीछे शांति की मुद्रा में, इस बात से बेखबर कि उनके अधो भाग उनके शरीर से अलग कर दिए गए हैं; बुद्ध के हर चेहरे पर वही शांति है, जो दूसरे पर है।

नीतीश उन आवक्ष प्रतिमाओं को बड़ी देर तक निहारते रहे, शायद वह अपने पटना कार्यालय में उस आले के बारे में सोच रहे थे जहाँ बुद्ध की लगभग आधा दर्जन लघु मूर्तियाँ रखी हुई हैं; बस इसी एक देवता की मूर्ति रखना उन्हें अच्छा लगता है।

उस कार्यालय में एक भेंट के दौरान मैंने उनसे पूछा था कि क्या वह बौद्ध हैं, और उन्होंने कंधे उचका दिए मानो कह रहे हों कि उन्हें खुद नहीं पता। उन्होंने बुद्ध मूर्तियों के इस प्रदर्शन को बुद्ध का बिहार से संबंध बतलाया। ''वह शायद सबसे प्रसिद्ध बिहारी हैं। हमने अपना प्रतीक बौद्ध वृक्ष से लिया है। निस्संदेह, वह एक महापुरुष थे।'' फिर मैंने उनसे प्रश्न किया कि क्या वह किसी धर्म का अनुसरण करते हैं, उन्होंने इस प्रश्न को अनावश्यक माना : ''कुछ और बात कीजिए, राजनीतिक जीवन में इन व्यक्तिगत बातों का कितना महत्त्व है?'' उनके भाई सतीश ने एक संकेत दिया, हालाँकि कुछ अस्पष्ट सा संकेत था। ''वह धार्मिक संस्कारों या प्रथाओं का दिखावा करने में विश्वास नहीं करते हैं, लेकिन वह धर्म का आदर करते हैं, मेरे विचार में सभी धर्मों का सम्मान करते हैं, भले वह व्यक्तिगत रूप से किसी धर्म विशेष का पालन न करते हों।'' कहते हैं कि अगर कोई मुअज्जिन पड़ोस में नमाज के लिए आवाज लगाता है, तो वह स्टेज पर बोलना बंद कर देते हैं। सहरसा में पड़ाव के दौरान एक सुबह सैर करते हुए, वह मत्स्यगंधा मंदिर के निकट पहुँच गए, जो इसी नाम से प्रसिद्ध एक सूखी नहर के तट पर स्थित है। जैसे ही उस मंदिर के पुजारी को पता चला कि मुख्यमंत्री उधर से जा रहे हैं, वह उनसे मिलने के लिए दौड़कर मंदिर के अलंकृत द्वार पर जा खड़ा हुआ और उनसे मंदिर के अंदर आने का निवेदन किया। नीतीश ने कहा कि वह अंदर अवश्य आते, लेकिन अभी स्नान नहीं किया है, इसलिए अंदर नहीं आ सकेंगे। तक्षशिला में, नीतीश का दीवार पर प्लास्टर से बने बुद्ध के उभरे चित्र से सामना हुआ जिसके उदर में एक छेद था। किंवदंती है कि आप उस छेद में उँगली डालकर यदि कामना करें तो आपकी वह कामना अवश्य पूरी होगी। नीतीश ने फोटोग्राफरों के

आग्रह पर वहाँ खड़े होकर तसवीर खिंचवाई और फिर कोई मुराद माँगने से पहले उन्होंने सुरक्षाकर्मियों सहित सभी लोगों से अनुरोध किया कि वे कुछ क्षण के लिए उन्हें अकेला छोड़ दें। ''अगर आप मुझे अकेला छोड़ दें, तो मैं निश्चित ही कोई कामना करना चाहूँगा।'' उन्होंने बुद्ध के पेट में दोबारा उँगली डाली और एक या दो मिनट तक आँख मूँदकर खड़े रहे। हो सकता है, वह किसी धर्म या मत के अनुयायी न भी हों, किंतु वह उसका प्रदर्शन कभी नहीं करते हैं।

तक्षशिला म्यूजियम से उस स्थान के लिए सीमेंट की सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है, जहाँ उदर में छेद करनेवाले बुद्ध देवल जौलियाँ मठ में विराजमान हैं। सीढ़ियाँ एकदम खड़ी हैं, जो पहाड़ की ओर पत्थर काटकर बनाई गई हैं। इन सीढ़ियों को चढ़ना काफी कठिन हो सकता है। आधे से भी कम रास्ता तय करने के बाद नीतीश थोड़ा आराम करने के लिए सीढ़ी के जंगले का सहारा लेकर खड़े हो गए। ''ठीक नहीं,'' उन्होंने हाँफते हुए कहा। वह अचंभित और परेशान भी लग रहे थे, यह सोचकर कि उनकी दोनों टाँगें जवाब दे गई हैं, ''यह ठीक नहीं है। मैंने महसूस किया है कि मैं जब कभी सुबह व्यायाम नहीं कर पाता हूँ, तब ऐसा हो जाता है। अगर मैं नियमित रूप से योगाभ्यास कर रहा होता तो एक ही बार में ऊपर पहुँच जाता, लेकिन पाकिस्तान में मेरा यात्रा-कार्यक्रम इतना व्यस्त रहा है कि मुझे समय ही नहीं मिला।''

मुख्यमंत्री बनने के समय से ही नीतीश अपनी सेहत के प्रति कुछ-कुछ लापरवाही बरतने लगे थे—काम अच्छा करने का ही एक हिस्सा है यह भी, वह कहते हैं। अपने प्रथम कार्यकाल के दौरान, एक बार देहात का भ्रमण करने पर, उन्हें भयंकर आंत्र संक्रमण हो गया था, शायद जल-संक्रामक रोग था। उससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने आयुर्वेदिक काढ़े पिए, हर्बल चूर्ण और गृह-निर्मित औषधियों का प्रयोग किया। वह ठीक हो गए, लेकिन इन औषधियों को अपना काम करने और उनके शरीर से गंध को बाहर निकालने में समय लगना लाजिमी था। वह करीब एक सप्ताह या उससे भी अधिक समय तक बिस्तर पकड़े रहे। वह यात्रा बेकार गई। ''अब मैं सीधे ही ऐंटीबायटिक और दर्दनाशक दवाएँ ले लेता हूँ'', उन्होंने सहरसा में डिनर टेबल पर, भोजन से पहले एजाइम की गोलियाँ निगलते हुए कहा, ''आयुर्वेद अच्छा है, सभी पारंपरिक दवाएँ हैं, लेकिन आपको ठीक होने तक समय और धैर्य की जरूरत होती है। मैं समझता हूँ कि आयुर्वेद उपचार सेवानिवृत्त लोगों के लिए सर्वोत्तम है।''

विजय चौधरी, जो नीतीश के साथ सहरसा गए थे, सर्किट हाउस में मुख्यमंत्री के विश्राम-कक्ष से अगले कक्ष में ठहरे थे। सीमांचल वह क्षेत्र है, जिसके विशेष देखभाल का दायित्व जल-संसाधन मंत्री पर था; यहाँ कोसी नदी बहती है लेकिन उसका पानी अधिकतर अपने आक्रामक रुख के कारण मुसीबतें पैदा करता रहता है। नीतीश को युवावस्था से जाननेवाले नगेंद्र सिंह का जन्मजात गाँव बहेड़ी वहाँ से अधिक दूर नहीं था और उसने कहीं से कुछ प्रार्थियों को बुलाया हुआ था; नगेंद्र सिंह ने शायद उनसे यह वादा किया हुआ था कि वह अपने दोस्त मुख्यमंत्री से उनकी सीधी भेंट करा देगा। लेकिन उसकी किस्मत या दोस्ती का दावा बेअसर साबित हुआ। वह अपने पुराने मित्र को जानता था। नीतीश इस बात को सहज रूप से लेनेवालों में नहीं थे कि कोई कभी भी, कुछ भी सोचकर, उनके पास चला आए और मान ले कि अपना काम करा ले जाएगा। उनके घनिष्ठतम मित्रों और सहयोगियों ने समय गुजरने के साथ-साथ उनके मिजाज को पहले से भाँप लेना और उचित अवसर देखकर उनके पास जाना सीख लिया था। उन्होंने अपने इर्द-गिर्द जितना कड़ा घेरा बना रखा था, वह अंडे के खोल की तरह नाजुक था; बहुधा, वह असहमति से चिड़चिड़ा जाते थे। उन्हें तर्क करना पसंद था लेकिन तभी जब उनका पलड़ा भारी हो। वह सलाह मान लेते थे लेकिन तभी जब उन्होंने सलाह माँगी हो। उन्हें स्वीकृति चाहने की बजाय स्वीकृति माँगना अधिक पसंद था। वह किसी को भी बहुत करीबी मान बैठने या बहुत अंतरंग बनने की इजाजत नहीं देते थे।

मुख्यमंत्री के रूप में उनके प्रथम कार्यकाल के दौरान, उनका सबसे घनिष्ठ और संभवतया सबसे अधिक प्रभावशाली सहायक था सकेश कुमार नाम का एक व्यक्ति, जो लेखा-परीक्षा और लेखा संवर्ग का एक अधिकारी था और अधिकतर पैस्टल सूट पहनने का शौकीन था। अपने बॉस की तरह वह भी एक कुर्मी था। काफी लंबे समय तक अकेले सकेश के हाथ में नीतीश से मिलने-मिलाने की चाबी रहती थी : अगर आप सकेश को नहीं जानते तो नहीं जान सकते कि पटना में सत्ता के गलियारों में क्या हो रहा है। एक सुबह, पटाक्षेप में, सकेश कुमार किसी नोटिस या घोषणा के बिना ही लुप्त हो गए। अपने मूल संवर्ग में लौटकर, दरवाजे की चाबी पर अधिकार जमाने से लेकर पीड़ानाशक लेखा फाइलों को उलटने-पलटने तक, सकेश ने एक अक्षम्य अपराध कर डाला था—वह खुद को बहुत कुछ समझने लगा था। उसने अपनी पत्नी के लिए एक विधानसभा टिकट माँगा था। उसने शायद यह सोचा था कि उसकी जाति और उसकी पहुँच को देखते हुए उसे टिकट के लिए अनुरोध करने का हक मिल गया है। यह उसकी भयंकर भूल थी, लेकिन यह बात उसकी समझ में आने तक बहुत देर हो चुकी थी। बहेड़ी का नरेंद्र सिंह नीतीश को बहुत लंबे समय से जानता था और मैत्री के विशेषाधिकारों का अनुचित लाभ न उठाने की बात भली-भाँति समझता था। वह जिन आवेदकों, प्रार्थियों को साथ लेकर आया था उन्हें उसने धैर्य रखने की सलाह दी : उन्हें अपने अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए और यह निश्चित नहीं मान लेना चाहिए कि अवसर मिलेगा ही।

सहरसा में गण्यमान्य व्यक्तियों की मंडली में एक बी.जे.पी. विधायक भी था और नीतीश कुमार से उसकी निकटता बिहार के सत्ता के हलकों में भारी चर्चा तथा चौकस नाराजगी का विषय बन गई थी। संजय झा की अपनी जड़ें मिथिला के केंद्र में थीं लेकिन उसने राजनीति का पाठ पढ़ना आरंभ किया दिल्ली में, बी.जे.पी. के अरुण जेटली जैसे अत्यधिक कुशल रणनीतिज्ञ के आश्रय में। झा ने दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्ययन किया था और फिर वह स्नातकोत्तर उपाधि के लिए जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी चला गया था। लेकिन वह बिहार के अपने अन्य साथियों की तरह, सिविल सेवा की परीक्षा में बैठने नहीं जा रहा था। बाबूगीरी में जाने का उसका कोई इरादा नहीं था। वह एक बेचैन, बेकरार किस्म का आदमी था, वह किसी ऐसे चरित्र की तलाश में था जिसे वह अभी तक मूर्त नहीं कर पाया था। उसने खुद को समय दिया, क्योंकि वह प्रयोग के लिए कुछ गुंजाइश रखना चाहता था। दिल्ली में रहना और गुजर-बसर करना बहुत मुश्किल नहीं था। दरभंगा में अररिया संग्राम के आस-पास उसकी बहुत जमीन-जायदाद थी। वह राजनीति में प्रवेश पाने के लिए कोई-न-कोई मार्ग खोजने की खातिर समय देने करने को तैयार था। उसने पड़ाव डालने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में कई दरवाजों पर दस्तक दी। उनमें से एक नई दिल्ली में नीतीश कुमार का 22, अकबर रोड बँगला था। नीतीश उस समय अटल बिहारी वाजपेयी सरकार में एक कैबिनेट मंत्री थे और उन आरंभिक भेंट-मुलाकातों में ज्यादा कुछ नहीं होता था, सिवाय इसके कि दिल्ली में बैठे नेता के अपने राज्य से कोई प्रांतीय मतदाता मिलने चला आए। अरुण जेटली अधिक बातूनी और मिलनसार स्वभाव के थे; झा के साथ वही अधिक बातें किया करते। इस बीच, झा ने चंद्रिका पब्लिकेशंस के नाम से प्रकाशन का एक छोटा कारोबार भी आरंभ कर दिया था; इस बैनर तले आरंभिक प्रकाशनों में सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक, सी.बी.आई. के भूतपूर्व निदेशक, जोगिंदर सिंह की लिखी हुई थी, जिसका शीर्षक था : इनसाइड सी.बी.आई.। उस पुस्तक का एक बड़ा भाग इस संबंध में था कि एजेंसी ने किस तरह चारा घोटाले में लालू यादव के गले में फंदा कसा।

सन् 2005 के आरंभिक दिनों में नीतीश कुमार ने जब मुख्यमंत्री पद पाने की अपनी अभिलाषा पूरी करने के लिए दोबारा पूरी तैयारी के साथ मैदान में कूदने का फैसला किया, उस समय झा की राजनीतिक भूमिका अदा करने की इच्छा को बहुत बल मिला। जे.डी.यू. और बी.जे.पी. के बीच अच्छे संबंधों में दरार पड़नी शुरू हो गई थी, क्योंकि

प्रतियोगी गुटों की महत्त्वाकांक्षाओं में टकराव और किसी एक व्यक्ति की प्रधानता को लेकर स्थिति तनावपूर्ण थी। लेकिन सन् 2005 के विधानसभा चुनाव में जब लालू निर्णायक रूप से अपना बहुमत खो बैठे तथा किसी को भी इतनी सीटें प्राप्त नहीं हुईं कि सरकार का गठन संभव हो सके, तब गठबंधन में कुछ लोगों को पक्का विश्वास हो गया था कि लालू यादव के पंद्रह साल के शासन को समाप्त करने का समय आ गया है। उन लोगों में से एक अरुण जेटली भी थे, जिन्हें बिहार की राजनीति में निजी तौर पर कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं करना था। बी.जे.पी. के महासचिव के रूप में बिहार के कार्य-प्रभारी की हैसियत से अरुण जेटली ने फसादी गुटबंदी से निकलकर नीतीश से सीधा संपर्क स्थापित करने का निश्चय किया। जेटली-नीतीश की साझेदारी अनेक ऐसे अक्खड़ और पैने तेवरों को निष्प्रभावी करने में सफल हुई, जिनके कारण गठबंधन खतरे में पड़ रहा था। इस साझेदारी ने उस वर्ष नवंबर में गठबंधन को जीत दिलाई। संजय झा उस धुरी का एक महत्त्वपूर्ण दाँता था, अर्थात वह जेटली और नीतीश के बीच व्यक्तिगत और समांतर महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में काम करने की जिम्मेदारी सँभाल रहा था। उसे ओहदा या पद नहीं दिया गया था, फिर भी वह बहुत जल्द इतना प्रभावशाली हो गया कि बी.जे.पी. और जे.डी.यू., दोनों में सहयोगियों को उससे ईर्ष्या होने लगी। 'गैर-संवैधानिक पदाधिकारी' कहकर उसकी निंदा की जाने लगी थी।

जैसे-जैसे समय गुजरता गया, वैसे-वैसे झा की उपयोगिता नीतीश की योजना के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होती गई, और राज्य स्तर पर बी.जे.पी. के लोग उसे और भी अधिक संदेह के साथ देखने लगे : बिहार के उच्च सदन का एक कनिष्ठ सदस्य सारे समय मुख्यमंत्री के साथ क्या गुप्त मंत्रणा करने में लगा रहता है? उसे नीतीश की कार क्यों दी जाती है, जबकि बिहार बी.जे.पी. में वरिष्ठतम सदस्यों को भी अकसर दोष दिया जाता है? झा ने किस प्रकार समीकरण बैठा लिया, जबकि नीतीश की निकटता पाने के लिए उनके द्वारा किए गए अच्छे-से-अच्छे सभी प्रयास विफल हो गए? झा में ऐसी क्या बात है? काल्पनिक और प्राय: द्वेषपूर्ण अनुमान इस विषय को घेरे रहते हैं कि झा को मुख्यमंत्री के घर में इतना अधिक महत्त्व क्यों मिला हुआ है; विश्वसनीयता के अभाव में यह बात बहुत दूर नहीं जा पाई है। झा का प्रभुत्व गठबंधन की आँखों में बहुत चुभता है, किंतु इसके जवाब में झा की सहज-बुद्धि सिर्फ इतना कहती है : ''मैं बहुत छोटा और अनुभवहीन था, कोई महत्त्वाकांक्षाएँ पालने या अपनी कोई कार्यावली अथवा योजना बनाने—तय करने की स्थिति मेरी नहीं थी। बात यह थी कि नीतीश कुमार और अरुण जेटली, दोनों ही बहुत शीघ्र समझ गए कि मैं एक ईमानदार हरकारा हूँ, मैं कोई अपना खेल नहीं खेल रहा हूँ; भाषांतर में कुछ भी छूट नहीं रहा है, संदेश केवल संबंधित लोगों तक ही पहुँचाया जा रहा है किसी अन्य को नहीं, यही कारण है कि वे मुझ पर विश्वास करने लगे होंगे।''

फिर भी, बी.जे.पी. में बहुत लोगों को झा के बारे में जो संदेह था, उसमें कुछ तो सच्चाई थी। जेटली और नीतीश के बीच संदेशवाहक की भूमिका निभानेवाला एक तरफ झुकने लगा था—नीतीश कुमार की तरफ। वह शायद स्वाभाविक था। झा के दीर्घकालीन हित बिहार में ही थे, और उसके दो गुरुओं में से एक, नीतीश ने अपने जीवन की जमा पूँजी उस राज्य में खर्च की थी। बी.जे.पी. के नेताओं ने झा को नीतीश के प्रति अधिक वफादार होने का दोष दे-देकर नीतीश के ज्यादा करीब धकेल दिया।

यहाँ तक कि जब वह सेवा-यात्रा के पीछे-पीछे सहरसा में पहुँचा, झा ने अपनी मूल पार्टी को छोड़ने तथा औपचारिक रूप से जे.डी.यू. में शामिल होने का निर्णय कर लिया था : ''मैं अपनी दोहरी पहचान से ऊब गया था, अपनी ही पार्टी के अंदर संदेह की दृष्टि से मैं तंग आ चुका था, और सच कहूँ तो, बी.जे.पी. की राजनीति की अपेक्षा मुझे नीतीश कुमार की राजनीति में अधिक विश्वास होने लगा था। मैं किसी शाखा से निकला आर.एस.एस. वाला नहीं था।'' पाला बदलने का निर्णय लेने से पहले झा ने अपने मन की दुविधा जेटली के सामने रखी थी और

उनकी मौन-स्वीकृति प्राप्त कर ली थी : बी.जे.पी. नेता के साथ उसके व्यक्तिगत समीकरण में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। झा बी.जे.पी. की ओर से बिहार के उच्च सदन का सदस्य था और उसका कार्यकाल समाप्त होने जा रहा था, और इससे पहले कि एक और अवधि के लिए उसकी सदस्यता का नवीकरण किया जाए, उसने नेतृत्व को लिखित रूप में सूचित कर दिया था कि वह एक और कार्यकाल के लिए सदस्य बने रहने का इच्छुक नहीं है। सहरसा में सर्किट हाउस के उस कक्ष में झा को पहले ही यह महसूस होने लगा था कि उसके सिर से बोझ उतर गया है, इस अपराध-बोध से उसे मुक्ति मिल गई है कि वह बी.जे.पी. के साथ विश्वासघात कर रहा था।

फिर भी, नीतीश की अंतरंग मंडली में झा एक पुराना भरोसेमंद आदमी था, एक ऐसा व्यक्ति जिसका राजनीतिक प्रशिक्षण या विश्वास अनिश्चित था, सार्वजनिक जीवन का जिसे अनुभव नहीं था, जिसकी आयु अभी इतनी नहीं थी कि नीतीश को घेरे हुए बूढ़ों के बीच बैठने योग्य हो। झा का जन्म सन् 1967 में हुआ था, नीतीश जब इलेक्ट्रिकल और सोशल इंजीनियरिंग करने बख्तियारपुर से पटना आए उसके एक वर्ष बाद। और शायद इसी कारण झा जाड़े की उस रात में नीतीश से पूछे गए इस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए उतना ही उत्सुक था, जितना कि स्वयं प्रश्नकर्ता : नीतीश ने राजनीति में अपने आरंभिक सफर के दौरान लालू यादव को आगे बढ़ाने में इतनी सक्रियता क्यों दिखाई? झा को उस अवधि के बारे में कुछ भी प्रत्यक्ष जानकारी नहीं थी, न ही उस व्यक्ति के शुरुआती कारणों के संबंध में कुछ मालूम था, जिसके साथ उसने अपना भविष्य, अपनी किस्मत जोड़ने का फैसला किया था।

उस वी.वी.आई.पी. विश्राम कक्ष में अच्छी-खासी ठंड थी। जीर्णोद्धार का मतलब था कि ऐसे स्थानों के पुराने जमाने के सभी प्रबंधों को उखाड़कर फेंक दिया गया है। गरमी के मौसम में हवा देनेवाले झरोखों में ए.सी. सेट लगा दिए गए हैं, अँगीठियों को सीमेंट से बंद कर दिया गया है, उनके ढलवाँ लोहे के बने कपाटों को कबाड़ के रूप में ठिकाने लगा दिया गया है। नए कमरों में वैसी चटकती आग की व्यवस्था नहीं है, जो नीतीश को बहुत भाती है। यही कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें वह लालू यादव के साथ साझा किया करते थे—उन दिनों जब वे जाड़े की अंतहीन शामें एक लोहे के बड़े कुंड या तसले में जलती लकड़ियों की आग के चारों ओर कुछ गिने-चुने लोगों की संगति में बैठकर बिताया करते थे। इसके सिवा, लालू के दरबार में गपशप बिलकुल अलग किस्म की होती थी। बहुत हुआ तो बातचीत राजनीति की तिकड़मों के इर्द-गिर्द घूम जाती थी, लेकिन अकसर बातचीत का लड़खड़ाता प्रवाह शराब के नशे में अपनी मर्यादा भूल जाता था। नीतीश कभी शराब को अपने आस-पास फटकने नहीं देते थे, और लालू की संगति में वह कुछ और नहीं बल्कि अपने आरंभिक दिनों की वही बातें दोहराना पसंद करते थे: 'सत्ता प्राप्त करूँगा किसी भी तरह, लेकिन सत्ता लेकर अच्छा काम करूँगा।'

सवाल टाइल के ठंडे फर्श पर एक घनघनाहट जैसा गिरा पड़ा था : आपने अपने आरंभिक काल में लालू यादव को आगे बढ़ाने में इतनी सक्रियता क्यों दिखाई?

नीतीश ने इलेक्ट्रिक ब्लोअर से गरम हवा का झोंका लिया, जैसे कि वह अपमान का घूँट पीकर सहज होने का प्रयत्न कर रहे हों, जवाब के बारे में विचार न करके यह सोच रहे हों कि सवाल जवाब के लायक है भी या नहीं?

''लेकिन लालू यादव को आगे बढ़ाने का कभी प्रश्न ही कहाँ था?'' वह बड़बड़ाए, उनका ध्यान अभी भी ब्लोअर की तरफ था। ''हमें हमेशा मालूम था कि वह किस किस्म का आदमी है, शासन करने के लिए पूरी तरह अयोग्य, कोई फोकस नहीं, कोई दूर-दृष्टि नहीं।''

तो फिर, क्यों? नीतीश फिर क्यों लालू का प्रमुख लिपिकार, लेखक बना हुआ था, यूनिवर्सिटी में उसके लिए वोट जुटाने का प्रचार कर रहा था, उसे बिहार विधानसभा में विपक्ष का नेता बनाने के लिए समर्थन बटोरने का काम कर

रहा था, सन् 1990 में उसे मुख्यमंत्री की कुरसी दिलाने के लिए सीटों की संख्या का हिसाब-किताब रख रहा था?

''उस समय और कोई विकल्प नहीं था'', नीतीश ने थोड़ी नाराजगी प्रकट करते हुए जवाब दिया, ''हम एक विशेष प्रकार की राजनीति से आए थे, पिछड़ी जातियों को मुख्य जगह देना आवश्यक था और लालू, राजनीतिक रूप से और संख्यात्मक रूप से भी, पिछड़ों के अत्यंत शक्तिशाली वर्ग से संबंध रखता था। निजी तौर पर मैंने भी महसूस किया कि हमें राजनीतिज्ञों की अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी हमारी अपनी पीढ़ी के लिए नेतृत्व छीन लेना चाहिए। लालू के सिवा कोई अन्य व्यक्ति विकल्प के रूप में नहीं था। वह भी इस बात को समझता था और उसने सही चालें चलीं। उसमें वे प्रतिभा थीं, गलत न समझें। लेकिन मैं लालू का समर्थक कभी नहीं रहा। मैंने कभी उसका सलाहकार या उसका चाणक्य, जैसा कि बहुत लोग मानते हैं, बनना नहीं चाहा। मैंने लालू में ऐसा कुछ नहीं देखा, जो अनुसरणीय हो।'' तत्पश्चात् नीतीश ने डिनर मँगवा लिया।

जिन दिनों राजनीति में लालू यादव का सूरज चढ़ रहा था, नीतीश के लिए वे दिन बहुत खराब साबित हुए। सन् 1977 में, आपात्काल-विरोधी लहर पर सवार लालू छपरा से लोकसभा में पहुँच गए। सन् 1980 में वह बिहार विधानसभा में सोनपुर सीट जीत गए और सन् 1985 में लालू ने अपनी सफलता दोहराई।

नीतीश का आरंभिक चुनावी रिकॉर्ड इतना खराब रहा कि उन्होंने राजनीति छोड़ने का इरादा कर लिया। उन्होंने जनता पार्टी के टिकट पर राज्य की विधानसभा के लिए हरनौत से पहला चुनाव लड़ा और हार गए, जबकि वह हरनौत को अपनी ही सीट समझते थे। लेकिन हरनौत से उनकी अपनी घरेलू सीट ही उनकी बरबादी का कारण बन गई; उनके प्रभावशाली कुर्मी रिश्तेदार उनके विरोध में एकजुट हो गए थे। उन्हें इस बात से बड़ा धक्का लगा होगा कि उन नाते-रिश्तेदारों में उनके अपने ससुरालवाले भी शामिल थे।

हरनौत क्षेत्र में सन् 1977 के चुनाव से पहले जातिगत गुटबंदी का दौर तेज हो गया था। दुसाध वर्ग ने कुर्मी-कोइरी जमीदारों के विरुद्ध मोरचा बाँध लिया था, वे बेहतर मजदूरी की माँग कर रहे थे, बेगारी समाप्त करने की माँग कर रहे थे; उनकी एक सबसे महत्त्वपूर्ण माँग यह थी कि जिस जमीन को वे जोतते हैं उस जमीन पर उन्हें कब्जा दिया जाए। उनको बरगलाने, भड़काने का काम सिंघवा नाम के एक भूमिहीन मजदूर ने किया, जिसने हरनौत जैसे संकुचित और अघोषित क्षेत्र में 'थ्रेस के स्पार्टाकस' का किरदार निभाने या उसकी नकल करने की कोशिश की होगी। वह एक हट्टा-कट्टा, मुसटंडा था और लचीले दिमाग का था। कुर्मी प्रभुत्व के विरुद्ध अटल था। वह डरकर पीछे हटनेवाला नहीं था। एक बार जब उस पर शारीरिक हमला किया गया था, तो उसने हमलावरों का डटकर मुकाबला किया था और उसके जवाबी प्रहारों से कुर्मी वर्ग के लोग हिल गए थे। सिंघवा को ऐसा सबक सिखाने की जरूरत थी कि दलितों को पैरों में गिरकर जान की माफी माँगनी पड़े।

कुर्मियों ने महाबीर महतो से संपर्क किया, जो एक स्थानीय कबीले का स्वेच्छाचारी सरदार था और राजनीतिक लोगों में उसका उठना-बैठना था। वह एक गुस्सैल, बदमिजाज आदमी था, बात-बात पर हथियार निकाल लेता था। उसे सिंघवा से कुछ निजी दुश्मनी का हिसाब चुकता करना था। सिंघवा ने उसके मुँह पर उसे चुनौती दी थी और कुर्मी वर्ग की प्रधानता का अंत करने की कसम खाई थी। बिहार में मतदान के कुछ दिनों पहले, महतो ने दलितों के एक गाँव पर सशस्त्र हमले की योजना बनाई, जहाँ उन्हें पता था कि सिंघवा तथा उसके साथी रात बिताने के लिए ठहरे हुए हैं। महतो की अगुआई में कुर्मी हमलावरों ने सिंघवा समेत ग्यारह दलितों को धर दबोचा और रात के अँधेरे में उन्हें पास के एक खेत की तरफ ले गए। वहाँ उन्होंने एक चिता जलाई, अपने बंदियों को रस्सी से बाँधा और फिर उन्हें लपटों में कूद जाने के लिए बाध्य किया। रात भर में बेलची गाँव का नाम, जघन्य जातिगत अत्याचार के कारण, राष्ट्र की सनसनीखेज खबरों का हिस्सा बन गया। उस अग्निकांड की झुलस नीतीश कुमार तक पहुँचना

लाजिमी था।

उस दुस्साहसी नर-संहार के लिए चिल्ला-चिल्लाकर कुर्मियों को दोषी बताए जाने पर, कुर्मियों ने इसे अपनी जाति के अस्तित्व पर आई आँच के रूप में लिया और इसके विरुद्ध उन्होंने एकजुट होकर एक मुहिम छेड़ दी तथा उस मुहिम को एक जनमत-संग्रह में बदल दिया, जिसमें मुद्दा यह था कि बाढ़-नालंदा क्षेत्र में, कुर्मियों के अधिकारों, उनके सामंती प्रभुत्व, उनके अत्याचारों की रक्षा में कौन सबसे आगे आएगा। उनकी कानों-कान सुनी गई माँग यह भी थी कि जो भी जीतेगा उसे यह सुनिश्चित कहना होगा कि बेलची नरसंहार के दोषियों को रिहाई मिल गई है, अर्थात् उन्हें बेदाग छोड़ा जा रहा है। लोहिया और किशन पाठक के विचारों को घोटकर पीनेवाले नीतीश ने उत्पीड़कों का पक्ष लेने, कुर्मियों के आंदोलन का नायक बनने से इनकार कर दिया। वह अपने कुछ मित्रों के साथ, अकसर माँगी हुई साइकिलों पर पीछे बैठकर, हरनौत में सब जगह जा-जाकर सामाजिक सद्भाव बनाए रखने की अपील करते और बेलची के दलित उत्पीड़ितों के साथ हुए अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का वादा करते। धौंस जमानेवाले, धृष्ट कुर्मियों ने उन्हें बागी करार दे दिया—यहाँ तक कह डाला कि जो आदमी अपने बचाव में खड़ा नहीं हो सकता, वह किसी की भी रक्षा कैसे कर सकेगा?

चुनाव में नीतीश का मुख्य प्रतिद्वंद्वी था भोला प्रसाद सिंह, वही आदमी जो चार वर्ष पहले नव-विवाहित नीतीश और उनकी वधू को अपनी कार में बिठाकर उनके घर बख्तियारपुर छोड़ने गया था। भोलाबाबू ने भी (वह खुद को इसी नाम से कहलाना अधिक पसंद करता है) समाजवादी परंपरा के अनुसार चलने का दावा किया, मगर वह एक धूर्त किस्म का आदमी था, बेगार टालनेवाला। उसे कुर्मी जाति और दलित-विरोधी वर्ग का साथ देने में कोई शर्म महसूस नहीं हुई, बल्कि उसे उच्च जाति के जागीरदार वर्ग का भी समर्थन मिलने लगा। नीतीश के पास बहुत अधिक साधन नहीं थे और न अधिक धन-दौलत थी, उनके समर्थक भी दलित और पिछड़ी जातियों के थे, जो निर्धन और गरीब थे। इसके अलावा, नीतीश अभी भी चुनावी व्यापार की चालों से अनभिज्ञ थे, कच्चे खिलाड़ी थे और आदर्शवादी विचारों में अधिक खोए रहते थे; उन्हें अवैध धन मंजूर नहीं था और न उसका प्रयोग। बाहुबल के प्रयोग से उन्हें नफरत थी। नतीजा, भोला प्रसाद सिंह जीत गया।

उस धूर्त समाजवादी घुमक्कड़ ने सन् 1980 में नीतीश को फिर मात दे दी, इस बार उसने अरुण कुमार सिंह, उर्फ अरुण चौधरी की उम्मीदवारी का समर्थन किया, जो बेलची नरसंहार के मुख्य अभियुक्तों में से एक था। इस प्रकार नीतीश कुमार को कुर्मी होने के कारण और कुर्मियों के पक्ष में खड़े न होने की वजह से दूसरी बार हार का मुँह देखना पड़ा।

नीतीश को यह सोचकर प्राय: आश्चर्य होता था कि उनके विवाह का रथ हाँकनेवाले को बार-बार उनका राजनीतिक जीवन खराब करने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई। उन्हें इसका उत्तर शायद कभी नहीं मिला होगा, क्योंकि भोला प्रसाद सिंह बड़ा ही मक्कार आदमी था, जिधर का पलड़ा भारी देखता था उधर लुढ़कने की कला वह बखूबी जानता था; जो लोग उस पर भरोसा कर लेते थे मौका मिलते ही उनसे कन्नी काटने में देर नहीं लगाता था। भोला प्रसाद सिंह ने सन् 1995 के विधानसभा चुनाव में सी.पी.आई. (एम.एल.) के साथ एक अनुपयुक्त गठबंधन की वकालत करके नीतीश को एक बार फिर सरकनी पर डाल दिया, हालाँकि लालू को गद्दी से उतारने के इरादे से नीतीश का यह पहला प्रयास था। सी.पी.आई. (एम.एल.) के साथ उस गठजोड़ ने सन् 1995 का खेल बिगाड़ने में बड़ी भूमिका निभाई, लेकिन अब इस बारे में बाकी बातें बाद में करेंगे। भोला प्रसाद सिंह अपनी घटिया सलाह के बावजूद ऐसा बना रहा जैसा उस पर कोई असर ही न पड़ा हो, और नीतीश की सलाहकार मंडली के आस-पास फिर उसने मँडराना शुरू कर दिया। सन् 2005 में नीतीश के मुख्यमंत्री बनने के कुछ समय पश्चात् ही वह बिहार

नागरिक परिषद् का अध्यक्ष पद पाने में कामयाब हो गया, और वह भी एक कैबिनेट मंत्री को सुलभ सभी भत्तों एवं सुविधाओं के साथ। पश्चिम पटना में स्थित अपने मंत्रीवर्गीय दुमंजिले मकान में उसने अपनी अत्यंत प्रिय स्मृतियों का पिटारा खोलकर हमारे सामने रख दिया और उनमें से चुनकर एक बहुत ही चित्ताकर्षक बात यह बताई, ''नीतीश के विवाहोत्सव में सबसे अधिक व्यस्त दिखनेवाला व्यक्ति वही था और वर-वधू को अपनी बिलकुल नई फिएट गाड़ी में बिठाकर उनको घर छोड़ने जाते हुए उसे अत्यधिक गर्व महसूस हो रहा था...वे पीछे की सीट पर बैठे हुए थे, शर्मीले-सकुचाए पक्षियों की तरह, और सारे रास्ते बातचीत का जिम्मा मेरा था; उन दिनों बख्तियारपुर में विरले ही ऐसा होता था कि दूल्हा-दुल्हन विवाह करके किसी कार में घर आए हों, बहुत रेअर चीज था।''

और फिर वह चला गया, नीतीश को चुनाव में लगातार दो बार हराने की योजना को अंजाम देने, यह कैसे हुआ?

''ओह, हो-हो-हो,'' सोफे पर उसका थुल-थुल शरीर हँसी के मारे थरथराने लगा, ''ओहो, राजनीति, राजनीति, वो सब राजनीति में होता है ना, जो बीत गई सो बीत गई।'' गोल-गोल, मोटे चश्मे के पीछे बड़ी दिख रही उसकी उन अनोखी आँखों में गुस्ताखी झलक रही थी। ''पॉलिटिक्स लंबी रेस है, समझिए ना, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ होता है।''

सन् 1980 में उनकी दूसरी पराजय के कुछ ही समय बाद एक दिन ऐसा भी आया कि नीतीश ने राजनीति से तौबा करने की घोषणा कर दी, कह दिया कि बहुत हो गई राजनीति। वह राजनीतिक जीवन का त्याग करना चाहते थे और एक सरकारी ठेकेदार बन जाना चाहते थे। ''कुछ तो करें, ऐसे जीवन कैसे चलेगा?''

यूनिवर्सिटी छोड़े हुए उन्हें सात वर्ष हो गए थे और मंजू से विवाह रचाए भी इतना ही समय बीत गया था। इन तमाम वर्षों में वह एक पैसा भी घर नहीं लाए थे, और उनके हालात देखकर लगता नहीं था कि वह जल्दी कुछ कमा-धमाकर ला सकेंगे। उनके पास जो करीब दर्जन बीघा जमीन थी, उससे कुछ धन मिलनेवाला नहीं था; उसकी उपज से केवल रसोई चलती रह सकती थी। बूढ़े वैद्यजी अपने चिकित्सालय से रोज के दस रुपए से अधिक कभी नहीं लाए। मंजू धीरे-धीरे एक ऐसे पति से ऊबने लगी, जिसे घर आने की फुरसत बहुत कम मिलती थी और अकसर खाली हाथ घर लौटते थे। पुत्र-वधुओं को अपने बेरोजगार निकम्मे पतियों के बारे में ताने, तीखी बातें सुननी पड़ती हैं; बिना काम-धंधेवाला पति अचानक पत्नी के लिए असहनीय बोझ बन जाता है, ऐसा बोझ जिसे सिर से उतार देना ही बेहतर होता है। मंजू एक नौकरी-पेशा आदमी की बेटी थी, उसने स्वयं एक शिक्षिका बनने का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उसने एक इंजीनियर से इस आशा में विवाह किया था कि वे घर बसाएँगे तथा दूसरे लोगों की तरह एक सीधा-सादा जीवन बिताएँगे, बहुत हुआ तो एक मध्यमवर्गीय जीवन। नीतीश की तरफ से कभी एक संकेत तक नहीं मिला कि वह भी ऐसा जीवन चाहते थे।

कभी-कभी नीतीश के व्यवहार से ऐसा लगता था जैसे उसने अपनी शादी में केवल हाजिरी दी थी, फिर शादी के परिणामों के बारे में सबकुछ भुला दिया था। विवाह हो जाने के बाद किन-किन बातों का ध्यान रखना होता है, वैवाहिक जीवन आरंभ हो जाने पर किस तरह का रहन-सहन अपनाना पड़ता है—यह सब कभी उसने सोचा ही नहीं। जब कभी वह घर आते, अपने कुछ साथियों को भी पकड़ लाते, जिन्हें देखकर लगता जैसे राजनीति की खुरदरी सड़क से उठकर चले आए हों, परिचय के नाम पर इतना ही होता कि वे सब मैले-कुचैले खादी-वस्त्र पहने हुए होते थे। उन सबको भोजन परोसा जाता, फिर वे बख्तियारपुर के घर में भूतल पर बने कमरे में सोने चले जाते —राजनीति पर चर्चा करने के लिए। उनका व्यवहार कुँवारे लड़कों जैसा होता था।

चुनावों में बार-बार पराजय मिलने से नीतीश चिड़चिड़े और सनकी हो चले थे। वह किसी शाम घर वापस आते तो सिर्फ अपने में ही खोए रहते या अपने मित्रों में। वह नहीं चाहते थे कि कोई उनसे उनके भविष्य के बारे में पूछें, घर

की जिम्मेदारियों के बारे में याद दिलाए जाने पर वह उलटा-सीधा जवाब देते। ''पति और पत्नी के बीच बहस और कलह होती रहती थी'', नीतीश के बख्तियारपुर के एक दोस्त ने अपना नाम न लेने की कसम देकर मुझे बताया, ''खुशी का माहौल नहीं था, मंजूजी को महसूस हुआ कि उनकी कोई कद्र नहीं है, उन्हें बिलकुल उपेक्षित छोड़ दिया गया है अपनी जिंदगी अपने सहारे चलाने के लिए। नीतीश हमेशा से गुस्सैल-टाइप थे, बहुत जल्दी गुस्सा खा जाते थे। लेकिन अब उनका साहस टूटने लगा था; अनाड़ी की तरह बरताव करने लगे थे। एक दिन तो वह खाना बीच में ही छोड़कर बाहर निकल गए। उन्हें अपने ऊपर शर्म आने लगी थी कि वह घर-परिवार के लिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं। उनके कुछ साथी दो-दो चुनाव जीत गए थे, वह खुद दोनों बार हार गए। वह स्वयं को उनमें से बहुत लोगों से बेहतर मानते थे, और इसी कारण उन्हें अपनी नियति अधिक क्रूर एवं दु:खदायी प्रतीत होने लगी थी, विचलित रहते थे।''

उस समय की राजनीति भी इसी तरह की थी, इमरजेंसी के बाद वर्षों तक अस्थिरता और अराजकता का माहौल बना रहा। जनता पार्टी, जिसके साथ नीतीश ने अपनी चुनाव-संबंधी खोज शुरू की थी, दो-तीन टुकड़ों में बँट गई, जिनमें से कई एकजुट हुए और फिर अपनी ही चंचल प्रवृत्ति के कारण पुन: बिखर गए। नीतीश डाँवाँडोल स्थिति में थे—कुछ समय के लिए लोक दल के साथ रहे, फिर दलित मजदूर किसान पार्टी (डी.एम.के.पी.) में चले गए, लौटकर लोक दल के एक गुट में शामिल हो गए, उसके बाद जनता पार्टी के एक खंडित अवतार के साथ हो गए और फिर वापस लोक दल में आ गए।

कुछ दिन अराजकतापूर्ण सत्ता का स्वाद चखने के बाद कांग्रेस का विरोधी-दल पुन: विपक्ष में आ गया। नई दिल्ली में इंदिरा गांधी ने पुन: गद्दी सँभाल ली थी; उन्होंने सन् 1980 में कांग्रेस की सत्ता में वापसी के बाद पटना में जगन्नाथ मिश्र को मुख्यमंत्री बना दिया था। 324 सीटों की विधानसभा में जनता दल की सीटें घटकर करीब 40 रह जाने के बाद, जनता के उत्तराधिकारियों के पास उन दिनों वसीयत में मिले मलबे में से चुनने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया था। उन्होंने एक-दूसरे को दोष दिया और झिकझिक की, वे सब खिन्न और दु:खी थे और जो शर्मनाक हार उन्हें मिली थी, उससे निपटने की कोशिश कर रहे थे। कोई संगठन या कोई सामान्य योजना नहीं थी, जिसमें वे योगदान कर सकें; कोई नियम नहीं थे, जिनके अनुसार चलना हो। सिर्फ प्रतियोगी सत्ता केंद्र थे, जिनके साथ टँगा रहा जा सकता था—चंद्रशेखर, चरण सिंह, देवी लाल, हेमवतीनंदन बहुगुणा। ये प्रवेश्य शिविर स्थल थे, निष्ठाओं की दरारहीन अदल-बदल हो रही थी, गठजोड़ बनाना आसान था और तोड़ना तो और भी आसान।

नीतीश कुमार का 32 बिहार विधायक क्लब में स्थित एक विपक्षी संस्था में नियमित रूप से आना-जाना रहता था; यह स्थान उस समय नीतीश के ही एक समकालीन व्यक्ति वशिष्ठ नारायण सिंह को आबंटित था, जो वर्तमान में जे.डी.यू. की बिहार यूनिट के अध्यक्ष हैं। नंबर 32 एक कमरे से अधिक कुछ नहीं था, और विद्यार्थी जीवन में नीतीश ने रहने के लिए जैसा कमरा किराए पर ले रखा था, उससे भिन्न नहीं था। फर्क सिर्फ इतना था कि नीतीश इसे अपना नहीं कह सकते थे और इसी कारण वह इसे अपने कमरे जैसा व्यवस्थित नहीं रख सकते थे। कमरे का हुलिया रेलवे प्लेटफॉर्म के मुसाफिरखाने जैसा था—आने-जानेवाले नेताओं, भावी नेताओं, उनके खुशामदीदों, उनके मतदाताओं, उनके चेला-चपाटियों के सामान, बिस्तरों तथा बंडलों से भरा रहता था। चाय नंदलाल से मँगाई जाती थी, जो विधायक क्लब के बिलकुल सामने 24 घंटे चाय का ठेला लगाए रखता था और साथ में खाने के लिए भी बहुत कुछ रखता था। जब कभी नीतीश रात को वहाँ रुकते थे, तो वह भी नंदलाल के ठेले से लेकर खाते थे, 'चालू' खाना—चावल या रोटी, दाल और सब्जी; अकसर सिर्फ लिट्टी और चोखा, बिहार का चलते-फिरते गुजारे योग्य खाना, जो अब बड़े-बड़े रेस्तराओं की भोजन-सूची में चढ़ गया है और बढ़िया, स्वादिष्ट व्यंजन का दरजा पा

गया है। कोयले की आँच पर सेंके गए सत्तू भरे आटे के गोलों को 'लिट्टी' कहते हैं, उन्हें आलू-बैंगन का भर्ता, कटी हुई प्याज तथा हरी मिर्च के साथ खाया जाता है। चाय उस ठेले के ऊपर रखे मिट्टी के तेल के स्टोव पर बनती थी : खाना कुछ स्टोव पर और बाकी क्लब की दीवार के सहारे बने मिट्टी के चूल्हे पर पकता था। उसका धंधा अभी भी उसी तरह सड़क किनारे चल रहा है और उसे उन दिनों का नीतीश आज भी अच्छी तरह याद हैं—उस आदमी की जेब में कभी भी पैसा नहीं होता था लेकिन वह अपना उधार चुकाने में कभी भूल नहीं करते थे, उधार खाते थे, उधारी हमेशा चुका देते थे। नीतीश कभी कमरा 32 के अंदर नहीं सोए, चाहे दिन भर घूमते रहे हों। कमरे में हर समय बहुत लोग घुसे रहते थे, बड़ी अव्यवस्था रहती थी। वह कंधे पर लटके अपने थैले में एक धुली हुई चादर रखते थे, जिसे बरामदे में बिछाकर सो जाते थे। नहाने-धोने के वास्ते वह अपने बहनोई के एहसानमंद रहे, जो रेलवे में काम करते थे, उनकी वजह से नीतीश को पटना जंक्शन पर प्रथम श्रेणी सुविधा का लाभ उठाने की छूट मिली हुई थी। पटना जंक्शन वहाँ से दूर नहीं था। अभी तक उनका भटकना जारी था।

लेकिन उन वास्तविकताओं को भूलना असंभव था, जिनसे वह आँखें फेरे हुए थे—बुढ़ाते माँ-बाप, साधनों का घटते जाना और खिंची-खिंची रहनेवाली पत्नी। मंजू ने बख्तियारपुर छोड़ दिया और अपने पिता के साथ रहने के लिए कंकड़बाग चली गई, जो फूहड़ तथा अनियोजित तरीके से बनी एक रिहाइशी बस्ती है, पटना के दक्षिण में एक निचले इलाके में। उसे गुलजारबाग में एक सरकारी स्कूल में अध्यापिका की नौकरी मिल गई थी, स्कूल उस बस्ती से ज्यादा दूर नहीं था। मंजू उस समय गर्भवती थी।

नीतीश अपना दूसरा चुनाव भी हार गए थे। उसके कुछ सप्ताह बाद ही, 20 जुलाई, 1980 को मंजू ने निशांत को जन्म दिया, जो उन दोनों का इकलौता बच्चा था। मंजू की गर्भावस्था के दौरान पति-पत्नी ज्यादातर एक-दूसरे से अलग रहे। ऐसी परिस्थितियों में यह संभव नहीं था कि नीतीश अपने बेटे की देखभाल या उसके लालन-पालन की तरफ ज्यादा समय या ध्यान दे पाते। बच्चा अपने नाना-नानी की देख-रेख में पल रहा था और नीतीश यदा-कदा ही वहाँ जाते थे। इसका एक कारण यह भी था कि नीतीश को वहाँ जाने पर ऐसा महसूस होता था जैसे परिस्थिति उनके मुँह पर ताना कस रही हो—आ गया वह इंजीनियर जिसने नौकरी करने से साफ मना कर दिया, एक ऐसा राजनीतिज्ञ जिसके पास मेहनत के बदले में मिली असफलता के सिवा कुछ नहीं है दिखाने के लिए।

यह शायद विफल राजनीतिज्ञ और लड़खड़ाते पिता के बीच इस अवरोध से उत्पन्न मानसिक यंत्रणा का ही परिणाम था कि बिहार को अपने भावी मुख्यमंत्री को खो देने का क्षण आ गया। एक सुबह वह अपने घर से ट्रेन पकड़कर, उद्वेलित और भारी मन से पटना में अपने उसी ठिकाने पर आ पहुँचे—32 विधायक क्लब—और कान पकड़ लिये; ''कुछ तो करें, ऐसे जीवन कैसे चलेगा?''

उनका मित्र नगेंद्र सिंह, जिसने दोनों हारे गए चुनावों में नीतीश के लिए काम किया था, कुछ देर उन्हें समझाता रहा। राजनीति का खेल किसी आप जैसे आदर्शवादी व्यक्ति के लिए नहीं है, अपना घाटा कम करो, अपना परिवार बचाओ; राजनीति के बारे में बाद में सोचना, जब आपकी आर्थिक स्थिति कुछ मजबूत हो जाए, आपको बूढ़े माता-पिता की देखभाल करनी है, आपकी एक पत्नी है, अब तो एक बेटा भी है। नरेंद्र ने एक लॉबी टेंट खड़ा किया था, जिसका नाम रखा : बिहार बेरोजगार इंजीनियर संगठन। यह एक मंच था और इसकी माँग थी कि सरकारी ठेकों में उन इंजीनियरों को प्राथमिकता दी जाए जिन्होंने आपात्काल-विरोधी आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए अपना व्यावसायिक जीवन एक तरफ रख दिया था। वे राजनीतिक रूप से सुसंबद्ध लोग थे, रियासत पाने की सामर्थ्य रखते थे यद्यपि यह जगन्नाथ मिश्र के नेतृत्व में सत्ता में वापस आई कांग्रेस सरकार थी। नीतीश एक सिविल ठेकेदार बनने का पक्का निर्णय करके आया था।

उसी समय नीतीश का एक और सहयोगी आ पहुँचा और उसने अशिष्टतापूर्वक नीतीश के इस कदम को वहीं रोक दिया वरना एक ऐतिहासिक संघर्ष की शुरुआत को पूर्ण विराम लग गया होता। वह एक भारी-भरकम स्थूलकाय आदमी था—विजय कृष्ण, मित्र और भावी शत्रु।

विजय कृष्ण उन्हीं जगहों से आया था, जहाँ से नीतीश आए, अठमलगोला से, जो बख्तियारपुर से थोड़ा आगे पूर्व में है और कुछ ज्यादा ही मुफस्सिल है। वह एक राजपूत था, उस क्षेत्र में जिसे एक प्रबल उच्च जाति माना जाता है। राजपूत समुदाय ने अकसर कुर्मियों के साथ मिलकर चुनाव जीतनेवाला गठबंधन किया था। दोनों के परिवार एक-दूसरे से परिचित थे, और किशोर नीतीश तथा विजय कृष्ण एक-दूसरे के घरों में आते-जाते रहते थे। जब उन्होंने रेलगाड़ी से पटना जाना शुरू किया, विजय कृष्ण एक सीट नीतीश के लिए रख लिया करता था, क्योंकि वह अठमलगोला से गाड़ी पकड़ता था, जो बख्तियारपुर से एक या दो स्टेशन पहले है। युवावस्था में दोनों की खूब पटती थी, खेल या मनबदलाव के लिए वे प्राय: साथ ही निकलते थे। राजनीति में दोनों की समान रुचि थी, दोनों राजनीति में आगे बढ़ने के लिए उतावले थे, दोनों अपने पहले प्रयास में विफल हो गए थे। लेकिन विजय कृष्ण की हर संभव कोशिश थी कि नीतीश मैदान छोड़कर भागने की न सोचे। ''मैंने कागज का वह टुकड़ा लिया और उसे वहीं फाड़कर फेंक दिया,'' विजय कृष्ण ने मुझे बताया, ''तब से हम दोनों के रास्ते अलग हो गए हैं, और नीतीश से मुझे कई मुद्‍दों का हिसाब लेना है, लेकिन मैं आज भी उतने ही पक्के विश्वास के साथ सोचता हूँ जैसा उस दिन सोचा था कि मैंने जो किया, सही था। यह सच है कि हम बहुत निराश थे और हमारी सोचने की शक्ति चुक गई थी। मैं पढ़ाने की नौकरी तलाश रहा था, नीतीश इधर-उधर के पत्र-पत्रिकाओं आदि में लिखकर थोड़ा-बहुत कमा लेते थे। समय बड़ा कठिन था, लेकिन उससे निकलने का रास्ता वह नहीं था, जो नीतीश ने चुना था। नीतीश जनता के बीच एक जाना-पहचाना चेहरा था, एक सूझ-बूझवाला राजनीतिज्ञ था, हम उसे किसी साइडी कंट्रेक्ट्री-बिजनिस के लिए नहीं छोड़ सकते थे।''

विजय को जहाँ तक याद है, नीतीश ने बहस करने की कोशिश की। उन्होंने पारिवारिक विवशताओं का जिक्र किया, बताया कि उन्हें यह सोचकर घोर निराशा और बेचैनी होती है कि अपने माता-पिता या अपनी पत्नी और अपने नवजात बच्चे के लिए वह कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। जीवन जीने योग्य नहीं रहा, वह अंदर से बहुत दु:खी, विक्षुब्ध और हताश थे; उन्हें अपने बारे में कुछ लोगों का यह कहना सही लगने लगा कि 'नीतीश एक निकम्मा, अकर्मण्य आदमी है।' नीतीश परेशान रहने लगे। वह उन लोगों को गलत साबित करना चाहते थे। ''मैंने नीतीश को एक ही बात कही। मैंने उन्हें कहा कि तुम्हारी परिस्थितियाँ कर्पूरी ठाकुर की परिस्थितियों से अधिक खराब नहीं है। कर्पूरी ठाकुर के पीछे कुछ भी नहीं था, उन्होंने हमेशा संघर्ष किया, कभी पैसा बनाने के बारे में नहीं सोचा, और फिर भी वह सार्वजनिक जीवन में अपनी प्रतिबद्‍धताओं के प्रति अडिग बने रहे। नीतीश या मेरे लिए हालात कभी इतने बुरे नहीं रहे होंगे जितने कर्पूरीजी के लिए रहे हैं। मैं समझता हूँ, मेरी यह बात नीतीश के दिमाग में बैठ गई।'' नीतीश ने फिर उसे फटे कागज को जमीन पर ही पड़े रहने दिया।

नीतीश ने हालाँकि विजय कृष्ण की रोषभरी सलाह मान ली थी, लेकिन उसमें नीतीश को कोई सांत्वना नहीं मिली। बख्तियारपुर में घर के हालात के बारे में सोचकर नीतीश को बहुत शर्म महसूस हो रही थी। इस खयाल से वह और भी पानी-पानी हुए जा रहे थे कि उनका बेटा नाना-नानी के घर में पल रहा है कि वह उसे छोड़कर भाग आए।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान उनका एक और मित्र हुआ करता था, नाम था सुरेश शेखर, जो एक अच्छा मित्र होने के साथ-साथ विश्वसनीय परामर्शदाता भी था। उसने राजनीति छोड़ दी थी और भारतीय रिजर्व बैंक में नौकरी कर ली थी, लेकिन विचारों से वह अभी भी पक्का समाजवादी और नीतीश का प्रेमी था। उसे पता चल गया

था कि कॉलेज के दिनों का उसका चेला खाली घूम रहा है और बहुत निराशा की स्थिति में है। सुरेश शेखर ने नीतीश को मद्रास आने का न्यौता दिया, जहाँ वह उस समय कार्यरत था। नीतीश कई सप्ताह के लिए दक्षिण की लंबी यात्रा पर चले गए और जब वापस आए, तो नई प्रेरणा, नए उत्साह से भरे हुए थे; यह प्रेरणा फिर उन्हें संभवत: शेखर से प्राप्त हुई थी।

अब वह सबसे पहले अपनी राजनीतिक जान-पहचान बढ़ाने के लिए बहुत अधिक उत्सुक थे; उनका छोटा-सा दायरा जो फिलहाल 32 और नंदलाल के चलते-फिरते ढाबे तक सीमित था, उनको कहीं पहुँचानेवाला नहीं था। उनके लिए सही लोगों से मिलना, संबंधों का निर्माण करना, एक नेटवर्क बनाना और वरिष्ठ नेताओं से परिचित होना आवश्यक था, ताकि लोगों को उनकी योग्यता एवं क्षमता का पता चल सके।

सन् 1980 में अपनी दूसरी पराजय के बाद नीतीश ने नियमित रूप से दिल्ली जाना शुरू कर दिया। वह जनता या लोक दल गुटों के भिन्न-भिन्न किंतु महत्त्वपूर्ण सरदारों—चरण सिंह और देवी लाल, बहुगुणा और शरद यादव से मिले। नीतीश को शरद यादव जैसे लोगों से भेंट करने के लिए प्राय: घंटों इंतजार करना पड़ता था। जी हाँ, वही शरद यादव जो अब जे.डी.यू. अध्यक्ष के रूप में नाममात्र की भूमिका निभाते हैं। लेकिन नीतीश को विश्वास दिलाया गया था कि वह अपने समय का उचित उपयोग कर रहे हैं, पटना के एम.एल.ए. क्लब की हवाखोरी करने से कुछ खास हासिल नहीं होगा। ''उन्हें दिल्ली जाने की बहुत ठीक सलाह दी गई थी'', विजय कृष्ण ने कहा, ''लोहिया के एक गंभीर अनुयायी के रूप में उनका परिचय पहले से वहाँ के लोगों को था, वे जानते थे कि यह वही व्यक्ति है, जिसने स्कॉलरशिप और विश्लेषण को राजनीतिक मेज तक पहुँचाया। दिल्ली में बैठे कुछ बड़े नेताओं के लोहिया विचार मंच और इसके प्रकाशनों के लिए नीतीश के लिखे लेखों की जानकारी थी।''

सन् 1983 में, नीतीश ने मथुरा में चंद्रशेखर की बहुचर्चित भारत यात्रा के अंतिम चरण में हिस्सा लिया। नीतीश की चंद्रशेखर तक सीधी पहुँच नहीं थी, लेकिन जब एक बार नीतीश को उनसे मिलने का मौका मिला, चंद्रशेखर को प्रभावित करने में उन्हें देर नहीं लगी। हालाँकि चंद्रशेखर ने अपने व्यक्तित्व को कांग्रेस में रहकर तराशा था, फिर भी उन्होंने इंदिरा गांधी के विरुद्ध बगावत की और अपने राजनीतिक जीवन के बीच लोहिया के विचारों को अपना लिया। सन् 1977 में जब केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनी उस समय वह जनता पार्टी के अध्यक्ष थे, और अपने साथ के एक सर्वाधिक प्रभावशाली विरोधी दल के नेता बने रहे। उन्हें 'अध्यक्षजी' कहा जाने लगा था, हालाँकि अध्यक्षता करने का अवसर उन्हें शायद ही कभी मिला हो।

युवा, बुद्धिमान, अभिलाषी और लोहियावादी नीतीश की अध्यक्षजी के साथ अच्छी पटरी बैठ गई। चंद्रशेखर ने सहायता और संरक्षण का वचन दिया, उन्होंने कुछ रुपया-पैसा भी कठिनाई में जी रहे इस युवक को दिया; हालाँकि यह स्पष्ट नहीं है कि कितना धन दिया।

दिल्ली में विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान वास्तविक राजनीति में, एक ऐसी शिक्षा साबित हुई, जिसका वर्णन करना संभव नहीं है। एक युवा राजनीतिज्ञ का आदर्शवादी होना एक अच्छा और आवश्यक गुण माना जाता है, लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं होता है। नीतीश ने उन यात्राओं के दौरान जाना कि हवा में तैरते रहने के लिए पंख फड़फड़ानेवाले अकेले वही नहीं हैं, बल्कि समग्र जनता पार्टी/लोक दल समूह उस तलहटी से ऊपर उठने की कोशिश में जुटा है, जहाँ सन् 1980 में इंदिरा गांधी ने उन्हें पटक दिया था। उनका जीवन दाँव पर लगा हुआ था। उस समय चंद्रशेखर जैसे कांग्रेस-विरोधी लोहिया-समर्थक पुन: जी-उठने के लिए संघर्षरत थे। इस संघर्ष को जारी रखने की खातिर उन्होंने कन्याकुमारी से अति कठिन पद-यात्रा पर निकलने का दृढ़ कदम उठाया था। भारत-यात्रा का उद्देश्य समाजवादी साधुता और आदर्शवाद के चूर्ण की पुडिया या घुट्टी बनाकर पिलाना नहीं था, यह एक

बहुत बड़े पैमाने पर आरंभ किया गया आक्रामक प्रचार-अभियान था, जिसके लिए हितबद्ध उद्योग की तरफ से भारी रकम खर्च की गई थी, पक्षपाती मीडिया (जनसंचार माध्यम) ने जिसे बढ़ावा दिया था, विचारधारा के विभिन्न प्रतिस्पर्धी गुटों ने जिसकी पूरे रास्ते आगे बढ़कर मदद की थी और इन सबका एक ही उद्देश्य था कि कांग्रेस का तख्ता दोबारा पलटना है। राजनीति ने युद्ध का रूप ले लिया था और इस युद्ध के लिए विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता थी। नैतिक लक्ष्यों को पाने के लिए अकसर अनैतिक साधनों का प्रयोग करना जरूरी हो जाता है, जिस प्रकार पांडवों का महाभारत साम, दाम, दंड, भेद की नीति पर चलने का उपदेश देता है।

नीतीश ने अगले चुनाव में आदर्शवाद के ऊपर वास्तविकता को प्राथमिकता दी। सन् 1985 में अंततोगत्वा उनकी जीत से पहले, असल में, व्यावहारिक धूर्तता से काम लेने की समझ उनकी बुद्धि में बैठ गई थी। उन्होंने सन् 1984 के संसदीय चुनाव में भाग नहीं लिया, क्योंकि वह समझ गए थे कि इंदिरा गांधी की हत्या के बाद कांग्रेस को जबरदस्त बहुमत मिलनेवाला है। फिर क्यों साधनों को फिजूल खर्च किया जाए? साधनों को इकट्ठा और संचित करो, अपने इरादे प्रकट मत करो, और सही समय की प्रतीक्षा करो।

सन् 1985 के विधानसभा चुनाव में कूदना आसान नहीं था, क्योंकि राजीव-इंदिरा लहर अभी तक चढ़ाव पर थी। और नीतीश का पुराना विरोधी, कुर्मी अधिकारों का तरफदार, अरुण चौधरी अभी भी मैदान में था। लेकिन इस बार नीतीश और उनकी लोक दल टोली—विजय कृष्ण नीतीश का सलाहकार-प्रबंधक बन गया था और उसने राजपूत समुदाय का महत्त्वपूर्ण समर्थन नीतीश के पक्ष में कर लिया था—बेहतर तैयारी के साथ मैदान में उतरी, दाँवपेंच का जवाब दाँवपेंच से, धमकी का जवाब धमकी से देने के लिए कमर कसे हुए।

इस बार का चुनाव नीतीश के लिए सफल होने या मिट जाने का सवाल बन गया था; नीतीश ने मंजू को वचन दिया था कि इस बार यदि वह चुनाव हार गए, तो राजनीति हमेशा के लिए त्याग देंगे और कोई परंपरागत काम-धंधा ढूँढ़कर अपने गृहस्थ जीवन में रम जाएँगे। इस वादे पर मंजू ने उदारता के साथ 20,000/- रुपए का इनाम प्रचार अभियान में खर्च करने के लिए उनकी झोली में डाल दिया—यह राशि लगभग उस दहेज की रकम के बराबर थी जिस पर नीतीश ने बवाल खड़ा कर दिया था। इस बार नीतीश के पास साधनों का अभाव नहीं था, चंद्रशेखर और देवीलाल जैसे कृपालु राजनीतिक संरक्षकों ने उन्हें धन मुहैया कराया था; देवीलाल की सरपरस्ती उन्हें हाल ही में प्राप्त हुई थी। नीतीश का प्रचार अभियान इस बार बेहतर ढंग से आयोजित था, उसमें अच्छा तालमेल था—चुनाव संबंधी कामकाज सँभालने में अधिक लोग लगे हुए थे, अधिक उपकरणों का प्रयोग किया जा रहा था, अधिकाधिक पोस्टर और झंडे लगाए गए थे, काम करने के लिए अधिक पैसा बाँटा जा रहा था। यह टी.एन. शेषन से पहले का युग था, तब तक इलेक्ट्रॉनिक मशीनें नहीं आई थीं। बिहार चुनाव के दिन लूटमार करने के लिए बदनाम था। नीतीश के चुनाव-प्रबंधकों ने अवैध रूप से बंदूकें और गोला-बारूद खरीदा और मतदान-केंद्रों को विरोधियों के हाथों लुटने से बचाने की जिम्मेदारी सँभालनेवालों में वितरित कर दिया; कुछ गुंडों को नीतीश के गुंडे जबरन पकड़कर ले गए, ताकि उनसे बूथों की रखवाली कराई जा सके—यह दंड-भेदवाला चुनाव था, इसमें सबकुछ जायज था। साम-दाम का प्रयोग वास्तविक युद्ध-स्थल से हटकर, दिल्ली और पटना में राजनीतिक परदों के पीछे, चुपके-चुपके, किया गया—राजपूतों जैसे जातिगत विरोधी गुटों के साथ गठजोड़ किए गए, कुर्मी मतदाताओं के कुछ नाराज गुटों को समझा-बुझाकर शांत किया गया (मंजू के परिवारवालों को मना लिया गया), खैरात का लेन-देन हुआ। देवीलाल ने हरियाणा से एक सुंदर सी, आरामदायक विलिस कार (सी.एच.के.-5802) नीतीश के लिए भिजवा दी, ताकि वह अपने निर्वाचन-क्षेत्र में आसानी से घूम-फिर सकें। नीतीश को 22,000 से भी अधिक मतों से जीत मिली और फिर कभी उन्हें विधानसभा में सीट के लिए तरसना नहीं पड़ा। वैवाहिक जीवन की शपथ निभाने के लिए उन्हें मंजू से

फिर कभी यह नहीं कहना पड़ेगा कि वह राजनीति त्याग देंगे।

विधानसभा में अपनी धाक जमाने में उन्हें कुछ भी समय नहीं लगा। विपक्ष में कुछ ही अच्छे युवा वक्ता थे, नीतीश उन सबसे आगे निकल गए। भोजपुर की एक सुसंस्कृत एवं सभ्य राजपूत वंशावली से आए जगतानंद के साथ नीतीश को अनेक प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर बोलने का अवसर मिला, जैसे कि आर्थिक और विकास संबंधी मुद्दे, जातिगत आरक्षण, समाज कल्याण आदि। जब कांग्रेस द्वारा पेश बजटों की समीक्षा करने की बात आती, विपक्ष की ओर से बोलने के लिए नीतीश को अग्रपंक्ति के वक्ता के रूप में खड़ा कर दिया जाता। नीतीश की पहचान को विस्तार मिला, परिश्रम पुरस्कृत हुआ। कुर्मी समुदाय के जिन लोगों ने नीतीश को लगातार दो चुनावों में पराजित कराया था, वे ही अब नीतीश में अपना एक नया नायक देखने लगे थे—शिक्षित, स्पष्ट बोलनेवाला, बड़े-से-बड़े मंच को खुद ही सँभालने में समर्थ। कुर्मियों के बीच धरमबीर सिन्हा के बाद से कोई ऐसा व्यक्तित्व नहीं रहा था, जिस पर वे गर्व कर सकें। धरमबीर सिन्हा एक सभ्य, सुसंस्कृत व्यक्ति थे; वह पाश्चात्य रंग में रँगे पत्रकार से राजनीतिज्ञ बने थे और बाढ़ निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते थे, वह इंदिरा गांधी की आपातकालीन सरकार में उप-सूचना एवं प्रसारण मंत्री के पद पर रहे। वही कुर्मी समुदाय, जिसने नीतीश को कुर्मियों का पक्ष न लेने पर बागी करार दे दिया था, अब नीतीश का बाँहें पसारे स्वागत एवं अभिनंदन करने के लिए उत्सुक खड़ा था। प्रतिपक्ष की ओर से एक युवा नेता के रूप में उनकी बढ़ती प्रतिष्ठा तथा भविष्य में बहुत आगे जाने की सँभावना को देखते हुए ही शायद उन्हें सन् 1987 में युवा लोक दल का अध्यक्ष बनाया गया।

सन् 1985 के आरंभिक दिनों में कहाँ तो नीतीश का राजनीति से मोह-भंग हो गया था और वह स्वयं को सभी तरफ से उपेक्षित समझने लगे थे, और कहाँ अब उनका महत्त्व इतना बढ़ गया था कि उनको दो-दो ताज पहनाए जा रहे थे। दो वर्ष के अंदर वह दिल्ली में एक मंत्री बनने जा रहे थे—सन् 1989 में वी.पी. सिंह की सरकार में उप प्रधानमंत्री बने देवीलाल के अंतर्गत कृषि मंत्रालय में निचली कुरसी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। जब तक राष्ट्रीय चुनाव हुए, नीतीश ने अपने घरेलू मतदाताओं के बीच अपना कद इस हद तक बढ़ा लिया था कि उन्होंने भूतपूर्व मुख्यमंत्री और बिहार के पिछड़ों के एक कद्दावर नेता, कांग्रेस के रामलखन सिंह यादव को बाढ़ निर्वाचन क्षेत्र में 75,000 से भी अधिक मतों से पराजित कर दिया।

लेकिन दिल्ली की ओर प्रस्थान करने से पहले नीतीश को बिहार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी थी, एक इच्छित भूमिका जो एक युगांतकारी गलती बननेवाली थी। वह भूमिका एक ऐसे व्यक्ति को जगह देने की थी, जो संपूर्ण राज्य पर हावी हो जाएगा और जब तक उसका समय समाप्त होगा, तब तक वह राज्य की हालत खराब करके रख देगा। नीतीश की सहायता से सन् 1989 में लालू यादव को विपक्ष का नेतृत्व हासिल हो गया, और एक वर्ष बाद उन्हें मुख्यमंत्री की गद्दी मिल गई। नीतीश ने उस सर्द रात में सहरसा सर्किट हाउस में इस संकेत से नजर बचाने का प्रयास भले ही किया हो कि इसमें उनका हाथ था, लेकिन उस समय के प्रमुख विरोधी दल नेताओं की इस बारे में एक राय है : नीतीश उन लोगों में शामिल थे जिन्होंने लालू यादव के मामले का समर्थन किया और उसे आगे बढ़ाया।

''वह लालू यादव के प्रमुख समर्थकों में से एक थे'', विजय कृष्ण ने कहा, ''नीतीश की गणना विधानसभा के गिने-चुने सुशिक्षित और स्पष्ट बोलनेवाले सदस्यों में होती थी, उनका बहुत मान-सम्मान और दबदबा था। उनकी बात में वजन होता था। उन्होंने लालू को आगे बढ़ाने में अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया।'' एक और नेता (जिसने नीतीश की नाराजगी मोल लेने के डर से अपना नाम प्रकट न करने का अनुरोध किया) ने मुझे बताया, ''नीतीश ने कोई भूमिका नहीं, बल्कि मुख्य भूमिका निभाई। सारे घटनाक्रम के पीछे वही थे और उन्होंने ही सुनिश्चित किया कि

लालू जो चाहता है, लालू को मिल जाए। नीतीश जानते थे कि लालू के पक्ष में संभावना नगण्य है, नीतीश यह भी जानते थे कि समय का तकाजा लालू की जाति के विरुद्‍ध है, फिर भी शायद उन्होंने लालू में कोई ऐसा फूहड़ आदमी देखा जिसकी चाबी वह दूर से घुमा सकते थे और नियंत्रण में रख सकते थे।''

सन् 1989 में कर्पूरी ठाकुर के निधन के बाद विपक्ष के नेता की खाली हुई सीट के लिए दो लोग होड़ में थे—अनूपलाल यादव और लालू। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि दोनों ही यादव थे, क्योंकि यादवों का न केवल लोक दल विधान-मंडल पार्टी में प्रभुत्व था, बल्कि पार्टी के सामाजिक-राजनीतिक आधार पर भी उनका आधिपत्य था। अनूपलाल यादव एक पुराना खिलाड़ी था और उसे बहुगुणा, देवीलाल तथा शरद यादव समेत कई लोक दल नेताओं का समर्थन प्राप्त था। तथापि, दिल्ली के नेताओं को इस बात की जानकारी नहीं थी कि एक नई पीढ़ी—वे छात्र जिन्होंने एक दशक पहले आपात्काल-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया था—महत्त्वाकांक्षी हो चुकी है और अच्छे मौके की तलाश में है। नीतीश और लालू इसी पीढ़ी के थे। शिवानंद तिवारी, नरेंद्र सिंह और विजय कृष्ण भी उसी वर्ग में शामिल थे। नीतीश ने युवा लोक दल के प्रमुख के रूप में अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया और दिल्ली के नेताओं के साथ लालू के केस की वकालत की। नीतीश के साथ उनके पुराने अड्डे 32, विधायक क्लब का अपना गुट था। ''अब एक बार यह साफ हो गया कि लालू वास्तव में एक गंभीर प्रत्याशी है, समर्थन करनेवालों की संख्या के हिसाब से उनका पलड़ा भारी हो गया'', नीतीश ने मुझे बताया। स्पष्ट रूप से युवा पीढ़ी के लिए बागडोर सँभालने का समय आ गया था। हम सब जानते थे कि लालू हमारी तरफ से सर्वोत्तम प्रत्याशी नहीं है, लेकिन राजनीति में बहुत सी दूसरी बातों पर भी विचार करना पड़ता है। मैं उसे लालू यादव की जीत नहीं कहूँगा, यह जीत युवा पीढ़ी की थी, हमारे वयस्क होने की जीत थी।

एक वर्ष बाद सन् 1990 में वी.पी. सिंह के बैनर तले इकट्‍ठा हुए साधारण गुटों का एक और गठबंधन बिहार विधानसभा का चुनाव जीत गया और लालू यादव मुख्यमंत्री की कुरसी पर बैठ गए। लालू की जीत का आधार उनका विपक्ष का नेता बन जाना नहीं था, बल्कि इस जीत के पीछे वह योजना थी, जिसका खाका नीतीश ने तैयार किया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री, वी.पी. सिंह, किसी दलित को बिहार का मुख्यमंत्री बनाने के पक्ष में थे। वह राम सुंदर दास को बनाना चाहते थे। लेकिन लालू किसी मुकाबले के बिना पीछे हटने को तैयार नहीं थे। नीतीश अब तक दिल्ली में कृषि राज्य मंत्री बन चुके थे; वह उन लोगों में से थे, जिन्होंने इस प्रकार की व्यूह-रहना की थी कि लालू किसी तरह बच निकल सकें। चंद्रशेखर मन में गाँठ लिये बैठे थे, क्योंकि वी.पी. सिंह ने प्रधानमंत्री पद की दौड़ में उन्हें पछाड़ दिया था, अत: चंद्रशेखर को राम सुंदर दास का विरोध करने के लिए उकसाया गया, जो 'वी.पी.' का आदमी था। वह केवल वी.पी. सिंह के प्रति अपनी जलन निकालने के लिये तैयार हो गए। उन्होंने अपने पुराने वफादार रघुनाथ झा को मुकाबले में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। झा को जीतने की कोई उम्मीद नहीं थी, लेकिन वह नई विधान-मंडल पार्टी में काफी वोट काट सकते थे, ताकि लालू राम सुंदर दास को मात दे सकें।

लालू ने 18 मार्च को गांधी मैदान में एक जबरदस्त जनसभा में मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। डेढ़ दशक पहले इसी दिन जे.पी. ने इंदिरा गांधी के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा था। इसी जगह जे.पी. ने अपने विद्रोह का बिगुल बजाया था। नीतीश इस अवसर पर लालू के साथ मंच पर खड़े होने और लालू की जीत के जश्न में शामिल होने के लिए दिल्ली से तशरीफ लाए थे। जिस आदमी को उन्होंने सत्ता दिलाई और उसकी जीत पर तालियाँ बजाईं, उसको सत्ता की गद्‍दी से उतारने में भी डेढ़ दशक का समय लगना था। वह नहीं जानते थे कि लालू का साथ देने का भी भविष्य में क्या परिणाम होनेवाला है। हवा उलटी चल पड़ी थी, पर किसी को पता न था कि यह सब इतनी जल्दी

सामने आएगा। अथवा यह कि गांधी मैदान ही इस उलट-फेर का गवाह बनेगा।

❑

5

अनिच्छुक विद्रोही

सन् 1992 आने तक नीतीश और लालू यादव के बीच बातचीत का रिश्ता खत्म हो गया था। इसका सबूत उन पत्रों में दबा पड़ा है, जिन्हें इकट्ठा करके पत्रकार श्रीकांत ने एक पतली-दुबली किंतु विशिष्ट पुस्तक का रूप देकर प्रस्तुत किया है। श्रीकांत पटना के उन गिने-चुने पत्रकारों में से हैं, जो समकालीन राजनीति से संबंधित विषयों पर अपनी कलम चलाने का श्रमसाध्य कार्य करते हैं। 'बिहार : चिट्ठियों की राजनीति' या 'बिहार: दि पॉलिटिक्स ऑफ लैटर्स' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में एक लंबा किंतु अल्प ज्ञात पत्र भी शामिल है, जो नीतीश ने लालू यादव को लिखा था। इस पत्र की तारीख बताती है कि यह पत्र उन्होंने लालू से औपचारिक रूप से विदा लेने अथवा अलग होने के दो वर्ष पहले लिखा था, लेकिन इसे पढ़ने से यह अवश्य पता चल जाता है कि दोनों के रिश्तों के बीच आई दरार का कारण क्या था।

यह उस पत्र की प्रतिकृति है। पत्र बड़ी बेबाकी से बताता है कि संबंधों में किस हद तक कड़वाहट पैदा हो गई थी। लेकिन इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू शायद यह है कि यह एक वास्तविकतायुक्त प्रलेख है, स्याही से लिखा हुआ; बिहार में लोक जीवन की झलक पाने के लिए यह एक दुर्लभ दस्तावेज है; बहुत कम लोग हैं, जो घटनाओं में घुमाव-फेर का पता लगाने के लिए लिखित दस्तावेजों को खँगालने का कष्ट करते हैं। नीतीश के विचार में लालू से उनके मतभेद इतने गहरे और महत्त्वपूर्ण थे कि उनका लिखित रिकॉर्ड रखना अत्यावश्यक था। ''आपसे अब आगे बात करना मुमकिन नहीं है,'' नीतीश ने शुरुआत में लिखा, ''क्योंकि मेरा मानना है कि आप गंभीर या महत्त्वपूर्ण मसलों पर चर्चा करने के बारे में संजीदा नहीं हैं। पार्टी, सरकार और लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति आपका रवैया और आपकी वर्तमान संगति ऐसी है कि उद्देश्यपूर्ण बातचीत के लिए कोई गुंजाइश या मौका नहीं रह गया है। इसी कारण मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ...जनता दल और यह सरकार अनगिनत नेताओं और हजारों कार्यकर्ताओं के वर्षों के संघर्ष का नतीजा है, हम सब उस संघर्ष का हिस्सा रहे हैं, जिसकी वजह से आप सत्ता में आ सके हैं...इस संघर्ष का नेतृत्व जे.पी. और कर्पूरी ठाकुर तथा रामानंद तिवारी सरीखे महान् नेताओं ने किया था...विपक्ष के नेता के रूप में आपके चयन तथा आपको बिहार का मुख्यमंत्री पद मिलने तक मैं आपके साथ चट्टान की तरह खड़ा रहा। मैं आपकी सरकार का बचाव करता रहा हूँ, और उसके लिए काम करता रहा हूँ। मगर इस सरकार ने हमारी सभी आशाओं को झुठला दिया है, यह सरकार आपके इर्द-गिर्द सत्ता-लोलुप गुटों के लिए खेल का मैदान बन गई है। एक बात साफ है कि आप सरकारी नियुक्तियों और ठेकों का लाभ किसी एक विशेष जाति वर्ग के लोगों को ही पहुँचा रहे हैं (इशारा यादवों की तरफ है, हालाँकि नीतीश ने इसे स्पष्ट नहीं किया है)। पिछड़ी जातियों में इस तरह के भेदभाव के कारण गैर-यादव गुटों में निराशा फैल रही है...मैं देखता हूँ कि आप सामूहिक रूप से किए गए प्रयासों एवं निर्णयों का श्रेय केवल स्वयं को दे रहे हैं। एल.के. आडवाणी को (अयोध्या जाते हुए, समस्तीपुर में) गिरफ्तार करने की योजना हम सबने मिलकर बनाई थी, लेकिन हमने इसका श्रेय उस तरह कभी नहीं लिया जैसे आपने लिया है। धर्मनिरपेक्षता की राजनीति कोई आपका बनाया हुआ मुरब्बा या चोगा नहीं है, धर्मनिरपेक्ष राजनीति कुछ ऐसी चीज है, जिसका प्रतिनिधित्व हम सब करते हैं, लेकिन आपने उस लबादे को अपने फायदे के लिए हथिया लिया है। इसे स्वार्थ की राजनीति कहते हैं...जब हमने आपको चुनने के लिए काम किया,

हमें विश्वास था कि आप कांग्रेस शासन के अंतर्गत पनपे भ्रष्टाचार और कुशासन का अंत करने के लिए काम करेंगे। लेकिन वैसा कुछ भी नहीं हुआ है, और ऐसा प्रतीत होता है कि आप स्वयं को सत्ता में हमेशा के लिए स्थापित करने तथा अपने यार-दोस्तों के कुटिल कार्यों में सहायक होने के अलावा किसी और कार्य में रुचि नहीं रखते हैं...सरकारी धन का खुलकर दुरुपयोग किया जा रहा है, कोई वित्तीय अनुशासन नहीं है, जिसके कारण कल्याण संबंधी कार्यक्रमों की उपेक्षा हो रही है, शासन की गाड़ी चल नहीं रही है, ठहरी हुई है...पार्टी के सच्चे और निष्ठावान कार्यकर्ता ठगा हुआ महसूस कर रहे हैं, नाराज हैं और अलग-थलग पड़ गए हैं, क्योंकि आप उनकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। आपने अब अपने वरिष्ठ सहयोगियों का अपमान करना शुरू कर दिया है, आप सिर्फ अपने चाटुकारों से घिरे रहना चाहते हैं...आपको सत्ता दिलाने में आपकी सहायता करते समय हमने नहीं सोचा था कि आप ऐसा करेंगे...''

यह पत्र लिखने की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई, उसके पीछे एक गंभीर कारण था। सन् 1992 के अंतिम महीनों में किसी समय की बात है जब दिल्ली में स्थित बिहार भवन में एक बहुत भद्दी, गाली-गलौज भरी घटना घटी। हुआ यह कि लालू मुख्यमंत्री की हैसियत से दिल्ली आए हुए थे। उस समय तक नीतीश मंत्री नहीं रह गए थे, क्योंकि वी.पी. सिंह सरकार गिर गई थी और कृषि मंत्रालय में देवी लाल के सहायक मंत्री के रूप में वह अपनी कुरसी खो चुके थे। अत: बिहार नेताओं के एक गुट के साथ वह लालू से भेंट करने चले गए और कुछ ऐसे कार्यों की सूची ले गए, जो वह चाहते थे कि होने चाहिए। वहाँ शिवानंद तिवारी, बिशन पटेल और लल्लन सिंह मौजूद थे। बी.जे.पी. के सरजू राय भी थे, जो नालंदा और सोन क्षेत्र में किसानों की ओर से सिंचाई तथा बिजली से संबंधित मुद्दों को उठाते आ रहे थे, लेकिन वह गेस्ट हाउस के दूसरे कमरे में बैठे हुए, नीतीश तथा अन्य लोगों का मीटिंग से लौटने का इंतजार कर रहे थे। किसान महीनों से शांतिपूर्वक आंदोलन कर रहे थे लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला था; नीतीश चाहते थे कि उनकी माँगों पर ध्यान दिया जाए।

मौजूद लोगों में से किसी को भी याद नहीं कि मुख्यमंत्री के कमरे में दाखिल होने के कुछ मिनट के अंदर ही ऐसा क्या हुआ कि बैठक अचानक गाली-गलौज में बदल गई और मुक्केबाजी होने लगी। लालू की चीख-चिल्लाहट सबसे ऊपर थी, उनका सारा गुस्सा लल्लन सिंह पर फूट रहा था, जिसे उन्होंने बड़े आक्रोश के साथ इशारा करते हुए कहा, ''निकल बाहर, बाहर निकल, साला।''

हल्ला-गुल्ला बिहार भवन के भूमि तल पर वी.वी.आई.पी. गलियारे में किसी विस्फोट की तरह गूँजने लगा, माँ-बहन की गालियाँ गोलियों के माफिक छूट रही थीं। बिहार में यह कोई असामान्य बात नहीं है, जब कोई झगड़ा बहुत बढ़ जाता है, तो सबसे पहले बेटियों के नाम गंदी-से-गंदी गालियाँ निकाली जाती हैं और उनका मुँह काला करने की धमकी दी जाती है। गालियाँ बरस रही थीं। सरजू राय यह देखने के लिए बाहर निकलकर आए कि माजरा क्या है। उन्होंने वी.वी.आई.पी. दरवाजे पर धक्का-मुक्की होती देखी। लालू को अपने सभी सुरक्षा-कर्मियों को आवाज लगाते सुना गया, जो कॉरिडोर के आगे कहीं सोए हुए थे। ''पकड़ के फेंक दो बाहर, ले जाओ घसीट के!''...मुख्यमंत्री शायद लल्लन सिंह को ही बाहर ले जाने के लिए चीख रहे थे; लल्लन सिंह को अपनी जुबान पर नियंत्रण नहीं रहता है, बहुत जल्दी कड़वाहट उगलने लगती है और वह बहुत जल्दी बेइज्जती करने पर उतारू हो जाता है। उसने तब या कभी पहले कुछ ऐसा कहा होगा, जिससे लालू भड़क गए। लेकिन इससे पहले कि उसे जिस्मानी रूप से उठाकर बाहर निकाला जाता, नीतीश अपने साथ आए लोगों को लेकर वहाँ से हट गए और यह कहते, बड़बड़ाते हुए कि ''अब साथ चल पाना मुश्किल है'',...बिहार भवन से बाहर हो गए। उन्होंने सरजू राय से एक पत्र लिखने के लिए कहा, जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो कि साथ छोड़ने की नौबत क्यों आई। नीतीश

वह पत्र बहुत शीघ्र किसी अवसर पर सार्वजनिक करना चाहते थे। राय ने वह पत्र लिखा, उपर्युक्त पत्र, लेकिन कुछ समय तक पत्र कहीं दबा पड़ा रहा। श्रीकांत के संकलन में वही पत्र रहस्यमय ढंग से सामने आ गया, इस टिप्पणी के साथ : 'पत्र का अंतिम पन्ना गुम हो गया है...''

जनता दल के तत्कालीन अध्यक्ष शरद यादव को जैसे ही बिहार भवन में हुई घटना की खबर लगी, वह शांति बहाल करने के लिए तुरंत दौड़ पड़े। उन्होंने लालू को बुलाया और उन्हें क्षमा माँगने के लिए कहा। लालू ने कहा कि वह तैयार हैं। शरद यादव ने नीतीश को बुलाया और उन्हें लालू से मिलने तथा मेल-मिलाप करने की सलाह दी। नीतीश ने मना कर दिया। शरद थोड़ा नरम पड़ गए—कहने लगे, मुझे कम-से-कम वह पत्र तो दिखाओ जो तुमने लिखा है, क्या मैं उस पर एक नजर डाल सकता हूँ? नीतीश ने सरजू राय द्वारा लिखकर दिए गए पत्र के मजमून में कुछेक बदलाव किए थे, लालू पर आक्रमण को पैना कर दिया था, लहजे को कुछ अधिक अड़ियल बना दिया था, और कुल मिलाकर, पत्र की भाषा को अपने मिजाज के अनुकूल ढाल लिया था।

नीतीश ने पत्र शरद को भेज दिया। अब यह तो नहीं कहा जा सकता कि शरद ने पत्र में उठाए गए मुद्दों पर लालू के साथ कभी कोई बात की या नहीं, लेकिन उसके बाद पत्र का कुछ अता-पता नहीं चल पाया। वर्षों बाद, जब वह पत्र श्रीकांत के हाथ पड़ा, उसने पत्र का अंतिम पन्ना गायब पाया। नीतीश जिस घटना के कारण इस प्रकार का पत्र लिखने के लिए बाध्य हो गए थे, उस घटना के गवाह रहे दो व्यक्तियों—शिवानंद तिवारी और सरजू राय ने अलग-अलग मुझे इस बात की पुष्टि की कि जो अंतिम पन्ना गायब है उस पर नीतीश की ओर से लालू का साथ छोड़ देने की स्पष्ट घोषणा थी : अब आपके साथ रहना व्यर्थ है, इन परिस्थितियों में आपसे अलग हटकर ही राजनीति करना उचित समझता हूँ...नीतीश ने अलग हो जाने का फैसला कर लिया था।

नीतीश ने अपने घोषित संकल्प को पूरा करने में और दो वर्ष लगा दिए। और फिर भी उन्होंने जो किया, किसी जल्दबाजी में या इच्छा से नहीं किया। लालू के चमचों द्वारा अत्यधिक परेशान किए जाने और दोस्तों की टोका-टाकी से तंग आकर उन्हें यह कदम उठाना पड़ा।

नीतीश जोखिम उठाने से अत्यधिक कतराते हैं, किसी राजनेता के लिए इसे हमेशा एक अच्छा गुण नहीं माना जा सकता। राजनीतिक अवसर सामने पाकर भी वह अकसर पीछे हट जाते हैं, वह बहुत अधिक सोच-विचार में पड़ जाते हैं और कई बार तो उन्हें विचारों का मंथन करते हुए महीनों लग जाते हैं। अब इसे साहस का अभाव कहें या धृष्टता की कमी, नीतीश उतावलेपन में या अविवेक से काम करने से डरते हैं।

सन् 1987 में राजीव गांधी के मंत्रिमंडल का त्याग करना, लोकसभा में 400 से अधिक सदस्योंवाली शक्तिशाली पार्टी को चुनौती देना वी.पी. सिंह के लिए कोई आसान निर्णय नहीं रहा होगा। फिर भी, उन्होंने इतना चुनौती भरा कदम उठाने का साहस किया, अपने मन की बलवती राजनीतिक अधीरता को दबने नहीं दिया, खेल की दिशा बदलने में एक क्षण भी नहीं लगाया और प्रधानमंत्री बन गए। यह निपट दुस्साहस और अवसरवाद ही था, जिसने उन्हें ऐसा कदम उठाने के लिए उकसाया और उन्होंने उत्तर भारतीय राजनीतिक चेहरा हमेशा के लिए पलटकर रख दिया। उनके विद्रोह के बिना न तो जनता दल होता, न वी.पी. प्रधानमंत्री बनते, न मंडल होता और न सामाजिक व्यवस्था या सत्ता बदली होती। नीतीश स्वयं भी राजीव तथा कांग्रेस को वी.पी. सिंह की दुस्साहसी चुनौती का ही परिणाम थे; इस प्रकार हवा का रुख बदलते ही केंद्रीय-स्थल की राजनीति गैर-उच्च जाति गुटों के हाथों में चली गई।

इसी स्थिति में अगर नीतीश होते, तो निश्चित रूप से नीतीश ने सन् 1987 के वी.पी. सिंह जैसा दिलेर कदम कभी नहीं उठाया होता; बोफोर्स तोप मामले में मात्र संदेह के आधार, एक विशाल संसदीय बहुमत से बने प्रधानमंत्री को

चुनौती देने का साहस नहीं किया होता। ''फूँक-फूँककर कदम रखते हैं...'' उनके एक पुराने एवं घनिष्ठ मित्र ने उनके स्वभाव के बारे में बताया, ''वह कभी जल्दबाजी में निर्णय नहीं लेंगे, कभी नहीं। जिस बात को वह सही समझते हैं उस पर भी वह लंबा सोच-विचार, चर्वण करते रहेंगे। वह एक बात को चबाते रहेंगे, चबाते रहेंगे, फिर वमन करेंगे और जाँचेंगे, विचार करेंगे और फिर दोबारा चर्वण करना शुरू कर देंगे। महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में उनके साथ कुछ समस्या है, बहुधा वह किसी रहस्यपूर्ण खोल में घुस जाते हैं, कोई नहीं जान सकता कि उनके दिमाग में क्या चल रहा है, वह निपट एकांतप्रिय हो सकते हैं।''

सहयोगियों के लिए नीतीश का दुविधाओं को लेकर लंबे समय तक अकेले में जुगाली करते रहना हतोत्साहित करनेवाला हो सकता है, लेकिन नीतीश ऐसे ही हैं—सतर्क, संकोची, कुछ-कुछ भीरू किस्म के, यह सब लगता है उन्हें अपने आरंभिक राजनीतिक जीवन में मिली असफलताओं का नतीजा है, वह एक चौकस इनसान हैं, प्राय: बहुत अधिक सावधान, जमीन मजबूत न हो, तो वह उस पर कभी पाँव नहीं रखेंगे। एक दशक बाद बी.जे.पी. के साथ गठबंधन, नरेंद्र मोदी के ऊपर उत्पन्न हुए तनावों के कारण चार साल तक पीड़ा सहने के उपरांत छिन्न-भिन्न हो गया। नरेंद्र मोदी को बी.जे.पी. के प्रबंधक के रूप में नकार देने के बारे में नीतीश के मन में कोई दुविधा नहीं थी —ठीक उसी तरह जैसे उन्होंने लालू यादव को बिहार का नेतृत्व करने लायक नहीं समझा—लेकिन उन्होंने तब तक इंतजार करना बेहतर समझा, जब तक कि हालात के हाथों वह मजबूर न हो जाएँ, बजाय इसके लिए वह खुद वैसे हालात उत्पन्न करें। दोनों मामलों में वह अत्यधिक दर्दनाक स्थिति से गुजर रहे थे, और उनको इस हालत में देखना दुखदायी था। ऐसी टाल-मटोल के बचाव में उनके अपने कारण थे : उनकी अपनी सोच थी कि विरोधात्मक परिस्थितियों को उस सीमा तक पहुँचने देना चाहिए, जहाँ निर्णय लेने की जरूरत ही न पड़े, निर्णय स्वयं प्रस्तुत हो जाते हैं।

जबकि नीतीश 1990 के दशक के आरंभिक काल में अनिर्णय के दौर में डूबते-उतराते रहे, लालू आराम से गद्दी का लुत्फ उठा रहे थे और बिहार पर राज कर रहे थे, कोई उनको चुनौती देनेवाला नहीं था। नीतीश का समय व्यर्थ जा रहा था। लालू की अहंकारपूर्ण विमुखता को देखकर बहुत हताश महसूस कर रहे थे, एक बार फिर। अब उनकी हैसियत एक सांसद की थी, लेकिन वह बिहार में बाढ़ निर्वाचन-क्षेत्र या अन्यत्र काम के जरिए अपने मतदाताओं में अपना प्रभाव बढ़ाने में स्वयं को असमर्थ पा रहे थे। लालू ने गांधी मैदान में अपने उद्घाटन भाषण में जो वादे किए थे उनकी ओर ध्यान देने का लालू का अब कोई इरादा नहीं दिख रहा था, लालू ने कहा था, ''अब कोई भ्रष्टाचार नहीं होगा, अब कोई बेईमानी नहीं होगी, यह कसम हम खाते हैं, नया लोक राज कायम करना है, जे.पी. और कर्पूरी के सपनों का बिहार बनाना है, वी.पी. सिंह के सिद्धांतों का बिहार बनाना है, लोक राज लाना है, एक नए बिहार का निर्माण करना है...''

लालू ने बिहार को एक नए सपने का वचन दिया था और तत्काल उन्होंने एक लंबे बुरे सपने को न्यौता देना शुरू कर दिया। कारणों का ढेर लगता गया और एक दिन नीतीश तथा लालू के बीच दीवार खड़ी हो गई। नई सरकार का संचालन कैसे किया जाना चाहिए, इस बात को लेकर दोनों के बीच मतभेद उत्पन्न हुए और बात बढ़ते-बढ़ते व्यक्तिगत शत्रुता तक जा पहुँची। जब नई दिल्ली में वी.पी. सिंह सरकार का सन् 1990 में पतन हो गया और नीतीश अब केंद्रीय मंत्री नहीं रहे, वह पटना लौट आए और स्टेट गेस्ट हाउस में ठहरने गए, लेकिन लालू ने उन्हें जगह देने से मना कर दिया; फिर उन्हें पश्चिम पटना में पुनाई चौक में अपने इंजीनियर दोस्त अरुण कुमार के घर में जाकर रहना पड़ा। लालू ने नीतीश की वह सुविधा भी छीन ली, अरुण कुमार का तबादला पटना से बाहर कर दिया और पुनाई चौक का वह फ्लैट दूसरे सरकारी कर्मचारी को आबंटित कर दिया। नीतीश पटना में दोबारा बेघर

हो गए। नीतीश ने अन्यत्र आश्रय की तलाश की, अपने पुराने परिचित और कारोबारी, विनय कुमार के घर ठहरे, जिस पर लालू का कोई अधिकार नहीं था। विनय कुमार का अतिथि-सत्कार नीतीश के लिए उस दिन तक उपलब्ध रहा जिस दिन वह मुख्यमंत्री बने और लालू को 1, अणे मार्ग से निकलना पड़ा। लेकिन 1990 के दशक के आरंभ में, लालू का प्रभुत्व शुरू होने के समय से, वह दिन बहुत दूर था।

पहले तो नीतीश ने लालू से लगाई हुई उम्मीद नहीं छोड़ी, वह लालू को बिहार से किए उनके वादों की याद दिलाते रहे, लोहिया के समाजवाद की याद दिलाते रहे। सरकार ऐसी होनी चाहिए, जो लोगों के निकट रहे और उनके ऊपर शासन करने के बजाय उनके हितों की रक्षा करे।

किए गए वादों की याद दिलाते रहने से लालू चिढ़ गए। कभी-कभी तो लालू को वचन की याद दिलाने पर इतना गुस्सा आ जाता कि उन्हें नीतीश की नीयत पर संदेह होने लगता, एक बार तो लालू ने कह ही दिया, ''सरकार हथियाना चाहता है का नीतीशवा?''... जब एक शाम लालू से बातचीत का कोई नतीजा न निकलने पर नीतीश हताश होकर चले गए थे। लालू ने उस शाम नीतीश की सलाह पर नाक-भौं सिकोड़ी थी, अरुचि दिखाई थी तथा झिड़कते हुए यहाँ तक कह दिया था कि शासक का शिक्षक बनने की कोशिश मत करो। ''तुम हमको राज-पाट सिखाओगे? गवर्नेंस से पॉवर मिलता है का? पावर मिलता है वोट-बैंक से, पावर मिलता है पीपॅल से, क्या गवर्नेंस रटते रहते हो?''

जैसा कि राजाओं के साथ अकसर होता है, लालू की भी यार-दोस्तों की एक अंतरंग-मंडली बन गई थी। इस मंडली के मुख्य किरदारों में लालू के लालची साले शामिल थे—साधु और सुभाष यादव। सत्ता और प्रतिष्ठा के इस मधु-कुंड के चारों ओर मधुमक्खी का छत्ता बनानेवालों में दूसरे लोग भी थे—यूनिवर्सिटी प्राध्यापक से राजनीतिज्ञ बना रंजन यादव, जो स्वयं को राजा के दर्शन-शास्त्र मार्गदर्शक के रूप में देखने की चाहत रखता था; हरियाणा का एक व्यापारी प्रेम गुप्ता, जो लालू को ऊँचे पद के साथ तड़क-भड़क बनाकर रखने की कला सीखने की शिक्षा देने का काम करने लगा था; अनवर अहमद, जिसे लालू की मंडली के लोग 'कबाब मंत्री' पुकारना अधिक पसंद करते थे क्योंकि उसे अपने मालिक को सभी तरह का बढ़िया-से-बढ़िया गोश्त खिलाने का हुनर प्राप्त था; पत्रकारों का झुंड, जो हमेशा लालू के विश्राम-कक्ष में जगह पाने के लिए, लालू से भेंट करने और सलाह देने के लिए तत्पर रहता था। वे सब मिलकर नीतीश के प्रति संदेहों का जहर लालू के कानों में डालते रहते थे : सावधान रहना, वह सिंहासन के पीछे की शक्ति बनना चाहता है और फिर सिंहासन पर अपना कब्जा जमाने की आस लगाए बैठा है। यही वह समय था, जब लालू ने नीतीश के लिए इस देसी कहावत का प्रयोग करना शुरू कर दिया—इसके पेट में दाँत हैं...

नीतीश ने सन् 1993 में किसी समय लालू से मिलना छोड़ दिया, यह कहना छोड़ दिया कि राज मत करो, बल्कि शासन का संचालन करो। शरद यादव ने एक-दो अवसरों पर उन्हें वापस मिलाने का प्रयत्न किया। नीतीश को लालू से भेंट करने के लिए, साथ चलने के लिए फुसलाया, लेकिन ये कोशिशें व्यर्थ साबित हुईं। लालू ने नीतीश के मुँह पर या उनकी पीठ पीछे नीतीश को चिढ़ाने-खिलाने और उनकी खिल्ली उड़ाने का कोई मौका नहीं छोड़ा। शरद के प्रयासों पर पानी पड़ गया, नीतीश को ठेस लगी। श्याम रजक, जो काफी लंबे समय तक लालू के वफादार रहे और सन् 2010 में नीतीश के पास चले आए, कई कैबिनेट बैठकों का हवाला देकर बताते हैं कि उन बैठकों में पूरे समय नीतीश को लताड़ने के अलावा कोई चर्चा नहीं हुई : ''क्लर्क है, फाइल पढ़ना, साइन करना, बेकार का बाबूगीरीवाला काम, हमसे भी वही करवाना चाहता है नीतीशवा...हम राजनेता हैं, हमारा काम लोगों का नेतृत्व करना है, न कि फाइलें पढ़ना, वह काम बाबुओं के लिए छोड़ दो।''

लालू चाहते थे नीतीश को पता चल जाए कि लालू द्वारा नीतीश का तिरस्कार और निरादर किया जा रहा है; इसके साथ ही, इस बात पर भी लालू की पूरी नजर रहती थी कि इन व्यंग्य बाणों की खबरें सीधे नीतीश तक तेज गति से पहुँच रही हैं। जब लालू ने सन् 1993 में गरमी के मौसम में अल्प सुविधा प्राप्त लोगों की एक बहुत बड़ी सभा, 'गरीब रैली' का आयोजन गांधी मैदान में किया और उसके जरिए अपनी बढ़ती लोकप्रियता दिखलाने का प्रयास किया, तब लालू ने नीतीश के प्रति अपनी घृणा को सार्वजनिक कर दिया। नीतीश से उस महा-रैली के बारे में कोई सलाह-मशवरा नहीं किया गया था और न नीतीश को उसमें भाग लेने का न्यौता दिया गया। रैली के प्रचार हेतु लगाए पोस्टरों से नीतीश का चेहरा उड़ा दिया गया था। लालू यादव की योजना से नीतीश कुमार का नाम काट देने की यह औपचारिक घोषणा करने जैसा था। सब समझ गए कि नीतीश को महत्त्व नहीं दिया गया है; नीतीश के लिए संकेत स्पष्ट था—तरफदारी वापस चाहिए तो झुककर सलाम करो।

नीतीश को इस कल्पना मात्र से घृणा थी। वह अपने-आपको बराबर का समझते थे, न कि दरबार के अनेक खुशामदीदों, कृपा-दृष्टि चाहनेवालों में से कोई एक। सामान्यत: लालू भी इस धारणा को मिटा देने का इरादा रखते थे। 'गरीब रैली' पोस्टरों से नीतीश का चेहरा हटाने के पीछे यही विचार था। वह चाहते थे नीतीश घुटनों के बल चलकर आए : नीतीश सीधे और अलग खड़े रहने के कायल थे।

लेकिन नीतीश उस रैली में जाने से खुद को नहीं रोक सके; वह एक बाहरी आदमी की तरह चोरी-छिपे वहाँ गए, ताकि गांधी मैदान में जमा भीड़ में कहीं एक तरफ खड़े होकर तमाशा देख सकें। उनके एक घनिष्ठ मित्र, ज्ञानेंद्र सिंह अथवा ज्ञानू ने कहा कि अगर उन्हें ठीक लगे तो वह अपनी मारुति कार से उन्हें वहाँ ले जाएगा। ''रैली वाले दिन बहुत तेज गरमी थी,'' ज्ञानू ने बताया, ''और शुरू में हम कोई ठीक-ठाक जगह नहीं तलाश सके। नीतीश नहीं चाहते थे कि कोई उन्हें देखे और फिर भी वह रैली में हाजिर होने के लिए बहुत उत्सुक थे। अंतत: हमें मैदान के दूसरे किनारे पर गाड़ी खड़ी करने की जगह मिल ही गई। मुझे याद है कि हमने भारी गरमी की वजह से गाड़ी का ए.सी. पूरे समय चालू रखा। नीतीश कुछ नहीं बोले। वह गाड़ी के अंदर बैठे हुए पीछे से स्टेज की तरफ देखते रहे। एक मौके पर मैंने कहा कि उन्हें स्टेज पर होना चाहिए था, फिर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा, वह केवल देखते रहे और कुछ समय बाद उन्होंने चलने के लिए कहा।'' ज्ञानू को यह भी याद है कि उसने नीतीश से पूछा था कि क्या वह गरमी से थोड़ी राहत पाने के लिए सोडा पीना चाहेंगे। नीतीश ने फिर भी कुछ नहीं कहा। गांधी मैदान लालू के चाहनेवालों से खचाखच भरा हुआ था, जगह नहीं थी फिर भी लोगों का हुजूम चला आ रहा था। लालू जब बोलने के लिए स्टेज पर आगे आए, लोग खुशी से पागल हो गए; लालू के हाथ हिलाने भर से भीड़ झूम उठी। लालू ने जैसे ही बोलना शुरू किया, तालियों की गड़गड़ाहट इतनी घनी थी, मानो बादल फटा हो; उनकी ठिठोली और फब्तियों पर सारा जमघट एक साथ ठठाकर हँस पड़ा था। स्टेज पर खड़े होकर बोलने का उनका लहजा कमाल का था; उनकी देहाती बोली और शब्दों को घुमाने की कला, उनकी मूर्खतापूर्ण बातों और उनके फूहड़ आचरण का मुकाबला पूरे भारत में कोई नहीं कर सकता था, सहसा टूट पड़ने और जीतने की चालबाजी उनसे बेहतर कौन जानता था। छोटे पद या दरजे के पदाधिकारियों, मातहतों की नजर में लालू उन्हीं के बीच से निकला वह इनसान था, जिसने सत्ता के सिंह द्वार को तोड़कर अंदर घुसने का साहस दिखाया, सिंहासन पर कब्जा कर लिया; अब वही इनसान उन्हें वचन दे रहा था कि जो उन्होंने कभी नहीं सोचा, उनका अपना होने जा रहा है—सत्ता में दावेदारी का सपना। वे अपना सिर गर्व से ऊँचा करके चल सकते हैं। लालू ने अपने मतदाताओं को मतवाला कर दिया, उन पर वशीकरण मंत्र छोड़ दिया, वे उनके उपासक बन गए। लोगों की नजर में वह मसीहा बन गए। नीतीश किस प्रकार कुदरत की इस गर्जना शक्ति का मुकाबला कर पाएँगे? इस विचार से उन्हें यंत्रणा होने लगी; सोडा पीने से

कुछ होनेवाला नहीं था।

नीतीश अब और भी अधिक खोए-खोए, विचारमग्न रहने लगे। वह संसद् सदस्य के रूप में अपना कर्तव्य निभाने की खातिर दिल्ली लौट गए। वह निराशा में डूबे होने के बावजूद अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाए कि वह लालू से पूरी तरह अलग हो जाएँ या उनसे समझौता कर लें। उन्हीं दिनों की बात है, मैं संसद् के अंदर उन्हें इधर-उधर खोज रहा था। जनता दल गुट के एक व्यक्ति ने मुझे बताया था कि लालू-नीतीश फूट में जरूर कोई मजेदार कहानी सुनाने का मसाला मिल सकता है। लालू के तौर-तरीकों से नीतीश की निराशा बढ़ती जा रही थी, लेकिन लालू को परवाह नहीं थी। उनमें उठा-पटक होना करीब-करीब तय था, बात पूरी तरह अलग हो जाने तक पहुँच सकती थी। मैं कहानी की सूँघ लेने गया लेकिन मैंने नीतीश को सतर्क एवं हठी पाया। उन्होंने एक साल पहले गुस्से में जो पत्र लालू को लिखा था, अभी तक रहस्य बना हुआ था; आमने-सामने, नीतीश के चेहरे से कुछ पता नहीं चलता था। उन्होंने ऐसा दिखाने की कोशिश की, जैसे फूट या दरार पड़ने की बात सब बकवास हो। उन्होंने ऐसा भी प्रकट नहीं होने दिया कि लालू के व्यवहार से वह ठगा महसूस करते हैं अथवा लालू ने उन्हें किनारे तक धकेलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, हालाँकि जब हम बात कर रहे थे, वह संसदीय पार्टी में एक विभाजन के लिए समर्थन जुटाने में लगे हुए थे। बिहार के कई वरिष्ठ सांसद भी वैसा ही अनुभव करने लगे थे जैसा नीतीश—लालू द्वारा उपेक्षित एवं अपमानित। लालू उनकी सलाह नहीं मानते हैं, प्राय: उनको मिलने का समय नहीं देते हैं, उनके अनुरोधों को बिना देखे ही खारिज कर देते हैं। इस गुट में ऐसे-ऐसे लोग थे, जैसे जॉर्ज फर्नांडिस, बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री अब्दुल गफूर, भूतपूर्व विदेश मंत्री हरि किशोर सिंह। नीतीश को समझते देर नहीं कि इन लोगों को लेकर लालू के विरुद्ध एक गठबंधन किया जा सकता है; लेकिन विचार अभी हवा में छिट-पुट गोली दागने जैसा था; वह उन सब बिखरी-बिखरी गोलियों को इकट्ठा करके लालू को मार गिराने हेतु तोप का गोला बनाने के प्रयास में लगे हुए थे, लेकिन अभी तक इस बारे में निश्चित नहीं थे कि कामयाब होंगे या नहीं। लालू को गद्दी से उतारने के पिछले प्रयासों को जनता दल के उच्च नेताओं का समर्थन नहीं मिला था, हालाँकि अकेले में वे जरूर स्वीकार करते थे कि लालू सरकार बखेड़ा बना रहा है, लेकिन वे खुलकर लालू का विरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा सके। अपराधों का बोलबाला था, धन-वसूली के लिए अपहरण करना रोजमर्रा की बात हो गई थी, विकास परियोजनाएँ ठप्प पड़ी हुई थीं, अधिकारी वर्ग का मनोबल गिर गया था और उन्हें काम करने में रुचि नहीं रह गई थी—लालू उन्हें उसी काम के लिए आदेश देते थे, जिससे उनका अपना मतलब सिद्ध हो, वह राज्य के बड़े-से-बड़े अधिकारियों को भी 'किरानी' यानी क्लर्क कहकर अपमानित करते थे। लालू के शासनकाल में कई वर्ष तक बिहार सरकार द्वारा केंद्र सरकार से प्राप्त धनराशि केंद्र को लौटाई जाती रही, क्योंकि राज्य सरकार बराबर की राशि जुटाने में असमर्थ साबित हुई। राज्य की हालत बदतर हो रही थी। लेकिन हैरानी की बात है, लालू फिर भी लोगों में हीरो नंबर वन बना हुआ था, ऐसा बाहरी जादूगर जिसने दूर-दूर तक छोटे, निचले दरजे के पदाधिकारियों में यह गर्वीली भावना भर दी थी कि अब सत्ता की चाबी उन्हीं लोगों के नियंत्रण में है। लालू ने जनता की बड़ी आड़ खड़ी करके राज्य में दुर्व्यवस्था फैलाने का काम किया। लालू का दुर्ग अजेय था। उनके विरोधी अनेक थे और इन विरोधियों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी, फिर भी लालू से लड़ाई मोल लेने योग्य हथियार उनके पास नहीं थे।

उस दिन संसद् में नीतीश ने मेरी पूछताछ को अनावश्यक कहकर खारिज कर दिया और मुझे राजनीतिक गपशप की टोह लेनेवाला पत्रकार समझ लिया, जिनका काम कुछ इधर-उधर की जोड़कर मसालेदार खबर बनाना होता है। ''कोई मतभेद नहीं है, डेमोक्रेटिक पार्टी में तर्क-वितर्क होता है लेकिन बिहार में हमारी सशक्त सरकार है लालूजी के नेतृत्व में, अच्छा काम कर रही है''...

हालाँकि, उसके कुछ ही समय बाद, नीतीश ने अपने दस्ताने ढीले किए और एक घातक पंजा दिखाया। पटना से गंगा के उस पार वैशाली लोकसभा सीट के लिए एक उप-चुनाव होना था। लालू ने भूतपूर्व मुख्यमंत्री और राजपूत कबीले के सदस्य सत्येंद्र नारायण सिन्हा की पत्नी किशोरी सिन्हा को नामजद किया। किशोरी सिन्हा का मुख्य मुकाबला एक और राजपूत महिला लवली आनंद से था, जिसकी शिराओं में राजपूत वंश का लहू नहीं था, राजनीति के क्षेत्र में एकदम नौसिखिया थी और जिसकी पहचान की असलियत सिर्फ इतनी थी कि वह एक गुंडे-राजनीतिज्ञ आनंद मोहन सिंह की पत्नी थी। लालू के लिए यह प्रतिष्ठा की लड़ाई थी, नाक बचाने का सवाल था, इस परीक्षा में उन्हें सिद्ध करना था कि क्या वह पिछड़ों, दलितों और मुसलमानों में अपनी पहले से मजबूत बुनियाद में उच्च-जाति राजपूतों को भी सम्मिलित कर सकते हैं। नीतीश ने जान-बूझकर वैशाली प्रचार-अभियान में हिस्सा लिया, जिसका तात्पर्य पिछड़ी जातियों में गैर-यादवों को यह संदेश देना था कि इस चुनाव में वह लालू के साथ नहीं हैं। पिछड़ी जाति गठबंधन टूट गया। किशोरी सिन्हा चुनाव हार गईं। लालू को अपमान का घूँट पीना पड़ा। नीतीश को भरोसा हो गया कि वह अपने लिए एक अवसर का द्वार खोलने में कुछ हद तक सफल हुए हैं। इस अवसर को बड़ा करने का समय जल्दी उपस्थित होगा। लेकिन उस मौके को पकड़ने के पहले वह फिर आना-कानी करने लगे।

विजय कृष्ण वही आदमी है, जिसने नीतीश को एक साइडी कंट्रेक्टर बनने से पीछे खींचा था। उनके मुख से मैंने वह कहानी सुनी कि किस तरह उन्होंने नीतीश को विद्रोह करने के लिए उकसाया था।

कहानी में दो समानांतर धाराएँ चलती नजर आती हैं, जिनसे स्पष्ट संकेत मिलता है कि राजनीति के मैदान में यह लालू और नीतीश के बीच व्यक्तित्व की लड़ाई है। बाहर से बिहार की पिछड़ी जातियाँ मिलकर एक इतना मजबूत खेमा प्रतीत होती हैं कि अकसर आश्चर्य होता है यह सोचकर कि सत्ता पर काबिज होने में उन्हें इतना लंबा समय क्यों लगा। सही-सही जाति संख्या का पता लगाना बहुत कठिन है, क्योंकि पिछली बार जाति आधारित जनगणना 1931 में की गई थी, जब अंग्रेजों का शासन था; जनगणना की उस प्रथा को भारतीय संविधानवादियों ने त्याग दिया। तब से सामाजिक और राजनीतिक वैज्ञानिक 1931 की जनगणना के आँकड़ों को आधार मानकर जातियों की संख्या और प्रत्येक जाति में लोगों की संख्या को जनसंख्या वृद्धि के अनुसार करीब-करीब सही अनुपात में रखते चले आ रहे हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार, राज्य की कुल आबादी में 60 प्रतिशत हिस्सा पिछड़ी जातियों का बनता है। ये जातियाँ राजनीतिक रूप से शायद ही कभी विनम्र व अज्ञाकारी रही हों, और फिर भी 1990 के दशक तक, जब लालू का उदय हुआ और मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुसार आरक्षण लागू किए जाने के फलस्वरूप सत्ता का पिरामिड उलट गया, पचास वर्ष के अंदर पिछड़ी जाति से संबद्ध कोई भी मुख्यमंत्री चार साल से अधिक गद्दी पर नहीं रहा।

इसका एक कारण शायद यह रहा है कि पिछड़ी जातियाँ, अपनी सामूहिक शक्ति के बावजूद राजनीतिक और सामाजिक रूप से विभाजित रही हैं। उस मजबूत युद्ध-शिविर के अंदर अकसर शत्रुतापूर्ण और लड़ाकू किस्म के परस्पर विरोधी गुट छोटी-छोटी कोठरियों में बसते थे और प्रत्येक गुट उस मलाई पर हाथ फिराने के मौके की तलाश में रहता था, जिसका उन्हें लंबे समय से इंतजार था : कुम्हार और धानुक, नोनिया और तेली, तत्मा और लोहार, मल्लाह और बढ़ई, तेली और बनिया, अमात एवं धुनिया, केवट और खटीक, कोइरी और कुर्मी—एक-एक जाति को अगर उँगली पर गिना जाए, तो तकरीबन 136 की लंबी सूची बन जाएगी। कुल जनांकिकी में करीब 14 प्रतिशत हिस्सा यादवों का बनता है, इस कच्चे अनुमान के अनुसार, सारे गुटों में यादव जाति की प्रधानता है।

लालू एक टिकाऊ बहुमत के साथ सत्तारूढ़ हुए और उन्हें अपनी मरजी के अनुसार हिस्सा-बाँट करने के लिए

राजनीतिक नक्शे को विकृत करने का मौका मिल गया—स्थानीय सरकारी नियुक्तियाँ, सरकारी क्षेत्र के उद्यमों, पुलिस और प्रशासनिक पदों पर भरती जहाँ पैसा बटोरा जा सके, लाभदायी सरकारी ठेके, भू-संपत्ति का आबंटन, परिवहन और शराब के लाइसेंस। उनमें से अधिकांश को प्रभावशाली यादवों ने हथिया लिया, जिनमें लालू के साले साधु और सुभाष भी थे। जब मंडल आयोग की सिफारिशों पर आधारित आरक्षण पर सुप्रीम कोर्ट ने सन् 1992 में अपनी मुहर लगा दी, लालू ने आरक्षण लागू करने में बहुत तत्परता दिखलाई। लेकिन गठबंधन सरकार में गैर-यादवों की पकड़ में एक बात आ गई : जनसंख्या में सर्वाधिक होने के नाते, ऊपर-ऊपर की सारी मलाई यादवों के हिस्से में आएगी, शेष को तलहटी चाटनी पड़ेगी। नीतीश ने इसका विरोध किया। सन् 1993 में कर्पूरी ठाकुर की पुण्यतिथि की वर्षगाँठ पर आयोजित एक स्मारक समारोह में, उन्होंने लालू सरकार को चेतावनी दी कि स्वर्गीय नेता ने बिहार की विशिष्ट परिस्थितियों के मद्देनजर मंडल सूत्र में जो-जो संशोधन सुझाए थे, उनकी अनदेखी न की जाए—अर्थात् कमतर सुविधा प्राप्त समुदायों अथवा अत्यधिक पिछड़े वर्गों को आरक्षण कोटे के अंदर एक कोटा दिया जाना चाहिए अन्यथा उनकी हालत वैसी-की-वैसी ही बनी रहेगी, उसमें कुछ सुधार नहीं होगा। लालू ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत, लालू ने यह षड्यंत्रपूर्ण हवा फैलाने में मदद की कि कुर्मियों और कोइरियों को कोटा सूची से निकाल दिया जाएगा। परंतु लालू ने गैर-यादव पिछड़ों की जितनी अधिक उपेक्षा करने और उन्हें चिढ़ाने का प्रयत्न किया, उनके सुर लालू के प्रति उतने ही अधिक तीखे होते चले गए। कुर्मियों और कोइरियों ने उनकी अगुआई की, क्योंकि गैर-यादव पिछड़े वर्गों में यही दो समुदाय सबसे अधिक दबंग और संख्यात्मक रूप से शक्तिशाली थे। उन्होंने विरोध प्रदर्शन आयोजित करने शुरू कर दिए, भले ही उनका स्वरूप जनता दल के बड़े खेमे के अंदर एक सामाजिक लॉबी गुट खड़ा करने जैसा था। उन्हें उनके वैध अधिकारों से वंचित रखा जा रहा था, वे कोसने लगे, निंदा करने लगे, और इससे ज्यादा चोट पहुँचानेवाली बात क्या होगी कि पिछड़ों की हिमायत करनेवाला लालू यादव जैसा व्यक्ति ही उनको अपेक्षित अधिकार नहीं दे रहा था : यादव नए ब्राह्मण बन गए थे, विशेषाधिकारों को हड़पनेवाले।

लालू-विरोधी लहर फरवरी 1994 में एक जबरदस्त सैलाब बनकर गांधी मैदान में उमड़ पड़ी। यह एक विद्रोह था, बगावत थी, लेकिन फिर भी थी एक अंदरूनी बगावत। प्रदर्शन के समर्थकों ने औपचारिक रूप से जनता दल से किनारा नहीं किया था, वे एक जाति, कुर्मी समुदाय के बैनर तले इकट्ठे हुए थे। जैसा कि इसका नाम रखा गया था, 'कुर्मी चेतना रैली', यह कुर्मी पुनर्जागरण को समर्पित एक मंच था। इस प्रदर्शन में जमा लोगों की संख्या और उनके जोश की बात करें, तो कुछ माह पहले लालू के गरीब रैली को इसने बहुत पीछे छोड़ दिया था। घर में खुफिया रिपोर्टों पर आँखें गड़ाए बैठे थे और 'कौन-कौन आया—कितने लोग आए' का हिसाब ले रहे थे, वास्तव में सिहर उठे होंगे। लालू को यह जानने की बड़ी उत्कंठा थी कि वे क्या कह रहे थे और उनकी माँग क्या थी। उनके लिए यह जानना सबसे जरूरी था कि क्या नीतीश ने उस रैली में शामिल होने का फैसला किया है। वह बिहार के सबसे विख्यात कुर्मी नेता माने जाते थे और लालू के साथ उनके रिश्तों में आई खटास पटना की खबरी दुनिया के लिए कोई गुप्त रहस्य नहीं रह गया था। अगर नीतीश चेतना रैली के मंच पर चढ़ने का निर्णय करता है, तो संबंध-विच्छेद और औपचारिक हो जाएगा। रैली के लिए निश्चित तारीख से दिनों पहले, लालू ने नीतीश को एक संदेश भिजवाया था कि यदि वह रैली में गए, तो उनके इस कृत्य को एक विद्रोह समझा जाएगा। लालू का तर्क था कि वह रैली उनकी सरकार के विरुद्ध एक षड्यंत्र है। अगर नीतीश उसमें भाग लेते हैं, तो यह साथ मिलकर चलने के उद्देश्य के साथ एक विश्वासघात कहलाएगा, लालू का चाहे जो भी तात्पर्य रहा हो। कुछ हद तक तो वह समझ रहे थे कि नीतीश उनकी अवज्ञा करेंगे, फिर भी वह पूरी तरह आश्वस्त हो लेना चाहते थे।

1, अणे मार्ग के पीछे की लॉन में जहाँ लालू और उनकी टोली बैठी हुई थी, बिलकुल उसके पीछे ही सादी पोशाक में एक सिपाही के हाथों में एक वॉकी-टॉकी निरंतर चट्-चट् कर रहा था। लालू समझ गए कि कुर्मी समुदाय के लोग बहुत बड़ी तादाद में गांधी मैदान में जमा हुए हैं। उनके लिए इससे भी अधिक दिलचस्प खबर सिर्फ एक आदमी के बारे में थी : ''आया जी नीतीशवा? पता लगाओ कहाँ है''...

नीतीश गांधी मैदान से कुछ ही दूरी पर विजय कृष्ण के छज्जू बाग स्थित मंत्रीय आवास में अपने कुछ मित्रों एवं समर्थकों से घिरे हुए अपना गुस्सा निकाल रहे थे। हाल ही में विजय कृष्ण की लालू के साथ एक नोक-झोंक हुई थी। उन्होंने मंत्रिपद से इस्तीफा दे दिया था और एक सक्रिय विरोधी हो गए थे। विजय कृष्ण का मानना था कि कुर्मियों की यह खदबदाहट ही सही समय है, जब लालू पर पलटवार किया जा सकता है और यह काम नीतीश से बेहतर कौन कर सकता है। उन्होंने नीतीश को सुबह-सुबह अपने घर बुला लिया था और नाश्ते पर तथा उसके उसके बाद भी वह नीतीश को गांधी मैदान में विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व सँभालने के लिए प्रोत्साहित करते रहे थे।

नीतीश अनिश्चय की स्थिति में थे और हमेशा की तरह अपनी दुविधा के साथ सींग भिड़ाए बैठे थे। वह जानते थे कि यह बात लालू को कतई मंजूर नहीं होगी, और उनका गुस्सा भी भड़क उठेगा। नीतीश यह बात भी अच्छी तरह समझ रहे थे कि छज्जू बाग से कुछ कदम गांधी मैदान की ओर बढ़ाना उन्हें हमेशा के लिए भारी पड़ जाएगा, उस दिशा में एक बार कदम बढ़ाकर पीछे मुड़कर देखना कभी संभव नहीं होगा। वह दोनों संभावनाओं से डरे हुए थे। क्या वह कूदने के लिए तैयार हैं? क्या उन्होंने परिणामों के बारे में सोच लिया है? जिस पार्टी को वह अपनी मानते हैं उसके बिना वह क्या करेंगे? क्या उन्हें यकीन है कि वह एक बार फिर राजनीति के अनिश्चित पथ की ओर जाने के लिए तैयार हैं, जिधर कोई भविष्य नहीं है, कोई दिशा नहीं है बैरी जंगल के सिवा, जिसमें फिर से मारा-मारा फिरना होगा? उनके मन में यही द्वंद्व चल रहा था।

''उस सुबह इंतजार के कुछ घंटे बहुत कष्टकारक थे'', विजय कृष्ण ने कहा, ''कष्ट सबसे अधिक नीतीश के लिए था। वह अच्छी तरह समझ रहे थे कि लालू के साथ चल पाना अब उनके लिए संभव नहीं है, लेकिन इतनी बात कहने का साहस करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था। वह कभी आमने-सामने दो-दो हाथ करनेवाले नहीं रहे, कोई खुद ही टकराने चला आए, तो अलग बात है। वह लालू से दूर भागने के कगार पर थे और फिर भी वह उस सुबह हम सबसे तथा अपने-आपसे पूछ रहे थे कि लालू क्या सोचेगा!''

विजय कृष्ण हर पंद्रह मिनट पर किसी-न-किसी को गांधी मैदान भेजकर रिपोर्ट मँगवा रहे थे कि वहाँ जमा हुए लोगों का मिजाज कैसा है और भीड़ कितनी है। हर बार उन्हें खबर मिलती कि ज्यादा-से-ज्यादा लोग आते जा रहे हैं, उनका जोश बढ़ा हुआ है और गुस्सा तेज है। लंच का समय हो गया, लेकिन नीतीश ने अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया था। विजय कृष्ण की पत्नी ने खाना मेज पर रख दिया, किंतु नीतीश का मन भोजन करने का नहीं था। वह रुँधे गले से हवा निगल रहे थे। ''जाओ'', विजय कृष्ण तथा अन्य लोगों ने आग्रह किया, ''जाओ अभी, ऐसा अवसर आपको फिर कभी नहीं मिलेगा, इतना विशाल और बना बनाया मंच फिर कभी आपको न्यौता नहीं देगा कि आओ, बंधन की जंजीरें तोड़ो और एक स्वतंत्र इनसान के रूप में अपनी नई पहल करो। अभी नहीं गए, तो फिर कभी नहीं जा पाओगे। सोचो कि लालू क्या सोचता होगा। वह घबराया हुआ है, तालाब में है, उसका सबसे बड़ा भय तुमको लेकर है कि तुम जाओगे। उसका भीषण भय तुम्हारा सर्वोत्तम अवसर है! जाओ!'' वे जहाँ थे, वहीं से उन्हें रोषपूर्ण भाषण लाउड-स्पीकरों के माध्यम से सुनाई पड़ रहे थे, उसके साथ ही भीड़ का बढ़ता शोर भी सुनाई दे रहा था।

दोपहर में तीन बजे के आस-पास, नीतीश जैसे ही चेतना रैली के मंच पर चढ़े, मैदान में जमा भीड़ को लगा कि

उनका उद्देश्य तो सामने खड़ा है और फिर भीड़ की गर्जना के सुर बहुत तेज हो गए। मंच पर आरूढ़, नीतीश को तत्काल आभास हो गया कि गोल-मोल बात करने, शब्द-छल का प्रयोग करने की कोई गुंजाइश नहीं है, यह आर या पार की घड़ी थी : दूर-दूर से आए लोग टालमटोल बरदाश्त नहीं करेंगे, वे सीधे-सीधे अपनी माँगों के बारे में सुनना चाहते हैं। नीतीश रेखा लाँघ चुके थे। खुद की परख अब उन्होंने उन लोगों को सौंप दी थी जो मुख्यमंत्री को चुनौती देने के लिए उठ खड़े हुए थे। अगर अब वह चूके, तो खतरा दोगुना हो जाएगा। पीछे देखने का सवाल ही नहीं था, भीड़ खुद चलकर उनके पास आ गई थी, विरोधाभासों का घड़ा भर चुका था। अब उन्हें निर्णय लेने की जरूरत नहीं थी, निर्णय उनके ऊपर सवार हो गया था। ''भीख नहीं हिस्सेदारी चाहिए'', वह गरजे, ''जो सरकार हमारे हितों को नजरअंदाज करती है, वो सरकार सत्ता में रह नहीं सकती''...

उन्होंने चिल्ला-चिल्लाकर अपनी ललकार लालू को सुना दी। अंतत: उन्होंने सारी सावधानियों को हवा में उड़ा दिया और चेतना रैली में आए सभी लोगों के मन में कोई शंका नहीं रही कि इस संघर्ष में नीतीश किस तरफ खड़े हैं। लेकिन उस दोपहर, वह बीच हवा में लटके रह गए थे। उनके पास अपना कोई मंच नहीं था, जिस पर वह उतर सकें। और जो मंच वह बनाएँगे, उन पर चोरी करने का इल्जाम लगेगा।

❑

6

दूसरा सतीश कुमार

कंकड़बाग का वर्णन उसके नाम से कहीं अधिक भयंकर तसवीर प्रस्तुत करता है। 1960 और 1970 के दशक में पटना के राजेंद्र नगर की निम्न आयवर्गीय रिहाइशी बस्ती में रहते हुए कंकड़बाग का जिक्र आने पर हम इसकी कल्पना सभ्यता के परे किसी बड़े दलदल भरे क्षेत्र के रूप में किया करते थे। आज उस कीचड़-दलदल भरे स्थान पर अराजकता का एक बड़ा सा इलाका है, जहाँ छोटे-छोटे फ्लैटों की ऊँची-ऊँची इमारतें एक-दूसरे से सटी और टकराती हुई खड़ी हैं, मल-जल निकास की व्यवस्था को धता बताकर; लगता है जैसे पूरी-की-पूरी नगरी शौच की खाई में धँसी हुई है; बिजली और टेलीविजन के तार घरों-मकानों में कहीं भी छेद करके अंदर खींचे गए हैं जैसे हर मकान रोशनदान पर ही जी रहा हो; मॉन्टेसरी को चारों ओर से शराब-खानों और अश्लील पिक्चरें दिखानेवाले इंटरनेट कैफे की अनेक दुकानों ने घेरा हुआ है; छोटे-छोटे कबूतर-खानों जैसे मकानों की ढेरी की तलहटी में डीजल का गोदाम है और उसके बगल में चल रहे फर्नीचर के कारखाने में ऑक्सीऐसिटाइलीन (रंगहीन गैस) की लपटें फूत्कार करती हुई विनाश को निमंत्रण देती हैं। लेकिन सहायता केंद्र दूर नहीं है, कोई चिंता न करें; पड़ोस में करीब आधा दर्जन अस्पताल जले का उपचार करने का दावा करते हैं, एक तो मल्टी-स्पेशियलिटी बिल्डिंग की सबसे ऊपर की मंजिल पर है : सड़क स्तर पर गाड़ियाँ ठीक करने के कारखाने चल रहे हैं, फिर प्राइमरी स्कूल, फिर नर्सों के लिए हॉस्टल, उसके ऊपर कंप्यूटर ट्रेनिंग कॉलेज, फिर आई.ए.एस. कोचिंग सेंटर और सबसे ऊपर आग से झुलसे लोगों का निदान केंद्र। मनुष्यों और पशुओं का कूड़ा-कचरा धूल-मिट्टी और डीजल के धुएँ के साथ इधर-उधर उड़ता रहता है, पालतू मुरगियाँ प्रदूषण पी-पीकर खरखराती हैं, उन्हें इतनी बेरहमी से तार के पिंजड़ों में कैद रखा जाता है कि आप सोचेंगे कि इससे तो उनकी मौत भली। मांस काटने की दुकानों के पास गिरे-पड़े खून पर मक्खियों की दावत होती है। अथवा वे जगह-जगह इकट्ठा हुए गंदे पानी और कीचड़ के आस-पास यह देखने पहुँच जाती हैं कि वहाँ फल और सब्जी विक्रेता उनको दावत देने के लिए क्या नई चीज लेकर आए हैं। कसाई के झोंपड़े से बाहर फेंके गए छीछड़ों पर कुत्ते आपस में गुर्राते हैं। मक्खियों की चूमी हुई मिठाई मिलेगी, और जंग खाए डिब्बों से बर्फ की कुल्फी; एक खरीदो, हैजा मुफ्त मिलेगा। शायद इसी कारण आस-पड़ोस में दवा-विक्रेताओं और डॉक्टरों की इतनी भरमार है, हर दूसरे ब्लॉक में या तो कोई क्लीनिक या नर्सिंग होम मौजूद है या अस्पताल; उनके साइन-बोर्ड रात भर नियॉन-लाइट में ऐसे चमकते हैं जैसे पिगाले में बड़ी-बड़ी कंपनियों के विज्ञापन-बोर्ड अपनी चमक-दमक द्वारा दूर से लुभाते हैं। कंकड़बाग में स्वास्थ्य से जुड़े इस उद्योग का प्रति व्यक्ति मुनाफा सर्वाधिक है।

तब भी उन दिनों, कंकड़बाग कोई ऐसी जगह का नाम नहीं था, जहाँ आप जाना चाहते बशर्ते कि आपको बाध्य न किया जाए, एक बहुत बड़ा दुर्गंध भरा निचला इलाका था कंकड़बाग, कोई नहीं सोच सकता था कि एक दिन यहाँ का चप्पा-चप्पा खुदरा दुकानों और बिलबोर्डों से भर जाएगा। मानसून की पहली बारिश पड़ते ही कंकड़बाग कीचड़ और दलदल से भर जाता और अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलानेवाले कीटाणुओं की जन्म-स्थली बन जाता था, साल का बाकी समय इसके ठीक होने में बीत जाता। हायसिंथ (काई) अपना साम्राज्य खड़ा कर लिली

(कुमुदिनी के फूल) और जलकुंभी की लताओं को निगल जाती; जलमग्न नालियों में सभी तरह के जीव पनपने लगते—जैसे इल्ली, भेक, घोंघा, सर्पमीन अथवा इ-मछली और मेढक—पानी के किनारों पर मच्छरों की बाढ़ जिनका पेट भरने के लिए काफी नहीं होती थी; विविधता के लिए मानव-विष्ठा का ढेर, टनों की मात्रा में सुबह-शाम हर समय मौजूद रहता ही था।

जब कभी हम चोरी-छिपे घर से बाहर निकल पाते, कंकड़बाग इलाके के चारों ओर बरसाती पोखरों तथा नालों में कीचड़, दलदल को चीरते हुए हम टाट के कपड़े में मछलियों को पकड़ा करते। टाट के बोरे के अंदर आ जाने के बाद उन चाँदी जैसी चमकती मछलियों का फड़फड़ाना हमें बड़ा मजेदार लगता था—इनमें लोच, कार्प, बार्ब, कॉरि, टेट्रा सभी प्रकार की मछलियाँ होती थीं, इनके अलावा भी होती होंगी, मगर हमें नहीं पता और न हमें इसकी परवाह थी। सूचना के लिए यह बताना जरूरी है कि हमें कंकड़बाग के नाम से विख्यात उस मलाशय या पूति-कुंड की तरफ जाने की सख्त मनाही थी। इजाजत के हिसाब से हम केवल वहाँ तक जा सकते थे, जहाँ से दिल्ली, पटना, कलकत्ता की बड़ी रेल-लाइन गुजरती है। वहाँ हमारा एक ही प्रिय खेल था। रेल-पटरी से अपना कान लगाकर सुनो कि क्या किसी गाड़ी के आने का कोई ध्वनि-संकेत है। या फिर दस पैसे का एक सिक्का पटरी के ऊपर रख दो और उसके ऊपर से गाड़ी को चले जाने दो और फिर उस कुचले हुए सिक्के को उठाकर देखो कि क्या वह सिक्का, मान्यतानुसार, चुंबक में बदल गया है? जेब खर्च के लिए मिले पैसों का गुजरती ट्रेन के नीचे आने से अकसर चूरन बन जाता था।

मैं अभी तक एक कच्ची उम्र का लड़का ही था, जो लोहे के सिक्कों को चुंबक बनाने के अथक प्रयास में लगा रहता था, जबकि उन्हीं दिनों पटरी के दूसरी तरफ नीतीश की नई नवेली दुलहन उदास और दु:खी मन लेकर कंकड़बाग में अपने माता-पिता के घर लौट गई, अपनी जिंदगी की नए सिरे से शुरुआत करने के लिए। उसके पति का मन घर बसाने और विवाहित जीवन का भार उठाने में नहीं था। उसने सोच लिया कि वह शिक्षिका की नौकरी कर लेगी और अपनी संतान को वहीं पालेगी। नीतीश को कंकड़बाग के नाम से बड़ी वेदना होती थी, वैयक्तिक उपेक्षा की याद उनकी चेतना की किसी शांत खोह में फोड़ा बनकर दुखती थी। बहुत वर्ष बाद, जब वह मरणासन्न मंजू को एअर एंबुलेंस द्वारा पटना से दिल्ली ले जा रहे थे, उस समय उनके मन के अंदर की जमी हुई पीड़ा का कुछ अंश बीच आसमान में आँसुओं में ढलकर उनकी पत्नी की बगल में ढलक गया।

कंकड़बाग एक और व्यक्ति का घर है, जो नीतीश कुमार पर बजरी गिराने की तरह दाँत किटकिटाता है। वहाँ वह आदमी रहता है, जिसने नीतीश की राजनीति पर, कॉपीराइट चुराने का दावा ठोका है। यह प्रहार विकट होने के बावजूद नाकाम साबित हुआ, लेकिन लेखक ने फिर भी नीतीश को एक बौद्धिक संपत्ति चोर कहना कभी बंद नहीं किया। उसने अब इसे अपना पूर्णकालिक पेशा बना लिया है, क्योंकि करने के लिए कुछ और बचा ही नहीं है।

स्पष्ट था कि उसने भेंट करने के लिए पूरी तैयारी कर रखी थी। सबूत के रूप में उसे जो कुछ दिखाना था, वह सारी संगृहीत सामग्री लकड़ी के स्टूल पर कागजों के बंडल बनाकर रखी हुई थी, जिसके साथ रबर-बैंड चढ़ी अखबारों की कतरनें भी थीं। जब अंततोगत्वा हम वहाँ पहुँचे, उसने कागजों के बंडलों की ओर इशारा करते हुए इतनी आक्रामक मुद्रा में उस ढेर में उँगली मारी कि पूरा ढेर स्टूल से नीचे गिर पड़ा। सारा मामला धराशायी हो गया। उसने कलफ लगा करारा कुरता पहन रखा था, यद्यपि धुलाई उतनी अच्छी नहीं थी, सफेद और नीले धब्बे पड़े हुए थे। वह शायद अभी-अभी नहाकर आया था, क्योंकि साबुन की खुशबू आ रही थी। उसके ऊँट जैसे लटके हुए निचले होंठ पर वेसलीन की चमक थी। हम शायद जल्दी पहुँच गए थे, वह गीली चप्पलें पहने-पहने बाथरूम से निकल आया था। रसोई में कुछ तीखा पक रहा था, जिसकी खुशबू उस तंग मकान में भर गई थी। वह हमें एक

कमरे से दूसरे कमरे में होते हुए, एक छोटी सी बालकनी की तरफ ले गया। कमरों में बड़े-बड़े पलंग थे, प्रत्येक कमरे में कई अलमारियाँ पलंग के पास सटी हुई खड़ी थीं, संतरी की भाँति। आनेवालों के लिए सिर्फ दो विकल्प रह जाते थे। या तो आप पलंग पर चढ़कर आराम से बैठ जाएँ या फिर पलंग और दीवार के बीच से किसी तरह निकलकर जाएँ। हमें उसी रास्ते से आने का इशारा किया गया। बिहार का एक बहुत ही अध्यवसायी और खबरों के नेटवर्क पर छाया रहनेवाला पत्रकार, मनीष कुमार हमारे साथ था, जो एन.डी.टी.वी. के लिए काम करता था। पहले से त्रिकोण बनाकर रखी हुई लकड़ी की बिना बाजूवाली कुर्सियों पर हमारे बैठने के साथ ही हमारे मेजबान ने उन सारे कागजों के बंडल हमारे सामने पटक दिए जो वह हमें दिखाना चाहता था।

''सब गड़बड़ हो जाता है, सब नीतीश का नाम लेने से ही सब गड़बड़ हो जाता है?'' उसने कागजात को उठाकर, स्टूल पर पुन: ठीक से रखते हुए कहा। इस भूमिका के साथ ही वह प्रचंड विरोध की मुद्रा में आ गया। उसने अपने घने और खूबसूरत, अभी तक गीले, बालों में एक मुष्टि-प्रहार किया और चिल्लाना शुरू कर दिया। ''देखिए! ठीक से देखिए! देख रहे हैं, यह मेरा बाल, मेरा बाल अकारण नहीं पका है, सब उस नीतीश के कारण''...उसने अपनी खोपड़ी से हाथ खींच लिया। फिर उसने अपना वह मुक्त हाथ ढाल बनाकर दूसरा हाथ हवा में लहराते हुए किसी काल्पनिक तलवार को पकड़ते और उसे किसी काल्पनिक शत्रु की छाती में इतनी प्रचंडता से घुसेड़ने का अभिनय करते कि अगर सामने कोई पड़ोसी देख रहा होता, तो निश्चित रूप से बुरा मान जाता। ''मैं बताता हूँ कि नीतीश का सच, चोर है, कपटी है, मेरे जीवन भर की कमाई लूट के चीफ मिनिस्टर बन गया, नाम कमा रहा है, सब छल-कपट है, फ्राड है, बहुत बड़ा फ्राड''...

उसके होंठ काँपे, उसका पूरा-चेहरा सिहरन से भर गया, और आवेश के कारण शरीर थरथराने लगा।

''आप यहाँ किसलिए आए हैं? क्या जानना चाहते हैं आप? सच्चाई? क्या आप वास्तव में सच जानना चाहते हैं? क्या आपमें सच लिखने का साहस है? या यह सिर्फ मेरा समय नष्ट करने का प्रयास है? आपके आने का उद्देश्य क्या है, मेरे जख्मों को फिर से खोलना और करना कुछ नहीं? मैंने आपसे मिलना स्वीकार ही क्यों किया, मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि कोई सुननेवाला नहीं है।''

उसका बेटा बालकनी में खुलनेवाले दरवाजे में आकर खड़ा हो गया, उसे शायद आशंका थी कि बहस छिड़ गई है। मैंने अभी कोई सवाल भी नहीं पूछा था। मनीष असमंजस में बैठा था। लड़के ने अपने पिता को ही गरजते हुए देखा और तुरंत वापस चला गया; ऐसा अकसर होता होगा। ''चिंता मत करो, चिंता मत करो'', पिता ने कहा। उसका गुस्सा ठंडा होने लगा था। ''आप क्या लेंगे? चाय? कॉफी? क्षमा करें, मुझे पहले पूछना चाहिए था, क्या आप थोड़ा गोश्त लेना चाहेंगे? मैं मीट बहुत अच्छा पकाता हूँ...सॉरी, मुझे अफसोस है, मेरे साथ, जो इतना बड़ा अन्याय हुआ है उसके बारे में सोचकर मैं इतना क्रोधित हो जाता हूँ कि मुझे और कुछ नजर ही नहीं आता। हमें शांत, संयत हो जाना चाहिए, चलो बात करते हैं, लेकिन आपको वादा करना होगा कि आप मेरी कहानी सुनाएँगे।''

सतीश कुमार की कहानी में सच भी है और सनक भी, और दोनों के बीच अलगाव को समझाने में इससे मदद मिलती है।

सतीश ने अपनी युवावस्था में मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज में विज्ञान के छात्र के रूप में दाखिला लिया था, उसी दौरान सतीश ने गुप्त नक्सली संगठन में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया और उसने कई साल एक भगोड़े सशस्त्र विद्रोह की सेवा में बिताए। 1980 दशक के मध्य में उसने अपना मुखौटा उतार दिया और साम्यवाद की मुख्यधारा में शामिल हो गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.) में जाने के बाद उसने शीघ्र तरक्की पाई और सन् 1990 में विधायक बन गया, जिस वर्ष लालू ने बिहार की सत्ता सँभाली। सी.पी.आई. उस समय लालू का साथ

दे रही थी, लेकिन सतीश को सरकार की निष्प्रयोजन भटकने की प्रवृत्ति से ऊब होने लगी और उसने अपनी पार्टी को सरकार से अलग हो जाने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। लालू को बिहार का शासन चलाने से ज्यादा अपनी धाक जमाने में दिलचस्पी थी और उनका कुटुंब लूट में शामिल था। लेकिन सी.पी.आई. किसी और बात से प्रेरित थी : उनकी दृष्टि में लालू का प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण गुण यह था कि लालू ने सांप्रदायिक ताकतों, राम मंदिर आंदोलन के जरिए हिंदुत्व का नया मुद्दा उठाकर लोगों को भड़कानेवालों के खिलाफ संघर्ष की घोषणा कर दी थी। बड़े नेताओं ने जब उसकी बात नहीं मानी, तो सतीश ने सी.पी.आई. छोड़ दी और साम्यवादी विचारधारा या सिद्धांत के विपरीत रास्तों की तलाश में चल पड़ा; अंततः उसने समय की हवा का रुख पहचानकर, जाति आधारित राजनीति में कूदने का फैसला कर लिया।

सतीश के परिचय-पत्र विश्वसनीय थे और अवसर भी पूर्णतया अनुकूल था। वह नीतीश के मध्य बिहार इलाके में बसे कुर्मी समुदाय से था और उसे अपने सजातीय सदस्यों में बढ़ रही निराशा में राजनीतिक लाभ उठाने का बीज अंकुरित होते साफ दिख रहा था। लालू ने कुर्मी समुदाय के हिस्सेदारी के दावों की उपेक्षा ही नहीं की थी, बल्कि तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय कुर्मी नेता नीतीश कुमार का खुलेआम निरादर भी किया था। सरकारी नौकरियों में आरक्षण में हिस्से की माँग पर सवाल उठाए जा रहे थे। लालू अकेले में कुर्मियों को कुक्कुर कहकर बुलाता था। लालू के अपशब्दों, गाली-गलौज की भनक उन्हें लग गई थी, कुर्मियों में आक्रोश बढ़ रहा था और उसमें सतीश की राजनीतिक दिलचस्पी जाग उठी थी।

बिहार के कुर्मी कुछ-कुछ भारत के कम्युनिस्टों जैसे हैं—उनकी कम संख्या को देखते हुए राजनीति और सार्वजनिक व्याख्यानों पर उनका प्रभाव बहुत बेमेल है। जनसंख्या में उनका हिस्सा मात्र 4 प्रतिशत है, किंतु उन्होंने विचार प्रस्तुत करने और निर्णयन कार्य के क्षेत्र में अपने लिए एक अग्रणी जगह बना ली है। यह उपलब्धि उन्होंने कड़े परिश्रम और भौतिक एवं मानव संसाधनों का विन्यास करके हासिल की है। कुर्मी लोग कृषि कार्य करते हैं, मिट्टी को बहुत अच्छे ढंग से सँवारते हैं, नकदी फसल उगाने में वे सबसे आगे हैं। कहा जाता है कि उन्हें यह नाम संस्कृत शब्द कृषि कर्मी से प्राप्त हुआ है। इसके अलावा और भी महान् परिभाषाएँ मिलती हैं—जिनमें से एक के अनुसार, कुर्मी शब्द की उत्पत्ति कूर्म अथवा कछुए से हुई बताई जाती है, जिसे भगवान विष्णु का एक अवतार माना जाता है।

कोइरियों के रक्त-संबंधी इस सजातीय वर्ग को उत्तरी मध्य क्षेत्र में भूमि जोतने की कला में सिद्धहस्त माना जाता है; वे अपने कुशल हाथों से भूमि को उपजाऊ बना देते हैं। शायद यही कारण था कि भूमि पर कब्जा सबसे पहले कुर्मियों को प्राप्त हुआ। मुगल क्षत्रपों ने उनकी खाद तैयार करने और उत्पादकता संबंधी तकनीकों तथा शिकवा-शिकायत के बिना परिश्रम करने की उनकी क्षमता से प्रभावित होकर, कुर्मी चाकरों को प्रचलित दरों से कम दरों पर बड़ी-बड़ी जमीनें पट्टे पर दे दीं। कठोर अनुशासन-प्रिय और सामाजिक रूप से अनाडंबरपूर्ण कुर्मियों ने अपनी मेहनत से धन-दौलत कमाई और वे जमीनों के मालिक बन गए। लेकिन वे इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए, वे सामाजिक व्यवस्था में अपने स्तर से ऊपर उठना चाहते थे। उनकी तर्क-शक्ति में उनकी ऊँची सोच की झलक मिलती है और बिहार की पिछड़ी जातियों में वे आधुनिक विचारोंवाले माने जाते हैं। उन्होंने जल्दी समझ लिया था कि शिक्षा के बिना तरक्की करना संभव नहीं है और इसी कारण उन्होंने शिक्षा को प्राथमिकता दी तथा ग्रामीण समृद्धि से व्यावसायिक उपलब्धि की दिशा में बढ़ चले। पिछली डेढ़ शताब्दी के दौरान, कुर्मियों ने शिक्षा के क्षेत्र से लेकर अधिकारी वर्ग तक, चिकित्सा-विज्ञान से लेकर न्याय-तंत्र तक, सामाजिक आंदोलनों से लेकर राजनीति तक, हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया है। स्थानीय जातियों में कुर्मी समुदाय का विशिष्ट स्थान है,

पिछड़े वर्गों में उन्हें श्रेष्ठ माना जाता है। सामूहिक रूप से उन्होंने पुरातन जाति व्यवस्था में उच्च दरजा प्राप्त वर्गों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना अपना कर्तव्य समझा है।

शिक्षा के बलबूते पर सामाजिक व्यवस्था में आगे बढ़ने का दावा करना कुर्मी समुदाय के लिए कोई नई बात नहीं है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में रामदीन सिन्हा नामक एक कुर्मी वन-अधिकारी ने अवध में उस गजट अधिसूचना के विरोध में राजसी सेवा से त्याग-पत्र दे दिया था, जिसके तहत कुर्मियों को एक 'दलित वर्ग' जैसी निचली श्रेणी में रखा गया था और जिसके परिणामस्वरूप पुलिस में उनकी भरती पर रोक लगा दी गई थी। सिन्हा के इस्तीफा देने से व्यापक रोष उत्पन्न हुआ और एक के बाद एक याचिकाएँ दायर की जाने लगीं। बात इतनी बढ़ी कि अवध के तत्कालीन मुख्य आयुक्त सर ऐंथनी मैक्डनैल को उस गजट अधिसूचना को संशोधित करना पड़ा। पुलिस विभाग को इस आशय का संदेश भेजना पड़ा कि उनकी राय में 'कुर्मी एक प्रतिष्ठित जाति है, जिसे सरकारी सेवा से वर्जित करना नहीं चाहूँगा।' रामदीन सिन्हा के समर्थन में व्यक्त इस आक्रोश का ही परिणाम था कि कुछ समय बाद कुर्मियों ने एकजुट होना शुरू कर दिया। प्रथम अखिल भारतीय कुर्मी महासभा सन् 1901 में लखनऊ में आयोजित की गई थी और एक औपचारिक प्रस्ताव पारित किया गया था कि राजनीति में, और समाज में कुर्मियों को एक उचित स्थान मिलना चाहिए। इस विषय में दबाव बनाने के लिए उन्होंने किसान सभाओं को अपना मंच बनाया। लेकिन जब वह बेअसर साबित हुआ, तो कुर्मियों ने कोइरियों और यादवों को साथ लेकर 1930 के दशक के मध्य में 'त्रिवेणी संघ' का गठन किया। त्रिवेणी संघ को आरंभ में सामान्य से भी कम सफलता प्राप्त हुई और इसे स्वतंत्रता पूर्व चुनावों में कांग्रेस से मिली अनिच्छुक सहायता (वितरित करने के लिए मिले परचों, इश्तहारों) से ही संतुष्ट रहना पड़ा। त्रिवेणी संगम को कभी अपनी संभावित सफलता प्राप्त नहीं हुई, लेकिन यह एक ऐसी धारणा का बीज था, जो आगे चलकर फलित होनेवाला था। भविष्य में पिछड़े वर्गों के प्रभावशाली गठबंधनों के लिए यह बौद्धिक साँचा बन गया।

कुर्मी नेता कभी यह दावा करना नहीं भूलते हैं कि त्रिवेणी संघ उनकी कल्पना-शक्ति एवं प्रज्ञा से उत्पन्न एक रचना थी। ''हमारा एक शानदार और वस्तुत: अप्रशंसित इतिहास है,'' कुर्मी नेता भोला प्रसाद सिंह ने मुझे बताया, ''बिहार की राजनीति के इतिवृत्त में, बहरहाल, कुर्मी समुदाय ने हमेशा बौद्धिक अगवानी की है। बहुत लोग इस तथ्य की अनदेखी करते हैं, लेकिन इससे स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले और बाद के हमारे एकनिष्ठ योगदान का सच बदल नहीं जाता है।''

कुर्मी समुदाय का गर्व कहीं-न-कहीं आहत हुआ था और यह उनकी चेतना को स्वीकार्य नहीं था, इसी कारण वे बार-बार भड़क उठते थे। उनकी धारणा है कि उनके समुदाय की उत्पत्ति आर्य योद्धाओं की जाति से हुई है, जिसके पौराणिक पूर्वज भगवान राम के कुटुंबी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। इस समुदाय के इन दोनों दावों को अस्वीकार किया जा चुका है। क्षत्रियों ने कुर्मियों के न केवल इस दावे को मानने से इनकार कर दिया है कि वे उनके उच्चतर वर्ण के वंशज हैं, बल्कि उन्होंने कुर्मियों को ऐतिहासिक रूप से अनार्य घोषित करके उनका तिरस्कार भी किया है।

कुर्मियों ने एक समानांतर मूर्ति-शिल्प का प्रतिपादन करके इसका उत्तर दिया है। बहुत बुरी बात है कि सूर्यवंशी क्षत्रिय राम को उनके साथ बाँटने के लिए तैयार नहीं थे, वे भगवान राम के तिरस्कृत पुत्रों, लव और कुश को अपनाकर ही खुश थे; सहयोजन के एक उपाय के रूप में, उन्होंने कुश को कोइरियों का पूर्वज मान लिया। वे प्राय: इंद्र की भी उस देवता के रूप में उपासना करते हैं, जिससे उनकी उत्पत्ति हुई; इसी प्रकार वे योद्धा-ऋषि परशुराम को भी अपना देवता मानकर पूजते हैं। कुर्मियों के पास भी अपनी लौकिक वंश-परंपरा पर गर्व करने का, यदि अधिक नहीं तो, बराबर का कारण अवश्य रहा होगा। इस कीर्ति भवन में अगर आप घूम-फिर कर देखेंगे, तो

आपको पता लग जाएगा कि कुर्मी लोग स्वयं को विशेष प्रतिभा-संपन्न क्यों समझते हैं, जबकि जाति वर्गीकरण उन्हें नीची श्रेणी में रखता है। उनकी वंशावली में ऐसी-ऐसी विभूतियों के नाम हैं—शिवाजी और संत तुकाराम; सरदार वल्लभभाई पटेल और शरद पवार; लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष रवि रे और सी.डी. देशमुख, आई.सी.एस. तथा सन् 1943 में रिजर्व बैंक के गवर्नर नियुक्त किए जानेवाले प्रथम भारतीय; अभिनेत्री ललिता पवार और स्मिता पाटिल; क्रिकेट खिलाड़ी संदीप पाटिल और किरन मोरे; बॉस्टनवासी सर्जन-लेखक अतुल गवंडे। वे जगह-जगह बिखरे हुए हैं। उन्होंने अपने पंखों को फैलाए हैं और जनसंख्या के हिसाब से इस छोटे समुदाय के साथ देश भर में ऐसे-ऐसे जाने-माने प्रजातीय एवं पारिवारिक नाम जुड़े हुए हैं—नायडु और वायु, चंद्राकर और गंगवार, कुंती, कुटुंबी, सचन, ल्यूवा, अवधिया, कटियार, वोक्कलिगा, पटेल, कुछ सिंधिया या शिंदे, उप-संप्रदाय। इस कारण, जब लालू यादव ने ऐसे संप्रदायों का कुक्कुर कहकर सामूहिक रूप से उपहास किया। ठेस तो लगी ही होगी।

सतीश अकेला ही अपने कुर्मी चेतना अभियान पर निकला और देखते-देखते एक पूरा निर्वाचन-क्षेत्र उसके पीछे हो लिया। राज्य भर से विक्षुब्ध कुर्मी समुदाय उसकी मुहिम में शामिल होने लगा। कोइरी भी साथ आ गए, और पिछड़े वर्ग में सम्मिलित अन्य छोटी-छोटी जातियाँ भी उनका समर्थन करने लगीं, क्योंकि उन सभी को डर था कि लालू और यादव मंडल के नाम की सारी मिठाई चट कर जाएँगे और उनके वास्ते छोटे-छोटे टुकड़ों से अधिक कुछ नहीं छोड़ेंगे। लोगों का साथ मिला, तो साधन भी जुटने लगे—छोटा-मोटा आने लगा, जबकि बड़ी आर्थिक मदद देश के अन्य भागों में फैले कुर्मी बंधु-बांधवों से प्राप्त हुई।

उड़ीसा के रवि रे और उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव के बाद सर्वाधिक प्रभावशाली तत्कालीन जनता दल नेता बेनी प्रसाद वर्मा उन लोगों में शामिल थे, जिन्होंने सतीश कुमार के आंदोलन को ताकत दी और चलते रहने का हौसला दिया। बस, फिर क्या था, यह भूतपूर्व कम्युनिस्ट एक कुर्मी चेतना महारथ, निर्देशानुसार निर्मित एक मिनी ट्रक पर सवार होकर समस्त बिहार के भ्रमण पर निकल पड़ा।

सतीश का दावा है कि उसने 282 जनसभाएँ की थीं और उन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप पटना में इतनी बड़ी रैली हो सकी थी। ''मैंने अकेले ही काम किया, सुन रहे हैं आप, अकेले ही काम किया मैंने। मैं इतना बोल चुका था कि मेरी आवाज चली गई और पटना रैली में मेरे मुँह से बड़ी मुश्किल से आवाज निकल रही थी। लोगों के कानों तक मेरी आवाज भले ही न पहुँच पाई हो, लेकिन मेरी एक-एक मुद्रा, मेरे हर एक हाव-भाव पर भीड़ अभी भी तालियाँ बजा रही थीं। मैं अपने हाथ उठाता और लाखों लोग तालियाँ बजाकर मेरे प्रति अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते, ऐसी थी मेरी लोकप्रियता। उस समय के किसी भी व्यक्ति से पूछकर देख लें और यदि वे ईमानदार हैं, तो वे जरूर बताएँगे। रैली से एक सप्ताह पहले से मैंने गांधी मैदान में पड़ाव डाल रखा था। पाँच सौ प्रवेश द्वार बनाए गए थे, लोगों को लाने के लिए 285 बसों और 6,680 कारों का इंतजाम किया गया था। कितने लाख लोग थे? कोई गिनती नहीं कर सकता था, कई लाख थे, पटना में इतनी बड़ी रैली पहले कभी नहीं हुई होगी, किसी से भी पूछ लीजिए।''

सतीश ने उस दिन की तसवीरें खोजकर निकालीं और उन्हें अपनी हथेली पर ताश के पत्तों की तरह फैलाकर दिखाया। ''क्या आप इन तसवीरों में मुझे पहचान सकते हैं? बताइए, क्या पहचान सकते हैं? मैं शर्त लगाता हूँ, आप मुझे नहीं पहचान सकेंगे क्योंकि मैं जवान और हँसमुख था, एक भी सफेद बाल नहीं था, एक भी दाँत ढीला नहीं था जैसे ढीले अब दिखाई देते हैं। मैं यहाँ हूँ, बिलकुल बीच में, मगर आप मुझे पहचान नहीं सकते।'' यह ठीक से खींची गई तसवीर नहीं थी, धुँधला गई थी, इतना जरूर दिख रहा था कि सतीश जैसा कोई जवान आदमी भीड़ के बीच में है, गले में ढेर सारी मालाएँ पहने हुए। ''यह फोटो नीतीश के आने से कुछ पहले ही उतारी गई थी, वे क्षण मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी भूल साबित हुए। मैं आज तक पछता रहा हूँ कि मैंने उसे स्टेज पर क्यों

बुलाया।''

इसका सत्यापन करना तो संभव नहीं है कि रैली में कितने लोग थे, और यह भी आश्चर्य का विषय है कि उसे रैली के लिए बनाए द्वारों और लोगों को लाने के लिए लगाई गई कारों तथा बसों की सही-सही संख्या कैसे याद हैं। लेकिन इस बात से इनकार करने का कोई आधार नहीं है कि सतीश कुमार ही था, जिसने सन् 1994 की कुर्मी लहर को प्रचंड बनाने का काम किया और सबसे आगे बढ़कर रैली का नेतृत्व सँभाला।

यह सच है कि रैली के दिन नीतीश कुमार ने घंटों अनिश्चय एवं बेचैनी में बिता दिए, घंटों तक वह फूट के परिणामों के बारे में सोचते हुए और यार, दोस्तों तथा सहयोगियों के बहुत समझाने-बुझाने के बाद ही वह स्टेज पर जाने के लिए तैयार हुए थे। मौजूद लोगों में से कई ने एक और घटना के बारे में बताया, जो मंच पर नीतीश के आने के बाद घटी थी, हालाँकि उस तरह नहीं, जैसे सतीश को याद है।

सतीश के अनुसार, नीतीश जैसे ही मंच पर तशरीफ लाए, भीड़ में गुस्साए लोगों ने उन पर जूते, चप्पल और पत्थर बरसाना शुरू कर दिया था। ''वे नीतीश से निराश थे, बहुत निराश थे क्योंकि नीतीश ने उनका खुला समर्थन करने से मना कर दिया था, अपने ही लोगों, कुर्मियों का समर्थन करने से इनकार कर दिया था'', सतीश ने कहा, ''जब वह आए तो लोगों ने समझा कि वह लालू का एजेंट बनकर आए हैं या मौके का फायदा उठाने के उद्देश्य से। नीतीश को उस प्रहार से बचाने के लिए मुझे आगे आना पड़ा। मैंने भीड़ को शांत किया, अन्यथा नीतीश की पिटाई हो जाती। वह थर-थर काँप रहे थे।'' दूसरों को सिर्फ इतना याद है कि देर से आने के लिए नीतीश को लोगों की नाराजगी जरूर सहनी पड़ी थी, ज्यादा कुछ नहीं।

''भीड़ को यकीन नहीं था कि नीतीश उनका साथ देने के लिए कटिबद्ध होंगे,'' विजय कृष्ण ने मुझे बताया, ''उनमें इस बात को लेकर आक्रोश था कि नीतीश ने कुर्मियों तथा छोटी पिछड़ी जातियों की तरफदारी नहीं की, लेकिन फिर भी उनकी उम्मीदें नीतीश से जुड़ी हुई थीं, बिहार से नीतीश सर्वाधिक मान्य कुर्मी नेता था। जब एक बार नीतीश ने बोलना शुरू किया, सारा गुस्सा ठंडा पड़ गया। लालू को उनकी खुली चुनौती गाज की तरह गिरी, तत्पश्चात् कदम-कदम पर उनकी प्रशंसा और जय-जयकार होने लगी। नीतीश ने सतीश को ढक दिया, दोनों की योग्यता के बीच कभी कोई मुकाबला नहीं था। नीतीश की काबिलियत सतीश पर हमेशा भारी पड़ती थी। उस दिन वह पीछे से आए और हीरो बन गए, सतीश के हिस्से की सारी प्रशंसा, तालियों की गड़गड़ाहट उन्होंने चुरा ली। यही कारण है कि सतीश के मन में इतनी कटुता भर गई, उस आघात से वह कभी उबर नहीं पाया।''

चाय और पकौड़ों के कई दौर चले और इस बीच खुद पर बार-बार गुस्से से फुनफुनाते हुए, सतीश ने अपने साथ हुए विश्वासघात की कहानी को आगे घसीटा। ''रैली में तो कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं, असली दगा तो बाद में हुआ... उस तीखे अनुभव के बाद भी, मैंने नीतीश के साथ काम करना और उनकी भावी योजना में मदद करना जारी रखा।'' लेकिन नीतीश ने मेरा इस्तेमाल किया, एक नैपकिन की तरह मेरा इस्तेमाल किया और फिर एक ही झटके में मुझे दूर फेंक दिया, जब देखा कि मैं अब उसके किसी के लायक नहीं रह गया हूँ। यही है उसका असली स्वभाव, वह लोगों का इस्तेमाल करता है, फिर उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल देता है। लेकिन क्या आप यह लिखेंगे? क्या आप लिखेंगे कि बिहार का बड़ा नेता मुझे होना था, न कि नीतीश को; उसने मेरा भाग्य मुझसे छीन लिया?''

मैंने पूछा, 'कैसे?'

''कैसे? आप मुझसे पूछते हैं—कैसे? यह सवाल आप नीतीश से पूछें। जब समता पार्टी का गठन हुआ, मैं उसके प्रमुख निर्माताओं में से एक था। मैंने राज्य भर में लोगों को 17,000 पत्र लिखे, मैंने अपनी 18 लाख की जमा-पूँजी

में से 14 लाख खर्च कर दिए, मैंने प्रचार-प्रसार करने में दिन और रात का कोई हिसाब नहीं रखा, अधिकतर बैठकें 80, एम.एल.ए. फ्लैट्स में मेरे कमरे में हुआ करती थीं, वहीं योजनाएँ बनती थीं। आप जानते हैं उन दिनों का सर्वाधिक प्रचलित नारा क्या था? यह था, 'सतीश नहीं तो नीतीश नहीं।' देखो, आज नीतीश कहाँ है और सतीश कहाँ। उसने मुझे धोखा दिया।''

उसने 'कैसे' का जवाब अभी तक नहीं दिया था, इसलिए मैंने दोबारा पूछा। 'कैसे का मतलब क्या?' वह पलटकर चीखा—''कैसे? कैसे? उसने दगा किया, इतना ही काफी है, उसने मुझे पीछे छोड़ दिया, मुझसे अलग हो गया। अगर मुझे सही याद पड़ता है, समता पार्टी नाम भी मेरा दिया हुआ है, यह मेरा विचार, मेरा सुझाव, मेरे व्यक्तिगत कक्ष में ही इस नाम पर सहमति बनी थी, लेकिन कौन याद रखता है? एक दिन मुझे नई पार्टी का महासचिव बना दिया गया, दूसरे दिन मैं कहीं नहीं था, समझ रहे हैं आप, मैं कहीं भी नहीं था। बेकार का सवाल पूछते हैं...''

सतीश क्यों इतनी जल्दी और इतने बुरे ढंग से पिछड़ गया, इसका कारण जानने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह सिर्फ कुर्मी आक्रोश की लहर पर सवार था और उस आक्रोश को अत्यधिक भड़काने के बाद उसे बाँधना या उसका उपयोग करना उसे नहीं आया। उसने लगाम उस आदमी को थमा दी, जिसके पास अधिक राजनीतिक कौशल एवं अनुभव थी। सन् 1994 तक नीतीश ने अपने आरंभिक जीवन की असफलताओं को बहुत पीछे छोड़ दिया था। नीतीश ने लगातार दो चुनाव जीते थे, एक बिहार विधानसभा के लिए, दूसरा लोकसभा के लिए। प्रशासन और अर्थव्यवस्था संबंधी विषयों पर सार-गर्भित विचार करने के लिए नीतीश की एक विशेष पहचान बन गई थी; वह एक केंद्रीय मंत्री के पद पर भी रह चुके थे। लालू ने भले ही न देखा हो, और बहुत से लोगों ने एक नेता के रूप में उनके अंदर भावी संभावनाओं को देखा था; संसद् में जनता दल सदस्यों के बीच वह अग्र-पंक्ति में पहुँच गए थे, उनकी गणना विपक्ष के प्रमुख वक्ताओं में होने लगी थी।

उस दिन गांधी मैदान में नीतीश ने स्वयं को एक साहसी राजनीतिज्ञ के रूप में तो निरपराध सिद्ध कर दिया, किंतु कुछ चालाकी करने के दोष से मुक्त नहीं कर पाए। उन्होंने पुरजोर आवाज में लालू यादव को ललकारा, भीड़ के मिजाज को पकड़ने में देर नहीं लगाई और समझ गए कि मतदाताओं की इतनी बड़ी तादाद उनके इंतजार में है। उन्होंने मौका मुट्ठी में कर लिया। सतीश कुमार उन्हें रैली में, या उसके बाद भी रोकने में असमर्थ रहे। सतीश को समझ नहीं आ रहा था कि नीतीश के विचारों के असर को काटने का अस्त्र कहाँ से लाएँ और उन लोगों का समर्थन अपने वास्ते कैसे बचाकर रख सकें, जिन्हें गांधी मैदान में एकत्रित करने के लिए उसने घोर परिश्रम किया था। यह सच है कि नीतीश सतीश के शो को ले उड़ा। यह बात भी इतनी ही सच है कि सतीश में इतनी क्षमता नहीं थी कि जो हो रहा था उसे रोक सके। निस्संदेह वह उस विशाल प्रदर्शन का आयोजक था, लेकिन जैसे ही नीतीश ने उस मंच पर चढ़ने का फैसला किया, मंच पर बस नीतीश का ही जादू चल रहा था। सतीश समझ गया कि वह भारी गलती कर बैठा है। जिस मंच को वह अपना मानता था, उस मंच पर उसे नीतीश को आमंत्रित नहीं करना चाहिए था। यह उसका मूर्खतापूर्ण कदम था। उसके कानों को हैरानी हो रही थी।

जैसे ही हम चलने को हुए, सतीश ने एक बार चाय और मँगवा ली; अभी भी उसे शायद कुछ कहना बाकी था। सीढ़ियाँ उतरते समय वह हमारे पीछे था, आक्रोश से उसकी आँखों में आँसू छलक आए थे : ''यह जो मेरा मंच था, उसने मुझसे चुरा लिया, उड़ा ले गया, क्या आप मानते हैं कि उसने चोरी की?'' मनीष ने उसकी तरफ मुड़कर देखा और संकेत किया कि वह उसकी बात पर यकीन करने के लिए तैयार हैं बशर्ते कि सतीश उसे बताए कि वह क्यों अपने मतदाताओं को समझा नहीं सका कि उसके साथ विश्वासघात हुआ है, वह क्यों नहीं उन्हें अपनी तरफ

वापस नहीं खींच सका, अगर वास्तव में उसने ही हजारों-लाखों खर्च करके उन्हें खरीदा था। उस कमजोर सीढ़ी पर, हमसे एक पायदान ऊपर, सतीश ने अचानक भावोत्तेजक नाटक, प्रायश्चित्त के आक्रोश भरे अभिनय का एक अंतिम दृश्य प्रस्तुत कर दिया। उसने अपने गाल पर एक जोरदार थप्पड़ मारा : ''दोष उसका अपना ही था।''

❑

7

गलत शुरुआत

नीतीश गर्व का अनुभव करते हुए, चेहरे पर नई चमक के साथ, कुर्मी चेतना रैली से वापस आए। रैली में जमा हुई भारी भीड़ ने उन्हें लालू यादव के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाने का कार्य सौंप दिया था। 'नीतीश तुम आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं!' वह इस बात से बहुत खुश थे कि उनका अपना ही एक मतदाता वर्ग होगा, किंतु वह अंदर-ही-अंदर कहीं चिंतित भी थे कि अब आगे का रास्ता उन्हें अपने दम पर ही तय करना होगा। उन्होंने कोई अनुमान नहीं लगाया था कि कौन-कौन उनके साथ कदम मिलाकर चलेगा, कोई जगह उनके पास नहीं थी, जहाँ बैठकर काम आरंभ किया जा सके, अपने साधनों के बारे में भी उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। उनके पास कोई पार्टी नहीं थी, न उसके लिए उन्होंने कुछ सोचा था। जनता दल में उनके पुराने सहयोगी उनसे कह रहे थे, ''नीतीश तुमने बहुत बड़ी गलती की है, तुम्हें टिके रहना चाहिए था और अंदर रहकर ही लालू से लोहा लेना चाहिए था।'' यहाँ तक कि उन्हें कुर्मी चेतना मंच पर चढ़ने के लिए उकसानेवाले विजय कृष्ण ने भी उन्हें पुनर्विचार करने की सलाह दे डाली।

उस रैली के बाद वह कई शाम नीतीश से भेंट करने गए, साथ में लालू के एक वफादार, अब्दुल बारी सिद्दीकी को भी ले गए और उन्होंने शांति बहाल करने हेतु मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रखा। ''लालू आपकी बात सुनने के लिए तैयार है, उससे मिलो, अपने मुद्दों पर चर्चा करो, पार्टी मत तोड़ो, बहरहाल हम एक परिवार हैं।'' विजय कृष्ण ने वकालत की। सिद्दीकी ने कहा कि वह अभी फोन मिलाकर मुलाकात तय कर सकता है। नीतीश ने झिड़क दिया, ''आप शिखंडी बन गए क्या?' नीतीश ने विजय कृष्ण की तुलना महाभारत के एक तुच्छ पात्र से करते हुए ताना मारा। ''मुझे सीख मत दीजिए, मैंने जो रास्ता अपनाया है, उसी पर चलूँगा''...

कुछ सप्ताह के बाद नीतीश ने दिल्ली में जनता दल संसदीय पार्टी की एक बैठक में लालू पर जोरदार हमला किया। उन्होंने लालू को 'सत्ता के नशे में धुत्त एक तानाशाह' करार देते हुए कहा कि हमने बिहार की जनता से जो वादे किए थे, वह 'उन वादों की कीमत पर व्यक्ति-पूजा' की इमारत खड़ी करने के अलावा किसी चीज में रुचि नहीं रखता है। ''बिहार में नेतृत्व बदलना तुरंत आवश्यक है'', नीतीश ने कहा, ''अन्यथा, आनेवाली पीढ़ियाँ हमें उनके ऊपर एक भ्रष्ट एवं कामचोर नेता थोपने के लिए जिम्मेवार ठहराएँगी। मैं उस दोष को लेने के लिए तैयार नहीं हूँ।''

21 अप्रैल, 1994 के आस-पास विभाजन हो गया, जब चौदह जनता दल सांसदों ने अपना एक अलग गुट बना लिया और उसका नाम जनता दल (जॉर्ज) रखा, क्योंकि जॉर्ज फर्नांडिस नीतीश के विद्रोह का मुखौटा बनने के लिए राजी हो गए थे। नीतीश ने जॉर्ज को अपनी तरफ करने के लिए प्रलोभन और झल्लाहट, दोनों का इस्तेमाल किया। नीतीश ने अपनी पहलेवाली नालंदा लोकसभा सीट जॉर्ज के लिए छोड़ने का वादा किया। लेकिन जब उन्हें लगा कि फर्नांडिस को पेंग देना काफी नहीं होगा, नीतीश ने बौखलाना शुरू कर दिया, ''लालू के अंतर्गत हम कैसे काम कर सकते हैं, इससे तो बेहतर है कि बिस्तर बाँध लें और मदर टेरेसा के आश्रम में चले जाएँ।''

फर्नांडिस शायद नीतीश की दृढ़ता परख रहे थे। वह खुद भी लालू के व्यवहार से ऊब चुके थे। हद तो तब हो गई जब लालू ने एक समय के अपने गुरु के प्रति साधारण भद्रता एवं शिष्टाचार व्यक्त करना भी बंद कर दिया।

''फर्नांडिस अब हमको बिहार का राजनीति सिखाएँगे का?''...लालू ने इस टिप्पणी के साथ उस मध्यस्थ को खारिज कर दिया, जो फर्नांडिस का यह लिखित संदेश लेकर आया था कि सरकार को अब शासन चलाने के बारे में सोचना चाहिए। लालू का मुँहतोड़ जवाब फर्नांडिस तक पहुँच गया। वह पहले ही होशियारी दिखा रहा था, जब नीतीश ने अपना प्रस्ताव रखा था। फर्नांडिस स्वयं, समय पर, अकेले में इस सोच-विचार में पड़ जाते कि यह नीतीश कुमार इतने टेढ़-मेढ़े रास्तों से गुजरकर इतनी तरक्की कैसे कर गया, किंतु चूँकि उस समय उसके वजन अथवा उसके महत्त्व की आवश्यकता थी, फर्नांडिस नई नौका के लिए पक्की ठाँव बनने को तैयार हो गए।

मध्य बिहार में इस्लामपुर के एम.एल.ए., राजीव रंजन, जो सांसद् नीतीश को दिल्ली में अपनी फिएट कार में घुमाया करता था, बताते हैं कि जिस दिन पार्टी का औपचारिक विभाजन हुआ, उस दिन नीतीश 'अत्यधिक हलका और तनावमुक्त' महसूस कर रहे थे। ''वह बिशंभर दास मार्ग पर सांसदों के फ्लैट में रहते थे'', रंजन ने बताया, ''वह किसी बैठक से वापस आए थे, बच्चे की तरह दाँत निपोरते हुए, और गाड़ी से घूमने के लिए जाना चाहते थे। वह बंगाली मार्केट गए और चाट तथा लस्सी के साथ जश्न मनाया। उनके लिए लालू यादव को खुली चुनौती देना बहुत बड़ी बात थी। बोले कि एक ही लक्ष्य है उनका, लालू को बिहार से उखाड़ फेंकना, और उसका रास्ता साफ हो गया...''

एक दशक से भी अधिक समय तक वैसा कुछ होनेवाला नहीं था। लालू से मुक्ति की ख़ुशी क्षणिक होगी, चाट और लस्सी नीतीश के पेट में चुभने लग जाएगी। जैसा कि हम देखेंगे, नीतीश द्वारा लालू को दी गई ललकार को इस बुरी तरह ठंडा कर दिया गया कि नीतीश अपना युद्ध शिविर उठाने पर विचार करने लगे। एक दिन ऐसा भी आया कि वह उस तंबू के अंदर अकेले बैठे रहे, इतने थके हुए और निराश थे कि जिस बादशाहत को जीतने का उन्होंने बीड़ा उठाया था, उसकी ओर मुँह उठाकर देखने तक की इच्छा नहीं हो रही थी।

19 अक्तूबर, 1994 का दिन पटना में खुशी मनाने का दिन था। लालू के खिलाफ विद्रोह का खेमा अपने कामचलाऊ स्थान, जनता दल (जॉर्ज) आवास से उखड़कर, अपने नए पते पर पहुँच गया था। अब इसका नाम 'समता पार्टी' हो गया था और यह बिहारी राजनीति के उस मूर्तिपरक पूजनीय स्थान—गांधी मैदान—में आ गया था, पूरे गाजे-बाजे के साथ अपने यशगान का बिगुल बजाते हुए और नारों का उद्घोष करते हुए। झंडे और झालरें हवा में फड़फड़ा रही थीं, कोलाहल था, गर्जना थी और प्रलाप था। बार-बार एक ही पुकार कानों से टकरा रही थी —'बिहार बचाओ', इसे लालू यादव से बचाओ। इस आंदोलन के सरमाएदार और उनके टहलुए खड़े होकर भीड़ को हाथ लहरा रहे थे, उनकी तादाद इतनी ज्यादा थी कि लकड़ी का मंच चरमरा उठा : जॉर्ज फर्नांडिस, नीतीश कुमार, अब्दुल गफूर, शिवानंद तिवारी, बिशन पटेल, भोला प्रसाद सिंह और सतीश कुमार भी मौजूद थे। ''यह विश्वासघाती सरकार है,'' नीतीश कुमार गरजे, ''इसने लोगों से किए वादों के साथ धोखा किया है, इसने जे.पी. और कर्पूरी ठाकुर के सपनों के साथ विश्वासघात किया है। बिहार में लोकतंत्र नहीं है। यह एक आदमी की जागीर बन गया है, जिसने लोगों की जरूरतों और उनके दु:ख-दर्द की तरफ आँखें मूँद ली हैं, जो अराजकता फैलाने पर तुला हुआ है। अपहरण और लूट रोजमर्रा की बात हो गई है, सरकार अपना काम नहीं कर रही है, यह सरकार एक ही वर्ग के हितों का ध्यान रखने में लगी हुई है, इसे बहिष्कृत किया जाना चाहिए। यह हमारे आंदोलन की शुरुआत है, आपके आंदोलन की शुरुआत है, हमें उसे निकाल बाहर करना है और बिहार को वापस उन लोगों के हाथों में सौंपना है, जो जे.पी. और कर्पूरी ठाकुर के ऊँचे मानदंडों पर चलते हैं और जनता की इच्छाओं का ध्यान रखते हैं।'' तालियों की जोरदार गड़गड़ाहट हुई। गांधी मैदान ठसाठस भरा हुआ था। नीतीश को कुछ वर्ष पहले की लालू रैली की याद आ गई होगी, जब लालू ने उन्हें रैली में आने का न्यौता तक नहीं दिया था और उन्हें तमाशा देखने के

लिए चोरी-छिपे आना पड़ा था। इसके स्वर की ऊँचाई ने नीतीश को विजय-स्तंभ पर चढ़ा दिया।

पत्रकार-सक्रियतावादी जुगनू शारदेय उन लोगों में शामिल था, जिन्होंने नीतीश के लालू-विरोधी अभियान में नीतीश का साथ दिया। समता पार्टी द्वारा आहूत समर्थन से वह शुरू-शुरू में अभिभूत हो गए लगते थे। ''मैं उन दिनों नीतीश और उनके राजनीतिक सलाहकारों से निकट संपर्क बनाए रखता था।'' शारदेय ने मुझे बताया, ''और उन सबमें बहुत जोश दिखाई देता था मानो वे चाँद पर पहुँच गए हों। कुछ ही महीनों उपरांत विधानसभा चुनाव होने थे और उन्हें लगने लगा जैसे कि कोई बड़ी सफलता उनकी प्रतीक्षा में है। जब वास्तविक प्रचार-अभियान जनवरी 1995 में आरंभ हुआ, उनके किसी अंदरूनी जनमत-सर्वेक्षक ने नीतीश को बताया कि उन्हें 135 से अधिक सीटों पर विजय प्राप्त होगी। इस संख्या पर मुझे कुछ संदेह तो अवश्य था, लेकिन मुझे इस बात का अनुमान नहीं था कि मतदान के अंतिम चरण तक नीतीश की स्थिति इतनी अधिक खराब होनेवाली है। पीछे देखकर, मैं कहना चाहूँगा कि नीतीश और उनके संगी-साथियों की अपनी झूठी तसल्ली उनको बुरी तरह ले डूबी। वे सोच बैठे थे कि उनके द्वारा चलाई गई लालू-विरोधी क्रांति की हवा स्वत: उनको विजय की तरफ ले जाएगी। बेवकूफी थी।''

नीतीश एवं मंडली ने एक राजनीतिक विद्रोह को चुनाव-संबंधी विजय में बदलने की मूलभूत आवश्यकताओं का अनुमान नहीं लगाया था; भारत में किसी राजनीतिक दल से टूटकर अलग हुए छोटे-छोटे गुटों को अकसर इस गलती का खामियाजा भुगतना पड़ता है, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है के.कामराज तथा मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी कांग्रेस (ओ), जो सन् 1969 में इंदिरा गांधी से अलग तो हो गई, लेकिन कभी भी जीवनक्षम नहीं बन सकी, क्योंकि इसके पास सिर पर भारी नेतृत्व को सँभालने की सामर्थ्य नहीं थी। आरंभ से ही, नीतीश की समता पार्टी के पास प्रचार-अभियान के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे, ले-देकर एक मारुति-800 कार थी और वह भी नीतीश के दोस्त, ज्ञानू की थी; सन् 1995 के प्रचार-अभियान के दौरान वही नीतीश को इस कार में लेकर घूमा करते थे। नीतीश के पास इसके अलावा और कोई मोटर-वाहन नहीं था।

साधनों के अभाव के साथ-साथ नीतीश को जॉर्ज फर्नांडिस द्वारा बिहार के बाहर जुटाई गई थोड़ी बहुत दान-राशि पर निर्भर रहना पड़ रहा था; वह बस एक ही बात का आसरा लिये बैठे थे कि उच्च जातियों तथा गैर-यादव जातियों में लालू प्रसाद की बढ़ती अलोकप्रियता का लाभ उन्हें मिलेगा। उन्होंने न तो इस बात का हिसाब लगाया था कि उनकी काट में कितनी दूसरी जातियाँ लाभान्वित हो रही हैं और न यह सोचा कि उनका पुराना साथी किस कदर धूर्त और चीमड़ है। नीतीश ने इसके अलावा भारत के नए मसीही मुख्य चुनाव आयुक्त, टी.एन. शेषन की कहर बरसानेवाली चेतावनियों को भी हिसाब में नहीं लिया था।

राजीव गांधी की संरक्षक शासन-पद्धति के अनुभवी शेषन ने खुद जनसाधारण को नैतिकता का पाठ पढ़ाने का डंडा उठा लिया और राजनीति तथा राजनेताओं पर गिद्ध-दृष्टि रखना शुरू कर दिया—''बुरे लोग,'' वह गुरु-गंभीर आवाज में बोले, ''उन्हें धोना होगा, व्यवस्था को स्वच्छ करना होगा ऐसे लोगों को बाहर करके।'' बिहार बिलकुल सही जगह थी, जहाँ शेषन की झाड़ू अपना कमाल दिखा सकती थी। भारत के सभी राज्यों में, बिहार एक ऐसा राज्य था, जहाँ के चुनाव-पत्र पर सबसे ज्यादा दाग थे : बूथ पर कब्जा करना, बोगस वोट डलवाना, मतदान पेटियों को जबरन उठाकर ले जाना, हिंसा की वारदातें आदि। बिहार में यदि ये सभी या इनमें से कोई भी घटना न घटे, तो बिहार की कोई खबर नहीं बनती थी। सन् 1984 के लोकसभा चुनाव में चौबीस लोग मारे गए, सन् 1989 में चालीस, सन् 1985 के विधानसभा चुनाव में तिरेसठ लोगों की हत्या हुई और सन् 1990 में सतासी लोग मरे।

शेषन ने सन् 1995 के चुनाव में ऐसी कोई घटना दोबारा न होने देने का बीड़ा उठाया। उन्होंने सहायक सेना की 650 टुकड़ियाँ राज्य में भेज दीं, चुनाव को चार चरणों में विभाजित कर दिया, इतनी बार ही चुनावों को स्थगित

किया, और राजनीतिज्ञों तथा अफसरों को बुरी तरह थका डाला। शेषन के कड़े कदमों और कठोर इंतजाम के चलते चुनाव का यह दौर बिहार के इतिहास में शायद सबसे लंबा और सबसे अधिक यातनादायक था। चुनाव की अधिसूचना 8 दिसंबर, 1994 को जारी की गई थी, आखिरी मतदान 28 मार्च, 1995 को संपन्न हुआ। चुनाव-अभियान के संवाददाता की हैसियत से मुझे करीब बारह बार कलकत्ता से बिहार लौटना पड़ा, क्योंकि मैं कलकत्ता में रहकर 'दि टेलिग्राफ' के लिए काम कर रहा था। हर बार मैंने लालू को पहले से ज्यादा क्षुब्ध और गुस्से में पाया। ''पगलवा शेषन, चुनाव करा रहा है कि कुंभ?''... लालू का गुस्सा खुलकर फूट रहा था, बड़ी रंगीली धमकियाँ उसकी जुबान से निकल रही थीं : ''पगला साँड़ है शेषन, मालूमे नहीं है कि हम रस्सा बाँध के खटाल में बंद भी कर सकते हैं ऐसा ऐसा को''...लेकिन अकेले में, वह खुश लगता था। प्रक्रिया जितनी लंबी खिंची, उसके विरोधियों की मुश्किलें उतनी ही अधिक बढ़ती चली गई। लालू चूँकि मुख्यमंत्री था, इसलिए साधनों का उसे कोई अभाव नहीं था। उसने मैदान पीछे छोड़ दिया, नीतीश को सबसे दूर।

सड़क पर घूमते-घूमते, दो माह बाद ज्ञानू थकने लगा था, ''एक गाड़ी में कितना बिहार घूमते, बताइए? न पैसा था, न ह्यूमन रिसोर्स था, अकेला लड़ाई था एक किसम से समझिए...''

लेकिन असल कमी साधनों की नहीं थी, कमी अनुमान लगाने की थी। नीतीश और उनके सहयोगी—शिवानंद तिवारी—निरंतर साथ रहते थे—जहाँ-जहाँ भी गए, लोग बड़ी संख्या में जमा होते थे और लालू के खिलाफ शिकायतें सुनाने के लिए व्यग्र रहते थे। लेकिन उनसे गलती यह हुई कि जितने लोग आते थे उन्हें ही वे अपना मतदाता समझ लेते थे। उन लोगों की तरफ उनका ध्यान नहीं गया, जो आते नहीं थे। उनमें भारी संख्या यादव-प्रभावित पिछड़ों, दलितों तथा मुसलमानों की थी और उन सबको मिलाकर बने चुनावी गणित को पार करना लगभग असंभव था। लालू के हाथों में मंडल आरक्षण का लड्डू अल्पाधिकार प्राप्त वर्गों का 'पवित्र प्याला (होली ग्रेल)' बन गया था, वह एक जागरणकारी आंदोलन का हीरो था, भले ही विघटनकारी क्यों न हो, 'भूराबल हटाओ', लालू का कहना था। लालू ने उच्च जातियों के लिए 'भूराबल' शब्द की रचना अपनी कल्पना से की थी, चार जातियों के पहले अक्षर को मिलाकर : भूमिहार, राजपूत, ब्राह्मण और लाला (अर्थात् कायस्थ)। सन् 1990 में उत्तर बिहार के समस्तीपुर में एल. के. आडवाणी की गिरफ्तारी और उनकी रामरथ यात्रा को चौपट कर देने की कारवाई के कारण लालू मुसलमानों में बहुत प्रिय हो गए थे। वे लालू से ऐसे चिपक गए जैसे गले में ताबीज। सन् 1995 में उसे पहले से भी अधिक शत्रुओं ने घेर लिया—कांग्रेस, बी.जे.पी., बहुजन समाज पार्टी, मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी और नीतीश की समता पार्टी—लेकिन वे विभाजित थे। वे सब किसी शेर की दावत पर घेरा डाले हुए भेड़ियों के एक झुंड की तरह थे।

लालू यादव को 164 सीटें प्राप्त हुईं, इसके पहले के विधानसभा चुनाव में मिली सीटों से भी अधिक। बिहार में यह खोखली वोट बैंक राजनीति का एक दौर था। मुसलमानों और यादवों ने बहुत बुरे और घटिया शासन का दोष लगाने के बावजूद क्षमादान के रूप में लालू को एक और मौका देने का फैसला किया और उसे विभाजित विपक्ष से बहुत आगे धकेल दिया। जैसे-जैसे नतीजे आने शुरू हुए और विधानसभा सीटों का ढेर उसके पीछे लगने लगा, उसने मुझे 1, अणे मार्ग के लॉन में अपने पास बुलाया, जहाँ वह जश्न मनाने के लिए उन्मत्त लोगों के बीच बेंत की एक कुरसी पर शेर जैसा बैठा हुआ था। वह मेरे उस लेख से चिढ़ा हुआ था, जो मैंने चुनाव से पहले अखबार के लिए लिखा था और जिसमें मैंने नीतीश की ओर से लालू के लिए मुख्य चुनौती का उल्लेख किया था। ''ऊ जिसका फोटो आप छापे थे अपने अखबार में मेरे साथ, जिसका हम नाम भी नहीं लेते हैं, क्या हुआ उसका?'' लालू ने खिल्ली उड़ाई। ''कहाँ गया ऊ चैलेंजर लालू का?''...

घेरा डाले खड़े भेड़ियों के हिस्से में बचे-खुचे टुकड़े आए। लेकिन नीतीश को उतना भी नहीं मिला, पूरा एक कौर भी नहीं। 324 सीटों की विधानसभा में सात सीटें, समता पार्टी ने 310 प्रत्याशी खड़े किए थे, जिनमें से 271 की जमानत राशि जब्त हो गई।

नीतीश ने मध्य-प्रात:काल टेलीविजन बंद कर दिया था और अपने इंजीनियर दोस्त अरुण कुमार का पुनाई चौक का घर छोड़ दिया। किसी का फोन उन्होंने नहीं उठाया। वह लोगों से मिलना नहीं चाहते थे। पत्रकारों से भेंट करना नहीं चाहते थे। दूरदर्शन पर लालू, बी.जे.पी. के शत्रुघ्न सिन्हा और कांग्रेस के जगन्नाथ मिश्र के साथ बहस में शामिल होने से इनकार कर दिया और चुनाव में मिली करारी हार के बारे में सफाई देने का कार्य उन्होंने भोला प्रसाद सिंह को सौंप दिया, जिन्होंने सी.पी.आई. (एम.एल.) के साथ समता पार्टी का विनाशकारी गठजोड़ कराया था। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी का भी इस ओर ध्यान नहीं गया कि नीतीश कुमार के भूमि संपन्न कुर्मी-कोइरी आधार और सी.पी.आई. (एम.एन.) उन नेताओं के बीच शीर्ष से निम्नतम स्तर तक का गठजोड़ था, जिनके मतदाता-वर्ग ने इस गठबंधन को स्वीकार नहीं किया था। नीतीश ने यह उचित समझा कि इस विफल मनोरथ के बारे में सफाई देने का काम इस योजना के निर्माता भोला बाबू को ही सौंप दिया जाए।

लेकिन मुख्य बात यह है कि नीतीश का सपना बुरी तरह चूर-चूर हो गया था और वह इस सच्चाई का सामना करने से कतराना चाहते थे। वह चुपके से ज्ञानू के श्रीकृष्णपुरी स्थित घर में चले गए, जहाँ टेलीविजन अभी तक चालू था और चुनाव में चली आँधी की खबरें फेंक रहा था। ''चले थे सरकार बनाने और जनता ने क्या बना दिया,''...नीतीश इतने धीमे से बड़बड़ाए कि शायद ज्ञानू भी नहीं सुन पाया होगा। वह एक कुरसी में धसक गए और ज्ञानू से बोले कि कृपया टी.वी. बंद कर दें। ''वह पूरी तरह टूट गए थे, वह अपनी और हमारे सारे प्रयास की खिल्ली उड़ा रहे थे। मैं समझ सकता था कि वह अपने-आपसे बहुत अधिक नाराज हैं। उन्होंने मुझसे कहा, 'ज्ञानूजी, किसी को मत बताइए हम यहाँ हैं,'... वह किसी से भी बात करना नहीं चाहते थे; वह काफी समय तक वहाँ ऐसे बैठे रहे जैसे शरीर में जान ही न हो।''

निशांत पंद्रह साल का होनेवाला था। वह अभी तक कंकड़बाग में मंजू के पास था। नीतीश हाल में उससे शायद मिलने भी नहीं गए थे। अभी वह समय आने में एक दशक बाकी था, जब पिता अपने पुत्र को समझा पाएगा कि वह इतने लंबे समय तक दूर क्यों रहा। निशांत के पिता सन् 2005 में जब मुख्यमंत्री बन गए, उसके बाद निशांत 1, अणे मार्ग स्थित मुख्यमंत्री निवास में रहने चला गया। मंजू कभी नहीं गई।

नीतीश फिर एक बार बेमतलब भटकने और गहरी सोच में डूबे रहने लगे। वह दिल्ली चले गए और अपने-आप में सिमट गए। लोकसभा में अभी भी उनकी सीट थी लेकिन पराजय ने उन्हें इस कदर लज्जित कर दिया था कि कुछ समय तक संसद् की ओर जाने की उनकी इच्छा ही नहीं हुई। वह गुमसुम हो गए, ढेर सारी किताबें पढ़ने में खोए रहने लगे, जैसे लोहिया के लेखों का संग्रह, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा अन्य। इस तरह के सुझाव की बड़बड़ाहट सुनी जा रही थी कि नीतीश को किसी तरीके से लालू के साथ समझौता कर लेना चाहिए। वह न तो उसके पक्ष में थे, न उसके विरुद्ध : एक बात स्पष्ट थी कि मुड़कर लालू की तरफ जाने का कोई प्रश्न नहीं था।

''हमारी हार के बाद समता पार्टी में कई लोगों का विचार था कि हमें जनता पार्टी में लौट जाना चाहिए,'' शिवानंद तिवारी ने मुझे बताया, ''लालू को भारी बहुमत मिला था और यह बात कल्पना थी कि निकट भविष्य में लालू को बिहार में सत्ता से हटाया जा सकता है। लेकिन नीतीश बहुत अड़ियल और हठी हो सकते हैं, वह लौटने के विचार के भी एकदम खिलाफ थे।'' किंतु वह अपने पराजित संगी-साथियों को कोई विकल्प भी नहीं दे रहे थे। किसी को कुछ पता नहीं था कि उनके मन में क्या चल रहा है। शायद उन्हें खुद भी कुछ सूझ नहीं रहा था कि उनका अगला

कदम क्या होना चाहिए।

इसी समय के आस-पास की बात है, सन् 1995 के मध्य में किसी समय, पत्रकार और बी.जे.पी. के रणनीतिज्ञ दीनानाथ मिश्र ने नीतीश के पुराने मित्र सरजू राय को बुलाया और पूछा कि क्या वह नीतीश के साथ एक मुलाकात तय करा सकते हैं। सरजू राय ने चकित होकर पूछा कि किसलिए, तो दीनानाथ मिश्र ने कहा कि बिहार में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में वह नीतीश के विचारों की टोह पाना चाहते हैं। मिश्र के पास एक रोग-विज्ञानी जैसी कर्मठता थी, जो किसी भी व्याधि की जड़ तक पहुँचने की योग्यता रखता है; छोटी-मोटी राजनीतिक विकृतियों को पकड़ने और समझने में वह बहुत कुशल थे। उनका मानना था कि बिहार से आए चुनाव परिणामों में उन्होंने कोई दिलचस्प बात देखी है। लालू के चुनावी गणित ने स्पर्धा को पछाड़ भले ही दिया हो, लेकिन वह अजेय नहीं था। यदि नीतीश कुर्मी-कोइरी मतदाता-वर्ग को बी.जे.पी. के उच्च-जाति मतदाता वर्ग के साथ एक सीध में खड़ा कर सकें तो वे मिलकर बिहार में एक विकल्प दे सकते हैं। मिश्र के निष्कर्ष के अनुसार, लालू को विपक्ष की एकता में कमी का लाभ प्राप्त हुआ : यदि दो विरोधी इकट्ठा हो जाएँ, तो वे एक कड़ी और पक्की चुनौती बन सकते हैं।

नीतीश और दीनानाथ मिश्र ने नई दिल्ली के एक शांत इलाके में स्थित एक रेस्तराँ में कॉफी पर एक-दूसरे से भेंट की। हँसी-मजाक के साथ शुरू हुई बातचीत आरंभिक तैयारी के निर्णय के साथ समाप्त हुई। दोनों सहमत थे कि बिहार के लिए लालू ठीक नहीं है और उससे मुकाबला करने तथा उसे सत्ता से बाहर निकालने की जरूरत है। लेकिन अगर मिश्र ने सीटों की संख्या को आधार बनाकर अपने अनुमान के अनुसार गठबंधन का संकेत दिया, तो नीतीश ने उस पर ध्यान न देने का बहाना किया। एक समाजवादी के लिए, बहुत सोच-विचार किए बिना, बी.जे.पी. के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाना संभव नहीं था। वह फिर कौटिल्य के गहन अध्ययन में खो गए।

मिश्र अपनी जिद पर अड़े रहे। उन्होंने अपनी मुलाकात का विवरण बी.जे.पी के सर्वेसर्वाओं को सूचित कर दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि नीतीश के साथ बातचीत का स्तर बढ़ाने की आवश्यकता है। कुछ दिनों बाद मिश्र ने नीतीश को सूचित किया कि एल. के. आडवाणी उनसे भेंट करना चाहते हैं। नीतीश संकोच में पड़ गए। उन्होंने बी.जे.पी. के साथ कभी सीधा संपर्क नहीं किया था। उन्हें बी.जे.पी के वैश्विक-दृष्टिकोण तथा राजनीतिक विचारधारा के बारे में कुछ शंकाएँ थीं। उनका प्रशिक्षण और उनकी धारणाएँ अत्यधिक संप्रदायवाद विरोधी थीं। उन्होंने मध्ययुगीन बाबरी मसजिद की जगह अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण करने हेतु चलाए गए हिंसक आंदोलन का विरोध किया था। उन्होंने सन् 1990 में लालू द्वारा समस्तीपुर में आडवाणी को गिरफ्तार किए जाने तथा आडवाणी की रथयात्रा को रोक देने का समर्थन किया था। वह आडवाणी से क्या और किस बारे में बात करेंगे? किंतु सरजू राय ने कहा कि आडवाणी अगर कुछ कहना चाहते हैं तो उनकी बात सुनने में कोई हर्ज नहीं है और फर्नांडिस ने कनखी मारी तथा मान जाने का इशारा किया। समता पार्टी अध्यक्ष संभवत: पहले ही योजना बनाए बैठे थे।

कुछ माह पश्चात्, नीतीश को एक विशेष अतिथि के रूप में बी.जे.पी. के राष्ट्रीय सम्मेलन में आमंत्रित किया गया, जिसका आयोजन बंबई के महालक्ष्मी रेसकोर्स मैदान में किया गया था। नीतीश वहाँ गए और फिर दोनों पार्टियों के बीच गठबंधन होने में कोई ज्यादा समय नहीं लगा। जाने या अनजाने में, नीतीश ने अपने नायक के रण-कौशल को अपना लिया था। सन् 1963 में, समाजवादी लोहिया ने पूर्व-मध्य उत्तर प्रदेश में फर्रुखाबाद से लोकसभा के एक उप-चुनाव में कांग्रेस को हराने के लिए बी.जे.पी. के प्रजनक, जनसंघ से मदद ली। उसके बाद उन्होंने उत्तरी भारत में अन्यत्र कांग्रेस का मुकाबला करने के उद्देश्य से भागीदारी का विस्तार करने की वकालत की। लोहिया की दृष्टि से यह कांग्रेस को सत्ता से उखाड़ फेंकने का समय था; उस राजनीतिक आवश्यकता के

लिए विचारधारा गौण हो गई। नीतीश के विचार में एकमात्र उद्‌देश्य बिहार को लालूराज से मुक्त करना था। लालू की लापरवाही और कर्तव्य-विमुखता के विरुद्‌ध अपनी नीति-परायणता की भड़ास निकालना ही काफी नहीं था; यह संदेश तो वह सन्‌ 1995 में दे चुके थे लेकिन अभी तक उसका भार उतरा नहीं था। नीतीश को सी.पी.आई. (एम.एल.) से कहीं अधिक मजबूत, अधिक उपयुक्त मित्र-गुटों की आवश्यकता थी।

नीतीश और बी.जे.पी. ने बिहार में एक-दूसरे के भागीदार बनकर सन्‌ 1996 का चुनाव लड़ा और यह तत्क्षण स्पष्ट हो गया कि दीनानाथ मिश्र ने चाय के दौरान नीतीश के इरादों को सही पढ़ लिया था। बी.जे.पी. को अठारह सीटों पर सफलता मिली, समता पार्टी के हिस्से में छह सीटें आईं। लोकसभा में लालू की सीटों की संख्या तैंतीस से घटकर बाईस रह गई। नीतीश अब फिर बिहार में अपना चेहरा बाहर दिखाने का साहस कर सकते थे। और यह उन्होंने कर दिखाया, पटना से हटकर बोरिंग रोड पर समता पार्टी का नया मुख्यालय स्थापित करके।

वह जगह कारोबारी ठेकेदार विनय कुमार की थी, जिसने बिहार राज्य विद्युत्‌ बोर्ड (बी.एस.ई.बी.) को पूर्व-निर्मित विद्युत्‌-वितरण खंभे सप्लाई करके अपनी माली हैसियत बनाई थी। अपने अन्य व्यवसायी बंधुओं की तरह, विनय कुमार भी, अपने कारोबारी हितों को बढ़ाने के लिए न सही, उन हितों की रक्षा करने के लिए जरूर राजनीति में अपनी उँगली गड़ाए रखते थे। लेकिन नीतीश के प्रति उनके विशेष अनुराग का एक कारण और भी था—वह नीतीश में कुछ-कुछ अपनी झलक पाते थे; जैसा कि विनय कुमार ने मुझे बताया, ''नीतीश उनका अपना बिरादरी भाई, 'एक सभ्य, पढ़ा-लिखा कुर्मी' है।''

विनय कुमार ने अपने घर के दरवाजे भी नीतीश के लिए खोल दिए; 'चित्रकूट' नाम की एक अपार्टमेंट बिल्डिंग में पहली मंजिल (ग्राउंड फ्लोर) की जगह उन्हें दे दी और बाद में, निकटवर्ती 'सीतायन' भी लंबे पट्‌टे पर उन्हें दे दिया। ऐसा करके विनय कुमार ने पटना में नीतीश कुमार के लिए ठिकाने का इंतजाम कर दिया, ताकि उन्हें दर-ब-दर भटकना न पड़े। 'सीतायन' से निकलकर उन्हें अन्यत्र नहीं, अपितु मुख्यमंत्री बनकर सीधे 1, अणे मार्ग में प्रवेश करना था।

वास्तुशास्त्री कह सकते हैं कि नीतीश के लिए 'चित्रकूट' भाग्यशाली सिद्‌ध हुआ। ज्योतिषी अपने हिसाब से इसे एक शुभ-संयोग बता सकते हैं। संभवत: यह और कुछ नहीं बल्कि सिर्फ एक अच्छी और घटिया राजनीति का विषय था।

खैर, जो भी हो, सन्‌ 1996 का वर्ष हमारे प्रमुख नायक के लिए एक निर्णायक वर्ष साबित हुआ। यदि यह उनके चुनाव-संबंधी पुनर्जागरण का वर्ष था, तो यह लालू यादव के सितारे को दागदार करनेवाला वर्ष भी था। ऐसी खबरें बाहर निकलकर आईं कि राज्य के पशुपालन विभाग में एक बड़ी लूट का मामला सामने आया है और यह भी कि लालू ने इस लूट का फायदा उठाया है। इस लूट को 'चारा घोटाले' का नाम दिया गया। 1,000 करोड़ रुपए का यह चारा घोटाला कुछ मामूली पदाधिकारियों तथा प्रभावशाली राजनीतिज्ञों के एक घेरे के बीच मिलीभगत से खूब फल-फूल रहा था। उनका तरीका बेहद सरल था: आपूर्ति अर्थात्‌ सप्लाई के जाली बिल पेश करो और सरकारी खजाने को खाली करते रहो। मिसाल के तौर पर, सूअरों व पशु-चिकित्सा औषधियों तथा चारे का आयात करने का 50 करोड़ रुपए का बिल पेश किया जाता है। रसीदों पर दस्तखत हो जाएँगे और भुगतान कर दिया जाएगा। किंतु, पशुपालन विभाग के पास पहुँचेगा कुछ नहीं—न सूअरों की खेप, न औषधियाँ और न चारा। बिहार में यह चोरी वर्षों से चल रही थी। कागजी चारा असल निजी सोना-चाँदी में बदल गया। यह संगठित चोरी, वास्तव में, लालू यादव के मुख्यमंत्री बनने के पहले से होती आ रही थी; लालू के अधीन, चोरों के हौसले और भी ज्यादा बढ़ गए, वे और भी अधिक मालामाल होने लगे।

बी.जे.पी. के सक्रिय कार्यकर्ताओं, और बाद में कुछ समता नेताओं ने वहाँ-वहाँ गहरी छानबीन शुरू कर दी जहाँ-जहाँ उन्हें घोटाले की सूँघ लगी। जनवरी 1996 में, गणतंत्र दिवस की पूर्व-संध्या पर, बी.जे.पी. के सरजू राय और समता पार्टी के शिवानंद तिवारी ने पटना उच्च न्यायालय में एक लोकहित मुकदमा दायर कर दिया और इस घोटाले के औपचारिक रूप से इसका मशहूर नाम दिया : 'चारा घोटाला'। एक वर्ष से कुछ अधिक समय के अंदर, लालू की वे सभी दलीलें निराधार साबित हो गईं जिनकी आड़ लेकर वह इसे 'राजनीतिक कुचक्र या साजिश' सिद्ध करना चाह रहा था। सी.बी.आई. द्वारा लालू से बार-बार पूछताछ की गई, उसे अदालत में बुलाया गया, आरोप-पत्र दाखिल किया गया और अंतत: उसे इस्तीफा देने के लिए बाध्य कर दिया गया। (सन् 2013 में लालू को राँची में सी.बी.आई. अदालत ने दोषी घोषित किया और उसे जेल भेज दिया)।

लेकिन नीतीश के खेमे में अभी जश्न मनाने का समय नहीं आया था, क्योंकि लालू ने एक बहुत ही धूर्ततापूर्ण और निर्लज्ज चाल चल दी थी। जेल जाते समय, लालू ने अपनी अनपढ़ पत्नी, राबड़ी देवी को चौका-चूल्हे से उठाकर अपनी जगह एक प्रतिनिधि मुख्यमंत्री के रूप में काम करने का अधिकार दे दिया, भारत में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। लालू ने जेल में रहते हुए बिहार पर राज्य किया; नीतीश समझ बैठे कि उनका शत्रु स्वयं अपने ही बुने जाल में फँस गया है। उनके आह्वान पर राज्य भर में 'लालू हटाओ' प्रदर्शन किए गए और वह 'बिहार की चेतना' को एक पेटीकोट सरकार के साथ चुप लगाकर बैठने के लिए लताड़ लगाने से भी नहीं चूके : ''बिहार के राजनीतिक रूप से सजग और सतर्क लोगों के दिल को यह बात चुभनी चाहिए कि उनके साथ कितना बड़ा धोखा किया गया है, मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे लंबे समय तक इसे बरदाश्त नहीं करेंगे।''

चुनाव परिणाम उनके विश्लेषण के अनुकूल रहे। सन् 1998 के लोकसभा चुनाव में बी.जे.पी.-समता गठबंधन को बिहार की चौवन सीटों में से उनतीस सीटों पर जीत मिली। जीत की खुशी से नीतीश का हौसला बढ़ना स्वाभाविक था, अत: उन्होंने केंद्र में वाजपेयी सरकार को सुझाव दिया कि बिहार में संवैधानिक व्यवस्था ठप्प हो जाने के मद्देनजर राबड़ी सरकार को खारिज किया जाना चाहिए। लेकिन उनका यह तीर बेकार चला गया। संसद् के उच्च सदन में कांग्रेस ने राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की मंजूरी में रुकावट डाल दी। राबड़ी को पुन: गद्दी पर बैठा दिया गया। लालू ने अपनी जेल-कोठरी से मुसकान बिखेरी, बेऊर जेल में पार्टी मनाने के लिए अपने कुछ साथियों को बुलाया, जिनमें पटना के पत्रकार भी थे। लालू ने खुद मछली तली।

लालू की खुशी दोगुनी हो गई जब कुछ समय बाद वाजपेयी सरकार, सुब्रह्मण्यम स्वामी की मनमौजी राजनीतिक बयानबाजी के कारण, स्वयं ही धराशायी हो गई। सोनिया गांधी और जे. जयललिता को चाय पर आमने-सामने लानेवाले व्यक्ति ने ही वाजपेयी को नीचे खिसका दिया। तब से स्वामी, सोनिया और जयललिता ने जो विपरीत दशाएँ पकड़ी हैं, उससे एक बात तो बहुत स्पष्ट हो जाती है : राजनीति में हमेशा के लिए कोई मित्र या शत्रु नहीं होता है।

सन् 1999 में स्वामी की छोटी सी चाय पार्टी के फलस्वरूप, राष्ट्रीय चुनावों के लिए, विपक्ष मजबूती से एकजुट होकर लालू पर टूटा और उसे चारों खाने चित कर दिया। तब तक नीतीश ने अपनी समता पार्टी का शरद की जे.डी.यू. के साथ विलय कर दिया था और बी.जे.पी. को साथ लेकर, उन्होंने पहले से भी कहीं अधिक सीटों पर कब्जा कर लिया : चौवन सीटों में से बयालिस सीटें हासिल कर लीं। नीतीश खुशी से झूम उठे, ''अंत निकट है,'' नतीजे घोषित होने के बाद एक अनौपचारिक रात्रि-भोज पर हमारे बीच कुछ लोगों को उन्होंने बताया। वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) की एक नई सरकार नई दिल्ली में बनने जा रही थी, बिहार में विधानसभा के चुनाव कुछ ही माह के अंदर होनेवाले थे। ''लोगों का फैसला पहले ही आ चुका है जो एकदम

स्पष्ट है,'' उन्होंने कहा, ''इन चुनावों ने एक मजबूत मुद्दा उठाया है पदाधिकार के विरोध में, अब जो भी करना है जनता करेगी, हमारे लिए करने को ज्यादा कुछ नहीं है।''

उन्होंने बोलने में कुछ ज्यादा ही तत्परता दिखाई। सन् 2000 में जब विधानसभा सीटों के बँटवारे की बात आई, लालू-विरोधी खेमा छोटी-मोटी बातों पर बुरी तरह लड़ने-झगड़ने लगा और तितर-बितर हो गया। उनमें से बहुतों ने मान लिया था कि लालू कमजोर हो गया है और बिहार अब उनकी मुट्ठी में आनेवाला है। प्रत्येक गुट चुनाव से पहले सीटों के बँटवारे में अधिक-से-अधिक हिस्से की चाह करने लगा, क्योंकि चुनाव के उपरांत जिसकी झोली में जितनी अधिक सीटें आएँगी, भावी सरकार में वे उतनी ही अधिक हिस्सेदारी का दावा कर सकेंगे। वे असहमति के लिए सहमत हो गए। समता पार्टी ने जे.डी.यू. से अपना बंधन तोड़ लिया और 120 सीटों पर चुनाव लड़ा। जे.डी.यू. ने सतासी सीटों के लिए अपने प्रत्याशी खड़े किए, बी.जे.पी. ने 168 और राजपूत बाहुबली आनंद मोहन सिंह की अगुआई में बिहार पीपॅल्स पार्टी ने तेईस सीटों पर चुनाव लड़ने का फैसला किया। प्रत्येक का एक ही नारा था : लालू का जंगलराज उखाड़ फेंको। राज्य भर में वे एक-दूसरे से भिड़े। लँगड़ाए लालू ने भी 124 सीटों पर उम्मीदवार खड़े किए। उसने 'जंगलराज' अभियान को चतुराई से सिर चढ़ा दिया। उसने इस नारे को उच्च जाति की साजिश बतलाया ताकि उच्च जाति-वर्ग अल्प सुविधा प्राप्त वर्गों को शासन करने के अधिकार से वंचित रख सके। ''वे बिहार को एक जंगल बतला रहे हैं, ये लोग बिहार को जंगल कहते हैं, अत: आप जानवर हैं,'' लालू ने अपने मतदाताओं से कहा, ''क्या आप जानवर हैं? क्या यह राज्य एक जंगल है?'' उसका यह दाँव काम कर गया और उसे कामयाबी मिली। एन.डी.ए. को कुल मिलाकर 122 सीटें प्राप्त हुईं। उन्होंने अब तक का सबसे बढ़िया मौका खो दिया और यह दोष उनका अपना ही था। कुछ माह पहले जब उन्होंने संयुक्त रूप से चुनाव लड़ा, उन्होंने लालू के छक्के छुड़ा देने का दावा किया था; विभाजित होकर चुनाव लड़ना उन पर भारी पड़ गया, वे लक्ष्य से बहुत पीछे रह गए।

लेकिन वे अभी हिम्मत हारनेवाले नहीं थे। दिल्ली में सरकार उनकी थी और पुरानी तरह की धक्का-मुक्की करने के लिए अभी समय बाकी था। दिल्ली में गद्दी सँभालने का क्या फायदा यदि वहाँ बैठी अपनी सरकार राज्यों में अपने प्रभाव और दबाव का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए ही न कर सके? विरोधी दावेदारों के बीच केवल दो सीटों का अंतर था—लालू के पक्ष में 124 सीटें थीं, एन.डी.ए. में शामिल पार्टियों के पास कुल मिलाकर 122 सीटें थीं। इस अंतर को आसानी से मिटाया जा सकता था, सत्ता का बल संख्या दिलाएगा। राज्यपाल विनोद पांडे को नई दिल्ली से हुक्म भेजा गया कि वह नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाएँ। पांडे ने आज्ञा का पालन किया, हालाँकि उनका यह निर्णय घोर लज्जास्पद था, जिसकी सफाई में उन्होंने मूर्खतापूर्ण तर्कों का सहारा लिया। इस प्रकार 3 मार्च, 2000 को नीतीश कुमार पहली बार बिहार के मुख्यमंत्री बने, निस्संदेह जनता की स्वीकृति से नहीं, बल्कि राजनीतिक चालबाजी से।

उन्हें अपने दावे को सिद्ध करने के लिए एक सप्ताह का समय मिला। उसके बाद जो कुछ हुआ वह अभी तक किसी निर्देशक की तलाश में जोड़-तोड़ का एक मजेदार नाटक था। एक सप्ताह के लिए कानून निर्माताओं ने अपने-आपको भगोड़ों के हाथों गिरवी रख दिया। एक तरफ लालू के वफादार मोहम्मद शहाबुद्दीन ने—जो उस समय का शायद सबसे खतरनाक और प्रभावशाली, अपराध-जगत का छिपा हुआ बदमाश था—आठ कांग्रेसी विधायकों को पटना के सरकारी स्वामित्वाधीन पाटलिपुत्र होटल में बंदूक के साए में बंधक बनाकर रखा, वहीं दूसरी ओर जमानत पर जेल से छूटे लालू ने सोनिया गांधी के राजनीतिक सचिव अहमद पटेल को फोन पर फोन घुमाना शुरू कर दिया : कृपया बिहार को सांप्रदायिक ताकतों के हाथों में जाने से बचाएँ, मुझे सहारा दें, राबड़ी को

सहारा दें; आपके लोगों का सरकार में बहुत-बहुत स्वागत है, अपनी कीमत बताएँ मगर धर्म-निरपेक्ष ताकतों को निराश न करें। करीब-करीब एक सप्ताह तक, शहाबुद्दीन अपनी चुस्त पैंट की जेब में एक तमंचा खोसे हुए पाटलिपुत्र होटल की लॉबी में दबे पाँव चक्कर लगाता रहा। वह एक अच्छा निशानेबाज माना जाता था; यह भी कहा जाता है कि घोड़ा दबाने में उसे जरा भी हिचक नहीं होती थी। उसके नौकर अथवा गुमाश्ते लालू के अपने दर्जनों ऐसे विधायकों पर निगरानी रख रहे थे, जिनकी वफादारी संदेहजनक थी।

नीतीश को बाहुबली सरीखे लोगों की मदद लेने से यद्यपि बहुत चिढ़ थी, लेकिन इस बार वह भी असल राजनीति के मलकुंड में उँगली डुबोने के लिए तैयार थे बशर्ते कि उनकी पवित्र खादी पर कोई दाग न आए। ताकत का इस्तेमाल करने से उन्हें परहेज नहीं था, लेकिन वह अपने हाथ गंदे करना नहीं चाहते थे। उन्हें बताया गया कि बहुत से अपराधियों ने निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव जीता है और वे उन्हें समर्थन देने के लिए तैयार हैं। नीतीश के सहयोगियों ने नीतिश को उन लोगों से मिलने तथा उन्हें समर्थन के बदले चढ़ावा देने का सुझाव दिया और कहा, ''अगर बात बन जाती है, तो 'गद्दी' आपकी हो जाएगी।'' मोकामा का ठेकेदार अपराधी सूरजभान, पीरो का सुनील पांडे, बनियापुर का धूमल, राजन तिवारी, रमा सिंह, मुन्ना शुक्ला आदि कई लोग थे। इन सभी लोगों ने अपराध प्रक्रिया संहिता का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन करने में कीर्तिमान स्थापित किया था : हत्या, हत्या का प्रयास, अपहरण, लूट, डकैती, अवैध बंदीकरण, डराना-धमकाना, गबन, अतिक्रमण आदि उनके अपराधों के उदाहरण हैं।

चुनावों से कुछ माह पूर्व, मैंने पी.एम.सी.एच. के वी.आई.पी. वार्ड में राजन तिवारी से मुलाकात की थी, जिस समय उसे हत्या के मुकदमे के तहत जेल में होना चाहिए था। उसने मुझे बताया कि उसकी पीठ में दर्द है, जिसकी वजह से उसे रोजाना कुछ मिनट के लिए ट्रैक्शन पर रखना पड़ता है : ''डॉक्टर का सर्टिफाइड है, बीमार हैं, जेल से छुट्टी है''... वह तीस-पैंतीस के बीच रहा होगा, पतला-दुबला, ऊँचे कद का आदमी, सिर पर घने घुँघराले बाल। वह जींस और कलफ लगी सफेद कमीज पहने हुए था तथा वार्ड के विश्राम-कक्ष में बैठा अपने हमउम्र लोगों के साथ ताश खेल रहा था, जो उसके साथी या जी-हुजूरी करनेवाले रहे होंगे। खिड़की की पटिया पर कई बेधुले गिलास रखे थे और मैक्डॉवल नं. 1 व्हिस्की की खाली बोतल रखी हुई थी। जब मैंने पूछा कि क्या विचाराधीन अभियुक्त या अस्पताल में भरती मरीज के रूप में उसे शराब पीने की इजाजत है, तो उसने जवाब दिया : ''यूँ ही, कभी-कभी। ऐसे ही जब मन करता है, जब पेन बढ़ जाता है...''

हमारी बातचीत के बीच में ही उसने कहा कि पटना का चक्कर मारने चलते हैं—''हवा खाते हुए बात करते हैं...'' जिस पुलिसवाले को उस पर चौकसी रखने के लिए तैनात किया गया था, उसको राजन तिवारी ने कार लाने के लिए कहा। सिपाही ने बड़े अदब से 'जी सर' कहा और झट से वार्ड के बाहर निकल गया। तिवारी के साथ ताश खेलनेवालों में से तीन या चार लोग हमारे पीछे-पीछे चले आए। फिलहाल, एक टाटा सूमो हमारे सामने पेश हो गई और राजन तिवारी ने स्टीयरिंग सँभाल लिया। उसने मुझे आगे की सवारी सीट पर बिठाया और बाकी लोगों को पीछे जाकर बैठने का इशारा किया। 'जी सर' पुलिसकर्मी ने कार की तरफ आने का साहस भी नहीं किया। वह इस कवायद से अच्छी तरह परिचित था। उसने तिवारी की तरफ का दरवाजा बंद किया और सलामी ठोकी। गाड़ी के अंदर की शक्ल-सूरत सँवारने पर, लगता है, काफी खर्चा किया गया था। सीटें काले रंग के फॉक्स-लैदर की थीं। फर्श की चटाइयाँ चीते की खाल जैसी रैक्सीन की थीं। सोनी के म्यूजिक सिस्टम से किशोर कुमार का फिल्मी गीत निकल रहा था। खिड़कियों के शीशे पर काले सियाह रंग की फिल्म चढ़ी हुई थी। तिवारी ने पीछे की झलक देनेवाली शीशे में अपना चेहरा देखा और कहा, ''अच्छा हुआ आप आ गए, इसी बहाने बाल भी कटा लेंगे, शेव भी हो जाएगा...''

जब हम सड़क पर मध्य पटना के ट्रैफिक के बीच से निकल रहे थे और जब मैंने उस धक्कम-धक्का भरे माहौल से खुद को सँभाल लिया था, जिसका मैं हिस्सा बन चुका था, मैंने तिवारी से सवाल किया कि क्या उसे पीठ का दर्द लिये कार चलाने की इजाजत है, ऐसी हालत में भी क्या वह सैलून में जा सकता है और शेव करा सकता है। ''क्या वे तुमको पकड़ नहीं लेंगे?''

उसने गुस्साए चेहरे से मुझे देखा और कहा : ''हिम्मत है?''...वह मुझे दो बार गांधी मैदान से ले गया, दोनों बार रास्ते में पटना के उच्चतम पुलिस अधिकारी का निवास-स्थान और पुलिस मुख्यालय पड़ा। उसने चालन-चक्के पर मजबूत गिरफ्त बनाए रखी। उसने अनेक अँगूठियाँ पहन रखी थीं और उसकी छोटी उँगलियों के नाखून काफी लंबे थे, पंजों जैसे। बातचीत होती रही, जिसके दौरान उसने कहा कि उसके खिलाफ लगाए आरोप दुश्मनों की एक साजिश है, जिनको वह रिहाई के बाद देख लेगा—''ठिकाना लगा देंगे''...उसने मुझे ऐसी जगह छोड़ दिया जहाँ से मुझे कोई रिक्शा मिल जाए; जाते-जाते उसने कहा कि अब उसका सैलून जाने का समय हो गया है।

ऐसे लोग अपनी-अपनी जेल कोठरियों में पोशाक धारण किए हुए, दस्तखत करने के लिए तैयार बैठे थे; बस नीतीश के बुलावे का इंतजार था। अपराधियों का यह गिरोह उनकी नई सरकार में मंत्रिवर्गीय सहयोगी बनने जा रहे थे।

नीतीश को यकीन दिला दिया गया था कि अगर वे एक बार सहमत हो जाएँ, तो समर्थन का झरना बहने लग जाएगा, मान जाओ, यह राजनीति है, कोई नैतिकता का नाटक नहीं है। नीतीश का मन ललचा भी रहा था और उन्हें घुटन भी महसूस हो रही थी। एक ओर तो जीवन भर का सपना पूरा करने का अवसर उनके सामने था, दूसरी ओर सबके सामने अपराधियों को गले लगाने तथा कैबिनेट में इन्हें अपनी बगल में बिठाने की कड़ी यातना नीतीश को बेचैन किए हुए थे। ''रात-रात भर वह सो नहीं सके,'' ज्ञानू ने मुझे बताया, ''आगे-पीछे की गहरी सोच में डूबे हुए, नीतीश जल्दबाजी में कोई निर्णय लेनेवाले नहीं थे। उनके अंदर का गुस्सा कुछ बढ़ गया था। वह सत्ता जरूर पाना चाहते थे, लेकिन कीमत चुकाने की माँग पर नहीं।'' अंतत: उन्होंने एक ऐसी दुरंगी चाल चली, जिसका खेद उन्हें हमेशा रहेगा। उन्होंने दागी विधायकों का समर्थन लेने का फैसला कर लिया, लेकिन यह काम वह स्वयं नहीं करेंगे, किसी अन्य व्यक्ति को उनके वास्ते यह गंदा काम करना होगा। बिहार बी.जे.पी. के तत्कालीन सर्वेसर्वा, वयोवृद्ध कैलाशपति मिश्र ने इस काम का अपयश अपने सिर लेने का बीड़ा उठाया। समर्थन प्राप्त करने के लिए वह स्वयं बेऊर जेल के अंदर गए और भगवान ही जाने कि उन्होंने क्या-क्या वादे किए।

नीतीश पहले ही मुख्यमंत्री पद की शपथ ले चुके थे और जब विधानसभा एकत्र हुई, नए सदस्यों को शपथ ग्रहण करने आना ही था। उनमें से अनेक सदस्य तो सीधे जेल से आ रहे थे। कुछ समय के लिए उनकी बेड़ीरूपी मालाएँ उतार दी गई थीं। विधानसभा के अंदर उनके बारे में चर्चा गरम थी। वे कुख्यात लोग थे, लेकिन इस कारण उनका महत्त्व भी था कि नीतीश के समर्थन में खड़े होकर वे पासा पलट सकते थे। नीतीश मुख्यमंत्री के कक्ष में, उस कुरसी में सहमे-सहमे बैठे हुए थे, जिसे पाने की चाह उन्हें बहुत लंबे समय से थी और अंतत: उनकी चाह पूरी हो गई थी। उन्होंने संदेश भेजा कि वह कैदियों से भेंट नहीं करेंगे, सबके सामने तो किसी कीमत पर नहीं। वह उनका समर्थन पाकर खुश थे, लेकिन उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर आगे आएगा—अकेले में। लेकिन सूरज और रमा सिंह सरीखे लोगों को रोकने का उपाय क्या था? वे अल्पमत की सरकार को बनाए रखने के लिए अपनी कीमत चाहते थे, वे नए सत्ता केंद्र तक अपनी पहुँच को औपचारिक रूप से घोषित एवं प्रमाणित कराना चाहते थे। शुरुआत के लिए, नए मुख्यमंत्री के साथ एक फोटो ही काफी था। इससे पहले कि नीतीश को चेताया जाता, उनका पूरा-का-पूरा गिरोह, 'नीतीश कुमार जिंदाबाद' चिल्लाते हुए नीतीश को कमरे में जा पहुँचा। वे फोटो खींचनेवालों

को साथ लेकर आए। फ्लैश-बल्ब निरंतर कौंधने लगे, स्वचालित बंदूक की गोली की तरह। नीतीश के बिहार के सर्वाधिक जाने-माने ठगों के साथ गले मिलते हुए कैमरे में कैद कर लिया गया था। अगली सुबह के अखबारों में छपी तसवीरें आज तक उनके दिल में फाँस की तरह चुभती हैं। 'जात भी गँवाया और स्वाद भी न पाया'...''उन तसवीरों से शायद उनको मान मिला हो, किंतु मुझे उनसे अपमान के सिवा कुछ नहीं मिला। उन्होंने मुझे अकस्मात् पकड़ लिया, शायद यही उनकी योजना थी। और उसका फल क्या निकला? कुछ भी नहीं। यह एक बुरा विचार था।'' उन्होंने ऐसा किया ही क्यों? ''कभी-कभी हालात वश के बाहर चले जाते हैं,'' उन्होंने अपने हाथ मलते हुए स्पष्ट किया, ''एक मोमेंटम बन जाता है, बहाव में आ जाते हैं लोग। लगता है, हर किसी ने मान लिया था कि लालू को सत्ता से हटाने का हमें यह मौका मिला है, हमें इसका लाभ उठाने में कोई कसर छोड़नी नहीं चाहिए। केंद्र में सरकार अपनी थी, मैंडेट बहुत क्लोज था, लालू के खिलाफ था, क्योंकि जनता ने एक सिटिंग गवर्नमेंट को मिनारिटी में रिड्यूस कर दिया था, ले लिया अटेंप्ट। ठीक नहीं हुआ, समय आया नहीं था...''

नीतीश एक बहुमत नहीं जोड़ सके, उन सभी गुंडों के सहारे भी नहीं, दिल्ली में बैठी एन.डी.ए. सरकार के सभी साधनों और प्रभाव का इस्तेमाल करके भी नहीं। उन्होंने विधानसभा में शक्ति-परीक्षण का सामना किए बिना ही अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इस बीच लालू ने कांग्रेस को धर्म-निरपेक्षता की रक्षा करने के नाम पर अपनी ताकत का सहारा उसे देने के लिए राजी कर लिया। राबड़ी देवी फिर बिहार की मुख्यमंत्री की कुरसी पर लौट आईं। नीतीश दिल्ली लौट गए, वाजपेयी के मंत्रिमंडल में रेलमंत्री की कुरसी पर बैठकर अपनी थकी एड़ियों को सहलाने के लिए। उन्होंने बिहार में तब तक अपना स्थान न खोजने का इरादा कर लिया, जब तक कि दिल्ली में किसी सरकार को उनके साथ की आवश्यकता न रहे।

सन् 2000 की पराजय—और पिछले दरवाजे से बहुमत जुटाने में उनकी विफलता—नीतीश के लिए संभवत: एक प्रच्छन्न वरदान साबित हुई। कांग्रेस ने लालू-राबड़ी शासन को अपना समर्थन देने के लिए एक बड़ी कीमत वसूली : कांग्रेस चाहती थी कि झारखंड को बिहार से काटकर एक अलग राज्य बनाया जाए। 1990 के दशक के मध्य और उत्तरार्ध में जब सत्ता में उसका सूरज चढ़ा हुआ था, उस समय लालू ने ऐसे विचार को सिर से झटक दिया था। ''मेरी अर्थी पर, कभी नहीं। मेरे रहते बिहार का विभाजन नहीं हो सकता''...अब कांग्रेस का आभार मानिए, उसने बड़ी विनम्रता से घुटने टेक दिए।

नीतीश को उस निर्णय का राजनीतिक लाभ प्राप्त हुआ, हालाँकि इस इरादे से वह निर्णय नहीं किया गया था। लाभ कैसे हुआ, वह भी समझ लीजिए : अविभाजित बिहार में 324 सदस्यों की विधानसभा थी और बिहार से चौवन सांसद लोकसभा में जाते थे। बिहार के विभाजन के बाद, विधानसभा में सीटों की संख्या घटकर 243 रह गई और लोकसभा की सीटें चालीस रह गईं। पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत, बिहार में बी.जे.पी. का पलड़ा नीतीश पर भारी पड़ता था, क्योंकि झारखंड क्षेत्र की लगभग सारी सीटें बी.जे.पी. की झोली में जाती थीं। नए, लघुतर बिहार में नीतीश की हिस्सेदारी गठबंधन में बहुत अधिक हो गई : चालीस लोकसभा सीटों में से पच्चीस और विधानसभा की 243 सीटों में से 139 नीतीश के हिस्से में थीं। धीरे-धीरे उन्होंने बिहार गठबंधन को हुकुम देना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी मरजी के मुताबिक सीटों का चयन किया, आधारभूत नियम निर्धारित किए, जिनमें से प्रमुख सिद्धांत यह था कि बिहार की योजना में कार्यसूची अर्थात् एजेंडा और विचारधारा वह स्वयं तय करेंगे।

इतना होने के बावजूद भी, नीतीश को अरुण जेटली से उम्मीद से कुछ अधिक मदद प्राप्त हुई। बी.जे.पी. की बिहार इकाई की देखभाल का सारा दायित्व अब अरुण जेटली पर था। उन्होंने शक्ति-संतुलन में आंतरिक बदलाव का नीतीश के पक्ष में जोरदार समर्थन किया और ऐसा करते समय अपने असंतुष्ट एवं शिकायती सहयोगियों की

ज्यादा परवाह नहीं की। जेटली तुरंत इस बात को समझ गए कि लालू-विरोधी विन्यास के केंद्र में नीतीश को रखना अत्यावश्यक है : वह बिहार की नस-नस से वाकिफ हैं, उनके पास जाति-संबंधी परिचय-पत्र एकदम सही है और वह लालू शासन के मुकाबले एक वैकल्पिक दृष्टिकोण को श्रेष्ठ तरीके से प्रस्तुत कर सकते हैं। बी.जे.पी. के अपने ओहदेदारों में उनके जैसा कोई आदमी नहीं था।

नीतीश ने भी साझेदारी को मजबूत करने और आगे बढ़ाने में पूरी लगन से काम किया। सन् 1995 में सी.पी.आई. (एम.एल.) के साथ हुए अविवेकपूर्ण गठजोड़ की तीखी यादें वह भुला नहीं पाए थे, वह जानते थे कि सत्ता तक पहुँचने के लिए बी.जे.पी. ही उनका एकमात्र संबल है। सन् 1999 और 2002 के चुनावों से सिद्ध हो गया था कि चुनावी गणित लालू के विरुद्ध चला गया है। अगर उन्हें समीकरण को अपने पक्ष में सही करना है, लालू के विरुद्ध एकता का सूचकांक ऊँचा करना है, तो उन्हें केवल इस बात पर निर्भर करना होगा कि लालू-राबड़ी के कारनामे राज्य का हुलिया बुरी तरह बिगाड़ दें, जो उन्होंने बखूबी कर दिखाया।

सन् 2002 में नरेंद्र मोदी के गुजरात में जब मुसलिम-विरोधी आतंक सिर उठाने लगा, उस समय नीतीश पर दबाव पड़ना शुरू हो गया कि उन्हें एन.डी.ए. से अलग हो जाना चाहिए। वे कैबिनेट में उन लोगों के साथ कैसे बैठे रह सकते थे, जिन्होंने सांप्रदायिक हिंसा की आग भड़काने का काम किया था? वह ऐसी केंद्र सरकार का हिस्सा कैसे बने रह सकते थे, जिस सरकार में कानून बनाने का साहस या इच्छाशक्ति नहीं थी, दंगा संबंधी कानून मोदी को पढ़कर सुनाने की हिम्मत नहीं थी? उपद्रवों के दौरान, प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को अपना राजधर्म निभाने का स्मरण कराया था, लेकिन बी.जे.पी. ने मोदी की पीठ ठोककर उसे शाबाशी दी थी। उसे सन् 2002 में गुजरात विधानसभा के लिए प्रचार-अभियान का नेतृत्व करना था। समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा का अनुयायी होकर नीतीश जैसा व्यक्ति किस तरह ऐसे लोगों के साथ एक ही थाली में भोजन कर सकता था?

इन सवालों से नीतीश परेशान नहीं लगते थे। वह अभी जमे रहना चाहते थे, अपना समय निकालना चाहते थे। किसी-किसी मौके पर उन्होंने इस तरह की कमजोर दलील का भी सहारा लिया : मैं मोदी सरकार का हिस्सा नहीं हूँ, मैं वाजपेयी के मंत्रिमंडल में हूँ और वाजपेयी ने नरेंद्र मोदी को 'राजधर्म' निभाने का निदेश दिया है, जो कुछ हुआ है उससे उन्हें दु:ख पहुँचा है और उन्हें अपने, हमारे सरीखे, सहयोगियों के कष्ट और क्रोध की भी जानकारी है। लेकिन नीतीश की दलील में दम नहीं था और उससे किसी की पीड़ा कम होनेवाली नहीं थी। अकेले में, नीतीश ने जो स्थिति सामने रखी, वह अधिक स्पष्ट एवं सूझ-बूझ भरी थी : मेरा मुख्य उद्देश्य लालू यादव को बिहार से खदेड़ना है और अब यह गठबंधन ही एकमात्र अस्त्र रह गया है हथियारों के खजाने में, शेष सभी अस्त्रों को आजमाया और व्यर्थ किया जा चुका है। नीतीश को पता था कि गुजरात हिंसा-कांड ने उन्हें कठोर जमीन पर खड़ा कर दिया है, लेकिन वह निर्विकार रूप से उस पर चलने के लिए कटिबद्ध थे।

बाहर से लगता था कि वह कष्टकारी दुविधा से गुजर रहे हैं, लेकिन अंदर से वह शांत थे, नैतिक क्लेश से निरापद थे अर्थात् दु:खी नहीं थे। उन्होंने अपनी नैतिक समस्या का समाधान सैद्धांतिक रूप से कर लिया था।

सन् 1995 की पराजय के बाद अपने लंबे अवसाद के दौरान, नीतीश ने महाभारत का अध्ययन किया, महाभारत की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं का अध्ययन किया। महाभारत वृत्तांत में वह तल्लीन हो जाते थे : कभी-कभी तो वह घर से संसद् भवन जाते समय और लौटते हुए भी उसी में खोए रहते थे। सन् 2001 में, जब उन्हें बिहार में लगातार दूसरी बार शिकस्त मिली, उसके कुछ समय बाद, किसी व्यक्ति ने उन्हें महाभारत के केंद्रीय तथा भारतीय पौराणिक कथाओं के संभवतया सर्वाधिक आकर्षक चरित्र, कृष्ण के कृत्य एवं जीवन से संबंधित एक पुस्तक भेंट की थी। पुस्तक का नाम था—कृष्ण की आत्मकथा; भगवान कृष्ण की यह काल्पनिक आत्मकथा मनु शर्मा ने वीरगाथा

शैली में आठ खंडों में लिखी थी।

नीतीश इस कृति को पूरा चबा गए, पुस्तक के जिन अंशों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया और जिन्हें वह हमेशा के लिए स्मृति में सँजो लेना चाहते थे, उन अंशों को उन्होंने बार-बार पढ़ा, जीवन की शिक्षाओं को अंतर्मन से ग्रहण किया और कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि जीवन के कुछ पहलुओं में वह स्वयं को कृष्ण के रूप में देखने लगे। 'संघर्ष' नामक सातवें खंड में एक अंश—कृष्ण का स्वगत कथन—उनके मन को छू गया। दुर्योधन के दरबार में पासे के खेल में हार जाने के बाद पांडवों को जिस अपमान का सामना करना पड़ा, उसके समाचार से अत्यंत दुःखी होकर, कृष्ण कहते हैं : संघर्ष! संघर्ष!! संघर्ष!!! यह संघर्ष नाम की चीज जन्म से ही मेरे साथ जुड़ी हुई है। शायद इसका जन्म मेरे आने से पहले ही हो गया था। यह मेरे जीवन का मुख्य साक्षी बन गया। मेरे जीवन का एक दिन भी इससे कभी मुक्त नहीं रहा है। चांडक कहता है कि यदि मेरा जीवन चिंता एवं संघर्ष से मुक्त होता, तो वह जीवन जीने योग्य नहीं रह जाता और व्यर्थ जीवन कोई जीवन नहीं होता है। शायद मेरा जन्म संघर्ष करने के लिए हुआ था...

किंतु मनु शर्मा की कृति—या कृष्ण के जीवन—से नीतीश ने जो मुख्य शिक्षा पाई, उसका संबंध केवल संघर्ष से नहीं था, बल्कि संघर्ष करना और संघर्ष में विजयी होने से था। उद्देश्य पर दृष्टि गड़ाए रखना मुख्य बात थी। यदि कारण उचित हो, तो किसी भी युक्ति या तरकीब—छोटे-मोटे झूठ, असत्य कथन, कपट, धूर्तता, छल, तिकड़म, धोखाधड़ी, साम, दाम, दंड, भेद—से काम लिया जा सकता है।

उद्देश्य सही हो तो हर उपाय सही होता है।

नीतीश के जीवन का यह एक मार्गदर्शक सिद्धांत रहा है : लक्ष्य पाना चाहते हो, तो वही रास्ता अपनाओ, जो वहाँ तक ले जाए। यही बात उनकी राजनीति के बारे में कही जा सकती है और शायद उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में भी कही जा सकती है: उन्होंने अपने सार्वजनिक क्रियाकलापों के रास्ते में अपने परिवार को कभी नहीं आने दिया। महाभारत से उस नीति को निश्चित रूप से वैधता प्राप्त हुई, लेकिन यह तो बहुत समय से नीतीश के व्यवहारजन्य चिंतन में अंतर्निहित रही है। याद करें, विश्वविद्यालय का एक छात्र रहते और नेता बनने की अभिलाषा लिये उन्होंने क्या कहा था? ''सत्ता प्राप्त करूँगा, चाहे जैसे भी हो, लेकिन सत्ता लेके अच्छा काम करूँगा।''

सन् 2002 में, जिस समय गुजरात को एक अकथनीय आतंक ने हिलाकर रख दिया था, उस दौरान नीतीश का सारा ध्यान लालू को सत्ता से बाहर करने तथा बिहार की बागडोर अपने हाथ में लेने पर लगा हुआ था, ठीक उसी तरह जैसे अर्जुन का ध्यान घूमती मछली की आँख पर था। यही उनका वर्तमान ध्येय था। यदि उनका उद्देश्य बी.जे.पी. के साथ बने रहने से पूरा होना है, तो उन्हें वही करना स्वीकार है। कोई उन्हें हिला नहीं सकेगा, आत्मा की पुकार भी नहीं।

उनकी कृष्ण भक्ति में एक विशेष गुण और भी है, शायद किसी काल्पनिक कथा से निकली कोई काल्पनिक कथा : कि महाभारत के धूर्त नायक की भाँति नीतीश ने भी किसी चांडक, या बड़े गुप्तचर को लगा रखा है। एक भ्रमणशील एजेंट, जिसे कोई शक की नजर से नहीं देखता है, बड़ी-बड़ी अंदरूनी तथा भेदभरी खबरें लगातार उनके पास पहुँचाता रहता है, कोई अनाम, अनजाना-अपरिचित व्यक्ति है, जो नीतीश को एक-एक बात की जानकारी लाकर देता है। बिहार की अंदरूनी राजनीति की खबर रखनेवाले एक पुराने-खिलाड़ी, पत्रकार कन्हैया भेलारी मानते हैं कि नीतीश ने ऐसा कोई, या कई ऐसे आदमी छोड़ रखे हैं, जिनके जरिए उन्हें खबर मिलती रहती है। ''वास्तव में बड़ी हैरानी की बात है जो आदमी पूरे दिन में बहुत ही कम लोगों के साथ घनिष्ठता से परस्पर बातचीत करता है, वह कैसे और किस तरह इतनी अधिक जानकारी रखता है,'' भेलारी ने एक शाम नीतीश के बारे चर्चा करते हुए

मुझे बताया, ''मैं कभी-कभी मजाक में पूछ भी देता हूँ, 'आपका चांडक कौन है,' लेकिन वे सिर्फ हँस देते हैं। जैसे लालू से उनका आना-जाना नहीं है लेकिन लालू के घर में क्या हो रहा है, कौन किसको क्या कह रहा है, किससे मिल रहा है, नीतीश को सब मालूम रहता है। अभी ही नहीं, जब लालू राज में थे, तब भी।''

फरवरी 2005 में बिहार अंततः लालू के हाथ से निकल गया। लेकिन जीता कोई नहीं। लालू को खंडित बिहार की 243 विधानसभा सीटों से पचहत्तर सीटें मिलीं। बी.जे.पी. और नीतीश की जे.डी.यू. ने मिलकर लालू को पछाड़ तो दिया, लेकिन बहुमत उनको मुँह चिढ़ा गया। डेज्हा वू (पूर्वाभासजन्य भ्रांति)! और फिर अब नई दिल्ली में कोई हिमायती सरकार भी नहीं थी, जो कुछ जोड़-तोड़ करके, किसी भी तरह, उन्हें सत्ता दिला देती। वाजपेयी की एन.डी.ए. सरकार 2004 के ग्रीष्मकाल में यू.पी.ए. से चुनाव में मात खा गई। लालू केंद्र सरकार में रेलमंत्री बन गए थे, जबकि वाजपेयी के शासन में यही पद नीतीश को मिला हुआ था। लालू ने रेल मंत्री की कुरसी मानो अपने पूर्वाधिकारी को चिढ़ाने की खातिर ही हथियाई थी। अब केंद्र में उनकी चलने लगी; वह कांग्रेस के नेतृत्व में बने गठबंधन का एक महत्त्वपूर्ण पुरजा थे। लेकिन ध्यान से देखो! एक और आदमी सत्ता की तीव्र चाह लिये खड़ा था। नवनिर्वाचित सदन में पच्चीस सीटें हासिल करके, लोक जनशक्ति पार्टी (एल.जे.पी.) का रामविलास पासवान अपनी चोंच साफ करके बड़े गर्व के साथ पटना आया और उसने ऐलान कर दिया : ''इस सरकार की चाबी मेरे हाथ में है''...पासवान ने घोषणा कर दी थी कि वह बाजार में हैं, और मुँहमाँगी कीमत के बदले बिकने को तैयार हैं।

तो भी, नीतीश तैयार नहीं थे। सन् 2000 में उन्हें मिली निराशा की यादें उनका पीछा नहीं छोड़ रही थीं और उन्हें शर्मिंदगी होती थी। क्या फिर वही शर्मनाक खरीद-फरोख्त? फिर वही मोल-भाव और सौदेबाजी, फिर दागदार लोगों के कंधे पर चढ़कर लज्जित होना? फैसला, एक बार फिर, लालू और राबड़ी के खिलाफ गया था, लेकिन पूरी तरह से नहीं? बिहार की जनता ने क्या फैसला दिया था? अरुण जेटली से अकेले में, उन्होंने कहा : लोगों को एक स्पष्ट विकल्प न देने का यही परिणाम होता है, लोग उलझन में थे, वे लालू की एवजी शासन-प्रणाली से निजात पाना तो चाहते थे, लेकिन उन्हें स्पष्ट बताया नहीं गया था कि उसकी जगह कौन लेनेवाला है।

जेटली ने मान लिया, लेकिन उनकी यह भी तीव्र इच्छा थी कि गठबंधन को बहुमत प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए; नीतीश की हिचकिचाहट के बावजूद उन्होंने जोर दिया कि एक और कोशिश तो होनी चाहिए, उसमें क्या हर्ज है। छीन-झपट का एक और चक्कर चला। कोई दूसरे चुनाव के पक्ष में नहीं था। नव-निर्वाचित निर्दलीय विधायक तो बिलकुल ही नहीं चाहते थे कि एक और चुनाव हो।

पासवान के झुंड में कम-से-कम सोलह विधायक ऐसे थे, जो विधानसभा भंग किए जाने के बजाय एक कीमत लेकर झुंड से अलग होने के लिए तैयार थे। नीतीश के लिए एक बहुमत जुटाने की जिम्मेदारी अरुण जेटली ने अपने ऊपर ले ली। उन्होंने दो आदमियों—सरजू राय और उसके युवा बिहारी लैफ्टिनेंट संजय झा को यह काम सौंपा। वे विधायकों के दो गुटों को ले भागे—जिनमें कुछ विधायक पासवान के झुंड में से थे और कुछ निर्दलीय थे, कुल मिलाकर इकतीस थे; इन विधायकों को अलग-अलग गुटों में झारखंड ले जाया गया, जबकि जेटली और नीतीश इधर पटना में सरकार बनाने का औपचारिक दावा पेश करने हेतु जमीन तैयार करने में जुटे रहे। राय एल.जे.पी. के करीब दर्जन भर विधायकों के गुट को अपने साथ हाँककर पटना से राँची ले गया और उन सबको वहाँ कांके रोड पर स्थित 'हॉलिडे-होम' नाम के एक होटल में ठहरा दिया। झा दूसरे गुट को ले गया और उनको जमशेदपुर की ओर जानेवाली सड़क पर एक जंगल भरे इलाके में स्थित दो गेस्ट हाउसों—10वाँ माइल-स्टोन और हिल व्यू रिसॉर्ट में सुरक्षित जमा कर दिया। दोनों के कब्जे में अब पूरे इकतीस विधायक थे। लेकिन मीडिया को

बहुत जल्दी इस बात की भनक लग गई। सारा खेल चौपट हो जाने के अंदेशे से राय और झा उन सभी विधायकों को घाटशिला जंगल में काफी अंदर जाकर बने एक फार्म हाउस में ले गए। वहाँ कोई बहुत जल्दी पहुँचनेवाला नहीं था; यह फार्म हाउस राष्ट्रीय राजमार्ग 33 से करीब एक घंटे की दूरी पर था।

इस बीच, एक और नाटक से परदा उठा। पासवान की एल.जे.पी. के दो विधायकों—सुनीता चौहान और पूनम यादव—के पाँव ठंडे पड़ गए थे। इस डर के कारण कि अब बिहार में दल-बदल करने के लिए उन पर दोगुना दबाव पड़ेगा, वे तुरत-फुरत विमान से दिल्ली जाने के लिए राजी हो गईं। पासवान ने कुछ जोर लगाया। बिहार के राज्यपाल बूटा सिंह ने उन दोनों महिलाओं को एक विशेष विमान से दिल्ली ले जाने की मंजूरी दे दी। चौहान और यादव को दिल्ली के जनपथ होटल में पहले से बुक कराए गए दो कमरों में ठहरा दिया गया। पासवान के आदमी वहाँ मौजूद थे—उन पर निगरानी रखने के लिए।

लेकिन इतने करीब पहुँच जाने पर एन.डी.ए. के लोग अब कोशिश छोड़ देने के लिए तैयार नहीं थे। उन दोनों महिलाओं को वापस लाने के लिए जे.डी.यू. के दो नेताओं—नागमणि और रनवीर यादव—को इंडियन एयरलाइंस की उड़ान से तुरंत उनके पीछे भेजा गया। अरुण जेटली ने अपने सचिव, ओम प्रकाश को यह सुनिश्चित करने का काम सौंपा था कि वे दोनों महिलाएँ जनपथ होटल छोड़कर तब तक जाने न पाएँ, जब तक उन्हें वापस लाने के लिए पटना से भेजे गए लोग वहाँ पहुँच नहीं जाते हैं। अब दो तरफ के जासूस उन महिला विधायकों, सुश्री चौहान और सुश्री यादव पर नजर रखे हुए थे। खुफिया बनाम खुफिया नाटक शुरू हो गया था। और उधर मैसर्स राय और झा अपने बंधुआ विधायकों के झुंड के साथ झारखंड के जंगलों में पड़ाव डाले हुए, कोई खबर आने का उत्सुकता से इंतजार कर रहे थे।

उनका कोई भी प्रयास व्यर्थ जानेवाला नहीं था। घबराए लालू ने केंद्रीय गठबंधन और लचीले स्वभाव के बूटा सिंह को विधानसभा भंग करने तथा राष्ट्रपति शासन की घोषणा करने के लिए राजी कर लिया।

एन.डी.ए. ने इस निर्णय के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया; सोली सोराबजी ने उनका केस लड़ा। नीतीश अपने पक्ष में समर्थन साबित करने के लिए 126 विधायकों को साथ लेकर राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के आगे परेड करने हेतु राष्ट्रपति भवन जा पहुँचे। लेकिन निजी तौर पर, उन्होंने जेटली तथा जे.डी.यू. अध्यक्ष जॉर्ज फर्नांडिस दोनों को बता दिया था कि अगर सुप्रीम कोर्ट का फैसला राष्ट्रपति शासन लागू करने के खिलाफ भी जाता है, तब भी वह सरकार बनाने का दावा पेश नहीं करेंगे और अंतत: उन्होंने यही किया। वह केवल सिद्धांत की खातिर सुप्रीम कोर्ट गए थे, राष्ट्रपति शासन लागू करने के निर्णय को चुनौती देने तथा उसे कानून के विरुद्ध अथवा कानून को धता बता कर दिया गया कार्य घोषित कराने के लिए। सरकार का गठन करने हेतु पर्याप्त संख्या होने पर भी वह भग्न विधानसभा को पुनर्जीवित कराने के पक्ष में नहीं थे।

नीतीश एक और चुनाव चाहते थे, जनता से एक स्पष्ट जनादेश पाना चाहते थे। वह एक न्याय यात्रा पर निकल पड़े, जो वास्तव में सन् 2005 में सत्ता प्राप्त करने की दिशा में उनकी ओर से दूसरा सुदृढ़ अभियान था। वह बिहार से एक निर्णायक फैसला चाहते थे। उनका तर्क था कि इस लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब एन.डी.ए की ओर से उनका नाम बिहार के भावी मुख्यमंत्री के रूप में घोषित कर दिया जाए। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। ''लोग लालू को हराना चाहते हैं,'' उन्होंने जेटली से कहा, ''लेकिन वे यह भी जानना चाहते हैं कि लालू के बाद कौन आएगा। वे एक नाम चाहते हैं, एक चेहरा चाहते हैं, कोई ऐसा व्यक्ति जिससे वे लालू से छुटकारा दिलाने की आस लगा सकें और लालू के विरुद्ध अपने मन की भड़ास उसके सामने प्रकट कर सकें।'' बात जेटली की समझ में आ गई, वह इस संदेश को लेकर बी.जे.पी. नेतृत्व के पास गए और उन्हें इस पर राजी कर लिया। जिन-जिन

लोगों ने जेटली का समर्थन किया, उनमें वाजपेयी के अलावा प्रमोद महाजन भी थे, जिन्हें उस समय बी.जे.पी. का सबसे सशक्त महासचिव होने का गौरव प्राप्त था। जब सन् 2005 में बिहार में दूसरे चुनाव का अभियान आरंभ हुआ, एन.डी.ए. ने उस समय नीतीश कुमार के नाम पर वोट माँगा।

परंतु औपचारिक घोषणा में एक नाटकीय मोड़ आया। प्रचार अभियान के प्रथम प्रयास पर, वाजपेयी को औपचारिक रूप से नीतीश का नाम लेकर यह घोषणा करनी थी कि यदि वे जीतते हैं, तो नीतीश मुख्यमंत्री बनेंगे। वाजपेयी की आयु बढ़ रही थी, और बहुधा उनका स्मृति-लोप हो जाता था। अत: यह निर्णय किया था कि चुनाव के संबंध में उनके पहले भाषण के दौरान—उनका यह भाषण भागलपुर में होना था—वाजपेयी का एक सहायक, अश्विनी वैष्णव, एक परची वाजपेयी को आकर देगा। वैष्णव ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था, लेकिन वाजपेयी ने भागलपुर मंच पर नीतीश के नाम का उल्लेख लिए बिना परची पर अंत में दस्तखत कर दिए। जान-बूझकर किया या अन्यमनस्कता में, कभी कोई नहीं जान पाएगा। लेकिन जेटली ने तुरंत भूल-सुधार के लिए कदम उठाए। जेटली समेत बी.जे.पी. के कुछेक शीर्षस्थ नेताओं ने पटना के बोरिंग रोड क्षेत्र में स्थित एक निजी गेस्ट हाउस में संजय झा द्वारा किराए पर लिये गए एक कमरे में एकत्र होकर स्थिति का कोई समाधान निकालने पर चर्चा की। सबके बीच यह सहमति बनी कि भावी मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश के नाम की घोषणा अतिशीघ्र की जानी चाहिए। बैठक समाप्त होते ही झा को गेस्ट हाउस से बाहर निकलना पड़ा—गेस्ट हाउस के मालिकों ने साफ चेतावनी दे दी कि इस जगह कोई राजनीति नहीं होनी चाहिए। वह संपत्ति बिहार के एक बहुत ही पक्के, टस-से-मस न होनेवाले राजनीतिज्ञ, शिवानंद तिवारी के परिवार की थी। अगले दिन बिहार विधानसभा में विपक्ष के नेता और भावी उप-मुख्यमंत्री सुशील मोदी ने वह घोषणा जारी कर दी, जिसका उल्लेख करना वाजपेयी भूल गए थे। लेकिन अभी और हिचकियाँ बाकी थीं। अब जे.डी.यू. ही नीतीश की उम्मीदवारी के विरुद्ध हो गया लगता था। जॉर्ज फर्नांडिस ने स्व. दिग्विजय सिंह (बिहार के जे.डी.यू. सांसद, न कि कांग्रेस के महासचिव) जैसे नेताओं के दबाव में आकर एक वक्तव्य दिया कि भावी मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश के नाम का ऐलान बी.जे.पी. ने किया होगा, जे.डी.यू. ने नहीं किया है। इस बयान के कारण एक नई अफरा-तफरी गठबंधन में फैल गई। अरुण जेटली तुरंत फर्नांडिस से भेंट करने के लिए दौड़े-दौड़े गए, जो उस समय पटना की पाटलिपुत्र कालोनी में दिग्विजय सिंह के बहनोई के घर में अस्थायी पड़ाव डाले हुए थे। जेटली ने फर्नांडिस से दमदार बहस की और उन्हें बताया कि नीतीश के नाम पर अपने पक्ष का खंडन-मंडन करने के परिणाम विनाशकारी हो सकते हैं। अंतत: फर्नांडिस नरम पड़ गए। अगली सुबह उन्होंने पटना में एक अलग प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और नीतीश के नाम पर जे.डी.यू. की मुहर लगा दी।

लेकिन इस प्रकरण की वजह से नीतीश और फर्नांडिस के बीच दरार पड़ गई, क्योंकि फर्नांडिस ऐसा मानने लगे थे कि नीतीश पार्टी को ले भागा है और बी.जे.पी. के साथ अकेले ही शर्तों की सौदेबाजी कर रहा है। दिग्विजय सिंह तथा कुछ अन्य लोग इस बात से नाखुश थे कि नीतीश उन्हें जरा भी महत्त्व नहीं दे रहा है; फर्नांडिस यह सुनकर बहुत अधिक क्रुद्ध हो गए। उन्होंने फर्नांडिस से कहा कि पार्टी आपने बनाई है और अब सारी पहल का श्रेय नीतीश लूट रहा है। उन्होंने जो कुछ कहा, उसमें सच्चाई थी, लेकिन पूरा सच नहीं था। फर्नांडिस एक ज्येष्ठ समाजवादी नेता थे और इस नाते नीतीश भी उनका पूरा आदर करते थे; लेकिन अब वह फर्नांडिस, या उनके सहायकों का हुक्म उठाने के लिए तैयार नहीं थे। संबंध इतने बिगड़ गए कि नवंबर 2005 के चुनाव के लिए फर्नांडिस ने प्रचार अभियान हेतु खर्च देना बंद कर दिया। हाथ की रकम चुक जाने के बाद नीतीश को बी.जे.पी. की तरफ देखना पड़ा और फिर धनाढ्य-राजनीतिज्ञ महेंद्र प्रसाद, अथवा राजा महेंद्र से मदद लेनी पड़ी, जो दवा

बनानेवाली एक सफल कंपनी, ऐरिस्टो फार्मा के मालिक थे। राजा महेंद्र उदार प्रकृति के थे। चुनाव जीत जाने पर नीतीश ने उन्हें राज्यसभा में एक सीट दिलाकर उनके उपकार का बदला चुकाया।

लालू एकमात्र व्यक्ति था जो यह स्वीकार करने या मानने के लिए तैयार नहीं था कि वह सन् 2005 का दोबारा होनेवाला चुनाव हार जाएगा। लालू का गुस्ताख और आत्मघाती विचार था कि उसने फरवरी गतिरोध के बाद राष्ट्रपति शासन लागू करवाकर नीतीश से सत्तारूढ़ होने का मौका छीन लिया है। वह जनता की राय को ठीक से पढ़ नहीं पाया। इसने नीतीश को एक स्पष्ट जनादेश नहीं दिया था, बल्कि सन् 1990 से लेकर अब तक पहली बार लालू को एक निर्णायक अल्पमत में धकेल दिया था। चुनाव दोबारा होना अवश्यंभावी था, लेकिन वह उस संभावना को टालने की कोई भी कोशिश छोड़ नहीं रहा था। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह बार-बार फरवरी जनादेश को मानने का राग अलाप रहा था। दोनों चुनावों के बीच के महीनों में लालू ने कई बार शेखी बघारते हुए कहा, ''कर्ता-धर्ता अभी तक 'मैं ही हूँ'। बेशक, बिहार को मैं ही चला रहा हूँ, मेरा हुक्म अभी भी चलता है।'' लालू की इसी शेखी-भरी गर्वोक्ति के कारण बदलाव चाहनेवाले और भी पक्का निश्चय करके नवंबर में मतदान करने बड़ी तादाद में पहुँचे। लालू को भारी शिकस्त मिली। नीतीश को अठासी सीटें प्राप्त हुईं, बी.जे.पी. को चौवन सीटें मिलीं और लालू को बी.जे.पी. के मुकाबले एक सीट कम मिली। बहुत ही घटनापूर्ण एवं अत्यंत मौलिक होने के बावजूद एक प्रतिकूल युग का अंत हो गया था।

जिस रात बिहार का फैसला लालू के घर के दरवाजों पर चिपका दिया गया था, उस रात मैं लालू से मिलने गया। 1, अणे मार्ग के द्वारमंडप के नीचे लकड़ियों की आग चटक रही थी। लालू को सर्दी की शामें पोर्च में आग के चारों ओर बैठे लोगों के साथ गपशप करते हुए बिताना बहुत अच्छा लगता था। उसका दरबार हमेशा की तरह जमा हुआ था, सिर्फ लालू मौजूद नहीं था दरबार की सदारत करने के लिए। हवा में दाहकर्म जैसी पीड़ादायक महक थी। ''साहेब आराम कर रहे हैं?'' एक दरबारी ने आकर बताया, ''अब सरकार बनाने का झंझट थोड़े ही है? बहुत दिन हुआ, छुट्टी हुआ, अब आराम कर रहे हैं...कितना दिन बिहार का बोझा सर पर लेके ढोते रहेंगे...''

मुझे बाद में पता चला, लालू को पहले ही कह दिया गया था कि बोरी-बिस्तर बाँधो और चलते बनो। अब तक नीतीश बहुत समय इधर-उधर भटक चुके थे, उनका कोई स्थायी ठिकाना नहीं था, लेकिन अब उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था कि मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण करने के बाद वह सबसे पहले 1, अणे मार्ग का कब्जा लेना चाहेंगे।

नीतीश ने 24 नवंबर को गांधी मैदान में आयोजित एक खुले समारोह में शपथ ग्रहण की। यह वही मैदान था, जो नीतीश के राजनीतिक जीवन के प्रारंभ से लेकर अब तक के अनेक उतार-चढ़ाव भरे पहलुओं का साक्षी रहा था। नीतीश की पत्नी मंजू भी आई थी और उसने मैदान की सीमा-रेखा से अपने पति का अभिवादन भी किया, तालियाँ बजाकर। तत्पश्चात् वह कंकड़बाग में अपने पिता के घर चली गई। दो वर्ष से भी कम समय के उपरांत, मंजू का फेफड़ों की सूजन अर्थात् तपेदिक के कारण निधन हो गया। नीतीश को जीवन भर इस बात का दु:ख सताएगा कि उनकी पत्नी मंजू कभी 1, अणे मार्ग स्थित मुख्यमंत्री निवास में रहने नहीं आई।

❑

8

नया बिहार

लालू-राबड़ी युग की सड़ी-गली चीज नीतीश की प्लेट पर ताजा परोसी जाती है। जिस समय सन् 2005 के पुनर्चुनाव के मतपत्रों की गणना की जा रही होती है और बिहार में बदलाव की घंटियाँ बज रही होती हैं, उसी समय पटना में माओवादियों द्वारा गोली के दायरे के अंदर जेल पर अत्यंत दुस्साहसपूर्ण धावा बोल दिया जाता है। सशस्त्र छापामार जहानाबाद शहर के कई हिस्सों में ध्यान बँटानेवाले विस्फोटों को अंजाम देते हैं, जिला कारागार की दीवारों को फाँद जाते हैं, जेल के दो कनिष्ठ कर्मचारियों को गोली से उड़ा देते हैं, आतंकपूर्ण माहौल का फायदा उठाकर चाबियाँ हथिया लेते हैं और करीब 200 बंदियों को लेकर बाहर निकल जाते हैं, जिनमें से अधिकतर उनके साथी होते हैं, जो गिरफ्तार किए गए थे। इन छुड़ाए गए कैदियों में सबसे महत्त्वपूर्ण आदमी हैं माओवादी एरिया कमांडर अजय कानु।

नवंबर 2005 का जहानाबाद जेल-तोड़ कांड माओवादियों की हिम्मत या उनकी संकल्पशक्ति को दरशानेवाला कोई वृत्तांत नहीं है। यह तो बीसियों वर्ष से बिहार में सरकार की प्रमुख संस्थाओं के लगातार होते चले आ रहे विघटन की चेतावनी देनेवाली एक कहानी है।

इस पतन का सिलसिला निश्चित रूप से 1970 के दशक के उत्तरार्ध और 1980 के दशक के दौरान आरंभ हुआ जब बिहार में कोई टिकाऊ सरकार नहीं थी, न कोई मुख्यमंत्री था, जो पूरे कार्यकाल तक अपनी कुरसी पर कायम रह सके; समाजवादी कर्पूरी ठाकुर से लेकर कांग्रेस के जगन्नाथ मिश्र तक, प्रत्येक का मुख्य उद्देश्य यही था कि किसी तरह कुरसी से चिपके रहें। लेकिन लालू-राबड़ी शासनकाल के दौरान संस्थानिक ढाँचे को बुरी तरह लूटा गया, इसकी अखंडता एवं सच्चरित्रता के साथ इस हद तक समझौता किया गया कि पटना के राजभवन के अभिरक्षक, राज्यपाल को भी राजभवन की अलंकृत वस्तुओं और वहाँ पाले गए खूबसूरत पक्षियों के सजीव चित्रों की खुदरा बिक्री करने में भी कोई बुराई नजर नहीं आई। राजभवन के परकोटे की पिछली दीवार में किए गए छेद के जरिए ये वस्तुएँ किसी भी ग्राहक को बेचने का इंतजाम कर लिया गया था!

जहानाबाद जेल पर धावा बोलने के एक पखवाड़ा पूर्व ही माओवादियों ने शहर की दीवारों पर इश्तहार लगाकर अपने इरादे का ऐलान कर दिया था : 'चेतावनी जान हो! सामंती सरकार के चंगुल से अपने कामरेडों को मुक्त करने आएँगे! जल्द ही! लाल सलाम!...' ऐसे पोस्टर सब जगह लगे हुए थे। प्रशासन या पुलिस महकमे में किसी ने भी उन पर ध्यान नहीं दिया। उनका कहना था कि माओवादी आए दिन कोई-न-कोई चेतावनी देते ही रहते हैं, इसमें क्या-क्या है?

उस छापामारी के तीन दिन पहले जिला पुलिस मुख्यालय के पास यह खबर पहुँच गई थी कि माओवादियों के छोटे-छोटे झुंड जहानाबाद शहर की ओर जाते हुए देखे गए हैं। मुखबिरों ने सशस्त्र गुटों को देखा था, और जहानाबाद बाजार में लोगों को कानाफूसी करते हुए सुना था कि कुछ होनेवाला है। जहानाबाद के सिविल और पुलिस महकमों में किसी को कोई चिंता नहीं थी। व्यर्थ की गपशप, लोगों के पास इससे अच्छा और कोई काम तो होता नहीं है।

जिस दिन यह घटना हुई, उस दिन सुबह बिहार पुलिस के एक उच्च-स्तरीय अधिकारी ने पुलिस अधीक्षक,

जहानाबाद को सचेत रहने का एक आदेश फैक्स किया था, जिसे बाजार की गपशप कहकर खारिज नहीं किया जा सकता था। फैक्स संदेश इस प्रकार था :

परमगुप्त डिस्पैच सं. 1958/ऑप्स

दिनांक : 13/11/2005

फैक्स

प्रति : पुलिस अधीक्षक, जहानाबाद

सूचनार्थ : रीजनल डी.आई.जी., गया

प्रेषक : आई.जी. (ऑपरेशंस), पटना

एक सूत्र से प्राप्त सूचना के अनुसार, करीब-करीब सौ उग्रवादियों को जहानाबाद के उत्तर में नदौल तथा काको क्षेत्रों में घूमते हुए देखा गया है। ऐसी सूचना है कि झारखंड से आई एक टुकड़ी भी उनके साथ हो गई है। उनमें से कुछ लोगों को 6-7 नई मोटरसाइकिलों पर घूमते और (स्थानीय लोगों के साथ) सूचना का आदान-प्रदान करते देखा गया है।

सूचनानुसार, नदौल रेलवे स्टेशन, काको पुलिस थाना या कुछ चलंत पुलिस दस्तों को निशाना बनाया जा सकता है। कृपया क्षेत्र में सभी रेलवे स्टेशनों, पुलिस थानों, चौकियों तथा ब्लॉक कार्यालयों को अविलंब सचेत कर दें। उग्रवादियों के इस गिरोह से टक्कर लेने के लिए अपने बलों को पुन: संगठित करें। क्योंकि उनके पास गाड़ियाँ हैं, वे दूसरे क्षेत्रों में भी प्रवेश कर सकते हैं। अत:, पूरे जिलों को सतर्क कर दें। डी.आई.जी., गया को चाहिए कि वह अपने स्तर पर स्थिति का अनुमान लगाएँ और सुरक्षा हेतु उपयुक्त कदम उठाएँ।

हस्ताक्षरकर्ता

आर.आर. वर्मा, आई.जी. (ऑपरेशंस), पटना

या तो फैक्स गड़बड़ था और पुलिस अधीक्षक के कार्यालय में किसी ने भी उसकी दूसरी साफ प्रति मँगवाने की परवाह नहीं की, या फैक्स मिलने के बाद उसे रोजमर्रा की फाइल में लगाकर एक तरफ रख दिया गया। जो भी हो, जहानाबाद पुलिस अधीक्षक सुनील कुमार ने पाँच बजे के ऊपर कुछ समय बाद अंत में दस्तखत किए और घर चले गए। उनका पूरा दिन फीका रहा। शाम को जब वह सोने की तैयारी कर रहे थे, धमाकों का सिलसिला शुरू हो गया।

डी.आई.जी., गया रेंज, दूसरे सुनील कुमार, अजमेर गए हुए थे। जहानाबाद के जिलाधीश राणा अवधेश पटना में थे; वास्तव में, हमले के समय, वह पटना रेलवे स्टेशन पर अपनी बहन को विदा कर रहे थे।

जहानाबाद जेल में कोई जेलर नहीं था; यह पद छह माह से भी अधिक समय से खाली पड़ा था। सहायक जेलर, जिसका नाम अरुण सिन्हा था, सूचना दिए बिना छुट्टी पर था : उसने किसी को खबर नहीं की थी कि वह शहर से बाहर जा रहा है और यह सूचना भी नहीं छोड़ी थी कि वह वापस कब आएगा।

जहानाबाद पुलिस लाइंस का सार्जेंट, नवल चंद्र नामक एक प्रौढ़ अधिकारी उस समय अपनी बैरक में बैठा ऑल इंडिया रेडियो सुन रहा था और डिनर का इंतजार कर रहा था, तभी दिल्ली से उसकी बेटी का फोन आया। वह सहारा टेलीविजन के लिए काम करती थी, उसने अपने पिता को खबर दी कि उनका शहर उग्रवादियों के घेरे में है : ''टी.वी. चलाओ, पापा, नक्सली लोग जहानाबाद जेल पर हमला किया है! बम फटा, सुनाई नहीं दिया क्या? सब टी.वी. पर आ रहा है''...चंद्र सकते में आ गया। जब तक बात उसकी समझ में आती, माओवादी अपना काम करके साफ निकल गए। चंद्र जिस समय जेल पहुँचा, उसने पटना से सरपट वापस आए एस.पी. सुनील कुमार

तथा डी.एम. राणा अवधेश को पास की एक झाड़ी में बैठे, संकट समाप्ति का संकेत मिलने की प्रतीक्षा में पाया।

लालू-राबड़ी का शासन अपने उत्तरार्ध में 'जंगलराज' कहलाने लगा था। बिहार को बेतुके ढंग से चलाया जा रहा था। राबड़ी देवी मुख्यमंत्री तो बन गई लेकिन उसे पढ़ना-लिखना कतई नहीं आता था। सरकार को पीछे से लालू चला रहा था, लेकिन वह आधिकारिक रूप से मंत्रिमंडल की अध्यक्षता नहीं कर सकता था। अत: लालू ने कैबिनेट सेकेरेटरी को हुक्म देना शुरू कर दिया, राबड़ी उन पर हस्ताक्षर कर देती थी; समस्त बिहार में उन्हें 'साहेब' और 'मेमसाहेब' कहा जाने लगा था।

लालू के हुल्लड़बाज मुख्यमंत्री निवास में शिकार की खोज में घुसे रहते थे : लालू के ताकतवर साले, साधु और सुभाष, जिन्होंने बहुत लाभप्रद क्षेत्रों में वस्तुत: एकाधिकार जमा लिया था—जैसे कि आबकारी, देशी शराब, राजकीय परिवहन, सरकारी तबादले और तैनाती; उनके खुशामदी-टट्टू अभयदान देने, जमीन हथियाने जैसे धंधे चलाते थे। इस अवधि के दौरान बिहार में, फिरौती के लिए फोन आना एक मुख्यमंत्री आवास में पीछे के आँगन में चुपचाप ले-देकर हो जाया करता था। जिन लोगों को सलाखों के पीछे होना चाहिए था, वे चुनाव लड़ रहे थे और जीत रहे थे। उनकी बहुत माँग थी, बल्कि यह कहना उचित होगा कि उनके बाहुबल की बहुत अधिक माँग थी, क्योंकि वे कानून से ऊपर थे। राजनीति एक अपराध व्यवसाय-संघ बन बया था, एक माफिया जो वोटों की वैधता का दावा कर सकता था।

सन् 2002 में, लालू की दूसरी बेटी, रोहिणी आचार्य का विवाह होना था। लालू की जी-हुजूरी करनेवाले पटना और पटना के आस-पास मोटर-वाहनों के शो-रूमों में घुस गए तथा दर्जनों बड़ी-बड़ी और शानदार तथा बहुमूल्य नई कारों को जबरन निकालकर ले गए। दूल्हे की आवभगत करने के लिए इन चुराई गई कारों का दो मील लंबा काफिला पहुँचा। जनता ने इस पर बड़ा रोष जताया, किंतु मामला ठंडा पड़ गया, क्योंकि कोई सुननेवाला नहीं था। मोटर शोरूम वालों ने बिहार से अपना कारोबार उठा लिया और झारखंड के दक्षिण में जाकर बस गए। उसके बाद कई वर्षों तक, बिहार में कोई नई कार खरीदना संभव नहीं था। उसी समय के आस-पास मैंने अपनी माँ को यह खबर सुनाई कि पटना का मशहूर किराना स्टोर, पटना किराना बंद हो गया है, क्योंकि परिवार में एक बच्चे का अपहरण हो गया था और वे फिरौती की माँग पूरी करने में असमर्थ थे। मेरी माँ ने दिल्ली चले जाने के बाद दसियों साल से पटना किराना में खरीदारी नहीं की थी, लेकिन उन्होंने अत्यंत निराशा जताते हुए कहा, ''क्या खाएँगे पटना में लोग अब? क्या हो रहा है बिहार को?''

मैं जब-जब उत्तर बिहार में अपने गाँव सिंहवाड़ा वापस गया, मैंने वहाँ हर बार पहले से ज्यादा किलाबंदी देखी—देहाती भू-संपत्तियों के चारों ओर दीवारों का घेरा, लोहे के दरवाजे, मोटे-मोटे कपाट, जंजीरों के साथ लगे हुए बड़े-बड़े ताले। मैंने अपने एक चचेरे भाई से मजाक में कहा कि उसका कलात्मक रूप से टाइल जड़ा हुआ आँगन किसी पान की दुकान जैसा लगने लगा है। उसने आँगन की तीन तरफा खुली बगलों को सिमटवाँ तख्तों से पाट दिया था, जिन पर हर शाम अंदर से शटर डाल दिया जाता था और ताला लगा दिया जाता था। ''मच्छरों की वजह से?'' मैंने छेड़ा। ''डकैत'', उसने जवाब दिया, ''डकैतों के कारण। सौंदर्यशास्त्र आप शहर के लोगों के लिए है। यह बिहार है, जंगल-राज।''

जब नीतीश कुमार ने सन् 2005 के दूसरे चुनाव के लिए जे.डी.यू., बी.जे.पी. घोषणा-पत्र जारी किया, उन्होंने ऐलान किया कि उनकी पहली प्राथमिकता होगी सत्ता सँभालने के तीन महीनों के भीतर कानून का शासन बहाल करना, कानून का राज कायम करेंगे। एन.डी.टी.वी. के मनीष तिवारी बताते हैं कि सबने एक साथ इतने जोर का ठहाका लगाया कि मीडिया का टेंट तो उड़ ही जाता। ''शब्दों के परे...उस हँसी को शब्दों में बयान नहीं किया जा

सकता। हमने वर्षों से पटना में वे शब्द नहीं सुने थे। 'कानून का राज'।''

लालू के शासनकाल में जो पीढ़ी वयस्क हुई थी, उसने कभी जाना नहीं था कि कानून का राज (रूल ऑफ लॉ) होता क्या है। और यहाँ, नीतीश, कानून का राज कायम करने का वादा कर रहे थे! किसी ने उन पर विश्वास नहीं किया, सब हँस पड़े। मजाक नीतीश की समझ में नहीं आया।

उन्होंने बिहार में कानून और व्यवस्था के चरमरा जाने को अपने 'लालू हटाओ' अभियान का केंद्रीय मुद्दा बना लिया था। वह समझ चुके थे कि यदि वह बिहार को अव्यवस्था के गड्ढे में गिरने से उबार नहीं सके, तो वह फेल हो जाएँगे। वह अपने हर दूसरे प्रचार-अभियान में यह वादा करना नहीं भूलते थे कि वह कानून का राज कायम करेंगे।

मुख्यमंत्री बनने पर उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि अपनी मंत्री-परिषद् और शीर्षस्थ अधिकारियों को बुलाया तथा उनसे कहा कि अपराध को राजनीतिक संरक्षण देने का युग अब समाप्त हुआ। ''क्रिमिनल्स की पहुँच मुख्यमंत्री के निवास तक हो गई है, लेकिन इसे बंद करना पड़ेगा,'' उन्होंने अपनी पहली-पहली एक बैठक में ऐलान किया, ''मेसेज जाना चाहिए प्रशासन की तरफ से अपराध को, न तो सरकार से किसी प्रकार का संरक्षण मिलेगा, न ही अपराध करने का फायदा किसी को मिलेगा।''

उन्होंने 'बिहार में कानून का राज' विषय पर एक सम्मेलन संगठित किया। यह आमंत्रित व्यक्तियों का एक विषम एवं विलक्षण समूह था। संपूर्ण मंत्रिमंडल तथा चयनित विधायक; पटना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और कुछ गिने-चुने मजिस्ट्रेट; लोक अभियोजक; सरकार के शीर्षस्थ पदाधिकारी; और बिहार के सभी उनतालीस जिलों के पुलिस प्रमुख; विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका, सब एक ही छत के नीचे, अपनी तरह का एक प्रथम सम्मेलन जो दोबारा कभी नहीं बुलाया जाना था।

राज्य के न्यायिक अधिकारियों के साथ बैठक में उन्होंने मुकदमों की सुनवाई शीघ्र निपटाने पर जोर दिया। पुलिस द्वारा जाँच में ढिलाई बरतने के कारण अनेकानेक अपराधी दंड पाने से साफ बच जाते हैं, उनमें से अधिकतर अपराधी कानून में खामियों का फायदा उठाते हैं; अधिकाधिक अपराधी यही सोचकर आराम से बैठे रहते हैं कि न्यायालय को अपना फैसला सुनाने में समय लेने दो। पुलिस अधिकारियों से नीतीश ने कहा कि 'शून्य सहिष्णुता' की नीति का पालन करें और जाँच ऐसी हो कि अपराधी सजा के दायरे से निकलने न पाएँ। उन्होंने दो अधिकारी नियुक्त किए : एक थे अभयानंद, आई.पी.एस., जिसे सहायक महानिदेशक (मुख्यालय तथा आसूचना) नियुक्त किया गया और दूसरा था आई.ए.एस. संवर्ग का अफजल अमानुल्ला, जिसे नई दिल्ली में सूचना और प्रसारण मंत्रालय में संयुक्त सचिव (फिल्म) का अपना पद त्यागकर, गृह सचिव के पद पर आने के लिए राजी कर लिया गया।

कोई साफ देख सकता था कि पूरी-की-पूरी व्यवस्था हर तरह से अपराधियों की तरफदारी करने में लगी हुई है, अपराध और अपराधियों के लिए वाहवाही का समय था। अमानुल्ला और अभयानंद ने तंत्र में सरल, किंतु चतुरतापूर्ण सुधार किए। जिला पुलिस प्रमुखों को कहा गया कि वे प्रत्येक दिन की घटनाओं, की गई काररवाई, प्रस्तावित अनुवर्ती काररवाई, अपेक्षित सहायता संबंधी रिपोर्ट पटना स्थित मुख्यालय को नियमित रूप से भेजें। उन्होंने समस्त पुलिस अधिकारियों का एक डेटाबेस भी तैयार किया। अब इस बात का हिसाब-किताब रखा जाने लगा था कि कौन, किस समय क्या कर रहा है। मुख्यालय का संदेश स्पष्ट था : पुलिस अधिकारी यह न समझ लें कि वे सिर्फ किसी दूसरी जगह तबादला करा लेने से अपनी जिम्मेदारी से बच जाएँगे; यदि किसी पिछली तैनाती के दौरान उनकी आँख के सामने कानून तोड़ा गया था, तो आज भी उसके लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जा सकेगा,

तबादला करा लेने से बच नहीं जाएँगे।

अमानुल्ला ने नीतिगत परिवर्तनों पर काम किया। उसने नई दिल्ली में सूचना एवं प्रसारण का काम छोड़कर बिहार लौटने के लिए एक ही शर्त रखी थी : उसके कार्य में कोई दखलअंदाजी नहीं होगी। अमानुल्ला बिहार के एक सभ्य, शिक्षित एवं संपन्न परिवार से था, राजनीतिज्ञों और अधिकारी वर्ग के काम करने के मानक तौर-तरीकों से वह भली-भाँति परिचित था। अपनी सहमति देने से पहले वह पूर्णतया आश्वस्त हो लेना चाहता था कि वह कहीं किसी राजनीतिक दलदल में तो पाँव नहीं डाल रहा है। वह कोई ऐसा पद नहीं चाहता था जहाँ कृपा-दृष्टि का उपहार दिया जाता हो। इसके अलावा, वह चाहता था कि राजनीतिक हुक्मरानों का हस्तक्षेप भी कम होना चाहिए। मुख्यमंत्री ने असंदिग्ध रूप से वह आश्वासन भी उसे दिया।

अमानुल्ला ने कई परिवर्तन किए और उनमें से सबसे अधिक कारगर बदलाव था—शस्त्र अधिनियम के प्रावधानों को अपराधियों के लिए लागू करने का निर्णय। ''हमने मामलों का अध्ययन किया और उससे यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दोष सिद्ध करना एक बड़ी समस्या है। अधिकतर अपराधी विश्वसनीय गवाहों के अभाव में साफ छूट जाते थे। उन्हें या तो खरीद लिया जाता या डरा-धमकाकर उन्हें खामोश कर दिया जाता।'' शस्त्र अधिनियम (आर्म्स ऐक्ट) के तहत मुकदमा चलाना अधिक आसान था। अधिकांश अपराधों में अवैध हथियारों का इस्तेमाल होता था और मुकदमा चलाने के लिए शस्त्र अधिनियम के अंतर्गत केवल जाँच अधिकारी की रिपोर्ट ही काफी थी। शस्त्र अधिनियम का प्रयोग आरोप निश्चित करने के लिए पुलिस द्वारा व्यापक रूप से किया जाता है, क्योंकि मुकदमा चलाने के लिए यह एक तेज, कारगर साधन है; इसके प्रावधानों के अंतर्गत यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि इच्छुक गवाहों को खोजा जाए और उन्हें गवाही देने के लिए अदालत में पेश किया जाए। किसी के पास अगर अवैध हथियार पाए जाते हैं तो पुलिस इस तथ्य के आधार पर ही उस व्यक्ति को दंड दिला सकती है। पहले दो वर्ष के दौरान शस्त्र अधिनियम का उल्लंघन किए जाने के लिए 27,000 से अधिक मामलों में दोष सिद्ध करने में कामयाबी हासिल हुई थी; इसी अवधि में भारतीय दंड संहिता के तहत दोष सिद्ध मामलों की संख्या सिर्फ 4000 से कुछ ही ऊपर थी।

नीतीश यह दिखाने की हरसंभव कोशिश कर रहे थे कि शासन कानून तोड़नेवालों के साथ सख्ती से पेश आएगा और अपने अधिकार का दृढ़तापूर्वक प्रभाव दिखलाएगा। मुख्यमंत्री के रूप में उनके प्रथम कार्यकाल के दौरान 70,000 के करीब मामलों में दोष सिद्ध करने में सफलता मिली।

लेकिन चौतरफा संदेश पहुँचाने के लिए कुछ मामलों में ही सजा सुनाना पर्याप्त था। बिहार के बाहुबलियों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया; इन अपराधी-राजनीतिज्ञों ने वर्षों तक कानून का मजाक उड़ाया था और विशेष रूप से किसी को भी खुश नहीं किया था। सन् 1989 में भागलपुर में मुसलमानों के खिलाफ मानवहत्या की मुहिम छेड़नेवाले कामेश्वर यादव को जेल में डाल दिया गया। धर्मनिरपेक्षता की दुहाई देनेवाले लालू ने सार्वजनिक रूप से उसका सम्मान किया था और उसे आर.जे.डी. में आने का न्यौता दिया था; नीतीश ने उस पर कानून का शिकंजा कस दिया, बी.जे.पी. भी कामेश्वर को बचाने के लिए कुछ नहीं कर सकी। सिवान में आतंक मचानेवाले और लालू के एक और सहयोगी, मोहम्मद शहाबुद्दीन पर शीघ्र फैसला देनेवाली विशेष अदालत में मुकदमा चलाया गया और उसे सी.पी.आई.-एम.एल. के सक्रिय कार्यकर्ता छोटे लाल गुप्ता का अपहरण और बाद में उसकी हत्या करने के मामले में सजा सुनाई गई। पप्पू यादव के सी.पी.एम. नेता अजीत सरकार की हत्या के मामले में सजा सुनाई गई, किंतु सन् 2013 में उच्च न्यायालय ने इस फैसले को खारिज कर दिया। नीतीश के यदा-कदा राजनीतिक मित्र रहे आनंद मोहन सिंह को आई.ए.एस. अधिकारी जी.कृष्णैया की हत्या का दोषी पाए जाने पर सजा

सुनाई गई। मोकामा माफिया के सरगना सूरजभान को हत्या के मामले में जेल हुई और वैशाली के मुन्ना शुक्ला को भी। वे दोनों किसी समय नीतीश के समर्थक थे, लेकिन नीतीश के शासन में न्याय निर्भय और असंवेदनशील था। नीतीश, वास्तव में, अपराधियों की टोली को अदालत के कटघरे तक पहुँचा रहे थे। बाहुबलियों को जल्द हथकड़ी लगवाने का असर तत्काल नजर आने लगा। सन् 2005 से 2010 तक पाँच वर्ष में अपराधों में 68 प्रतिशत की कमी आई। बिहार ने बहुत समय बाद राहत की साँस ली।

सन् 2009 के लोकसभा चुनाव के दौरान एन.डी.टी.वी. के श्रीनिवासन जैन को बिहार का एक कार्यभार सौंपा गया, जो उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह स्वयं अपनी आँखों से उन परिवर्तनों को देखना चाहता था, जिनके बारे में वह सुनता आ रहा था। ''जब मैं पिछली बार यहाँ आया था और अब के बीच मैंने आश्चर्यजनक अंतर पाया है,'' उसने पटना में अपनी दूसरी शाम मुझे बताया, ''मेरे लिए इससे भी अच्छी बात यह है कि सारा माहौल टी.वी.-टी.वी. हो गया है, यह परिवर्तन, ऐसा परिवर्तन है, जो कैमरा देख सकता है।'' वह मुझे कैमरे की आँख के सामने शहर के बीच से चलते-फिरते, बात करते हुए ले जाना चाहता था, जिसका सीधा प्रसारण होना था। इस कार्यक्रम का एक हिस्सा इस प्रकार था—हम दोनों टहलते हुए और दिखाई पड़ रहे परिवर्तनों के बारे में बात करते हुए चलेंगे और दो कैमरे हमारी इस चहलकदमी की फिल्म बनाते चलेंगे। बाकी वह सब होगा जो चलते-चलते सड़क पर सहज रूप से सामने आ जाए। जब हम बाहर निकले उस समय रात के करीब दस बज रहे थे और मैंने तत्क्षण श्रीनिवासन को बताया कि आँखों के सामने इस समय जो दृश्य प्रस्तुत है, कुछ वर्ष पहले तक इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी; तब यहाँ रात के समय कैमरे में कैद करने के लिए कुछ नहीं मिलता, जन-जीवन जैसे था ही नहीं, जिस पर फोकस करते। केंद्रीय पटना अँधेरे में डूब गया होता, निर्जन हो गया होता।

अब ऐसा नहीं। डाकबँगला, पटना का केंद्रीय चौराहा मेला-मैदान जैसा लग रहा था। लोग गाड़ियों में भरकर बाहर घूमने निकले हुए थे, ट्रैफिक चींटी की चाल से आगे बढ़ रहा था। लोगों को विशेष कोई काम नहीं था, वे बस बाहर घूमने का मजा लेने के लिए निकले हुए थे और उन्हें डीजल के धुएँ एवं धूल भरी हवा पीने तथा सड़क किनारे धक्का-मुक्की के बीच से निकलने में भी कोई गुरेज नहीं था। उनके बीच रास्ते से भटकी, खोई हुई, रंभाती हुई और गोबर-गिराती हुई गायें भी थीं। दीवारों पर जगह-जगह लोगों ने पेशाब किया हुआ था, जिन्हें स्वच्छता या छिपाव से कुछ लेना-देना नहीं था। कई सार्वजनिक दीवारों पर यह भी लिखा हुआ था—'देखो गधा मूत रहा है'...लेकिन जब पेशाब जोर मार रहा हो तथा कोई दूसरा चारा न हो, तो लज्जा जाए भाड़ में। सच मानें तो पटना के लोगों के लिए यह कोई असामान्य बात नहीं है।

हम ऐसी ही एक दीवार के पास से गुजरे और फिर दूसरी दीवार आ गई। लेकिन इन मूत-पटी दीवारों के अलावा कुछ और, कुछ नई चीजें भी थीं जिन पर श्रीनिवासन का ध्यान गया। देर रात तक खुले हुए फास्ट-फूड स्टॉल और आइसक्रीम पार्लर। कीमती वस्त्रों और जूते-चप्पलों की दुकानों पर अभी भी खरीदारी हो रही थी, फ्रेजर रोड के दोनों तरफ बड़े-बड़े शॉपिंग-सेंटर खड़े हो गए थे, रोशनी की चमक-दमक थी; शराब और दुकानों, मद्यशालाओं का कारोबार बढ़िया चल रहा था, केमिस्ट थे, लेखन-सामग्री की दुकानें थीं; पत्र-पत्रिका विक्रेता, शेयर-दलाल, कुल्फीवाले—क्या-क्या नहीं था। डाक बँगला चौक पर हम एक पान की दुकान पर रुक गए। वहाँ चंद्र प्रकाश नामक एक व्यक्ति खड़ा था और अपने पान के बंडल की प्रतीक्षा कर रहा था, उसने सफेद रंग का करारा सफारी सूट पहना रखा था, चमड़े के सफेद बढ़िया जूते पहने हुए थे, ऊपर की जेब में मॉन्ट ब्लैंक (या वैसा ही) पेन लगाया हुआ, एक हाथ में दो सेलफोन पकड़े हुए थे और दूसरे हाथ में 500 रु. का एक नोट। वह काफी सारे पान खरीद रहा था : ''पूरा खानदान है ना, भाई घूमने निकले हैं, तो पान खाते चलेंगे। किसकी गइया मरी जा रही है?

चैन से, कोई जल्दी नहीं''...कुछ वर्ष पहले की बात होती तो उसने पूरे परिवार सहित शाम को बाहर घूमने निकलने के बारे में सोचा भी नहीं होता। श्रीनिवासन बदलाव के बारे में उस पानवाले से कुछ बात करना चाहता था। ''दिख ही रहा है,'' उसने कहा, ''हकीकत में, हवा बदल गया, लोग फ्री घूम रहा है, डर नहीं है लुच्चा-लफंगा, छीना-झपटी का। आप भी तो दो-दो कैमरा लेके देर रात घूम रहे हैं पैदल...।''

पटना के ए.डी.आर.आई. शैबाल गुप्ता ने कुछ ऐसी बात कही, जो मुझे छू गई और दिमाग में बैठ गई। ''क्या आप जानते हैं कि मुख्यमंत्रियों के रूप में लालू और नीतीश के बीच मूलभूत अंतर क्या है? बिहार के पास अब एक ऐसा मुख्यमंत्री है, जो पढ़ता है। लालू कभी पढ़ता नहीं था, वह उसे समय की बरबादी मानता था। लालू सशक्तीकरण में विश्वास करता था, वह राज करना चाहता था और उसने राज किया। नीतीश शासन करना चाहता है, उस अर्थ में वह एक प्रौद्योगतंत्रवादी (टेक्नोक्रेट) अधिक है।'' गुप्ता ने दोनों को वर्षों तक करीब से देखा था, विकास संबंधी विषयों पर उनकी सरकारों के लिए परामर्श देने का काम किया था, कभी-कभी ध्वनि-पटल के रूप में अपनी सेवाएँ भी अर्पित की थीं। उसका मानना था कि बिहार के मुख्यमंत्रियों में नीतीश जिस श्रेणी में आते हैं, वह श्रेणी उनकी अपनी ही है। हम गांधी मैदान से कुछ ही दूरी पर गुप्ता के सायबान एवं अध्ययन-कक्ष में नाश्ते पर गपशप कर रहे थे। गुप्ता ने बिहार पर एक अर्ध-शैक्षणिक निबंध-संग्रह का संपादन अभी-अभी शुरू किया था। मैंने गुप्ता से कहा कि वह अपने बारे में बताएँ और उसने जवाब दिया कि वह बिहार के विकास संबंधी खुशनुमा आँकड़ों के बारे में बात नहीं कर रहा है, जो बिहार द्वारा सूचित किए जा रहे हैं या जो भौतिक परिवर्तन आँखों को साफ दिखाई दे रहे हैं।

बिहार के नए, विकास संबंधी अत्यधिक उन्नत संकेतांक कोई प्राधिकृत सूचना नहीं है। सरकार की वार्षिक रिपोर्टों में इन्हें वर्ष-प्रतिवर्ष दरशाया जाता है और ये रिपोर्टें दस गुना मोटी हो गई हैं जिस समय से नीतीश ने सन् 2006 में इन रिपोर्टों को तैयार करने की प्रथा आरंभ की थी। इन आँकड़ों के बारे में लिखा जाता है, अखबारों के स्तंभों और अकादमिक लेखों तथा पैनल प्रस्तुतियों एवं चर्चाओं में, पुस्तकों में इन्हें पेश किया जाता है, जिन्हें विकास में रुचि रखनेवाली पीढ़ी पढ़ती है और उनकी जुगाली करती है; ये आँकड़े और इनका विश्लेषण वर्ल्डवाइड वेब पर उपलब्ध रहता है : बिहार की वेबसाइट खोलें और स्क्रीन पर इन आँकड़ों को झरते हुए देखें।

सन् 2004-2005 में विकास दर 2.6 प्रतिशत थी, जो सन् 2013 की पहली दो तिमाही में 14 प्रतिशत से कुछ दशमलव ऊपर रही। सन् 2005 में भारत में उच्चतम औसत विकास दर, दो अंकों में, 11 प्रतिशत के आस-पास घूम रही थी। वार्षिक योजना का आकार, जो सन् 2004-05 में 4,490.8 करोड़ रुपए था, बढ़ते-बढ़ते सन् 2013-14 में 34,000 करोड़ रुपए तक पहुँच गया। 16,000 किलोमीटर से अधिक नई सड़कों का निर्माण हुआ, सड़क निर्माण का प्रतिदिन औसत 36 किलोमीटर रहा। हजारों पुलियों के अतिरिक्त 4,200 से अधिक बड़े और छोटे पुलों का निर्माण हुआ। खाद्यान्न का उत्पादन सन् 2004-05 में 79.8 मीट्रिक टन के मुकाबले सन् 2012-13 में बढ़कर 16,482 मीट्रिक टन हो गया; इसी अवधि में खाद्यान्न का प्रति हेक्टेअर उत्पादन 1,211 किलोग्राम से बढ़कर 2,698 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर तक पहुँच गया, इस वृद्धि में गहन सिंचाई तथा खेत भूमि के यंत्रीकरण का बड़ा हाथ रहा। सन् 2004 में साक्षरता 37 प्रतिशत थी, जो सन् 2012 में बढ़कर 63.8 प्रतिशत हो गई। प्राथमिक और माध्यमिक सरकारी स्कूलों में उपस्थिति कई गुना बढ़ी। एक सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार, सन् 2006 में 6 साल से 14 साल के बीच की उम्र के 25 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा रहे थे; सन् 2011 तक ऐसे बच्चों की संख्या घटकर केवल 2.6 लाख रह गई।

इन आँकड़ों के आधार पर प्रशंसा और पुरस्कारों की झड़ी लग गई। सत्ता में आने के दूसरे वर्ष से ही नीतीश को

एक के बाद पुरस्कार मिलने शुरू हो गए—'वर्ष का राजनीतिज्ञ'; 'सर्वाधिक उन्नत राज्य का नेता'; 'वर्ष का राजनीतिज्ञ' दोबारा; 'फोर्ब्स पर्सन ऑफ दि ईयर'; 'गेट्स फाउंडेशन इन्नोवेशन अवॉर्ड'। दूर-दूर के मंचों पर बिहार के मुख्यमंत्री का गुणगान किया जा रहा था। लालू जैसे एक आकर्षक देहाती विलक्षण व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक गंभीर विचारार्थ विषय के रूप में, जो अप्रत्याशित रूप में चर्चा में आ गया था।

नीतीश मंच पर लालू की तरह फुलझड़ियाँ नहीं छोड़ सकते थे। वह एक ऐसे राज्य का नेतृत्व कर रहे थे, जिसके बारे में बाहर कोई परवाह नहीं करता था। लेकिन वह बिहार को नए सिरे से दुनिया की नजर में लाने में कामयाब हुए, उन्होंने बिहार की सीमा के बाहर के जगत से बिहार का संपर्क साधने का प्रयास किया; उन्हें नाराजगी थी कि उनकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सन् 2009 के लिए मुंबई में 'इकोनॉमिक टाइम्स बिजनेस रिफॉर्मर ऑफ दि ईयर' अवॉर्ड प्राप्त करते समय मंच पर उन्होंने इतना ही कहा, ''मैं विनम्रता के साथ यह पुरस्कार ग्रहण कर रहा हूँ।'' वह व्यवसाय और उद्योग से जुड़े लोगों के विशाल समारोह में बोले, ''लेकिन यदि आप लोग बिहार की तरफ नहीं देखेंगे और मेरे राज्य में निवेश नहीं करेंगे, तो मैं नहीं समझता कि मुझे फिर यहाँ तक आने का कष्ट क्यों उठाना चाहिए।'' सन् 2010 में पुन: निर्वाचित होने के समय तक, नीतीश इतने पुरस्कार और इतनी ट्राफियाँ बटोर चुके थे कि उनके 1, अणे मार्ग स्थित कार्यालय में उन्हें सजाने के लिए दीवार में एक आला बनाना पड़ा था। ये सारे पुरस्कार शांत मुद्रा में बैठे बुद्ध की अनेक प्रतिमाओं के बीच रखे हुए हैं।

किंतु इसमें से कुछ भी शैबाल गुप्ता के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं था; वह छोटे कद के थे, चश्मा लगाते थे और कैंसर से लड़ते-लड़ते बहुत क्षीणकाय हो गए थे। गुप्ता ने अपना हलका-फुलका नाश्ता लिया, जिसमें उबाले अंडे का सफेद हिस्सा और सूखे टोस्ट थे, जबकि मैंने तबीयत से लूची, आमलेट तथा तली मटर का नाश्ता किया, जो श्रीमती गुप्ता ने अपनी रसोई से ऊपर के कमरे में भिजवाया था। गुप्ता के अध्ययन-कक्ष के पार एक छोटा सा ताल था और एक सीढ़ीदार उद्यान था, जहाँ से गांधी मैदान का एक हिस्सा दिखता था और पटना की कुछ प्राचीनतम रिहायशी इमारतें। गुप्ता ने घास के चारों ओर थोड़ी चहल-कदमी की, सोच में डूबे हुए, मानो अपने विचारों को इकट्ठा करने की कोशिश कर रहे हों। ''मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि प्रश्न इन आँकड़ों का नहीं है,'' गुप्ता ने चहल-कदमी से लौटकर कहा। गुप्ता के सुर में थोड़ा रोष और बेचैनी थी, जैसे वह दिखाना चाहते हों कि उन्होंने जो बात कही है, मैं उसे समझने या मानने से इनकार कर रहा हूँ। ''शायद मैं स्पष्ट करने में असमर्थ हूँ,'' गुप्ता ने कहा, स्वयं को दोष देते हुए। ''हम इसके संबंध में बात करेंगे, आपका नाश्ता ठंडा हो रहा है, खत्म कीजिए।''

ये सर्वेक्षण और आँकड़े तथा ये सब इनाम एवं पुरस्कार, उन्होंने दलील पेश की, इस बात के संकेत हैं कि नीतीश के शासनांतर्गत क्या कुछ बदला है और क्या बदल रहा है। ''मेरे पास ताजा आँकड़े नहीं हैं,'' वे कहते गए, ''ये आँकड़े तो परिणाम दरशाते हैं और समय गुजरते इनमें उतार-चढ़ाव होता रहता है; अच्छा समय और बुरा समय, सफलता और विफलता—यह सब तो चलता रहेगा। यह एक अपरिहार्य प्रक्रिया है, विशेषकर हमारी परिस्थितियों में, विकास और वृद्धि के टेढ़े-मेढ़े ढाँचे में। मेरे विचार में, नीतीश को एक ही बात का सर्वाधिक श्रेय जाता है कि नीतीश ने संस्थाओं एवं शासन में प्रतिबद्धता स्थापित की है, जो बिहार की सामूहिक स्मृति से गायब हो गई थी। मेरा अभिप्राय संकल्पनात्मक धारणा से है, किसी और बात से नहीं। नीतीश के आने से यह धारणा पुन: जीवित हुई है कि सरकारों का काम शासन का संचालन करना है और यह संस्थाओं के जरिए होता है, शीर्ष स्तर से लेकर मुख्यमंत्री के शासकीय निवास में प्रवेश-निकास का लिखित विवरण रखने तक—जो अब होने लगा है। इस प्रक्रिया में नीतीश ने बिहार के लोगों में दोबारा यह आशा जगाई है कि बिहार का शासन किया जा सकता है और बहुत

अच्छे ढंग से किया जा सकता है। यही मूलभूत परिवर्तन है। मैं नीतीश को एक उच्च कोटि के शिल्पी (टेक्नोक्रेट) के रूप में देखता हूँ, प्रशिक्षण से नहीं बल्कि मानसिक प्रवृत्ति से।

मुझे संदेह हुआ कि क्या वह राजनीतिज्ञ नीतीश के संबंध में विवक्षित वक्तव्य दे रहे हैं, नीतीश के उस पहलू का महत्त्व कम आँकते हुए। ''बिलकुल नहीं,'' गुप्ता ने पलटवार किया, ''एक क्षण के लिए भी नहीं। मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? वह एक उच्च-कोटि का राजनीतिज्ञ है उसने लालू को हराया है, आसान बात नहीं था बिहार में लालू से पावर छीन लेना।''...

पटना के उत्तर में सिंहवाड़ा तक का सफर हवा की मार झेलने जैसा है। रास्ते में ही हवा का रुख बदला हुआ, स्पष्ट और अत्यंत आनंददायक प्रतीत होने लगता है। लोगों के करीब जाना आसान है और उनसे बात करना और भी आसान। एक माचिस जलाओ, वार्त्तालाप शुरू कर दो। ''क्या हो रहा है'' कहना ही काफी हो सकता है राजमार्ग पर आने-जाने के साथ बातचीत का सिलसिला छेड़ने के लिए; और कहीं चाय पीने हेतु रुकना तो पूरी एक शिक्षा में बदल जाता है। ''अब यहाँ क्या होगा बताइए,'' इतना पूछने भर की देर है कि कोई-न-कोई पलटकर बोलने से रुक नहीं सकेगा : ''क्या होगा? क्या नहीं होगा? सड़क बना, लाइफ चालू, ट्रैफिक अप-डाउन ताक-धिना-धिन, रात-दिन, ताक-धिना-धिन, और क्या? क्या हो रहा है? दूध फट जाता था गाँव में, अब भाग रहा है पटना सरासर, गाँव में दूध नहीं, पटना में रसगुल्ला, यह हो रहा है।''

कोई बाद में ऐसी व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी भी कर देगा : ''हाँ, ट्रैफिक तो ताक-धिना-धिन तेज है, लोग भी दनादन मर रहा है ऐक्सीडेंट में, इतना चमक है सड़क में।''...वे जी.डी.पी. और डब्ल्यू.पी.आई. (सकल घरेलू उत्पाद और थोक मूल्य सूचकांक) में फर्क नहीं बता सकते, लेकिन उन्हें एक दिन की मेहनत का सही-सही मूल्य आँकना बखूबी आता है—आखिरी आने और ग्राम तक। वे वामपंथ, दक्षिणपंथ और केंद्र की स्पष्ट व्याख्या शायद न दे सकें लेकिन राजनीति के बारे में समझदारी और सहजता से बात करना उन्हें खूब आता है। वे उपयोगितावादी शब्दों का इस्तेमाल करना ज्यादा पसंद करते हैं, जैसे—अच्छा, ठीक-ठाक, खराब, गड़बड़, चालू, बेकार। इमेज, यानी छवि महत्त्वपूर्ण है, इसे नैतिकता की कसौटी माना जाता है। राजनीतिक नेताओं के कई प्रकार हो सकते हैं : साफ-सुथरा, धूमिल, दागी, दबंग, धुरंधर, मेधावी, बेबाक, भुस्कोल (अर्थात् सिफर) आदि। लालू का सितारा जब चढ़ा हुआ था, लोग उसे 'बेजोड़' कहा करते थे। बाद में, उसे 'लंपट' भी कहा जाने लगा। नीतीश? उनके बारे में ऐसे रंगीन विशेषणों का प्रयोग नहीं किया जाता है। नीतीश को 'शोबर' (सोबर) और 'शालीन' कहा जाता है, किंतु कुछ लोग उनके लिए 'भितरघुनिया' शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

गंगा का उत्तरी तट एक सामाजिक-राजनीतिक चबूतरा है, वहाँ अनेक प्रकार के स्थान हैं और सभी तरह के लोग हैं। गहन ग्रामीण और परा-शहरी, अपरिवर्ती और परिवर्तित, बाजार-पूर्व और मुक्त बाजार। अधिक दूरस्थ हिस्सों में अदला-बदली करना आज भी विनिमय का एक तरीका है; राजमार्ग से लगे कुछ स्थानों पर क्रेडिट-कार्ड का प्रयोग करना संभव हो रहा है। आप किसी चौपहिया का मजा ले सकते हैं, और चाहें तो बैलगाड़ी की सवारी भी कर सकते हैं। आप आंध्र प्रदेश से स्टाइरोफोम की पेटियों में आई जमी हुई मछली खरीद सकते हैं, और किसी निकटस्थ ताल या नदिया में मछली का शिकार करने के लिए काँटा डालकर बैठ सकते हैं। वहाँ दरभंगा के रहस्यमय मैथिल ब्राह्मण भी हैं और राजनीतिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक जागरूक, आर्थिक रूप से मृतप्राय: मधुबनी ब्राह्मण भी। इसके साथ ही लगा हुआ समस्तीपुर, दलसिंहसराय का इलाका है, जहाँ भूमिहारों की अच्छी-खासी आबादी है, उनकी माली हालत अच्छी है और वे सामंतवाद से निकलकर आजीविका एवं वाणिज्य के नए सिद्धांतों को बेहतर ढंग से अपनाने में समर्थ हैं। वैशाली और सिवान के राजपूत जमीन पर आज भी अकड़े रहते

हैं, सामाजिक रूप से कबीलापरस्त हैं और राजनीतिक रूप से धौंस जतानेवाले। बीच-बीच में मुसलमान भी अच्छी-खासी तादाद में भरे हुए हैं : भद्र जन और आम लोग, शेख, सैयद, पठान, दरजी, मिस्त्री, मौलवी—वे बहुलता की एक ही स्पष्ट परिधि के अंदर एक-दूसरे से निकटस्थ जुड़े रहकर भी, अलग-अलग रहते हैं।

किंतु बहुलता और प्रभुत्व की दृष्टि से, उत्तरी तट पिछड़े वर्गों (ओ.बी.सी.), अत्यधिक पिछड़े वर्गों (ई.बी.सी.) और दलित समुदायों का गढ़ है, जिसे बिहार का शक्तिशाली मतदाता-वर्ग माना जाता है। अधिकतर निर्धन होने के बावजूद वे राजनीतिक तौर पर संबद्ध हैं। अर्थव्यवस्था की थाली में उन्हें भले ही बचे-खुचे टुकड़े मिलते हों, लेकिन इस जनांकिकी के वे बड़े उपनिवेशी हैं, अर्थात् कहना चाहिए कि इसमें उनकी जनसंख्या बहुत भारी है; यही कारण है कि उनके समर्थन के बिना सत्ता पाने की कल्पना करना भी व्यर्थ है। ओ.बी.सी., ई.बी.सी. और दलित समुदायों को मिलाकर जनसंख्या का करीब-करीब 68 प्रतिशत हो जाता है : 14 प्रतिशत दलित, 14 प्रतिशत यादव, 8 प्रतिशत कुर्मी और कोइरी तथा 32 प्रतिशत अत्यधिक पिछड़े वर्ग जिन्हें ई.बी.सी. कहा जाता है, सभी तरह का काम-धंधा करनेवालों की यह समग्र सूची है : धानुक और कमती (खेतिहर मजदूर), कहार (भार उठानेवाले), ततमा और तांती (रस्सी बनानेवाले, सन और जूट शिल्पकार), नोनिया (नमक निकालनेवाले), मल्लाह (केवट-मछुआरे), लोहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई। 17 प्रतिशत मुसलमान।

उच्च जातियाँ कुल मिलाकर 13 प्रतिशत हैं। लेकिन भूमि से उपजी धन-दौलत पर उनका कब्जा रहा और ज्ञान के क्षेत्र में भी उनका एकछत्र प्रभुत्व रहा। वे धूर्त तिकड़मी थे। स्थापित सत्ता उनकी थी, समाज के प्रमुख चक्रद्वारों पर उनका पहरा था : राजनीति और सरकार से लेकर, अधिकारी-तंत्र तथा न्यायपालिका तक, शिक्षा के क्षेत्र से लेकर व्यवसायों तक। उन्होंने जगह देने में चालाकी से काम लिया, वे पीछे नहीं हटे। सामाजिक उत्कर्ष का ध्वज उनके हाथ में था। उनकी इस सख्त पकड़ ने 1960 एवं 1970 के दशक में दलितों के संभवतया सर्वाधिक पूजनीय प्रेरणा-स्रोत रहे बाबू जगजीवन राम जैसे महान् राजनेता को भी निराशा के अत्यंत कटु एवं तीखे संघर्ष तक पहुँचा दिया। ''इस देश में चमार कभी प्रधानमंत्री नहीं बन सकता,''...उन्होंने राजनीति में बिताए पूरे एक जीवन के बाद, अपनी अंतिम घड़ी के आस-पास कराहते हुए कहा था।

सन् 1977 में जब आपात्काल-विरोधी लहर पर चढ़कर जनता पार्टी सत्ता में आई, बाबूजी उस समय प्रधानमंत्री पद के प्रमुख प्रत्याशी थे। लेकिन प्रधानमंत्री का पद एक गुजराती ब्राह्मण मोरारजी देसाई को मिला, और बाबूजी को उनका डिप्टी बना दिया गया। लालू यादव से पहले नीचे दरजे के लोगों में से कर्पूरी ठाकुर एकमात्र व्यक्ति थे, जो बिहार के मुख्यमंत्री बने और अब्दुल गफूर अब तक के एकमात्र मुसलिम मुख्यमंत्री। दोनों को संयोगवश ऐसा अवसर मिला था। गफूर को इंदिरा गांधी द्वारा लागू की गई इमरजेंसी ने मुख्यमंत्री पद दिलाया; कर्पूरी ठाकुर इमरजेंसी के विरुद्ध बगावत के फलस्वरूप मुख्यमंत्री बने। दोनों में से कोई भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाया। ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार और कायस्थ ही बारी-बारी से कुरसी सँभालते रहे। लेकिन मंडल आयोग ने सारा खेल हमेशा के लिए बदल डाला, मंडल और लालू यादव के आक्रामक, अखेदसूचक तेवरों ने मंडल आयोग की सिफारिशों का जमकर डंका बजाया : 'भूराबल हटाओ!' अर्थात् उच्च जातियों को बाहर करो। राजनीति में उच्च-जाति के प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया।

नीतीश के प्रथम कार्यकाल की समाप्ति के आस-पास उत्तरी किनारे के साथ-साथ बिलकुल एक नई तरह की भावना जन्म ले रही थी। वास्तव में इसने मुझे अपने-आपसे यह कहने के लिए विवश कर दिया : ''पटना छोड़ने के चार घंटे से भी कम समय में मैं सिंहवाड़ा, अपने घर पहुँच गया हूँ। क्या बात है?'' इससे पहले किस्मत से दिन अगर अच्छा हुआ, तो सात घंटे में पहुँच जाते थे : इससे कम में कभी नहीं। प्राय: दिन खराब होने पर नौ घंटे लग

जाते थे।

जगह-जगह प्रदीपक मार्ग-संकेत लगे हुए थे : कब्रगाह के चारों ओर साफ-सुथरी बाड़ लगी थी; स्कूल भवनों की बाहरी दीवारें गुलाबी रंग से सजी हुई थीं और अंदर चहल-पहल थी; प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों पर कतारें थीं, क्योंकि रुई-सूई आने की खबर सब जगह फैल गई थी। बीसियों वर्ष में पहली बार मैंने सिंहवाड़ा ब्लॉक विकास कार्यालय को उसके असली कार्य के लिए पहचाना। यह पहले एक परित्यक्त खँडहर जैसा लगता था, जहाँ स्थानीय कुली-कबाड़ी घूमते रहते हैं। अब इस पर रंग-रोगन हो गया था, प्रशासनिक बैरकों की अलग पहचान थी, पदाधिकारी काम कर रहे थे, साथ के मैदान में प्रार्थियों की जमात थी। सिंहवाड़ा ब्लॉक विकास कार्यालय एक छोटे शहर की कचहरी बन गया लगता था—जहाँ साइकिलों और मोटरसाइकिलों की मुठभेड़ नजर आती है, दलालों और नोटरी का मेला लगा रहता है, खान-पान के स्टालों की भरमार होती है। देखकर मैं चकित रह गया।

जैसे ही मैंने अपना सामान उतारा, शांति दौड़ी चली आई। अब उसके पास एक सेलफोन था और मैंने पहुँचने से पहले उसे फोन किया था। वह हमारी आया शांतिमा की बेटी थी और हमारे बचपन में हमारी देखभाल किया करती थी। शांतिमा की बेटी, शांति अब स्वयं साठ की आयु को छू रही थी। शांति ने खबर सुनाई कि वह महिला पंचायत की एक सदस्य बन गई है। जीवन में पहली बार उसे एक परिचय-पत्र मिला था और उसका एक चुनाव क्षेत्र था। अब वह उन पंचों में शामिल थी, जो स्थानीय झगड़े निपटाते हैं और धनराशि के खर्च का हिसाब-किताब तय करते हैं। उसकी बहुत माँग हो गई थी। उसे शक्ति मिल गई थी। नीतीश के शासन के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार उसे दो बार इस पद के लिए योग्य पाया गया। एक महिला होने के नाते, वह स्थानीय निकायों में 50 प्रतिशत आरक्षण की लाभार्थी थी। वह अत्यंत पिछड़े वर्ग के रूप में वर्गीकृत कमती जाति से थी, और इस जाति के लोगों को भी राजनीतिक कोटे का लाभ प्राप्त था। वह हाट से भी सामान लेकर आएगी, उसने कहा, लेकिन बीच में उसे ब्लॉक कार्यालय में एक अत्यावश्यक बैठक में भी जाना होगा।

स्थानीय निधि पर हकदारी को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया था : 'बड़का लोग' (बड़े लोग, उच्च जातियों) भी उसमें हिस्सा चाहते थे और बाकी लोग पूछ रहे थे कि हिस्सा क्यों और किस आधार पर चाहिए। इस विवाद को शीघ्र निबटाना होगा अन्यथा बात काबू के बाहर हो जाएगी। शांति की एक नतिनी थी, जो एक वार्षिक छात्रवृत्ति और एक नि:शुल्क आरोग्य-पत्र (हैल्थ कार्ड) पाने की हकदार थी। माध्यमिक स्कूल में पहुँचने पर उसे मुफ्त यूनीफार्म और स्कूल जाने के लिए एक साइकिल भी मिलेगी। शांति ने कहा कि 'दूसरे बच्चों'—अर्थात् मुसलिम और दलित बच्चों को भी मुफ्त व्यावसायिक प्रशिक्षण और वित्तीय अनुदान दिया जा रहा है। उनके बड़ों को वार्षिक वित्तीय सहायता दी जाती है। ''उन्हें हमसे अधिक मिल रहा है,'' शांति ने साफतौर पर ईर्ष्या भाव से कहा, लेकिन अच्छा है कि गरीबों को कुछ मिल रहा है। ''हमरो सब ला किछ छइ, आब ता कनि-मनि पाबर सेहो''...अर्थात् इसमें हमारे लिए भी कुछ है, और अब थोड़ी-बहुत शक्ति भी है।

बदलाव की सूई बिहार के आर-पार चुभ रही थी। उस सूई की एक राजनीतिक आँख थी। उसके जरिए नीतीश अपना खुद का एक मतदाता-वर्ग तैयार कर रहे थे। उच्च जातियाँ उनके साथ नहीं थीं; उनका साथ तभी तक था, जब तक बी.जे.पी. के साथ नीतीश की मैत्री थी। यादवों से लालू का साथ छोड़ने की संभावना नहीं थी। अधिकतर मुसलमानों का समर्थन भी लालू को प्राप्त था। दलित, विशेषकर प्रभावशील पासवान, रामविलास पासवान के साथ थे। इन सारे मतदाता-वर्ग का कुल जोड़ 50 प्रतिशत से कुछ ऊपर था। नीतीश अपने विशिष्ट मतदाता-वर्ग—कुर्मी-कोइरी—का प्रतिशत सिर्फ 8 से कुछ ही अधिक बनता था। कुछ दूसरे समुदायों अर्थात् अत्यंत पिछड़े वर्गों को भी जोड़ लें, तब भी कुल जोड़ 20 प्रतिशत तक ही सिमटकर रह जाता था। उन्हें एक वफादार मतदाता-वर्ग चाहिए

था। वह उस तक पहुँचा भी, ऊद-बिलाव की तरह। उन्होंने मंडल की बाड़ को कुतरा, उसके चिप्पड़ उतारे, चबाया, ठोका-पीटा, ताकि पता चल सके कि उसके हिस्से से उन्हें मनचाही चीज मिल सकती है।

नीतीश ने दलितों में से महादलितों का एक नया वर्ग तैयार किया, जिसके वास्ते उन्होंने पंचायती संस्थानों तथा वित्तीय दान-दक्षिणा में उनके लिए राजनीतिक जगह का अनुपातानुसार बँटवारा किया। इसमें उन्होंने पासवानों को शामिल नहीं किया; यह राम विलास के लिए एक कटाक्ष था। ई.बी.सी. समुदायों के लिए भी उन्होंने ऐसा ही किया, ओ.बी.सी. से इन समुदायों को अलग किया और इन्हें विशेष नकद एवं जीविकोपार्जन संबंधी प्रोत्साहन प्रदान किए।

उन्होंने पिछड़े या पसमांदा, मुसलमानों को जमींदार, शेख, सैयद और पठानों से अलग किया तथा इसलाम का प्रभावपूर्ण ढंग से मंडलीकरण किया। ये सब पेशेवर समूह थे—अंसारी-मोमिन (बुनकर), चूड़ीहर (चूड़ी-निर्माता), मिरियासिन, उफाली और पमरिया (भाट-गाथागायक), कसब (कसाई), नलबंद (लोहार), रंगरेज (रंगसाज), रायीन (फल और सब्जी उत्पादक), धुनिया (रजाई और गद्दे बनानेवाले), बाणे (बहेलिया, सफरी विक्रेता), नट और कलंदर (करतब दिखानेवाले कलाकार)। उन्हें अब दोनों तरफ से फायदा है—अल्पसंख्यक वर्ग के लाभार्थी होने के साथ-साथ ओ.बी.सी. के निमित्त कल्याणकारी योजनाओं का भी लाभ उन्हें मिलेगा।

नीतीश ने एक और मतदाता-वर्ग को खोज निकाला जिसे पूर्वजों ने घर की लाज को सबके सामने उघाड़ने पर आपत्ति के कारण छोड़ दिया था : इस मतदाता वर्ग में थीं लड़कियाँ और महिलाएँ। सभी वर्गों और समुदायों की लड़कियों को शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ मुहैया कराई गईं। स्थानीय स्वशासन में आधी हिस्सेदारी महिलाओं को मिली। राज्य खर्च कर रहा था, नीतीश राजनीतिक पूँजी, अर्थात् एक वोट-बैंक का निर्माण कर रहे थे।

लेकिन यह सब एक ही दिशा में नहीं जा रहा था। अल्पसुविधा-प्राप्त वर्गों की ओर विशेष कृपा-दृष्टि के कारण अन्यत्र रोष की लहर फैल गई थी। सिंहवाड़ा में उस शाम मैं जमींदार समुदाय के एक वयोवृद्ध शख्स, रहमू मियाँ से मिलने गया, जिसे मैं अपनी बाल्यावस्था से जानता था। रहमू मियाँ का एक और नातेदार भी था, बच्चा मियाँ, जो हमारे घर के पीछे के विस्तृत क्षेत्र के बीच से बहती छोटी नदी के पार पैगंबरपुर में लाल-ईंट की एक हवेली में रहता था। बच्चा मियाँ को देखकर लगता था जैसे वह प्रेमचंद की किसी कहानी से निकलकर सामने आ खड़े हुए हों : सिर पर जरदोजी के काम की एक सफेद टोपी, डेकची जैसी काली-सफेद दाढ़ी, चारखाने की हरी लुंगी और हमेशा एक बहुत ही सफेद करारे कुरता डाले हुए, जो उनकी पिंडलियों तक पहुँचता था और उनके बदन पर इतना खुलकर बैठा होता था कि जब वह चलते थे, तो लगता था कि अपने हिस्से की हवा अपने साथ ले जा रहे हों। बच्चा मियाँ के पास एक खुली विलिस जीप थी और वह अकसर अपने ड्राइवर, वजीब मियाँ को हमें जीप में घुमाने के लिए भेज देते थे। बच्चा मियाँ अपना वक्त गुजारकर जा चुके थे। नदिया के पार उनकी हवेली खंड-खंड होकर गायब हो गई थी। क्षितिज के उस भाग में खजूर के पेड़ों की बेतरतीब आबादी उठ खड़ी हुई थी।

रहमू मियाँ नदिया के इस तरफ, कटासा में रहते थे, जो सिंहवाड़ा से सड़क के कुछ फर्लांग उतराई पर था। सर्दियों की शुरुआत थी, बरसात हो चुकी थी, जिसकी वजह से कच्चे रास्ते की मिट्टी गीले आटे जैसी हो गई थी। बौछार के साथ आई तेज हवा ने शीशम के पीले पड़े पत्तों को शाखों से नीचे बिखेर दिया था। वे गीली धरती पर उभरे हुए बेल-बूटों जैसे दिख रहे थे। कटासा जाने का रास्ता ऐसा लग रहा था जैसे सोने के सिक्के बिखरे हुए हैं। रहमू मियाँ, हमेशा की तरह, हवेली के चारों तरफ घूम-फिरकर आए, हरी घास पर पड़ी एक नीची चारपाई के ऊपर अधलेटी मुद्रा में आराम फरमा रहे थे। रहमू मियाँ की शख्सियत बच्चा मियाँ जैसी शानदार तो नहीं थी, फिर भी उनके तौर-

तरीके वही पुराने जमाने के थे। मुझे याद नहीं पड़ता कि रहमू मियाँ ने मुझे कभी भी चाय पिए बगैर और साथ में कुछ स्वादिष्ट, मजेदार खाए बिना उठने दिया हो; मेरे परिवार में हर एक की कुशल-क्षेम पूछना वह कभी नहीं भूलते थे। कद के छोटे रहमू मियाँ की ठोढ़ी पर सफेद बालों की पतली, नाजुक सी एक दाढ़ी थी, जैसी बकरे की ठुड्डी पर होती है। पहले जैसा ठाठ-बाट मिट चुका था—उनके बदन पर तेल और पान के धब्बे पड़ा कुरता था, पाँव में रबड़ की चप्पलें थीं, जहाँ कभी हाथ की बनी जूतियाँ हुआ करती थीं। उनकी हवेली का भी वही हाल था। यह यू की आकृति का दो-मंजिला मकान था। यू के उदर में एक वैयक्तिक चौक था, जहाँ बाहरी व्यक्तियों का जाना वर्जित था और चाय तथा पकवान वहीं से आते थे; यह एक खुला जनाना था, घर की औरतों के उठने-बैठने की जगह। बड़ी-बड़ी मेहराबी खिड़कियों से चिनाई निकलने लगी थी, जगह-जगह मकड़ियों ने जाले बना लिये थे, पीले रंग पर फफूँद और काई जमने लगी थी।

''बीता जमाना बीता होता है,'' हँसी-खुशी की बातें चुक जाने के बाद जब हम कुछ देर खामोश बैठे रहे, तब रहमू मियाँ ने चिंतातुर होकर कहा, ''लेकिन यह जमाना भी हम पे बीत रहा है, बेटा, अब शेख, सैयद, पठान, ब्रहमिन, राजपूत, भूमिहार, इनकी कोई जगह नहीं, सब दे दिया, सब दे दिया, सब नीचेवालों को मिल रहा है...

''वे लोग थोड़ा-थोड़ा करके हमारी जमीन खरीद रहे हैं। तुम जानते हो, उन्होंने अपनी मसजिद भी बना ली है, और अपना एक छोटा मदरसा भी बना लिया है। अब किसी को हमारी जरूरत नहीं है, वक्त हमें छोड़कर आगे निकल रहा है।''

जब मैंने पटना लौटने पर इस बेलबूटेदार लघु-कथा का वर्णन नीतीश कुमार के एक घनिष्ठ सहयोगी को सुनाया, तो वह अत्यंत प्रफुल्लित हुआ। ''कांस्टीट्वेंनसी बन रहा है हमारा,'' उसने खुश होकर कहा।

कर दिखाने के बजाय कहना अधिक आसान था। बिहार की जटिल एवं स्पर्धात्मक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के साथ अत्यधिक छेड़खानी करना और अत्यधिक जल्दबाजी करना समस्याओं को निमंत्रण देना था। एक वर्ग की सहायता और हिमायत करो, तो दूसरा काटने के लिए उठ खड़ा हो जाता है। और यदि आप सामाजिक चरमपंथियों के किसी गठबंधन का नेतृत्व कर रहे हों, जैसा कि उस समय नीतीश कर रहे थे—बी.जे.पी. के बैनर तले एक तरफ उच्च जातियों के हित थे और दूसरी ओर जे.डी.यू. के अधीनस्थ पदाधिकारी—तो संतुलन बैठाना आसान नहीं होता है। यदि हलका सा भी संकेत मिले कि कोई यथास्थिति को चुटकी काटने की कोशिश कर रहा है, तो तुरंत खतरे की घंटी बज जाती है। सन् 2009 में, विधानसभा चुनावों से एक वर्ष पहले, नीतीश के लिए भी ऐसे खतरे की घंटी बजी थी; वह इतने डर गए थे कि उन्होंने आमूल सुधारवाद के साथ छेड़खानी करने का प्रयास त्याग दिया।

नीतीश ने निम्नतम स्तर पर पहल करने, अपनी छाप छोड़ने के विचार से अभिभूत होकर, 'ऑपरेशन वर्ग' के इंजीनियर, डी. बंदोपाध्याय को, जिन्होंने बंगाल में भूमि के पुनर्वितरण का काम सफलतापूर्वक करके प्रसिद्धि पाई थी, बिहार के लिए भूमि सुधार संबंधी उपाय सुझाने का कार्य सौंपा। उत्तरवर्ती बिहारी नेताओं ने काश्तकारी प्रथाओं की समीक्षा करने और उनमें सुधार करने का वचन दिया था; किसी ने भी उस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। लालू यादव ने सन् 1990 में मुख्यमंत्री बनने के तुरंत बाद बड़ी सरगरमी से एक शपथ उठाई थी, बिहार विधानसभा में 123 जमींदारों की सूची दिखाई थी और ऐलान किया था कि जमींदारों के कब्जे से अतिरिक्त भूमि लेने के लिए कड़े मानदंड निर्धारित किए गए हैं। लेकिन इसके बारे में बाद में कुछ भी सुनने में नहीं आया।

बिहार का नाम भारत के उन राज्यों में शामिल था, जिन्होंने सबसे पहले जमींदारी का उन्मूलन किया; जमींदारी प्रथा समाप्त करने का कानून सन् 1950 में पारित हुआ था। इस कानून ने जमीन पर हकदारी को बदल दिया। भूस्वामियों ने तिकड़म का सहारा लेकर बड़ी-बड़ी जमीनों पर कब्जा जमाए रखा। सामंती परिवारों ने कागज पर

अपनी जोत-भूमि का विभाजन दिखा दिया और भूमि उन्हीं के अधिकार में बनी रही। बहुतों ने 'बेनामी' कब्जे दिखा दिए। उन्होंने अतिरिक्त भूभाग को उन बंधुआ सेवकों के नाम में दर्ज करा दिया, जो कभी जुबान खोलने की हिम्मत नहीं कर सकते थे, या फिर ऐसे नाम लिखा दिए, जो वास्तव में उनके पालतू जानवरों और ढोर-डंगर, गाय-भैंस के नाम थे—भोला, मोती, मोहना, सीत्-पीत्, हथिया, बनेचरा। इस तरह, ध्यान देने योग्य बात यह है कि लगभग 40 प्रतिशत कृषि-योग्य भूमि सिर्फ 3 प्रतिशत लोगों के कब्जे में थी। यह एक बड़ी जबरदस्त धोखाधड़ी थी, जिससे सभी आँखें चुरा रहे थे, जिसे चलने दे रहे थे।

नीतीश का मंतव्य इस विकृति को दूर करना था या नहीं, कोई भी इसका अनुमान लगाने के लिए स्वतंत्र है। लेकिन बंदोपाध्याय को अभिलेखों का अध्ययन एवं जाँच करने तथा सुधार संबंधी सिफारिशें देने के लिए आमंत्रित करके नीतीश ने सामंतवादी बुराइयों को दूर करने की दिशा में निश्चित तौर पर यह एक अच्छा कदम उठाया था। बंदोपाध्याय ने निष्कपट भाव से जल्दी अपनी रिपोर्ट दे दी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट नीतीश सरकार को सन् 2008 में किसी समय प्रस्तुत की, जिसमें तीन प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की गई थीं :

- 0.66 से 1 एकड़ तक भूमि, जो अधिकतम सीमा के अतिरिक्त हो, खेतिहर मजदूरों को आबंटित की जाए और 0.10 एकड़ भूमि निराश्रित ग्रामीण मजदूरों को।
- भूमि-सीमा संबंधी श्रेणियों का वर्गीकरण करने की वर्तमान प्रणाली को समाप्त किया जाए और खामियों को दूर करने हेतु उन्हें तर्क-सम्मत बनाया जाए। अनेक जमींदारों ने अतिरिक्त भूमि को गलत ढंग से चीनी मिलों के वास्ते या कृषि-उत्पाद केंद्रों के लिए वर्गीकृत करवाकर कानूनी रूप से अपने कब्जे में बनाए रखा था।
- उन्हें वंशागत खेती-बारी का अधिकार दिलाने हेतु एक बटाईदारी कानून बनाया जाए, जिसमें यह प्रावधान हो कि यदि उत्पादन लागत भू-स्वामी भी वहन करता है, तो उन्हें उपज का 60 प्रतिशत हिस्सा मिले और यदि भू-स्वामी उत्पादन लागत नहीं उठाता है तो 75 प्रतिशत हिस्सा उनका, यानी काश्तकार का हो।

सरकार अभी रिपोर्ट का अध्ययन कर रही थी कि उसके कुछ अंश उजागर हो गए। किसी को पता नहीं किस तरह, लेकिन अनुमान करना कोई कठिन काम नहीं है : सरकार में ऊँची पहुँच रखनेवाला कोई व्यक्ति, कोई राजनीतिज्ञ या कोई अधिकारी, पुराने जमींदारों में से कोई हो सकता है, जिसे कानों-कान खबर कर दी गई होगी और रोष दिला दिया होगा कि नीतीश जिस दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं उससे भू-स्वामियों पर गाज गिरनेवाली है। रिपोर्ट के कुछ अंश अखबारों की सुर्खियों में आ गए, जिनमें पूरी सच्चाई नहीं थी और स्रोत का भी अता-पता नहीं था, लेकिन जितना भी छापा, बहुत ज्वलनशील था : नीतीश भू-स्वामियों की जमीन छीनने और उस जमीन को भूमिहीनों में बाँटने की योजना बना रहे हैं; जमींदारी की जगह बटाईदारी लाई जा रही है। कटासा के रहमू मियाँ इसी बारे में हताशा जाहिर कर रहे थे : सब नीचेवालों को मिल रहा है।

बात आग की तरह फैल गई। नीतीश झुलसने से नहीं बच सके। सन् 2009 में विधानसभा की अठारह सीटों के लिए हुए उप-चुनावों में, जे.डी.यू. को सिर्फ दो सीटें मिलीं और बी.जे.पी. को तीन; लालू यादव नौ सीटें ले गया और कांग्रेस को दो सीटें हासिल हुईं। यह चौंकानेवाला परिणाम था, नीतीश को झटका लगा। लेकिन उन्हें बात समझ में आ रही थी कि किस कारण ऐसा हुआ है : बटाईदारी, यथा-स्थिति को छेड़ने या उसे पुनर्व्यवस्थित करने का प्रयास, इधर-उधर हलकी-सी कूची मारने की कोशिश ही क्यों न हो। सरकार में और पार्टी में उनके अपने ही कुछ सहयोगियों ने बंदोपाध्याय रिपोर्ट के खिलाफ काना-फूसी का अभियान चलाया था। उनमें बिहार जे.डी.यू. का अध्यक्ष, राजीव रंजन उर्फ लल्लन सिंह भी शामिल था, यह वही आदमी था, जिसने वर्षों पहले दिल्ली में बिहार भवन में लालू के साथ हो-हल्ला किया था। फिलहाल मुँगेर से सांसद निर्वाचित, जागीरदार, भूमिहार लल्लन को

मुख्यमंत्री से उधार में प्राप्त अधिकार के जरिए गैर संवैधानिक प्रभाव का इस्तेमाल करने की इजाजत मिल गई थी। नीतीश ने कभी कोशिश-पैरवी और दरबारियों का दिल-बहलाव नहीं किया, लल्लन सिंह करते थे। उसकी दहलीज पर, अनुकंपा एवं अनुग्रह चाहनेवालों का ताँता लगा रहता था—तबादला और तैनाती, ठेके, लाइसेंस चाहनेवाले, प्रार्थियों की ओर से प्रशासनिक निर्णयों में बीच-बचाव करने, पार्टी में पदोन्नति के लिए सिफारिश करने की गुहार लेकर आनेवाले हर समय कतार में खड़े रहते थे।

वह अपने-आपमें एक समानांतर सत्ता का केंद्र बन गया था। नीतीश के विरुद्ध विसम्मति को उकसाने के लिए उस पर काफी चपेट पड़ चुकी थी, धमकी देने के लिए उसको सबक सिखाने में मजा आता था। उप-चुनाव के उपरांत नीतीश और उनकी पार्टी के सरदार के बीच एक बेकल खामोशी पैदा हो गई थी। उन्होंने मिलना, भेंट करना बंद कर दिया। लल्लन और भी अधिक नीतीश-विरोधी हो गया, वह पार्टी के अंदर मतभेद की सूचना गुप्त रूप से प्रचार-माध्यमों को पहुँचाने लगा, नीतीश के विरुद्ध उपजते विद्रोह की निराधार बातें फैलाने में लग गया। कुछ समय बाद, सन् 2010 में नीतीश के पुनर्निर्वाचन के दौरान, लल्लन खुलकर चुनौती देने लगा। उसने कांग्रेस के साथ चुनाव प्रचार किया और उन मंचों को गले लगाया, जो नीतीश सरकार को हटाना चाहते थे। उसका प्रयास व्यर्थ रहा : उसकी जगह वशिष्ठ नारायण को जे.डी.यू. का अध्यक्ष बना दिया गया और उसे पार्टी से निलंबित कर दिया गया।

लेकिन लल्लन के प्रच्छन्न कपटपूर्ण व्यवहार से नीतीश उतने चिंतित नहीं थे, जितने कि उप-चुनावों के परिणामों से आहत थे। बंदोपाध्याय की रिपोर्ट का भेद खुल जाने से व्यापक असंतोष उत्पन्न हो गया था, जो उन्हें अधिक नुकसान पहुँचा सकता था। सन् 2010 विधानसभा का चुनाव महत्त्वपूर्ण मुकाबला सन्निकट था। बिहार भूमि सुधारों के लिए चीख-चिल्ला रहा था, लेकिन नीतीश अभी इस पर दबाव डालने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं थे। इससे सामाजिक अराजकता भड़कने का डर था; इसके कारण राजनीतिक समीकरण बिगड़ सकते थे, जिन पर नीतीश अपना आधिपत्य समझते थे। न केवल बी.जे.पी. में, बल्कि उनकी अपनी पार्टी में जागीरदारों की हिमायत में खड़े लोग भू-धारण पद्धति में बदलाव करने के किसी भी प्रयास के कारण खड़े तेवर अपना सकते थे। नीतीश उस ज्वाला से फौरन पीछे हट गए। 'भूत है, बेकार बात है, भूतों को मत जगाइए,' उन्होंने मुझसे कहा जब मैंने पूछा कि क्या बंदोपाध्याय रिपोर्ट से उन्हें चोट पहुँची है और यह कि क्या वह फिर भी इसकी सिफारिशों को लागू करना चाहेंगे। वह बंदोपाध्याय की सिफारिशों को भूत-मुक्त करना चाहते थे। उन्होंने पूर्वगामी वर्षों में दो चुनौतियों को सिर उठाने का मौका दिया था और उनसे छुटकारा पाया था; चुनावों की दौड़ में वह एक और उलझन भरी समस्या से जूझना नहीं चाहते थे।

नीतीश उस समय मॉरीशस का भ्रमण कर रहे थे, जब अगस्त सन् 2007 में नेपाल की तीन नदियों के अचानक तेज प्रवाह के कारण बिहार में आई भयंकर बाढ़ ने भीषण तबाही मचा दी। बागमती, बूढ़ी गंडक और कमला बलान नदियों ने अपने-अपने तटबंध तोड़ दिए और रात भर में ही, दो-तिहाई उत्तरी बिहार को असहाय छोड़ दिया : पूरा-का-पूरा सारण, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, दरभंगा, मधुबनी, बिहार का लगभग समस्त घनी आबादीवाला क्षेत्र और कृषि-समृद्ध उत्तरी इलाका पट्टियों में बँध गया। बाढ़ का पानी अट्ठाइस जगह दरारें निकालकर बाईस जिलों और करीब 13,000 गाँवों में भर गया। दो करोड़ दस लाख (21 मिलियन) लोग विस्थापित हो गए, 187 मृत्यु को प्राप्त हुए और 7,36,857 घर बाढ़ में बह गए; ये आँकड़े बाद में बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित किए गए। नीतीश ने अपनी यात्रा बीच में ही छोड़ दी और पहली उपलब्ध उड़ान से वापस आ गए। उनके साथ यात्रा पर गए संजय झा ने बताया कि नई दिल्ली में अगली उड़ान के बीच दो घंटे के अंतराल के दौरान नीतीश इतने तनाव में थे कि

उन्होंने थोड़ा सा भी विश्राम नहीं किया, हालाँकि मैं देख रहा था कि उन्हें आराम की सख्त जरूरत है। वह जल्दी-से-जल्दी वापस पहुँचकर राहत कार्य की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहते थे। वह समझ रहे थे कि पटना से दूर रहने का एक-एक मिनट उन्हें बहुत भारी पड़नेवाला है, विशेषकर उनके राजनीतिक जीवन पर। तत्कालीन रेल मंत्री की हैसियत से लालू पहले ही राज्य में नेतृत्व के खालीपन की खिल्ली उड़ाने में लगा हुआ था, और बाढ़ को उसने अपना मंच बना लिया था। लालू ने भारतीय वायुसेना का एक हेलिकॉप्टर लिया और उसे नियमों के विरुद्ध जाकर दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर के बीच सड़क की एक सूखी पट्टी पर जबरन उतारा। कर्मीदल गुस्से में था, लेकिन जन-संपर्क की फिल्म को बहुत वाह-वाही मिली : लोक पुरुष लालू ने जीवन की परवाह न करते हुए तथा शिष्टाचार का घेरा तोड़कर अपने लोगों के बीच पहुँचने में देर नहीं लगाई, जबकि उनका मुख्यमंत्री विदेश भ्रमण कर रहा था। नीतीश जब घर पहुँच गए, उसके बाद प्रात:काल, पटना के एक समाचार-पत्र ने, मॉरीशस गए नीतीश के प्रतिनिधि-मंडल में शामिल मंत्री, रेनू देवी का एक व्यंग्य-चित्र प्रकाशित किया, जिसमें दिखाया गया था कि इधर बिहार बाढ़ की भयंकर चपेट में है और उधर रेनू देवी, टू-पीस बिकिनी पहने समुद्र-तट की सैर कर रही है।

नीतीश जानते थे कि पहुँचने के साथ ही उन्हें इस प्रकार के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा। लेकिन उन्होंने अविलंब युद्ध-स्तर पर राहत कार्य करने का बीड़ा उठाया, क्योंकि अगले वर्ष उत्तर-पूर्वी बिहार में कोसी की विनाशलीला का सामना फिर इसी आक्रामक राहत एवं पुनर्वास कार्य के जरिए किया जाना था। सन् 2007 में अगस्त-सितंबर के दौरान तीन सप्ताह तक, नीतीश ने नियंत्रण की जिम्मेदारी स्वयं सँभाली। प्रत्येक प्रभावित जिले में राहत केंद्र स्थापित किए गए, खाद्यान्न और आवश्यक दवाओं की कमी को पूरा करने के लिए बाजार से खरीदारी की गई, प्रत्येक ब्लॉक में एक मुफ्त वितरण केंद्र खोला गया—लोगों को अनाज के थैले, कंबल, बरतन, प्लास्टिक की चादरें, तिरपाल, जलाने की लकड़ी और कोयला, दवाई, रोगाणुनाशक आदि का नि:शुल्क वितरण करने के लिए। जिनका घर-परिवार और ढोर-डंगर सबकुछ चला गया, उन्हें नकद हरजाने के रूप में 50,000 रुपए दिए गए और जिनका कुछ नुकसान नहीं हुआ था, किंतु बाढ़-प्रभावित क्षेत्र में आते थे, उन्हें क्षतिपूर्ति के रूप में 2,000 रुपए की नकद राशि दी गई।

अगले वर्ष जब 18 अगस्त को कोसी ने अपना उग्र रूप दिखाया, उस समय सरकार के पास संकट से निपटने की व्यवस्था का साँचा पहले से मौजूद था। किंतु यह संकट इतना विकराल था कि किसी भी राज्य सरकार के लिए इससे पार पाना संभव नहीं था। रात के गहन अंधकार में कोसी नदी ने भारत-नेपाल सीमा पर सहसा प्रचंड रूप धारण कर अपना मार्ग बदल दिया था और उसका तीव्र भयावह प्रवाह आबादी और खेती-बारी को रौंदता चला गया था। सुपौल, अररिया, मधेपुरा, सहरसा, पूर्णिया, भागलपुर—एक के बाद एक जिला बाढ़ की चपेट में आ गया। बाढ़-नियंत्रण प्रहरी जब तक खतरे का संकेत दे पाते, पटना को जब तक सूचना दी जाती, उसके पहले ही पानी सीमा लाँघ चुका था। तीस लाख लोग, दर्जनों शहर और कस्बे, हजारों गाँव, 8,40,000 हेक्टेअर उपजाऊ भूमि बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित हो गई थी। करीब 500 लोग मर गए, डूब गए या बह गए; उस साल नवंबर तक पानी में फँसी लाशें मिलती रहीं।

बहस चली कि इसके जिम्मेदार कौन हैं—भारत या नेपाल? बिहार सरकार या दिल्ली में बैठे जल संसाधन प्राधिकारी? क्या यह किसी प्रादेशिक चूक का परिणाम था या अंतरराष्ट्रीय बातचीत की विफलता थी?—इस बीच प्रधानमंत्री ने बाढ़ को एक राष्ट्रीय आपदा घोषित कर दिया। बिहार में नीतीश के निंदकों ने खुश होकर नीतीश के अंत की घोषणा कर दी : यह वर्ष नीतीश को ले डूबेगा। नीतीश के विनाश की भविष्यवाणी करनेवालों ने उनके साथ सिर्फ परिहास किया। ''वह बाढ़ को शुरू से ही एक बहुत बड़े अवसर की तरह समझ रहे थे,'' जल संसाधन

मंत्री विजय चौधरी ने वर्षों बाद मुझे अकेले में बताया, ''मुझे याद है, उन्होंने हममें से कुछ लोगों से कहा था, अगर काम करना है तो अभी वक्त है, दिखाइए कुछ जौहर...''

राहत एक बहुत बड़ा काम था, कई एजेंसियों को इसमें साथ लेकर चलना पड़ा, बंबई के फायर-ब्रिगेड मार्शल से लेकर डब्ल्यू.एच.ओ. (वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गनाइजेशन) के विशेषज्ञों तक। बीच-बीच में, नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी (एन.डी.एम.ए.), सी.आर.पी.एफ., राज्य पुलिस और होम गार्ड्स की टुकड़ियाँ, कई गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) मदद का हाथ बढ़ाने हेतु आते रहे। लेकिन केंद्रीय एजेंसी नीतीश स्वयं थे, उन्होंने विशेष रूप से अपने सरकारी निवास के निकट एक राहत नियंत्रण कक्ष स्थापित कर लिया था, जहाँ से वह राहत कार्य पर हर पल नजर रख रहे थे। बाढ़ का पानी पूरी तरह घटने के पहले ही राहत शिविर लगने शुरू हो गए थे। राहत कार्य जब जोरों पर था, करीब 450 राहत शिविर बाढ़-पीड़ितों की सहायता में लगे हुए थे; प्रत्येक शिविर में रसोई एवं भोजन की व्यवस्था थी, अस्थायी शौचालय थे, शिशु सदन थे और बच्चों के लिए प्ले-स्कूलों की भी व्यवस्था की गई थी। कूड़ा-करकट हटाने और रोगाणुनाशक छिड़कने का काम विशेष इकाइयों के जिम्मे था। लेकिन कूड़ा-कचरा ज्यादा इकट्ठा नहीं होता था, क्योंकि बाढ़ का शिकार बने हर व्यक्ति को एक स्टील प्लेट और एक गिलास दिया गया था; प्रत्येक भोजन के बाद फेंकने लायक प्लेटों, पत्तलों आदि का कोई बड़ा ढेर नहीं होता था। इस तमाम काररवाई का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू संकट की घड़ी गुजर जाने के बाद समझ में आया : महामारी फैलने का एक भी मामला सामने नहीं आया था। सन् 2010 के चुनावों में, नीतीश को कोसी क्षेत्र से 90 प्रतिशत सीटों पर जीत मिली; वे लोग देखते रह गए, जिन्होंने नीतीश का सफाया हो जाने की बात कही थी।

सन् 2010 के चुनावों से कुछ समय पहले 'दि टेलिग्राफ' के नवजात पटना संस्करण के लिए मेरे द्वारा लिये इंटरव्यू के दौरान, नीतीश पहली बार 'नया बिहार' के बारे में बोले। हम 1, अणे मार्ग के एक ढके हुए बरामदे में बैठे थे, नीतीश और मैं, हमारे बीच एक चायदान था। मैंने नीतीश से उस सूक्ष्म सोशल इंजीनियरिंग के बारे में पूछा, जिसका निर्माण उन्होंने महादलितों, अत्यधिक पिछड़े वर्गों, पसमांदा मुसलमानों को मिलाकर अपना ही मतदाता-वर्ग खड़ा करने के लिए किया था। और उन्होंने कहा, ''मैं समझता हूँ, मैं जो कर रहा हूँ उसके बारे में आपको कुछ गलतफहमी है, और आगामी चुनावों में यह साबित हो जाएगा। मेरे विचार में, नई बिहारी पहचान का उभरना पिछले पाँच वर्षों के दौरान जो कुछ होता रहा है उसका ही एक परिणाम है। लोग फिर यह सोचकर गर्व करने लगे हैं कि वे बिहार के हैं, बिहारी होना अब उनके लिए गर्व की बात है; उन्हें बिहारी कहलाने में अब लज्जा महसूस नहीं होती है। उनके अंदर एक उम्मीद जगी है, जो किसी एक की नहीं, बल्कि सबकी है; उन्हें विश्वास होने लगा है कि अगर इच्छाशक्ति हो, तो बिहार में सबकुछ हो सकता है और किया जा सकता है।

''सड़कें किसी विशेष समुदाय या जाति के लिए नहीं होती हैं, स्कूल और अस्पताल सबके लिए हैं, हमारी नीतियों का लाभ जिन महिलाओं को पहुँचा है वे सभी जातियों की हैं, सभी जातियों और धर्म-मजहब की लड़कियों को मुफ्त पोशाक और साइकिल मिल रही है, सबको हेल्थ-कार्ड दिए गए हैं, दोपहर का भोजन मिल रहा है। बिहारी लाभान्वित हो रहे हैं, सिर्फ किन्हीं विशेष समुदायों के लोग नहीं। एक नई बिहारी पहचान बन रही है, मैं महसूस कर सकता हूँ...''

वह बीच में रुक गए। शायद उन्होंने मेरे चेहरे पर संशय का भाव देखा, शायद उन्हें लगा कि मैं उनकी बात पर विश्वास नहीं कर रहा हूँ।

''मैं जानता हूँ आप क्या सोच रहे हैं,'' उन्होंने फिर कहा, ''आप शायद यह सोच रहे हैं कि मैं अवास्तविक दावे कर रहा हूँ कि मैं जाति-भावना से आगे निकल गया हूँ, बिहार में जाति की अब कोई पहचान नहीं है। निस्संदेह, मैं

ऐसी कोई बात नहीं कह रहा हूँ। जातिगत पहचान हैं, वे तो बुनियादी पहचान हैं और दुर्भाग्यवश वे प्राय: नकारात्मक रूप में प्रकट होती हैं। हमें कोशिश करनी है और उसका सामना करना है। मैं जाति को नकार नहीं रहा हूँ। मैं इस बात से भी इनकार नहीं कर रहा कि कुछ जातियों एवं अन्य वर्गों को विशेष सहायता की जरूरत है और यह भी कि हम उन्हें मदद देते रहेंगे, क्योंकि ऐतिहासिक रूप से उनके साथ भेदभाव होता रहा है। वे पीछे रह गए हैं। लेकिन आगामी चुनाव में आप देखेंगे कि एक नई भावना जन्म ले रही है, जो जातिगत भावना से ऊपर है, मैं उसी बिहारी भावना की बात कर रहा हूँ। धैर्य रखें, और देखते रहें।''

नीतीश के नेतृत्ववाले गठबंधन को अभूतपूर्व बहुमत प्राप्त हुआ : कुल 243 सीटों में से 206 सीट। अकेले नीतीश का जे.डी.यू. ही बहुमत के आस-पास पहुँच गया, बी.जे.पी. को प्राप्त 91 सीटों के मुकाबले 115 सीटें लेकर। शेष, लालू यादव समेत सब उड़ गए। अब इस बात का विश्लेषण करने हेतु पर्याप्त सूक्ष्म आँकड़े नहीं हैं कि क्या यह वास्तव में एक 'नया बिहार' था जो नवंबर 2010 में मतदान केंद्रों पर टूट पड़ा। अथवा, अगर मतदाताओं ने नीतीश के अधीन बदलाव और कुशलता की भावना के समर्थन में वोट दिया, तो क्या वह वोट डालने की प्रवृत्तियों में कोई स्थायी परिवर्तन था, जातिगत संबंध के लिए वोट के बजाय कार्य के निमित्त वोट था।

संबंधों में कटुता आ जाने के कारण जून 2013 में बी.जे.पी. से नीतीश का नाता टूट जाने के बाद लिया गया लेखा-जोखा मतदाता-वर्ग की ऐसी किसी भी पक्की भावना के अस्तित्व में किसी विश्वास को झुठलाता प्रतीत होता है, जो जाति के प्रभाव पर हावी हो जाए। जून 2013 में, नीतीश खेमा पुन: ई.बी.सी. और दलितों की जुगाली करने और यह हिसाब साफ करने में जुट गया कि बी.जे.पी. से अलग होने के परिणामस्वरूप मुसलिम वोटों में कितनी वृद्धि हुई है। बी.जे.पी. उच्च जाति की नाराजगी से नीतीश को यंत्रणा देकर खुश थी। लालू को इस बात की खुशी थी कि वह यादवों तथा मुसलमानों में अपने पक्के मताधार के सहारे अपनी नैया पार लगाने में सफल हो जाएँगे।

लेकिन नवंबर 2010 के परिणामों पर पुन: दृष्टि डालें, तो साफ हो जाता है कि नीतीश अभी भी दोषमुक्ति की भावना जतला सकते थे। इतना भारी-भरकम जनादेश सिर्फ किसी जातिगत वोट का परिणाम नहीं हो सकता था; वह तो था ही, पर उससे भी कुछ अधिक था। उन्होंने अपने पहले पाँच वर्ष के कार्यकाल के दौरान लालू युग की तुलना में बहुत बेहतर काम किया था, जो सबको दिखाई देता था, बिहार उस प्रगति, उस तेजी को खोना नहीं चाहता था, बिहार ने उस प्रगति को जारी रखने के लिए जनादेश दिया था।

''मैं समझता हूँ, मैंने कई माह पहले आपको संकेत दिया था कि मैं चाहता हूँ कि लोग जाति भावना से ऊपर उठकर मतदान करें,'' उन्होंने अंतिम संख्या प्राप्त होते ही कहा। वह पहली मंजिल पर अपने कार्यालय में बुद्ध की प्रतिमाओं एवं पुरस्कार में प्राप्त ट्राफियोंवाले आले के निकट बैठे थे और उनकी मुसकुराहट रुक नहीं रही थी। किसी ने लॉन में खुशी के पटाखे छोड़े, और नीतीश उन जश्न मनानेवालों को रोकने के लिए तुरंत उठकर बाहर गए। ''मेरे घर में नहीं, बिलकुल नहीं,'' वह सहायकों की तरफ चिल्लाए, ''खुशी जरूर मनाओ लेकिन इन जनादेश की भारी जिम्मेदारी को भी समझो। यह उपहार में मिला एक भार है।'' लेकिन वह धूम-धड़ाका और शोरगुल इसलिए भी नहीं चाहते थे , क्योंकि उनकी माँ 1, अणे मार्ग की ऊपरी मंजिल पर बीमार पड़ी हुई थीं। परमेश्वरी देवी बीमारी से कभी उठ नहीं पाईं। उनको निमोनिया ने जकड़ लिया और आनेवाले वर्ष के पहले दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

उस दोपहर नीतीश के निजी निवास में प्रवेश करने से लोगों के रेले को रोकना संभव नहीं था। उनका ताँता लगा रहा। वे एक दरवाजे से प्रवेश करते, नीतीश उनका आभार स्वीकार करते और फिर वे दूसरे दरवाजे से निकल जाते। ''आज थोड़ा रिलैक्स होने दीजिए अपना ऐंट्री-एक्जिट रूल सब,'' नीतीश ने अपने मददगारों से कहा,

''लोगों की जीत का दिन है...'' उसी जोश भरे माहौल के बीच, नीतीश ने मुझे दीवार के सहारे सोफे पर बैठे छोटे कद के एक गंजे आदमी की ओर इशारा किया, जिसकी आँखें कंदाकार दूधिया पत्थर जैसी थीं। ''इनसे मिले कि नहीं आप? रामचंद्र बाबू...'' उस आदमी ने, कमरे में मौजूद अनेक अन्य लोगों के विपरीत खादी का सफेद कुरता-पजामा पहन रखा हुआ था, और जब वह हँसता था, उसके ऊपरी मोटे जबड़े की दंत-पंक्ति दिखाई देतीथी।

❑

9

उपयोगी व्यक्ति

मिस्त्री अथवा रहस्यमय आदमी—दोनों लागू होते हैं। कोई आदमी है जिस पर नीतीश कुमार भरोसा करते हैं और जो नीतीश का हर काम कर देता या करा देता है। वह अपना काम परदे के पीछे रहकर करता है, उसका हाथ, या उसका चेहरा भी सामने नहीं आता है।

'रामचंद्र बाबू' बहुत कम लोग परिचित हैं इस नाम से। दूसरी ओर, 'आर.सी.पी.' कहते ही बिहार की किसी अत्यंत दुर्धर्ष चालक एवं शक्ति की कल्पना मन में कौंध जाती है, किंतु गिने-चुने लोग ही होंगे जो आर.सी.पी. की कल्पना किसी हाड़-मांस के व्यक्ति के रूप में कर सकते हैं। रामचंद्र बाबू नाम के व्यक्ति से परिचित कराए जाने के काफी देर बाद, और 1, अणे मार्ग में विजयोत्सव से चले आने के भी बहुत देर बाद मेरे दिमाग में एक ही जैसे दो चित्र कौंधने लगे जो बार-बार एक-दूसरे को ढक लेते थे। वह आदमी, जिसे रामचंद्र बाबू कहा जाता है, जिसकी आँखें कंदाकार दूधिया पत्थर जैसी हैं और हँसते हुए जिसका बीड़र दाँतवाला बड़ा जबड़ा दिखाई देता है, और कोई नहीं बल्कि आर.सी.पी. है, वही आर.सी.पी. जिसका नाम लिये बिना बिहार की अदालत में बातचीत कभी पूरी नहीं होती है।

उसने अनेक वर्तमान वार्त्तालापों में प्रेततुल्य तृतीय पक्ष के रूप में प्रवेश किया था; वह प्रचुर मात्रा में अखबार की सियाही खा चुका था लेकिन ऐसा कोई अशेष नहीं छोड़ा, जिससे पता चले कि वह वास्तव में है कौन, या क्या करता है या किसका प्रतिनिधित्व करता है; बहुधा उसका उदाहरण और हवाला दिया गया, कभी इस या कभी उस बात के लिए उसकी खुलकर प्रशंसा की गई और दोष दिया गया। उसने कभी खंडन जारी नहीं किया, कभी पुष्टि भी नहीं की। वह कभी किसी के पक्ष में नहीं बोलता था, उसने कभी वक्तव्य जारी नहीं कि ए। किसी तथ्यपरक अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए वह अपने कल्पना आधारित विचारों को सहज रूप में प्रस्तुत करता था।

लेकिन उसके साक्षात् दर्शन करना ऐसा था जैसे आकाश से अवतरित किसी देहधारी को सामने पाया हो, आर.सी.पी. यानी रामचंद्र बाबू, अर्थात् रामचंद्र प्रसाद सिंह, भूतपूर्व आई.ए.एस. अधिकारी, वर्तमान जे.डी.यू. की ओर से राज्य सदस्य, किंतु दोनों सूरतों में एक ही व्यक्ति : नीतीश कुमार जिस पर सबसे अधिक विश्वास करते हैं।

नीतीश के मन की हर बात आर.सी.पी. को पता होती है, लेकिन वह कभी कुछ बताएगा नहीं।

जून 2013 में नीतीश ने एन.डी.ए. का साथ छोड़ा, उसके घंटों पहले ही एस्किमो लोगों तक को पता लग गया था, लेकिन मैंने पत्रकार की हैसियत से यही सवाल उससे पूछा, 'क्या हो रहा है?' तो आर.सी.पी. ने जवाब दिया, ''पता नहीं, क्या डिसाइड हुआ, साहेब ही बताएँगे...'' इसी कारण आर.सी.पी. जिस जगह है वहीं है और वह जो है: शायद वही एकमात्र व्यक्ति है, जो जिस समय नीतीश अपने एकांत में कुछ चबा रहे होते हैं (अर्थात् चिंतन में डूबे हुए होते हैं) उस जुगाली को पढ़ सकता है।

नीतीश का 'ओमर्त पुरुष' होना कोई संयोग की बात नहीं है—'मेरे कान पूरी तरह सतर्क हैं और मेरे होंठ सिले हुए हैं'—उनके अपने क्षेत्र नालंदा की प्रसिद्ध कहावत है। कोई यह भी नहीं जानता था कि वह कुर्मी हैं। इस प्रकार आर.सी.पी. का ध्यान पहली बार नीतीश की तरफ गया और वह धीरे-धीरे उनका मुरीद हो गया। आर.सी.पी. जब पटना कॉलेज में इतिहास में बी.ए. ऑनर्स के अंतिम वर्ष में था, उस समय तक नीतीश अपने दो चुनाव हार चुके थे, लेकिन उन दिनों के युवा राजनेताओं में उनकी एक प्रतिष्ठा थी और वह उन सबसे अलग थे। उन्होंने अपने ही

निर्वाचन क्षेत्र में दो बार चुनाव हार जाने की कीमत पर भी बेलची के दलित पीड़ितों का पक्ष लिया। उन्होंने दहेज स्वीकार करने पर अपने पिता को भी नहीं छोड़ा और तब तक उनसे बात नहीं की, जब तक दहेज की रकम लौटा नहीं दी गई। युवा आर.सी.पी. पर उन्होंने एक छाप छोड़ी थी, और यह छाप या प्रभाव उससे भिन्न नहीं था जो उन्होंने अपने सीतायन के व्यवसायी-हितकारी विनय कुमार के मन पर छोड़ा था और जिसे वह एक कल्चर्ड, पढ़ा-लिखा कुर्मी कहते थे।

युवा आर.सी.पी. ने राजनीति में कतई रुचि न होने का बहाना किया। ''रामचंद्र पढ़ाई करने कॉलेज आया था और उसने पढ़ाई की,'' उसके एक महत्त्वपूर्ण सहपाठी ने मुझे बताया, ''उसके पिता ने उसे शिक्षित करने के लिए मेहनत की थी और वह इस बात का अत्यधिक सम्मान करता था।'' वह कोई किताबी-कीड़ा या दिमाग चाटनेवाला नहीं था, फिर भी वह सिनेमा टिकटों के बजाय अनुशिक्षण-कक्षाओं में जाना और प्रतियोगिता परीक्षण संबंधी पुस्तकें खरीदना अधिक पसंद करता था। इससे पहले कि उसके अपने बैच के बी.ए. के नतीजे निकलते, उसने यू.पी.एस.सी. परीक्षा में सफल होकर अपने सहपाठियों को चौंका दिया, हालाँकि, पटना यूनिवर्सिटी तब तक बहुत फिसड्डी मानी जाने लगी थी और तीन साल के पाठ्यक्रम को पूरा करने में पाँच या छह साल लग जाना कोई असामान्य बात नहीं थी।

परंतु, उसकी कामयाबी का जश्न मनाए जाने के बावजूद रामचंद्र अपने-आपसे खुश नहीं था; उसका चयन भारतीय राजस्व सेवा (आई.आर.एस.) के लिए हुआ था। उसने जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए दाखिला ले लिया तथा एक और प्रयास के लिए तैयारी करने लगा। दो वर्ष बाद उसने आई.ए.एस. परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उसे उत्तर प्रदेश काडर मिला तथा उसे एक अत्यंत संवेदनशील राजनीतिक क्षेत्र—सुल्तानपुर-अमेठी में काम सीखने और अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया गया। यह सन् 1984 की बात है, जिस वर्ष अचानक कोई आकाशवाणी हुई और वंश-वृद्धि का बीज अंकुरित हुआ। इंदिरा गांधी की हत्या हो चुकी थी और राजीव गांधी को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया गया था। फिर राजीव गांधी ने चुनाव लड़ा और भारतीय इतिहास में उन्होंने एकतरफा भारी सफलता प्राप्त की। राजीव गांधी ने कंप्यूटर में सिद्धहस्त व्यक्तियों—विश्वजीत पृथ्वीजीत सिंह, सुमन दुबे, अरुण नेहरू, अरुण सिंह, कैप्टन सतीश शर्मा—को लेकर जो एक नया गुट बनाया था, उसके अधीन एक परिवीक्षार्थी के रूप में काम करते हुए, आर.सी.पी. ने मतदान-पूर्व निर्वाचन क्षेत्र का नक्शा बनाने की कला का प्रत्यक्ष-ज्ञान प्राप्त किया, जैसे कि जनांकिकी, अर्थात् जन्म-मृत्यु के आँकड़ों के आधार पर चुनाव-क्षेत्र का ढाँचा तैयार करना, जाति की सघनता दिखलाना, सामाजिक-आर्थिक आँकड़े संचित करना, मानव और संसाधनों को प्रशिक्षण की व्यावहारिक आवश्यकतानुसार व्यवस्थित करना। उस समय आर.सी.पी. ने तनिक भी कल्पना नहीं की थी कि ऐसे ही प्रयास का नेतृत्व करने के लिए एक दिन उसे अपने राज्य से बुलावा आएगा।

इस युवा अधिकारी ने उत्तर प्रदेश में बाराबंकी, फतेहपुर, हमीरपुर, कानपुर, रामपुर, जिलों का अधिकारिक दौरा किया। सन् 1990 में वह लखनऊ में संयुक्त सचिव (नियुक्ति) के पद पर काम कर रहा था जब नीतीश कुमार वहाँ कृ षि मंत्रालय से संबद्ध एक जूनियर केंद्रीय मंत्री से मिलने आए हुए थे। आर.सी.पी. नालंदा के अपने कुटुंबी से मिलने के लिए बहुत समय से उत्सुक था; उसने दो-चार फोन किए और मंत्री के व्यस्त सरकारी कार्यक्रम के बीच पाँच मिनट का समय ले लिया। उस मुलाकात में तत्काल कोई विशेष बात नहीं हुई। आर.सी.पी. को सिर्फ इस बात की खुशी थी कि उस व्यक्ति से भेंट हो गई जिसका वह हमेशा से प्रशंसक रहा है; नीतीश ने एक मतदाता का विनय स्वीकार कर लिया। वे अपनी-अपनी राह चल पड़े, नीतीश अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने की दिशा में, आर.सी.पी. नौकरी में। उस समय आर.सी.पी. के राजनीतिक उस्तादों में उत्तर प्रदेश का सबसे प्रतिष्ठित कुर्मी नेता

बेनी प्रसाद वर्मा था।

जब यूनाइटेड फ्रंट (यू.एफ.) की अल्पजीवी सरकारें सन् 1997 और 1999 के बीच नई दिल्ली में सत्ता में आईं, बेनी प्रसाद वर्मा ने आर.सी.पी. को संचार मंत्रालय में अपना प्रमुख सहायक बनने के लिए बुला लिया। यही समय था जब आर.सी.पी. ने नीतीश के साथ पुन: संपर्क स्थापित कि या, नीतीश तब नालंदा से लोकसभा के सदस्य थे। इस अवधि के दौरान, दोनों ने मिलकर, अपने गृह जिले में टेलीफोन के जाल का त्वरित विस्तार किया। नीतीश जब सन् 2000 में वाजपेयी सरकार में स्वयं रेल मंत्री बने, उन्होंने आर.सी.पी. को अपना निजी सहायक बनने के लिए बुला लिया। लेकिन सन् 2004 और 2005 के बीच उस थोड़े समय को छोड़कर, जब दिल्ली में वाजपेयी की कुरसी कांग्रेस के पास चली गई और नीतीश ने बिहार में लालू की कुरसी छीन ली, आर.सी.पी. ने कभी साहेब का साथ नहीं छोड़ा। जब नीतीश सन् 2005 में मुख्यमंत्री बने, उन्होंने आर.सी.पी. को दो वर्ष की प्रतिनियुक्ति पर बिहार बुला लिया, ताकि वह उनका निजी सचिव बन सके। सन् 2007 में दो साल की प्रतिनियुक्ति का समय समाप्त हो जाने पर, नीतीश ने आर.सी.पी. की प्रतिनियुक्ति का समय और बढ़ाने के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया, हालाँकि उधर यू.पी.ए. में रेल मंत्री बैठा लालू यादव इस कोशिश को निष्फल करने में दिल्ली में पूरा जोर लगा रहा था। लालू नहीं चाहता था कि आर.सी.पी. को बिहार में रहने का और समय दिया जाए। नीतीश सीधे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के पास चले गए और किसी तरह अपना काम करा लाए। नीतीश ने किसी को भी ऐसी आवश्यकता के लिए कभी धोखा नहीं दिया है।

नीतीश और आर.सी.पी. एक बार एक-दूसरे से रुष्ट हुए। सन् 2009 के लोकसभा चुनावों के लिए आर.सी.पी. नालंदा से टिकट मिलने की आशा में आए हुए थे। नीतीश ने उपकृत नहीं किया। नीतीश ने बाद में अकेले में बातचीत के दौरान बताया कि रामचंद्र बाबू की उन्हें बिहार को बहुत जरूरत थी और ऐसी परिस्थितियों में उसे लोकसभा में भेजना बिहार के पक्ष में उचित नहीं होता। लेकिन आर.सी.पी. बहुत अधिक नाराज था। वह अभी भी एक आई.ए.एस. अफसर था, बिहार के मुख्यमंत्री के निजी सचिव की हैसियत से काम किया था, उसने कुछ समय के लिए काम पर आना बंद कर दिया। नीतीश ने उसका गुस्सा शांत करने तथा उसे मनाने के लिए दूत भेजे, राजनीतिक दूत भेजे, शिवानंद तिवारी जैसे वरिष्ठ नेता को भेजा। उन्होंने तर्क किया, वादे किए, आर.सी.पी. लौट आया अपनी जगह पर, और भी अधिक सुरक्षित महसूस करते हुए। सन् 2010 में जब अधिकारी के रूप में सेवा करने और नीतीश की सेवा करने के बीच अंतर्विरोध को सहना असंभव हो गया, आर.सी.पी. ने आई.ए.एस. से अवधिपूर्ण सेवानिवृत्ति (प्रीमेच्योर रिटायरमेंट) लेना ही उचित समझा। इसके साथ ही उसे पुरस्कार में राज्यसभा सीट मिल गई।

आर.सी.पी. ने यह पुरस्कार यूँ ही नहीं पाया था, उसने अपरिमित निष्ठा और अथक परिश्रम से इसे अर्जित किया था, नीतीश को दिखा दिया था कि काम करने की धुन उस पर भी उसी तरह सवार है। अपने साहेब की किताब में उसने सारी परीक्षाएँ पहले ही पास कर ली थीं। नीतीश ने जब उसे रेल भवन में अपना निजी सचिव बनने के लिए बुलाया, आर.सी.पी. का पहला काम था रेलवे बोर्ड में तथ्यों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना। 18-18 घंटे की ब्रीफिंग (तथ्य-प्रस्तुति) होती थी, एक-एक दिन, दस दिनों तक। रेलमंत्री के रूप में, नीतीश कभी भी किसी भी समय सवाल पूछ लेते और तत्काल जवाब चाहते। गुरुवार को संसद् में उन्हें प्रश्नों के उत्तर देने होते थे, नीतीश की सख्त हिदायत थी कि उस दौरान ऐसा कोई अवसर उत्पन्न नहीं होना चाहिए कि अधिकारी दीर्घा से कोई परची उनके पास पहुँचाने की आवश्यकता पड़े, कोई भी प्रश्न अनुचित नहीं जाना चाहिए। संसद् का सत्र चलते, बुधवार की रातें आर.सी.पी. और नीतीश के लिए अनिद्रा की रातें होती थीं, और गुरुवार की सुबह से उनका अत्यधिक

व्यस्त दिन शुरू हो जाता था। ''नीतीश को खुश करना मुश्किल काम है,'' आर.सी.पी. ने दिल्ली में संसद् भवन के निकट अपने फ्लैट में एक लंबी भेंटवार्त्ता के दौरान मुझे बताया, ''काँटा हमेशा फँसा रहता है'। क्या मुझे बताना होगा कि उनका सुस्ताने का क्या तरीका है? कुछ-न-कुछ ऐसा खोज लेना उनकी आदत है जिस पर वह विचारों की कवायद कर सकें—कोई नीति, कोई कोताही, कोई त्रुटि, कोई राजनीतिक संकट। बिहार में खीझ, झल्लाहट निकालने के लिए समस्याओं की कभी कमी नहीं रहती है। वह यही करते हैं, दोस्तों के साथ बैठे हों तब भी, वह समस्याओं की खोज में रहते हैं, कोई मुद्‌दा चाहिए। फिर वह उसके पक्ष-विपक्ष में चर्चा आरंभ कर देंगे। जागने से लेकर बिस्तर पर जाने तक उनका समय इसी तरह बीतता है। मुझे याद है, एक बार उनके पास चिंता करने के लिए कोई विशेष विषय नहीं था। तब वह रेल मंत्री थे, उन्होंने रात में मुझे बुलाया। वह चर्चा करना चाहते थे कि रेल विभाग की अधिकायु या अवस्थातीत परिसंपत्तियों का क्या किया जाए और उन्होंने मुझसे यह जानना चाहा कि इस बात को हिंदी में किस जरह कहा जा सकता है। बहुत रात हो चुकी थी और उन्हें 'Overaged assets' के लिए हिंदी शब्द न मिलने से बेचैनी हो रही थी। हमें दिमाग लड़ाने में एक घंटे से भी ज्यादा समय लग गया। अंतत: हमने 'गतायुपड़ी संपत्ति' पर समझौता कर लिया। तत्पश्चात्, मैं सोने के लिए गया।''

आर.सी.पी. को खुद भी हर समय सोचने-चिंता करने की खुजली होती रहती है। एक बार हमें दिल्ली हवाई अड्डे पर पटना जानेवाली फ्लाइट के लिए कई घंटों तक इंतजार करना पड़ा। इस दौरान वह सारे समय बिहार में चकबंदी की तुरंत आवश्यकता के बारे में ही बोलता रहा। उसने बताया कि एक सुबह वह और नीतीश कार द्‌वारा गया से पटना वापस आ रहे थे। संभवत: यह सन् 2008 का जाड़े का मौसम था, लेकिन उसे ठीक से याद नहीं—हाँ, इतना अवश्य याद है कि रास्ते में उन्हें एक जगह विशेष रूप से बड़ी घनी हरियाली देखने को मिली। नीतीश ने रुकने के लिए कहा और वे दोनों टहलते हुए खेतों के बीच चले गए। क्यारियों में बड़े खूबसूरत फूलगोभी लगे हुए थे। फूलगोभी के झुरमुट के बीच से हरे चने के कल्ले फूट निकले थे, जिसे वे स्थानीय बोली में 'बूट' या 'झँगरी' कहते हैं। सूई के सिरे के बराबर भी धरती कहीं नजर नहीं आ रही थी। फिलहाल, खेतों में काम कर रहे कुछ मजदूर इकट्‌ठा हो गए। उन्होंने राजमार्ग पर चमकती गाड़ियों के काफिले को रुकते देख लिया था। गाड़ियों को सुरक्षाकर्मियों ने घेरा हुआ था, सफेद खादी-वस्त्र पहने दो आदमी बाहर निकले थे और खेतों की तरफ चले आए। उन लोगों को उत्सुकता हुई, शायद कुछ-कुछ डरे हुए भी थे। नेता लोग? विपत्ति?

नीतीश जानना चाहते थे कि फूलगोभी की फसल किसने लगाई है। एक अधेड़ उम्र का आदमी आगे आया। नाम था—राम प्रवेश महतो, ग्राम दोभी। नीतीश ने उसके अत्यधिक भरे-पूरे खेतों के बारे में कुछ कहा तो महतो बोला, ''इससे बहुत अच्छा होता, रिकॉर्ड बनाते, लेकिन जमीन ही इतना छोटा-छोटा है थोड़ा यहाँ, थोड़ा वहाँ, टूट गया है, कोई कुछ रोपता है, कोई कुछ।...'' वह जब गाड़ी में वापस आए, नीतीश ने पदाधिकारियों को बुलाया और जमीन के ब्योरेवार रिकॉर्ड माँगे तथा उनसे चकबंदी के बारे में सुझाव देने के लिए भी कहा। इससे उत्पादन में क्रांति आ जाएगी, उन्होंने आर.सी.पी. से कहा, ''हमें यह करने का कोई उपाय निकालना चाहिए।''

दोनों व्यक्ति थोड़ी-बहुत कृषि-संपन्न परिवारों से थे, वे समझ रहे थे कि दोभी गाँव का राम प्रवेश महतो क्या कहना चाह रहा है। पीढ़ियों से जोत-भूमि का पारिवारिक सदस्यों के बीच विभाजन होते रहने से प्रत्येक खेत से हर घर की आय कम होने लगी थी। मैंने आर.सी.पी. से भूमि सुधारों के विषय में पूछा, नीतीश ने कुछ समय पहले ही जिस बर्रे के छत्ते का जिक्र किया था। वह हँसकर अपने बोर्डिंग कार्ड को दुबारा देखने लगा, मानो इस सवाल का जवाब उस पर लिखा हो। ''जमीन एक बहुत बड़ा और नाजुक मामला है,'' उसने कहा, ''बीसियों वर्षों से कुछ नहीं किया गया है, लेकिन हमें करना चाहिए। चकबंदी से शुरू होने दीजिए...साहेब के दिमाग में कुछ-कुछ है...''

आर.सी.पी. उस विजयोत्सव में भाग लेने के लिए पटना लौट रहा था जिसमें उसका भी योगदान रहा था। सन् 2011 की बात है। जे.डी.यू. ने हाल ही में लौकहा से विधानसभा का चुनाव जीता था, जो एक दूरवर्ती उत्तर बिहार की सीट है। यह कोई बड़ी जीत नहीं थी, लेकिन संदेश बड़ा था। लौकहा की जीत नीतीश खेमे के लिए यह पक्का सबूत लेकर आई थी कि मुसलिम वोट अब लालू यादव का साथ छोड़कर उनकी तरफ आने लगा है, छोटे-छोटे टुकड़ों में नहीं, बल्कि समूचे खंड के रूप में। जे.डी.यू. नेताओं को भली-भाँति पता था कि वे किस खंड की बात कर रहे हैं—पसमांदा अथवा पिछड़े मुसलमान, जिनकी स्थिति सुधारने की दिशा में वे काम कर रहे थे। बिहार की चुनावी राजनीति में यह एक नई अद्‌भुत घटना थी, मुसलमानों में फिरकापरस्ती पैदा करना अर्थात् जातिगत दीवार खड़ी करना, अल्पसंख्यक मत का नकली मंडलीक रण। पत्रकार से राजनीतिज्ञ बना अली अनवर पसमांदाओं के लिए जे.डी.यू. की रणनीति का सार्वजनिक चेहरा था, लेकिन इसका विचार संभवत: आर.सी.पी. की बहुत समय पहले की स्मृतियों से उपजा था जब वह उत्तर प्रदेश में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत थे।

आर.सी.पी. को कुछ समय के लिए, रामपुर के कलेक्टर के रूप में तैनात किया गया था; रामपुर समाजवादी पार्टी के स्वच्छंद नेता आजम खान और कांग्रेस की नूर बेगम के नेतृत्व में नवाबों के प्रतिद्‌वंद्‌वी खानदान का घर है। आर.सी.पी. क ो वहाँ रहते हमेशा कड़ी रस्सा-कशी का सामना करना पड़ता था। एक सुबह स्थानीय मुसलमानों का एक बड़ा जत्था उसके दफ्तर के चारों ओर जमा हो गया और आर.सी.पी. के दिमाग में सबसे पहले सामुदायिक हिंसा भड़कने की आशंका उत्पन्न हुई। किंतु जल्दी ही उसे पता चल गया कि उसकी आशंका गलत है। ये मुसलमान दूसरे मुसलमानों, कामगार-कारीगरों की सैयद-पठानों के खिलाफ उद्‌दंडता का विरोध कर रहे थे। स्थानीय चुनाव करीब थे और यह गुट आजम खान के खिलाफ शिकायत करने आया था—सैयद-पठान हमारे उम्मीदवार को प्रचार नहीं करने दे रहे हैं, वे हमें धमका रहे हैं, हिंसा और सामाजिक बहिष्कार जैसी धमकियों का इस्तेमाल कर रहे हैं, कृपया कुछ करें। आर.सी.पी. को मुसलिम समाज में परतदार स्तरीयकरण की जानकारी थी लेकिन यह पहली बार था कि मुसलिम समाज में राजनैतिक ध्रुवीकरण को अपनी आँखों से देख रहा था।

इसके कुछ ही समय पश्चात् सन् 2005 में नीतीश के हाथों में बिहार की सत्ता आ गई, आर.सी.पी. ने यह खोज करना शुरू कर दिया कि क्या इसी प्रकार की गुटबाजी बिहार में भी मौजूद है। पसमांदा राजनीति—केंद्रित प्रोत्साहनों के साथ प्रलोभन—का बीज तभी पड़ गया। विधानसभा के दो उपचुनावों में मिली जीत से नीतीश को पक्का विश्वास हो गया कि उनकी रणनीति निशाने पर ठीक बैठी है: लौकहा और इसके इसके कुछ माह पहले सारण में दरोंधा उप-चुनाव। दरोंधा के उप-चुनाव के दौरान लालू की आर.जे.डी. के शहाबुद्‌दीन ने जेल में रहते मुसलमानों को फतवा जारी किया था कि वे नीतीश को वोट न दें। राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी कैंपस स्थापित करने के प्रस्ताव को लेकर भड़की हिंसा में कई मुसलमान मारे गए थे। नीतीश ने सिताबदियारा में जे.पी. के जन्मस्थान से एल.के. आडवाणी की भ्रष्टाचार-विरोधी यात्रा को हरी झंडी दिखा कर रवाना किया था। मुसलमानों में आक्रोश था। दरोंधा की सीट जे.डी.यू. को नहीं मिलती अगर अल्पसंख्यकों ने उसके खिलाफ वोट डाला होता। लेकिन पार्टी को इतने काफी मुसलिम वोट विभाजित करने में कामयाबी मिली कि जीत पक्की हो जाए; पसमांदा मुसलमान जे.डी.यू. के साथ बने रहे। लौकहा की लड़ाई शायद कुछ अधिक मुश्किल थी। लालू ने एक नामी-गिरामी स्थानीय मुसलिम को चुनाव में उतारा था। कांग्रेस ने एक यादव को उम्मीदवार बनाया था, एक स्थानीय दलित निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रहा था। नीतीश का प्रत्याशी राजनीति के मैदान में एक नौसिखिया था, मृतक पदधारक का पुत्र, एक बनिया या व्यापारी, जिसका अपना कोई मतदाता-वर्ग नहीं था। लौकहा की कुछ आबादी में 20 प्रतिशत मुसलमान थे, और उनका समर्थन पाना अत्यावश्यक था। लौकहा के

मुसलमान अधिकतर पसमांदा मुसलमान थे। उन्होंने नीतीश के आदमी को वोट दिया।

पटना के लिए उड़ान पकड़ने की तैयारी करते-करते भी, आर.सी.पी. ने यह बता कर ही दम लिया कि लौकहा की विजय का जश्न मनाना क्यों महत्त्व रखता है। लौकहा के अंदरूनी इलाके में कहीं इखता नाम का एक गाँव है। इस गाँव में 6,000 मुसलिम वोट थे। उनमें से 70 प्रतिशत वोट, यानी लगभग सभी पसमांदा मुसलमानों के वोट जे.डी.यू. को मिले, जबकि पिछले चुनाव में, आर.सी.पी. के अनुसार, इखता से केवल 110 वोट जे.डी.यू. को मिले थे। ''इस प्रकार का अतिक्रमण हमने किया है, इसे आप एक मिसाल के तौर पर ले सकते हैं।'' वह हँसा और अपनी सीट पर बैठ गया।

इस बात की जाँच करने का तो शायद कोई उपाय नहीं है कि यह सच है या सिर्फ एक अलौकिक अथवा चमत्कारिक वातावरण जो प्राय: प्रभावशाली व्यक्तियों के चारों और घेरा बनाए रहता है, लेकिन आर.सी.पी. वह व्यक्ति है जो बिहार के अधिकतर निर्वाचन-क्षेत्रों से संबंधित जनांकिकी के सही आँकड़े कभी भी निकालकर पेश कर सकता है। पक्के तौर पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चुनाव प्रबंध के मामले में नीतीश किसी दूसरे पर विश्वास नहीं करते हैं। प्रत्याशियों का सवाल हो या धन-राशि से लेकर चुनाव प्रचार हेतु कार्मिकों को जुटाने तथा प्रत्येक सीट की विशिष्ट माँग के मुताबिक सामग्री की व्यवस्था करने का, आर.सी.पी. अकेले ही सब-कुछ सँभाल लेता है, प्राय: उस छोटे से खिलौने के जारिए जिसे मोबाइल फोन कहते हैं—यह उपकरण सूचना देने-लेने का काम करता है, कैलकुलेटर का काम करता है और परिसंचरण भी करता है। जे.डी.यू. के एक-एक प्रत्याशी की स्थिति के बारे में आर.सी.पी. को सबकुछ विस्तार से पता रहता है। सन् 2010 के विधानसभा चुनाव प्रचार के दौरान, वह 1, अणे मार्ग के पश्च-कक्ष में बैठा रोजाना करीब 500 कॉलें करता था। उसकी उँगलियाँ मोबाइल फोन पर बराबर चलती रहती थीं, पल-पल की खबर रखने और यह जानने के लिए कि कहाँ किस चीज की जरूरत है—पोस्टर, गाड़ियाँ, स्वयंसेवक, किसी वोट-बैंक विशेष अर्थात् मतदाता समूह को रिझाने के लिए किसी नेता विशेष की आवश्यक मौजूदगी, किसी ऐसे नेता को वहाँ से हटाना जो काम बनाने की बजाय काम बिगाड़ रहा हो। कहा जाता है कि उसने अधिकारी-तंत्र का सदैव 'उचित माध्यम' से आदेश लेकर उचित उपयोग किया, कभी भी लक्ष्मण-रेखा नहीं लाँघी। आर.सी.पी. जानता है कि 'उचित माध्यम' किस प्रकार काम करते हैं। वह काम कराना जानता है और कभी भी कोई पदचिह्न पीछे नहीं छोड़ता है।

नीतीश जब भी लोगों के सामने जाते हैं; आर.सी.पी. को बिरले ही साथ लेकर जाते हैं। न तो अनेक यात्राओं के दौरान उसे अपने साथ ले गए, न चुनावों के दौरान। आर.सी.पी. पीछे मुख्यालय की देखभाल करता है। नीतीश जब पटना में होते हैं आर.सी.पी. वस्तुत: 1, अणे मार्ग के बाहर रहता है, हालाँकि उसे पास में ही एक बँगला मिला हुआ है जहाँ उसकी पत्नी और दो बेटियाँ उसकी अंतहीन प्रतीक्षा करती रहती हैं। अपने मालिक के विपरीत आर.सी.पी. को भेड़-बकरी का मांस खाने का बहुत अधिक शौक है; उसकी पत्नी बढ़िया खाना पकाने के लिए प्रसिद्ध है। कोई भी अनुमान लगा सकता है कि आर.सी.पी. को कब-कब अपने परिवार के साथ भोजन करने का मौका मिलता है, कब-कब उसकी पत्नी अपने पति को उसकी पसंद का गरम खाना खिला पाती है।

आर.सी.पी. 1, अणे मार्ग की दीवारों के पीछे एक और महत्त्वपूर्ण काम करता है: निशांत की देख-भाल करना; नीतीश के एकांतप्रिय तैतीस वर्षीय बेटे निशांत की देखभाल।

निशांत एक विकट पहेली है, उसे समझ पाना अकसर उसके पिता के लिए भी उलझन बन जाता है; इसका कारण शायद यह हो सकता है कि उसके लड़कपन के दौरान या जब वह बालिग हो रहा था उस दौरान पिता उसे कदाचित् ही देखने आता था। ऐसा लगता है कि एक विरक्त माँ और एक गैर-हाजिर पिता के बीच बड़े होते-होते

निशांत के अंदर कुछ इस कदर टूट गया जिसकी मरम्मत नहीं की जा सकती। निशांत ने बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा (जो अब झारखंड में है) में इंजीनियरिंग की पढ़ाई की। परंतु उसने पढ़ाई सिर्फ इसलिए की क्योंकि कुछ-न-कुछ करना जरूरी था; वैसे उसके अंदर कोई जोश नहीं था, कुछ भी करने की आकांक्षा नहीं थी, अपने पिता के विपरीत स्वभाव पाया है उसने। निशांत ने कभी काम नहीं किया है। जब से उसके पिता बिहार के मुख्यमंत्री बने हैं। उसने अपना अधिकतर समय मौन रहकर बिताया है 1, अणे मार्ग के उस भाग में रहते हुए, जहाँ कोई आता-जाता नहीं है। उसके लिए यह बात संतुष्टि देनेवाली हो सकती है कि नीतीश विगत इतने वर्षों से अपने इकलौते पुत्र को अपने साथ रखे हुए हैं, लेकिन निशांत की परिस्थितियाँ भी पीड़ा की एक गहरी गाँठ बनकर बैठ गई हैं जिसके बारे में नीतीश ने खुलेआम कभी कुछ नहीं कहा है। कभी दिल्ली, कभी किन्हीं अधिक शांत स्थानों पर। आर.सी.पी. उस निराशाजनक तनाव को कुछ कम करने का प्रयास करता है। उसने नीतीश के साथ एक समीकरण बना लिया है। वे कभी-कभी अवकाश पर चले जाते हैं, आर.सी.पी. कभी इशारे से भी कुछ नहीं बतलाता है। अपने इसी गुण के कारण तो आर.सी.पी.है, बिहार की सत्ता के रनिवास का रखवाला।

आर.सी.पी. ने दिल्ली में अपने फ्लैट में बैठे हुए दो घंटे की इस भेंटवार्त्ता के दौरान सात बार मुझसे क्षमा माँगी। हर बार वह एक ही व्यक्ति, अर्थात् साहेब के लिए उठकर गया। मैंने कभी नहीं पूछा, लेकिन अगर मैंने पूछा भी होता, तब भी उसने मुझे कभी नहीं बताया होता कि वे फोन पर कॉल किस विषय में थे। मैंने उससे यह अवश्य पूछा कि उसमें ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण बिहार के मुख्यमंत्री के चारों ओर सदैव एक ही आदमी घेरा डाले रहता है, उन अनेक लोगों की प्रचंड ईर्ष्या की परवाह न करते हुए जो नीतीश कुमार के अंतरंग मंडल का हिस्सा बनने की हसरत रखते थे, किंतु जिन्हें नजदीक नहीं फटकने दिया गया? ऐसा क्यों है कि नीतीश ने जिन दोस्तों और साथी यात्रियों के साथ अपना राजनीतिक जीवन व्यतीत किया है, उन सबको छोड़कर नीतीश ने एक ऐसे अधिकारी को अपना पूर्ण विश्वासभाजन बनाया जिसे वह केवल पाँच वर्ष से जानते थे? आर.सी.पी. हँस दिया, अपना चौड़ा जबड़ा और टूटे दाँत दिखाते हुए, फिर उसने जबाव दिया, ''अब यह तो साहेब ही बताएँगे।...''

❑

10

बाबूजी धीरे चलना

आर.सी.पी. और दो-चार अन्य लोगों के कारण जे.डी.यू. खेमे के अंदर रोष उत्पन्न हो जाता है। अकसर इस विषय को लेकर गुस्सा भड़क उठता है कि जिस व्यक्ति की कोई राजनीतिक वचनबद्धता नहीं रही है, जिसने बिहार में राजनीतिक क्षेत्र में कभी कोई काम नहीं किया है, और अपना अधिकांश वयस्क जीवन उत्तर प्रदेश में राजनीतिज्ञों की जी-हुजूरी बजाने में व्यतीत किया है, वह व्यक्ति किस जरह चोरी-छिपे पिछले पंजों के बल चलकर बिहार के अंतरंग राजनीतिक दरबार में घुस आया और यहाँ के सभी महत्त्वाकांक्षी लोगों से नजर चुराकर आगे निकल गया? नीतीश ने एक नौकरशाह में ऐसा क्या देखा, वह क्या बेहतर कर सकता है?

नीतीश के अनेक बहुत पुराने-पुराने राजनीतिक सहयोगी हैं जो बहुत पहले अपना महत्त्व खो चुके हैं और नीतीश जिनके साथ अब कोई संपर्क या संबंध नहीं रखते हैं, वे आर.सी.पी. के बारे में तीखे शब्दों में शिकायत करते रहते हैं। किसी राजनीतिज्ञ को खुश करने के अलावा वह जानता क्या है, सारी जिंदगी उसने यही किया है, वे आपस में अकेले में चिल्ल-पों करते रहते। ''अफसरशाही राज कर रही है बिहार पर, राजनीति का मखौला बना दिया नीतीश ने, उपहास कर रहा है पालिटीशियंस पर...'' वे जो कुछ कहते हैं उसका नीतीश पर कोई असर न पड़ने से वे और भी कुछ अधिक चिड़चिड़े हो जाते हैं। ''इलेक्टेड रिप्रेजेंटेटिव का माने होता था, वेट होता था, नीतीश ने सबको पुतला बना दिया,''...बिहार के एक वरिष्ठ राजनेता ने मुझसे कहा, ''हमारा अब कोई महत्त्व नहीं रहा, हमारा कोई अधिकार नहीं हैं।''

मैंने एक बार नीतीश से पूछा, ''क्या यह सही है कि आपने इस प्रकार स्वयं को उनसे दूर कर लिया है और सरकारी अफसरों की संगति में रहना आपको अधिक भाता है?'' इस सवाल के जबाव में नीतीश ने कहा, ''जब भी वे काम से आते हैं, मैंने कभी मना नहीं किया है, लेकिन मुख्यमंत्री होने के नाते मुझे और भी बहुत काम करने होते हैं, मेरे पास खाली बैठने और 'अड्डेबाजी' करने का समय नहीं होता है। अगर आप पूछ रहे हैं कि मैं 'अड्डेबाजी' के लिए अनुपलब्ध हो गया हूँ, तो मैं कहूँगा कि यह बात ठीक है। मुझे अड्डेबाजी पसंद है, लेकिन काम करना भी तो जरूरी है, और किसी-न- किसी काम के सिलसिले में अफसरों का आना-जाना लगा ही रहता है।''

नीतीश ने जून 2013 में जब बी.जे.पी. को सत्तारूढ़ गठबंधन से बाहर कर दिया, उसके बाद बिहार विधानसभा में विपक्ष के नामजद नेता, नंद किशोर यादव ने विधानसभा में अपने भाषण की शुरुआत इन शब्दों के साथ की : ''आपने हम सबको चोर बना दिया।' इसलिए आपने क्षेत्र विकास फंड छीन लिया है। वह पैसा आपने अधिकारियों के हवाले कर दिया। क्या इसी प्रकार आप निर्वाचित लोगों और उनको वोट देकर चुननेवालों का सम्मान करते हैं?''

बेशक, यादव का वक्तव्य सरकारी बेंचों में नीतीश के पीछे बैठे लोगों में से भी बहुतों को भाया होगा। नीतीश ने सन् 2010 में दोबारा सत्ता सँभालने के बाद सबसे पहला आदेश विधायकों का स्थानीय क्षेत्र विकास फंड समाप्त करने के बारे में जारी किया। यह निर्णय इस आधार पर किया गया था कि इस फंड से भ्रष्टाचार और लूट को बढ़ावा मिलता है। प्रत्येक विधायक को राज्य की ओर से हर वर्ष 2 करोड़ रुपए का फंड दिया जाता था, ताकि वे अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्र का विकास कर सकें, उदारतापूर्वक दान दे सकें, खरीद सकें, सहायता कर सकें।

एम.एल.ए.एल.एड. फंड देने की योजना समाप्त कर दिए जाने के बाद विधायकों के लिए अब यह संभव नहीं रहा कि कहीं वाटर पंप लगवाने या कहीं बस शेल्टर बनवाने के साथ अपने नाम का विज्ञापन कर सकें। वे रुष्ट थे, लेकिन नीतीश को इतने भारी बहुमत से जीत मिली थी कि विरोध जताने का किसी ने साहस नहीं किया। इस भाषण के दौरान, यादव ने खुलासा किया कि उसने, कैबिनेट मंत्री की हैसियत से, विधायकों का स्थानीय क्षेत्र विकास फंड रद्द करने का विरोध किया था और उसे 'राजनीति-विरोधी' कदम बतलाया था, लेकिन इस आपत्ति को खारिज कर दिया गया। नीतीश चाहते थे कि उपलब्धियों का श्रेय उनके सिवा किसी दूसरे को नहीं मिलना चाहिए, कुछ विधायक बड़बड़ाए, ''वह हर चीज अपने लिए चाहता है। सारा धन मुख्यमंत्री योजनाओं को जा रहा है, प्रत्येक योजना का कॉपीराइट नीतीश कुमार ने ले रखा है।''

मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना, मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना, मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना, मुख्यमंत्री ग्राम सड़क योजना, मुख्यमंत्री रोजगार ऋण योजना, मुख्यमंत्री सेतु निर्माण योजना, मुख्यमंत्री अल्पसंख्यक प्रोत्साहन योजना, मुख्यमंत्री लाडली-लक्ष्मी योजना, मुख्यमंत्री विकलांग सशक्तीकरण योजना, मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना...न जाने कितनी कल्याण योजनाओं पर नीतीश ने अपने हस्ताक्षर किए थे। नौकरशाह इन कार्यक्रमों को चला रहे थे। विधायकों का उन पर न कोई अधिकार था, न कोई दखल। यह निस्संदेह नीतीश के अपने दूसरे का ही हिस्सा था। दुबारा सत्ता क्या मिली, नीतीश एक स्थापित शैली के पीछे अधिराज बन गए।

भारतीय लोकतंत्र की स्थायी विडंबनाओं में से एक विडंबना यह भी है कि हमारे राजनीतिक दल अलोकतंत्रिक जागीरें बने रहते हैं। यद्यपि अनेक पार्टियाँ आंतरिक लोकतंत्र का लुभावना मुखौटा पहने रहती हैं, फिर भी, सच तो यह है कि प्रत्येक पार्टी का एक महाबली होता है जिसका आदेश चलता है। कांग्रेस में गांधी वंश-परंपरा, समाजवादी पार्टी में मुलायम सिंह यादव, बी.एस.पी. की मायावती, बीजू जनता दल के नवीन पटनायक, राष्ट्रीय जनता दल के लालू यादव, ए.आई.ए.डी.एम.के. की जयललिता, डी.एम.के. के करुणानिधि, तृणमूल कांग्रेस की ममता बनर्जी—किसी का भी उदाहरण ले लें। राजनीतिक दृश्याभास के दो किनारों पर तथाकथित संवर्ग-आधारित पार्टियों के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के प्रकाश करात भारी असहमति के बावजूद अपनी ही बात को ऊपर रखते हैं; बी.जे.पी. के अंदर प्रवचन पर नरेंद्र मोदी हावी रहते हैं और वह भी अपनी ही शैली में। ऐसा आधिपत्य स्थापित करना, और उसे बनाए रखना मात्र किसी व्यक्तित्व से जुड़े करिश्मे का परिणाम नहीं है। यह जीवित रहने का एक साधन है: नेता या तो अपने झुंड को अपने नियंत्रण में रखता है, या वह झुंड ही नेता को निगल जाता है। आधिपत्य जमाए रखने की योग्यता इस बात पर निर्भर करती है कि वे अपनी बात मनवाने, या वादा करने में कितने सक्षम हैं, अधिकतर लोगों की अपेक्षा कितना बेहतर शासन दे सकते हैं। हमारी राजनीतिक संस्कृति की यह एक और सच्चाई है। नीतीश कुमार को एक बार कुरसी जो मिली, तो वह मालिक बन बैठे। वह साम्राज्य के अकेले पंच हो गए। उन्होंने अपने और शेष लोगों के बीच एक खाई बना ली, और अपने दुर्ग के कपाटों को अपनी मरजी के मुताबिक ऊँचा या नीचा किया। उन्हें बीच की स्थिति पसंद नहीं थी, वह अव्वल नंबर थे।

लेकिन एक और कारण भी था जिसकी वजह से नीतीश ने निर्वाचित वर्गों के स्व-कल्पित विशेषाधिकारों को ललकारा और एक नौकरशाही सुर-संगति को अपनाया। उन्हें अपने राजनीतिक साथियों पर विश्वास नहीं था कि बिहार ने बदलाव के लिए जो जनादेश उन्हें दिया है उसके साथ वे न्याय कर पाएँगे। उनका मानना था कि वे किसी नए संवाद, नए समाचार की शक्ति नहीं हैं, उसमें सोचने या उस परिवर्तन को साकार करने की शक्ति नहीं है जिस

बदलाव का वादा उन्होंने किया है। काफी लंबा पीछा करने के बाद सत्ता हासिल होने पर, नीतीश को अचानक अपने-आपसे किया पहले का यह वादा याद आ गया : 'सत्ता प्राप्त करूँ गा, किसी भी तरह, लेकिन सत्ता लेके अच्छा काम्करूँगा।'

उनके साथी उस दिशा में जाने के उनके प्रयास में मदद नहीं करनेवाले थे जिधर वह जाना चाहते थे। वह उनको दसियों वर्ष से जानते थे, उनमें से अधिकतर को बहुत करीब से; ये थके हुए, अकल्पनाशील लोग थे, उड़ाऊ किस्म के, अधिकतर ऐसे थे जो गप्प हाँकने या साजिश रचने में घंटों बिता सकते थे। सत्ता में तो उनकी दिलचस्पी थी, मगर इस बात में नहीं कि सत्ता का इस्तेमाल कैसे और किसलिए किया जाना चाहिए। उनमें से अधिकतर लालू के शासन का हिस्सा रह चुके थे, लालू के दरबारी भी रह चुके थे, अपने मतलब की खातिर। अब उन्हें जीत हासिल हो गई थी, इसलिए नहीं कि वे किसी नए करार और किसी नई प्रतिज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि इसलिए कि उन्हें सही टिकट पर चुनाव लड़ने का अवसर मिला। सत्ता में वे कुछ भी नया या भिन्न करनेवाले नहीं हैं; वे सिर्फ सत्ता के फल खाने के भूखे हैं और वे अपनी इसी भूख का प्रदर्शन करेंगे।

साथी राजनीतिज्ञों के प्रति नीतीश का तिरस्कार भाव कोई नया नहीं था किंतु काफी लंबे समय तक उनके पास इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह इस तिरस्कार को व्यक्त कर सकें। नीतीश उनको बरदाश्त करते रहे, क्योंकि तब वह कुछ कर नहीं सकते थे। वर्षों पहले जब वह बिहार की राजनीतिक गलियों में प्रवेश पाने के लिए भटक रहे थे और अपना कोई आश्रय न होने के कारण 32, एम.एल.ए. क्लब के गलियारे में बाहर सो जाया करते थे, उसका कारण यही था कि उस भीड़ को वह सहन नहीं कर सकते थे जो भीड़ वहाँ हर समय लगी रहती थी। लेकिन उस भीड़ के साथ रहने का फैसला भी तो उनका अपना ही था। उनके बारे में वह वास्तव में क्या सोचते थे, उसे प्रदर्शित करने के लिए उन्हें तब तक इंतजार करना होगा जब तक वह जनादेश से मिले अधिकार का कुशलता से प्रयोग करना शुरू नहीं करते।

राज्य के विषयों पर राजनीतिक प्रभाव को कम करना और नौकरशाही के अधिकार का स्तर ऊँचा करना नीतीश कुमार की कार्य-पद्धति का विशिष्ट लक्षण बन गया। बहुत लोग 'अफसरशाही' करने का आरोप उन पर लगाते हैं; नीतीश इस आरोप को तावीज की तरह पहने रहते हैं।

पदभार ग्रहण करने के पश्चात् अपनी पहली-पहली घोषणाओं में, नीतीश ने नव-निर्वाचित विधायकों से सार्वजनिक तौर पर निवेदन किया कि वे मंत्रीय बँगलों को जबरन कब्जे में लेने की बहुत जल्दबाजी न दिखाएँ : वह अपने अधिकांश सहयोगियों को छीना-झपटी करनेवाला मानते थे। विधानसभा में उनकी संख्या के लिए निस्संदेह वह उनके आभारी थे। यह भी ठीक है कि उन्होंने मंत्रिमंडल में उन लोगों के बीच विभागों का वितरण किया और मंत्रिमंडल की नियमित बैठकों की अध्यक्षता की। हाँ, धर्म और जाति के उचित प्रतिनिधित्व का लिहाज करते हुए नीतीश ने उनको मंत्रिमंडल में जगह दी। लेकिन अपने इन राजनीतिक सहयोगियों की निर्णयन क्षमता पर उन्हें कतई विश्वास नहीं था।

नीतीश ने जब अपना दूसरे चुनाव के बाद एक बड़े भूमि सर्वेक्षण तथा चकबंदी की पहल का ऐलान किया उस समय भूमि सुधार मंत्री रमई राम का कहीं अता-पता नहीं था। रमई राम को शायद जानकारी नहीं थी, या वह समझ नहीं पाए कि जिस पर उन्होंने खुद मुहर लगाई उसका आशय क्या था। जाति से दलित, राम ने चुनाव में मुजफ्फरपुर के निकट अपने निर्वाचन क्षेत्र पर अपने अत्यधिक प्रभाव का परिचय दिया था। वह लालू-राबड़ी सरकारों में हिस्सा ले चुके थे और उचित समय देखकर एक सीट का दावा करने हेतु वह नीतीश की तरफ हो गए थे। एक दलित और वोट जुटाने वाला होने के नाते, राजनीतिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्त्व एवं प्रभाव था। किंतु,

जो भी उस वर्ष बिहार में कैबिनेट की किसी कुरसी पर बैठा, कहा जाता है कि उसने नीति के संबंध में कभी एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। नीतीश ने भूमि सुधारों में डाले गए व्यापक नए मानदंडों—भूमि का अनुषंगी अर्थात् सहायक नक्शा बनाना, चकबंदी संबंधी मानदंड, जोत-भूमि की पद्धतियों और स्वामित्व संबंधी अभिलेखों का कंप्यूटरीकरण—की छोटी-मोटी बातों के लिए रमई राम को परेशान करना उचित नहीं समझा; भूमि सुधारों में जो भी नए मानदंड समाविष्ट किए गए थे उनका ब्योरा निकाल लिया गया था और भूमि सुधार सचिव, आई.ए.एस. अधिकारी, सी. अशोकवर्धन के साथ मिल-बैठ कर उस ब्योरे को अंतिम रूप दे दिया गया था।

नीतीश ने मुख्यमंत्री के रूप में अपने प्रथम कार्यकाल के दौरान बहुत शीघ्र इस बात को समझ लिया था और एक तरह से पक्का इरादा भी कर लिया था कि बिहार के अफसर ही उनके सच्चे मित्र होंगे, न कि वे राजनीतिज्ञ, जिनमें से अधिकतर लालू राज की देन थे : इन राजनीतिज्ञों का मनोबल गिर चुका था, हालत खस्ता थी और ये भूल चुके थे कि कार्य संस्कृति क्या होती है। लालू को चापलूसी कराने की आदत थी। प्रशासन करना आता नहीं था। राज्य को अपनी बादशाहत समझता था। बिहार के मुख्य सचिव को बड़ा बाबू कहता था। कैबिनेट की बैठकों में वह वरिष्ठ अधिकारियों को खैनी लाने का इशारा किया करता था। अनेक अधिकारी प्रतिनियुक्ति पर बिहार से बाहर चले गए थे। नीतीश ने उन्हें दो वायदों पर वापस बुलाया, चुनौतीपूर्ण कार्य का वादा और राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना पूरे कार्यकाल तक पद पर बने रहने की सुरक्षा का वादा। प्रधान सचिव आर.सी.पी. के अधीन मुख्यमंत्री कार्यालय (सी.एम.ओ.) का पूर्णरूपेण पुनर्गठन किया गया। सरकारी विभागों के समन्वय में आर.सी.पी. की मदद के लिए दो युवा आई.ए.एस. अधिकारी नियुक्त किए गए : एक था आई.आई.टी. से शिक्षा प्राप्त, आंध्र प्रदेश का एस. सिद्धार्थ जिसे बिहार काडर मिला था, और दूसरा एक स्थानीय व्यक्ति, चंचल कुमार जो पहले रेल मंत्रालय में नीतीश का सहायक रह चुका था। वरिष्ठ अधिकारियों में सबसे पहले अफजल अमानुल्ला को बहला-फुसला कर वापस लाया गया; अफजल ने आते ही अभयानंद को साथ लेकर, बिहार की भयंकर कानून एवं व्यवस्था को सँभाला और अपराध पर शिकंजा कसा। इनके अलावा, और भी थे।

मदन मोहन झा को शिक्षा विभाग सौंपा गया। उसे खाली स्लेट पर अक्षर उकेरने से शुरुआत करनी थी—प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों का निर्माण करना, मौजूदा स्कूल भवनों को नया रूप देना, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की उपस्थिति सुनिश्चित करना। कार्यकाल के बीच में ही उसका निधन हो जाने के कारण, अंजनी कुमार सिंह को इस कार्य की जिम्मेदारी दी गई। यही अंजनी कुमार सिंह बाद में आर.सी.पी. की जगह नीतीश के प्रधान सचिव बने। अनूप मुखर्जी को वापस बुलाकर ग्रामीण विकास विभाग की देखभाल का कार्य सौंपा गया, यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण विभाग था किंतु बहुत समय से उपेक्षित पड़ा था। अनूप मुखर्जी बढ़ते-बढ़ते राज्य के मुख्य सचिव के ओहदे तक पहुँच गया। चंद्र किशोर मिश्र को पहले नई दिल्ली में बिहार का स्थानीय आयुक्त (रेजीडेंट कमिश्नर) नियुक्त किया गया; फिर उसे वापस बुला लिया गया और एक के बाद एक विभागों—बिजली, स्वास्थ, उद्योग—को सँभालने का कार्य सौंपा गया। नीतीश का पहला स्वास्थ्य सचिव दीपक कुमार था, जिसने बिहार के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को रूई-सूई वापस दिलाई। जब उसने कार्यभार ग्रहण किया था, उस समय राज्य के प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में आनेवाले लोगों का मासिक औसत मात्र उनतालीस था। एक साल के अंदर ही यह संख्या बढ़कर 200 के करीब हो गई। जब तक अमरजीत सिन्हा के पास स्वास्थ्य विभाग रहा, और उसे शिक्षा विभाग का बड़ा साहब बनाकर नहीं भेजा गया, उस समय तक यह संख्या 9,000 तक पहुँच गई थी।

अपने कार्यकाल में थोड़ा आगे चलकर नीतीश ने एक और अनुभवी व्यक्ति, त्रिपुरारी शरन को पुणे स्थित भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान का निदेशक का पद त्यागकर वापस आने और खाद्य एवं सिविल आपूर्ति विभाग का

कार्यभार ग्रहण करने के लिए मना लिया।

राजकुमार सिंह (वह व्यक्ति जिसने सन् 1990 में राम रथयात्रा रोकी थी और समस्तीपुर में एल.के. आडवाणी को गिरफ्तार किया था और जो बाद में भारत का गृह सचिव बना तथा सेवानिवृत्ति के बाद नीतीश का संरचना संबंधी सलाहकार बन गया) और एक युवा अधिकारी प्रत्यय अमृत को बिहार में सड़कें बिछाने और पुलों का निर्माण करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। राज्य का एक वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते, राजकुमार सिंह की सेवाओं का उपयोग प्राय: विशेष कार्यों के लिए भी किया गया, जैसे कि सन् 2007 और 2008 के संकट के दौरान बाढ़ राहत कार्य का निरीक्षण करना। सड़कों और पुलों के निर्माण के मामले में, दोनों को पक्का विश्वास दिला दिया गया था और खुली छूट दे दी गई थी : जो भी करना है, करो, लेकिन बिहार को बिहार से जोड़ो।

अमृत जब पहली बार पटना में सचिवालय के निकट बिहार राज्य पुल निर्माण निगम (बी.आर.पी.एन.एन.) के कार्यालयों में पहुँचा, तो उसने कार्यालय के अहाते में गायों को चरते देखा और प्रबंध निदेशक की मेज के ऊपर मकड़ियों को लटके हुए देखा। कंप्यूटर होने का तो सवाल ही नहीं था; कर्मचारियों के नाम पर भी इक्का-दुक्का लोग ही मौजूद थे। बहुत से कर्मचारियों को वर्षों से वेतन नहीं मिला था। क्योंकि निगम ऋण और घाटे के दुश्चक्र में फँसा हुआ था। राजकुमार सिंह की मंजूरी से अमृत ने बी.आर.पी.एन.एन. को होश में लाने के लिए बिजली का झटका दिया। रात भर में, एक मरणासन्न पी.एस.यू. में उसने एक कॉरपोरेट हाउस जैसी कार्य-संस्कृति का इंजेक्शन लगा दिया। उसने राजनीतिज्ञों एवं ठेकेदारों की उस मिली-भगत को तोड़ दिया जिसने बी.आर.पी.एन.एन. के खजाने को खुलकर लूटा और बदले में दिया कुछ नहीं। उसने परियोजनाओं के लिए निविदाएँ आमंत्रित करने और परियोजनाओं के पूरा होने की शर्त पर भुगतान करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक पद्धति को अपनाया। सभी डिजाइनों को अनुमोदित करने का काम उसने एन.आई.आई.टी. को सौंप दिया। उसने काम के दिनों की संख्या, जो सौ दिन से भी कम थी, बढ़ाकर 180 दिन कर दी। उसने 10 करोड़ रुपए तक की लागत के सभी पुलों का निर्माण करने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया; यह काम किसी बाहर वाले को देने की जरूरत नहीं समझी गई। उसने अपने स्टाफ को कार्य-निष्पादन के आधार पर प्रोत्साहन देने का वादा किया। निगम में पुन: प्राण फूँकने के तीन वर्ष के अंदर, बी.आर.पी.एन.एन. ने 150 से अधिक छोटे और मध्यम पुलों का निर्माण किया। ''मुख्यमंत्री को नतीजे चाहिए थे, और कुछ भी नहीं,'' अमृत ने मुझे बताया ''मुख्यमंत्री ने हमें काम करने की आजादी दी और यह स्पष्ट कर दिया कि वह कोई बहानेबाजी नहीं सुनेंगे। तय किए गए लक्ष्य पूरे न होने की दशा में वह असहनशील हो सकते हैं और उनकी नाराजगी उचित माध्यम से आती है। अनुदेश प्राप्त करने के लिए मुझे कभी आमने-सामने नहीं होना पड़ा, उन्होंने भी किसी ठेकेदार या किसी काम के लिया किसी को सिफारिशों के साथ मेरे पास कभी नहीं भेजा।'' फिर अमृत ने भूल-सुधार करते हुए कहा कि नीतीश ने एक बार फरवरी सन् 2009 में एक रविवार को सुबह उसे जरूर बुला भेजा था। उन्होंने एक उत्पाती नाले के आर-पार एक छोटा बाँध या पुल बनवाने का वादा किया था क्योंकि मानसून के दौरान नालंदा के एक दूरवर्ती हिस्से में वह नाला गाँवों को शेष भागों से अलग कर देता था। वह वचन दे चुके हैं, उन्होंने खेद जताते हुए कहा, ''क्या यह काम बरसात से पहले हो सकता है?'' बी.आर.पी.एन.एन. ने अगली मई तक वह बाँध बनाकर तैयार कर दिया।

जब नए शासन ने काम सँभाला, बी.आर.पी.एन.एन. उस समय तक एक 'कंडम केस' था, यानी एक बेकार पड़ा महकमा, जिसका सुधार संभव नहीं था। चार वर्ष के अंदर-अंदर, यह लाभ देने लगा, इसके अधिकारी वातानुकूलित कमरों में बैठकर लैपटॉप पर काम करने लगे। उनके ऑफिस में 'जिम' (व्यायामशाला) भी खुल गया, उन्होंने बाढ़ राहत कोष में बड़ी धनराशि दान की। पिछले शासन के दौरान, जिस राजेश भूषण को लालू के घरेलू निर्वाचन-क्षेत्र

छपरा में कलेक्टर की हैसियत से काम करते हुए अत्यंत कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा था और सिविल सेवा में अपने भविष्य के बारे में जिसे घोर निराशा ने घेर लिया था, वही इस विभाग में आकर अब अपनी स्थिति और अपने काम से बहुत खुश था, अचानक उसके चेहरे पर हँसी खिलने लगी थी। सूचना विभाग का प्रधान बना दिए जाने पर उसका काम अब बिहार के बारे में अच्छी खबरें निकालना था। पटना में एक दिन जब मैं उससे भेंट करने गया, उसने अपने कार्यालय द्वारा सन् 2005 से अब तक प्रकाशित की गई वार्षिक रिपोर्ट (इसके पहले ऐसी कोई प्रथा नहीं थी) का एक बड़ा बंडल निकालकर मेरे सामने रख दिया और चेहरे पर कटाक्ष का भाव लिये इंतजार करने लगा कि मैं क्या कहने वाला हूँ, रिपोर्टों को देखकर ही लगता था कि हर वर्ष रिपोर्ट का आकार ज्यादा मोटा होता चला गया है। सन् 2012 में रिपोर्ट बहुत भारी हो गई थी, हिंदी संस्करण मुख्यमंत्री को प्रस्तुत करने के लिए निश्चित समय पर प्रकाशित नहीं हो पाया।

ये सब योग्य, नेक एवं सुशिक्षित अधिकारी थे, जिन्हें नीतीश ने विशिष्ट कार्यों के लिए चुन-चुन कर लिया था। उनमें से बहुतों ने माना कि वे लौटने और टिके रहने के लिए इसलिए राजी हुए क्योंकि उन्होंने कार्य संस्कृति में एक बड़ा बदलाव पाया, एक ऐसा वातावरण देखा जिसमें काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है, काम करनेवाले को हतोत्साहित नहीं किया जाता। उनका प्रयास फलीभूत हुआ, बिहार में वृद्धि और विकास के आँकड़े बेहतर हुए और उन ट्रॅफियों की अपेक्षा कहीं अधिक एक खुशहाल तसवीर पेश करने लगे जो ट्रॉफियाँ नीतीश के ऑफिस के आले में बढ़ती जा रही थीं। बिहार की सुव्यवस्थित शासन प्रणाली ने पुन: यह उम्मीद जगा दी कि काम करने की नीयत हो तो हर काम हो सकता है, और काम हुआ। यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि अपराध पर अंकुश लगाया जा सकता है और सड़कों तथा पुलों का निर्माण किया जा सकता है, कि जहाँ पहले डॉक्टर नहीं होते थे वहाँ अब डॉक्टर भी मौजूद रहेंगे और दवाइयाँ भी मिलेंगी, कि स्कूलों में छात्रों एवं शिक्षकों की उपस्थिति बढ़ेगी और सुनिश्चित होगी कि संकट के समय राहत पहुँचने में कोई कोताही नहीं होगी।

मन में प्रचंड ईर्ष्या पाले हुए जिन राजनीतिज्ञों का यह निष्कर्ष था कि अफसरशाही ने उनकी बादशाहत छीन ली है, वे किसी बड़े भ्रम में जी रहे थे। बिहार के बाबू निस्संदेह नीतीश के आदेशानुसार बिहार को लंबी निद्रा से जगाने और बिहार की तसवीर बदलने के प्रयास में दिन-रात जुटे हुए थे, लेकिन इस प्रक्रिया में बहुतों की पीठ दीवार से टकराने लगी थी। उनका स्वामी एक निर्मम और अपनी माँग पर अड़ा रहनेवाला इनसान था, तफसील देने पर चिढ़ जाता था, विलंब उसे बरदाश्त नहीं था, और अकसर अधीर हो उठता था। वह बहुत जल्द खीझने और झुँझलाने लगता था। मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश के पहले कार्यकाल के दौरान एक वरिष्ठ अधिकारी ने बिहार को बिजली की यथेष्टता सुनिश्चित करने हेतु तय की गई समय-सीमा के बारे में स्पष्ट बोलकर गलती कर दी। उस अधिकारी का कहना था कि एक या दो वर्ष की समय-सीमा के अंदर लक्ष्य प्राप्त करना संभव नहीं होगा, न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने में कई साल लग जाएँगे। बिहार के पास इतनी मात्रा में बिजली पैदा करने या बाजार से बिजली खरीदने की क्षमता नहीं है। दूसरे ही दिन उस अधिकारी ने पाया कि उसका तबादला दूसरे विभाग में कर दिया गया है। नीतीश को किसी भी बात के जवाब में 'ना' सुनना पसंद नहीं था, भले ही उस 'ना' के पीछे कितनी भी दमदार दलील क्यों न हो। बाद में वह अकसर सच की गहराई को समझ जाते थे, जैसा कि बिजली की पर्याप्तता के विषय में उन्हें मानना पड़ा, लेकिन वह कभी भी अपने अधिकारियों को इस धारणा की आड़ में रहने देना नहीं चाहते थे कि यह या वह काम इस या उस कारण से किया जाना संभव नहीं है।

जब उन्होंने स्कूल जानेवाली लड़कियों को मुफ्त साइकिल देने की महत्त्वाकांक्षी योजना विचार-विमर्श हेतु प्रस्तुत की, अधिकतर अधिकारियों ने इस बात पर जोर दिया कि साइकिल की खरीद और उनका वितरण सरकार को

करना चाहिए। नीतीश अड़े हुए थे कि साइकिल खरीदने के लिए नकद राशि स्कूली छात्राओं के परिवारों को अंतरित की जाए। अधिकारियों की दलील थी कि यह संभव नहीं है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश परिवारों ने बैंक खाता नहीं खोला हुआ है। ऐसी स्थिति में, हजारों लड़कियों के परिवारों के खाते में नकद राशि के अंतरण की कोई व्यवस्था मौजूद नहीं है, इसके अलावा, कौन जानता है कि स्कूली छात्राओं के माता-पिता उस राशि का इस्तेमाल किस निमित्त करेंगे : स्कीम ही उल्टा पड़ जाएगा, सर! नीतीश ऐसे किसी तर्क से सहमत नहीं थे। साइकिलें नकद दी जानेवाली राशि के माध्यम से ही आनी चाहिए, अन्यथा, नीतीश ने कहा, सरकार पर साइकिल खरीद घोटाले का आरोप मढ़ दिया जाएगा—लड़कियों और उनके माता-पिता को तय करने दो कि वे किस प्रकार की साइकिल खरीदना चाहेंगे; माँ-बाप यदि किसी दूसरे उद्देश्य के लिए उस राशि का इस्तेमाल करना चाहेंगे तो लड़कियों का उन पर दबाव होगा। उन्होंने पदाधिकारियों को सीधे नकदी अंतरण के वास्ते जल्दी कोई तरीका निकालने के लिए बाध्य कर दिया। नीतीश की बात उन्हें माननी पड़ी।

योजना को स्वरूप देना अपने-आपमें एक जटिल प्रक्रिया थी। नीतीश ने पहले तो सबसे ये सुझाव माँगे कि स्कूल जानेवाले किन लड़कियों को मुफ्त साइकिलें दी जानी चाहिए, वह जाति या आर्थिक स्थिति को कसौटी बनाने की सिफारिश के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने यह पता लगाने के लिए कहा कि स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पढ़ाई छोड़ देनेवाली लड़कियों की औसत-दर क्या है। इस सर्वेक्षण से पता चला कि अधिकतर लड़कियाँ माध्यमिक-स्कूल स्तर पर पढ़ाई से बाहर हो जाती हैं, क्योंकि या तो उनका विवाह कर दिया जाता है या घर और रसोई के काम में जोत दिया जाता है। सरकार ने इसी स्तर पर प्रोत्साहन देने का निर्णय किया; योजना कामयाब हुई, साइकिल की योजना चालू करने से पहले जितनी लड़कियाँ स्कूल जाती थीं, उससे दस गुना से भी अधिक लड़कियाँ अब स्कूलों में पढ़ाई कर रही हैं।

स्कूली छात्राओं के लिए बनाई योजना के तर्ज पर ही, नीतीश ने विकलांग नाबालिगों के लिए राज्य की ओर से सहायता देने की योजना हेतु जाति, आयु और आर्थिक स्थिति को आधार मानने के सिफारिश को खारिज कर दिया। यह किस्सा स्वयं नीतीश ने मुझे सुनाया, ''मैं पटना के निकट एक ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति के विकलांग बच्चों के लिए एक सहायता शिविर का उद्घाटन कर रहा था। यह सन् 2008 या 2009 में किसी समय की बात है। मैं मंच पर प्रमाण-पत्रों का वितरण कर रहा था और तभी मैंने बैसाखियों के सहारे एक छोटी लड़की को अपने पास आते हुए देखा; उसे देखते ही मेरे मन में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया : अपंगता या विकलांगता का जाति, उम्र या आर्थिक स्थिति से क्या सरोकार है, यह तो किसी के लिए भी समान रूप से कष्टप्रद होती है। उसी समय मैंने निर्णय कर लिया कि यह सहायता सभी वर्गों को निष्पक्ष रूप से प्रदान की जाएगी।'' अफसरों ने असहमति जताई। पात्रता का दायरा बहुत व्यापक है। पैसा किधर से आएगा? संक्षेप में उन्हें बता दिया गया कि उपाय उन्हें ही खोजने होंगे। मुख्यमंत्री विकलांग सशक्तीकरण योजना का जन्म हो गया।

यद्यपि अधिकारी-वर्ग अनुप्राणित एवं सशक्त हो गया था, फिर भी काम के बोझ से उसकी साँस फूलने लगी थी और निरंतर की जा रही अपेक्षाओं के कारण शिकायतों के सुर सुने जाने लगे थे। सुस्ती और गैर-जवाबदेही के सामंतवादी युग के आदी हो चुके अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए, नीतीश की ओर से आदेश पर आदेश आने का सिलसिला उन कुरसियों के नीचे जलते कोयलों को बेलने से कुरेदने जैसा था जिन कुरसियों को वे गरम करते आ रहे थे। जैसा कि पटना में एक निगम के प्रमुख ने मुझसे कहा, ''मुख्यमंत्री कहते हैं कि वह तप्त कुरसी पर बैठे हैं, लेकिन तपिश तो हम लोगों को महसूस होती है। कभी-कभी तो हम यह सोचने के लिए विवश हो जाते हैं कि वह बहुत जल्दबाजी में रहते हैं, हमें चिंता हो जाती है कि इस जल्दबाजी में वह कहीं लड़खड़ा न जाएँ।''

वे इसे पाइनम-40 फैक्टर कहने लगे थे। 11 रुपए की एक गोली के हिसाब से पाइनम-40 का मूल्य बहुत ऊँचा कहा जा सकता है, लेकिन यह गोली आपके अत्यधिक मानसिक तनाव को कम करती है। मैं एक विाष्ठ अधिकारी से मिलने गया, तो देखा कि इस गोली का एक पूरा पत्ता उसकी मेज पर पड़ा है : ''इस आदमी के साथ काम करने के लिए आपको ये गोलियाँ लेना जरूरी हो जाता है। आप थोड़ी देर के लिए भी सोने जाएँ, तो नींद में भी मीटिंग के सपने आने लगते हैं। वह टिप्पणियों में खामियाँ निकालते हैं, जैसे आपके कार्यालयों में सह-संपादक करते होंगे, बालों से लीखें निकालने के लिए पैनी कंघी घुमाने का काम। वह जगह-जगह अर्ध-विराम और विराम लगाकर कागजात् वापस भेज देते हैं क्योंकि वह सोचते हैं कि इनको वहीं होना चाहिए जहाँ उन्होंने लगाया है। अगर आप किसी नई बिल्डिंग का ब्लू-प्रिंट उनके पास भेजें, तो वह अपनी योजना के अनुसार उस पर जगह-जगह लाल-पेंसिल फेर देंगे। कोई भी प्रक्रिया तब तक पूरी नहीं होती है जब तक वह खुद उसे अंततः पूर्ण घोषित न कर दें।''

शायद ही किसी को पता रहा होगा कि नीतीश के पास सेलफोन भी रहता है लेकिन उनके पदाधिकारियों को जल्दी पता चल गया कि उनके पास सेलफोन है और वह उसका इस्तेमाल भी करते हैं। सन् 2012 में जनवरी की एक सर्द सुबह, पूर्णिया से बी.जे.पी. के विधायक राजकुमार केसरी को, उसके एक तिरस्कृत सहयोगी, रूपम पाठक ने छुरा घोंपकर मार डाला। बिहार के पुलिस प्रमुख, नीलमणि की नींद टूटी जब उनका मोबाइल लगातार झनझनाता रहा। 'जी सर!' वह मुख्यमंत्री से आया फोन समझ कर बोले। लेकिन यह पूर्णिया से कोई अधीनस्थ अधिकारी था जो हत्या की खबर देने के लिए फोन कर रहा था। नीलमणि ने बात करके फोन अभी रखा ही था कि दुबारा उसकी घंटी बजने लगी। इस बार 'जी सर' कहना अपेक्षित था। नीतीश का फोन था, वह जानना चाहते थे कि क्या हुआ है? नीतीश को भी उसी समय खबर मिल गई थी जिस समय पुलिस के आला अफसर को मिली थी।

नीलमणि, जिसने नीतीश के कार्यकाल के दौरान अपराध पर शिकंजा कसा, लालू और राबड़ी के शासनकाल में भी ऊँचे पदों पर काम कर चुका था। रिटायर होने के बाद उसने नीतीश के शासन और लालू-राबड़ी के शासन के बीच मुख्य अंतर से मुझे इस तरह विदित कराया। एक पुलिसमैन की दृष्टि से उसने कहा, ''बहुत अधिक अंतर नहीं था। ''लालू के अधीन दबाव इसलिए रहता था क्योंकि हमें विनियमों के इधर-उधर जोड़-तोड़ करना पड़ता था और आम तौर पर सब गड़बड़ झाला हो जाता था; नए साहेब के अधीन, आदेश-अनुदेश स्पष्ट शब्दों में व्यक्तिगत रूप से आते थे : कानून को मोड़ने या दिशा देने का कोई सवाल ही नहीं था। और व्यक्तिगत जवाबदेही भी होती थी, वह दिन में किसी भी समय सीधे ही फोन घुमा लेते थे तथा आपसे जवाब तैयार रखने की अपेक्षा की जाती थी। मैंने अपना कार्यकाल नींद लिये बिना पूरा किया।''

यह नीतीश कुमार की केवल सख्ती का परिणाम नहीं था, जो प्रशासन के सिर में सूई की तरह चुभ रहा था। इसका एक दूसरा कारण भी था जो विगत वर्षों में इतना व्यापक और आम हो गया था कि लोगों ने उस तरफ ध्यान देना ही बंद कर दिया था : भ्रष्टाचार। बिहार में खबरों में आने का मुख्य विषय यदि कोई बनता था, तो वह—जैसा कि देश में अन्यत्र हो रहा था—ईमानदार सरकारी नौकर होता था, न कि कोई बेईमान आदमी। कोई भी आदमी—निश्चित रूप से नीतीश कुमार भी नहीं—यह विश्वास नहीं करता है कि किसी एक झाड़ू से सारा भ्रष्टाचार हटाया जा सकता है। लेकिन यह उसी झाड़ू का डंडा था, और नीतीश कुमार ने वह डंडा चलाना शुरू कर दिया था।

इस डंडे का सबसे पहला शिकार जो बना वह था औरंगाबाद का रहनेवाला मोटर वाहन इंस्पेक्टर रघुवंश कुमार, जिसने पटना के कंकड़बाग इलाके में एक महलनुमा घर बना रखा था और उस महल जैसे घर की कीमत अवश्य ही उसकी अपनी आमदनी के वैद्य स्रोतों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। सरकार ने उस संपत्ति पर कब्जा कर लिया

और उसे एक स्कूल में तब्दील कर दिया। मध्यम और कनिष्ठ स्तर के कई अन्य पदाधिकारियों के मान-सम्मान का भी यही हश्र हुआ।

लेकिन बहुत लोग, जिनमें नीतीश के मंत्रिमंडल के कुछ सदस्य भी शामिल थे, इस भ्रष्टाचार-विरोधी मुहिम के बारे में बेचैनी व्यक्त करते थे, क्योंकि इस मुहिम को ताकत विशेष अदालत कानून से मिल रही थी जिसके अंतर्गत घूसखोरी के मामलों के जल्दी निपटाने और फैसला सुनाने के लिए विशेष न्यायालय बनाए गए थे। ''कहने, सराहने भर की बात है,'' एक ने हँसी उड़ाते हुए मुझसे कहा, ''आजकल राजनीति क्या, घर भी थोड़ा-बहुत इधर-उधर के बिना नहीं चलता। और फिर बिहार की हालत तो जग जाहिर है, हर कदम पे पैसा-पैसा। पैसा के बिना पार्टी और राजनीति कैसे चलेगा? ऊ का बैंक अकाउंट से आता है?''

मैंने यही सवाल नीतीश के सामने रखा : उनके पास पैसा कहाँ से आता है? क्या ऐरिस्टो फार्मेस्यूटिकल्स के मालिक, महेंद्र प्रसाद जैसे कारोबारी-राजनीतिज्ञों से, जिसे उन्होंने दो बार राज्यसभा भेजा? नई दिल्ली में व्यावसायिक घरानों के साथ वर्षों से चले आ रहे संबंधों के जरिए? अज्ञात समर्थकों के माध्यम से? ''प्राय: अप्रत्याशित स्रोतों से,'' उन्होंने कुछ-कुछ अस्पष्ट सा उत्तर दिया, ''इस देश में ऐसे लोगों की विशाल संख्या है जो लोकहितों के लिए अपनी सहायता देने के लिए तैयार रहते हैं। जब-जब आप इस चिंता में डूबे होते हैं कि किसी अभियान को आगे कैसे बढ़ाया जाए, किसी भूले हुए कोने से निकलकर कोई सामने आ जाएगा, कोई ऐसा व्यक्ति जो मानता है कि आपने कभी उनका भला किया था। बेशक, हमें पैसे की जरूरत होती है, हर पार्टी को पैसा चाहिए; हाँ, इसके साथ कोई शर्त नहीं जुड़ी होनी चाहिए, नीति में तोड़-मरोड़ करने की बाध्यता इसके साथ नहीं होनी चाहिए। मेरी सरकार के बारे में किसी ने ऐसी बात नहीं कही है।''

नए शासन की नीति के प्रतीक के रूप में ही सही नीतीश ने पारदर्शिता को ध्येय बनाकर कार्यारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों को अपनी-अपनी धन-संपत्ति का ब्योरा घोषित करने के लिए कहा, उसके पश्चात् उन्होंने ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी सरकारी पदाधिकारियों से अपनी-अपनी जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति का ब्योरा प्रकाशनार्थ प्रस्तुत करने के लिए कहा।

''समस्याएँ अवश्य होंगी, अनेक समस्याएँ उठेंगी, भ्रष्टाचार की जड़ें व्यवस्था में गहरी पकड़ बनाए हुए हैं,'' उन्होंने कबूल किया, ''लेकिन एक संदेश जरूर जाना चाहिए और लोगों को भ्रष्ट होने से डरना चाहिए। यह एक संदेश है जो प्रचार अभियान के दौरान लोगों से मुझे बहुत साफ शब्दों में प्राप्त हुआ, यह एक समस्या है जो सबको छूती है और सब इसमें जुड़ जाते हैं। राज्य में जहाँ-जहाँ भी मैं गया, इस समस्या के बारे में लोगों ने बहुत भावुक होकर अपने विचार व्यक्त किए। अगर हम थोड़े-बहुत लोगों को भी पकड़ सकें और उन्हें दंड दिला सकें, तो हम मिसाल कायम कर देंगे। जिसे लोग याद रखेंगे और भ्रष्टाचार से भय खाएँगे।'' बहुत बार सुने हुए शब्द हैं, लेकिन फिलहाल हम देखेंगे कि ये शब्द केवल शब्द ही न रहें, बल्कि इन शब्दों को कूट-छान कर ऐसी पक्की दवा बने जो बिहार में महामारी की तरफ फैली भ्रष्टाचार की बीमारी के उपचार में असरकारी हो।

भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान से चिड़चिड़ाए लोग अपना गुस्सा निकालने के लिए किसी भी हद तक जा सकते थे। इसका पहला अनुभव नीतीश को सितंबर 2012 में हुआ। अधिकार यात्रा रैली में जाने के लिए उनका काफिला जब खगड़िया में एक तंग गली से गुजर रहा था, तो उस पर पत्थर बरसाए जाने लगे।

नीतीश ने बिहार के लिए विशेष आर्थिक दरजा देने की माँग उठाई थी और राज्य भर में गाँव-गाँव जाकर दुबारा ऐलान कर रहे थे। लेकिन इस बार, जन-सभाओं में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहीं-कहीं से विरोध के तीव्र सुर भी सुनाई पड़ रहे थे। खगड़िया में पत्थरबाजी की घटना के पीछे जे.डी.यू. प्रवक्ताओं ने लालू की आर.जे.डी.

के कार्यकर्ताओं का हाथ बतलाया और शुक्र मनाया कि नीतीश का कुछ नहीं बिगड़ा था। लेकिन खगड़िया कोई अकेली घटना नहीं थी। यात्रा के दौरान अन्यत्र कई जगह उन्हें काले झंडे दिखाए गए। सन् 2005 में मुख्यमंत्री बनने के समय से शायद पहली बार 'नीतीश कुमार मुर्दाबाद' के नारों से उनका सामना हुआ। किसी ने एक जगह काला बैनर लगा दिया था, फिर तो उनकी संख्या बढ़ने लगी। काला रंग बहुत जल्दी विद्रोह की पहचान बन गया और स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि मुख्यमंत्री के सुरक्षाकर्मियों ने काली पोशाक पहने किसी भी आदमी को आम सभाओं में शामिल होने की इजाजत देने से मना कर दिया। इस बारे में मुख्यालय से जारी आदेशों का अनुपालन स्थानीय रूप से इस कदर आँख मूँदकर किया जाने लगा कि उत्तर बिहार में बुर्का पहने एक मुसलिम औरत को पुलिसकर्मियों द्वारा नीतीश की रैली में जाने से रोकने की घटना कैमरे में कैद हो गई। खगड़िया के बाद मुख्यमंत्री के कार्यक्रमों का आयोजन करनेवालों को किसी पर भी विश्वास न करने का रोग लग गया।

इन विरोधकर्ताओं में अधिकतर सहायक शिक्षक शामिल थे जिन्हें नीतीश ने अपने कार्यकाल के दौरान शिक्षा मित्र के रूप में भरती किया और जो अब नियमित सरकारी स्कूल कर्मचारियों के बराबर वेतनमान दिए जाने की माँग कर रहे थे। (सन् 2013 में, बी.जे.पी. से नाता तोड़ने के बाद, नीतीश ने अस्थायी शिक्षकों की माँगें मान लीं और स्वतंत्रता दिवस के भाषण में उनका वेतन बढ़ाने की घोषणा कर दी; बी.जे.पी. से अलग होने से हुए नुकसान की भरपाई के लिए उन्हें नया मतदाता-वर्ग खड़ा करना था, साथ ही, जो उनके पास पहले से था, उनमें से किसी को खोना नहीं था।)।

लेकिन सन् 2012 में जैसे-जैसे दूसरे असंतुष्ट समूह रुष्ट शिक्षकों के साथ जुड़ते चले गए, अशांत किनारों का शोर तेज होने लगा। वे भिन्न-भिन्न प्रकार की शिकायतें लेकर आ रहे थे—जैसे कि कोई अनसुलझा भूमि विवाद, किसी का पेंशन रोका जाना, पुलिस शिकायत की सुनवाई न होना, उचित मूल्य दुकान से गरीबी रेखा के नीचे रहनेवाले लाभार्थियों को आदेशित राशन न मिलना। लेकिन सबसे ज्यादा शिकायतें इस बारे में थीं कि छोटे-छोटे अपराध दुबारा शुरू हो गए हैं और छोटा-मोटा भ्रष्टाचार उसी तरह जमा हुआ है। सरकार जो भी नकद अनुदान देती है उसे पाने के लिए दलाली देनी पड़ती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) बिना घूस दिए दर्ज नहीं की जाती है, जन्म संबंधी कागजात, कुछ भी हथेली गरम किए बिना प्राप्त नहीं किए जा सकते। नकद राशि संबंधी भ्रष्टाचार का प्रति व्यक्ति औसत स्तर नीचा था, पचास इधर, या सौ उधर, वृद्धावस्था पेंशन पाने के हकदार व्यक्ति को प्रत्येक माह 110 रुपए की राशि में से स्थानीय पदाधिकारी को 20 रुपए देने पड़ते थे। लेकिन इस प्रकार का भ्रष्टाचार बड़े व्यापक पैमाने पर सर्वत्र फैला हुआ था और इससे कोई इनकार भी नहीं करता था। प्राय: सरकार की वकालत करनेवाले ही आम भ्रष्टाचार की समस्या को इस परिप्रेक्ष्य में देखने की दलील प्रस्तुत करते थे—लोग पैसा लिये जाने की शिकायत इसलिए कर रहे हैं क्योंकि पैसा दिया जा रहा है, उनका तर्क था, गरीबों के निमित्त सरकार की ओर से घोषित नकद लाभ जनसाधारण तक पहुँच रहे हैं, इसी कारण बीच में छोटी-मोटी चोरी भी होती है। किंतु, जिन लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था कि उनके हाथ में इस तरह अप्रत्याशित नकदी आएगी और उस राशि में से कुछ बहुत मामूली रकम चुरा लिए जाने की शिकायत जो करते हैं, उनके पास असल में उस पैसे का कोई विशेष उपयोग नहीं था। वे शिकायत करने लगे, और भ्रष्टाचार के विरुद्ध चीख-पुकार एक शोला बन गई।

वरिष्ठ अधिकारियों के एक वर्ग ने इस बीमारी का कारण सरकार द्वारा सुपरवाइजरों तथा ओवरसीयरों को बड़े पैमाने पर प्रखंड विकास अधिकारियों (बी.डी.ओ.) के रूप में पदोन्नत किया जाना बतलाया। उनमें से एक ने इसे एक बेसूझ-बूझवाली योजना बताकर इसकी निंदा करते हुए कहा : ये सोचते हैं कि अब उन्हें पैसा बनाने का मौका मिला है; ऐसे लोग, जो बिलकुल कच्चे और अप्रशिक्षित हैं, इस सरकार की व्यापक दृष्टि एवं उद्देश्य की समझ

नहीं रखते हैं, उन्हें मनचाहा मौका मिला है और वे लूटेंगे। जब अधिकारी-वर्ग की सबसे निचली श्रेणी को बी.डी.ओ. का दरजा देने का प्रस्ताव (पहले यह पद सिर्फ किसी आई.ए.एस. अधिकारी या राज्य लोकसेवा आयोग के अधिकारी को दिया जाता था) कैबिनेट में रखा गया, तो सिविल सेवा अधिकारियों ने इसका विरोध किया था। लेकिन नीतीश के तत्कालीन प्रधान सचिव, आर.सी.पी. ने राजनीतिक आधारों पर इस प्रस्ताव के सर्मथन में जबरदस्त दलील पेश की—इससे नीतीश के मताधार में व्यापक विस्तार होगा।

तथापि जहाँ तक उच्च अधिकारी-वर्ग द्वारा व्यक्त आपत्तियों का संबंध है ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने वर्ग की तरफदारी कर रहे थे। उच्च अधिकारी-वर्ग का तर्क था कि इस वर्ग के सभी सदस्य दुराचरण से मुक्त हैं, जबकि सच यह नहीं। यह ठीक है कि नीतीश के शासनकाल में चारा घोटाला जैसा कोई बड़ा वित्तीय घोटाला, या बाढ़ राहत संबंधी सहायता राशि की लूट नहीं हुई है जैसी लालू के शासन के दौरान हुई थी। कोई भी, यहाँ तक कि नीतीश के दुश्मन भी, यह नहीं कह सकते कि नीतीश ने कभी किसी से पैसा खाया है। नीतीश की व्यक्तिगत ईमानदारी सदैव बेदाग रही है, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि नीतीश ने अपने ऐसे मंत्रियों और वरिष्ठ अधिकारियों की बैठकों की अध्यक्षता नहीं की है, या उनकी अनदेखी नहीं की है जो अवैध तरीके से पैसा बनाते रहे हैं।

यह सच है कि विशेषकर, नितांत आरंभिक स्तर पर, भ्रष्टाचार बहुत व्यापक हो गया है; क्योंकि छोटे-से-छोटे काम के लिए—एफ.आई.आर. दर्ज कराने, ड्राईविंग लाइसेंस बनवाने, पेंशन का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने जैसे कार्य आदि के लिए—घूस देनी पड़ती है। मामूली रकम, किंतु अवैध, घूस, रिश्वत। इस स्थिति के लिए एक कारण यह भी बताया जाता है कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों में काफी बढ़ोतरी के चलते पैसा बनाने के बगली स्रोत भी बहुत बढ़ गए हैं : सड़कों, पुलों, नहरों, नालियों एवं छोटे पुलों, औषधालयों आदि के निर्माण पर भारी सरकारी रकम खर्च होती है। ऐसे अधिकांश कार्य स्थानीय ठेकेदारों के मार्फत सौंपे जाते हैं जो कमीशन के बिना काम करना जानते ही नहीं हैं। लेकिन इस दलील को भ्रष्ट प्रथा के बचाव में किसी भी प्रकार उचित नहीं ठहराया जा सकता। पारदर्शिता संबंधी उपायों के लिए नीतीश की चीख-चिल्लाहट खुद इस बात का संकेत देती है कि ऊपर से नीचे तक शासनिक आदेशों में सुधार करने की स्पष्ट आवश्यकता है।

इससे भी अधिक चौंकानेवाली बात यह है कि नीतीश के दूसरे कार्यकाल के दौरान अपराध में वृद्धि हुई है। सन् 2006 से 2012 तक संज्ञेय अपराधों की संख्या 1,18,176 से बढ़कर 1,60,271 हो गई; इसी अवधि के दौरान, हत्याओं के 3,566 मामले सामने आए जबकि पिछली संख्या 3,225 थी; चोरी के अपराधों की संख्या 13,092 से बढ़कर 17,667 हो गई; असांप्रदायिक दंगों की संख्या 8,541 के मुकाबले 10,871 हुई, अपहरण के मामले 2,301 से बढ़कर 4,737 हुए। हो क्या रहा था? बिहार के शीर्षस्थ पुलिस अधिकारी कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दे सके। उनका कहना था कि नीतीश के पहले कार्यकाल में जो सख्ती थी, उस सख्ती का शनैः-शनैः ढीले पड़ जाना 'स्वाभाविक' था। ऐसा होता है, उन्होंने तर्क दिया, बहुत सख्ती से काम लेने के बाद आप निश्चिंत और आश्वस्त हो जाते हैं और सोचते हैं कि अब आप थोड़ा आराम लेने के हकदार हैं। कुछ लोगों का विचार था कि अपराधों की सूचना दर्ज कराने के लिए अधिकारिक लोगों द्वारा हिम्मत करके आगे आने के कारण अपराधों की संख्या बढ़ी हुई नजर आती है। लेकिन जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि अपराध के विरुद्ध कड़ी काररवाई में ढील आ जाना पुलिस रिकॉर्ड के मुताबिक कोई मतिभ्रम नहीं था; सख्ती का ग्राफ यदि दक्षिण की ओर बढ़ रहा था, तो अपराधों के आँकड़े उत्तर में तेजी से बढ़ रहे थे।

एक दिन ऐसा भी आया जब नीतीश के अधीन कानून व्यवस्था में लोगों का विश्वास बुरी तरह हिल गया। 1

जनवरी, 2012 को, गुंडों की टोली के सरगना, ब्रह्मेश्वर सिंह 'मुखिया' नाम के एक भूमिहार को, पटना के पश्चिम में 60 किलोमीटर दूर, आरा में सुबह सैर करते समय गोली से उड़ा दिया गया। मुखिया किसी समय उच्च जातियों से निकले चिरकुट लुटेरों से बनी रणवीर सेना का सरदार था। रणवीर सेना ने सन् 1995 और 2000 के बीच करीब 200 भूमिहीन दलितों की हत्या की थी। सन् 2002 में मुखिया गिरफ्तार हुआ, उस पर हत्या का आरोप लगा, फिर उसे जमानत पर छोड़ दिया गया। मुखिया की खूनी हत्या के फलस्वरूप आरा के आस-पास भोजपुर के भूमिहारों में जबरदस्त आक्रोश फैल गया। उन्होंने मृतक को स्थानीय गांधी घोषित कर दिया और उस क्षेत्र के सबसे ज्यादा खतरनाक सामूहिक हत्यारे की रक्षा न कर पाने के लिए सरकार के खिलाफ अपना गुस्सा निकाला।

खलबली की खबर पटना तक पहुँची, सरकार सकते में आ गई। नीलमणि के रिटायरमेंट के बाद, बिहार के पुलिस प्रमुख बने अभयानंद को शांति बहाल करने के लिए तुरंत आरा भेजा गया। अभयानंद इस कार्य के लिए दो तरह से योग्य था—एक तो वह सम्मानित पुलिस अधिकारी था और दूसरे, वह एक भूमिहार था। आरा में पाँव रखते ही उसके साथ धक्का-मुक्की हुई, लोगों ने उस पर खीझ उतारी और उसकी खिल्ली उड़ाई। अभयानंद ने भूमिहारों के बड़े-बूढ़ों से बातचीत की और पटना लौटकर नीतीश को स्थिति से अवगत कराते हुए यह रिपोर्ट दी : वे मुखिया के पार्थिव शरीर को एक शोभा-यात्रा की शक्ल में आरा से पटना लाना चाहते हैं और उसका अंतिम संस्कार बाँस घाट पर करना चाहते हैं, क्योंकि यह स्थान अंत्येष्टि के लिए परंपरागत रूप से अधिक अच्छा माना जाता है। लेकिन गंगा तो आरा के बहुत निकट बहती है और वहाँ सोन नदी भी है, नीतीश ने आशंका व्यक्त करते हुए अभयानंद से पूछा कि फिर क्यों वे लोग पटना आने का आग्रह कर रहे हैं? अभयानंद ने अपने बॉस को सलाह दी कि उस समुदाय में बहुत आक्रोश है, वे मुखिया को एक शानदार विदाई देना चाहते हैं। उन्हें इसकी अनुमति दे दें। इससे उनका क्रोध कुछ हद तक ठंडा हो जाएगा।

नीतीश के अनेक घनिष्ठ सहायक एवं सहयोगी, जिनमें आर.सी.पी. भी शामिल था, अभयानंद की सलाह से सहमत नहीं थे। उनको डर था कि इस प्रकार का जुलूस हिंसा में बदल सकता है। एक-दो ने तो अभयानंद को साफ शब्दों में कह दिया कि मुखिया ऐसा कोई लोकहितैषी नहीं था जिसके लिए लंबी शोभा-यात्रा निकालने की मंजूरी दी जाए; अगर वह कुछ था, तो एक आरोपित हत्यारा था। अभयानंद ने उलटकर तर्क किया। उन्होंने शांतिपूर्ण रहने का वादा किया है, उसने कहा। नीतीश मान गए। उन्होंने गलती से विश्वास कर लिया कि उनके पुलिस प्रमुख ने अपने बिरादरी बंधुओं के साथ कोई शांति समझौता कर लिया है।

अगली सुबह, मुखिया की शवशत्रा के साथ-साथ विनाशकारी तत्त्वों का रेला भी पटना चला आया और दिन भर उसने ऐसा आतंक मचाया जो पटनावासियों ने शायद पहले कभी नहीं देखा था। दुकानों में लूट-खसोट हुई, सड़क किनारे सामान बेचनेवालों को लूटा, पुलिस और आम लोगों की गाड़ियों को फूँक डाला, कार्यालयों तथा व्यापारिक भवनों पर धावा बोला और राह चलते लोगों को मारा-पीटा, पुलिसवालों का मजाक उड़ाया और संवाददाताओं तथा फोटो खींचनेवालों की पिटाई की; उनमें से पंद्रह को उस शाम अस्पताल में भरती होना पड़ा। 'आरा के गांधी' के समर्थकों ने अपने गुमराह संत को उचित विदा दी और पटना को अपनी जबरदस्त युद्धप्रियता का स्वाद चखाया। अभयानंद का पुलिस बल, हाथ बाँधे, विनाशलीला होते देखता रहा। पुलिस बल को कड़ी ताकीद थी कि चाहे जितना उकसाने की कोशिश की जाए, उन्हें हस्तक्षेप नहीं करना है। पुलिस-बल मुखिया की शवयात्रा के रक्षार्थ बाँस घाट तक गया, जहाँ अभयानंद द्वारा मृतक को सम्मान सलामी देने का आदेश दिया गया।

अभयानंद को तुरंत बरखास्त करने के लिए जबरदस्त शोर उठा। अपराध बढ़ रहे हैं, बैंकों को लूटा जा रहा है, बलात्कार की घटनाएँ आए दिन बढ़ती जा रही हैं, नीतीश कुमार की अधिकार यात्रा रैली में रुकावटें डाली गईं,

खगड़िया में काफिले पर पत्थर बरसाए गए। इस पुलिस प्रमुख को कुरसी पर रहने का कोई हक नहीं है। नीतीश ने यह सब सुना। और जैसा कि उनका स्वभाव है, कुछ देर उन्होंने सोच-विचार किया और फिर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाए। अभयानंद की विफलताओं की आलोचना तो उन्होंने अकेले में की और बड़बड़ाए भी, लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं किया।

सन् 2013 के ग्रीष्मकाल के दौरान गया में महाबोधि प्रांगण में निम्न तीव्रता के कई बम-धमाके होने की घटना के बाद अभयानंद को पद से हटाने के लिए नीतीश पर दबाव बढ़ने लगा। फिर, बम विस्फोटों की उस घटना के कुछ ही सप्ताह बाद, सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। बी.जे.पी. को सत्तारूढ़ गठबंधन से अभी हाल ही में अलग किया गया था और इसके कट्टर समर्थक अब गठबंधन की सरकार के अलिखित नियमों का पालन करने की बाध्यता से स्वयं को पूर्णतया मुक्त पा रहे थे। बेतिया में, एक झाँकी को लेकर हिंसा भड़क उठी जिसमें नीतीश को एक ऐसे निराशोन्मत्त राजनीतिज्ञ के रूप में दिखलाया गया था जो मुसलमानों के वोट पाने के लिए इस कदर व्याकुल है कि वह अपनी बेटियाँ भी उन्हें शादी में देने के लिए तैयार बैठा है। यह बात अलग है कि नीतीश की अपनी कोई बेटी नहीं है। खगड़िया में मुर्दा दफनाने के अधिकारों पर भी एक झगड़ा हो गया; नवादा में एक ढाबे में दो गुटों के बीच भड़की बहस में दो लोगों की जान चली जाने के कारण कई दिनों तक प्रचंड तनाव बना रहा। सत्तारूढ़ गठबंधन से हटा दिए जाने के बाद बी.जे.पी. के नेतृत्व में जो भीषण आक्रोश था उसके कारण यह हिंसा भड़की हो, यह तो स्पष्ट नहीं कहा जा सक ता, लेकिन बी.जे.पी. खेमा यह देखकर अत्यंत प्रफुल्लित था कि सांप्रदायवादी उथल-पुथल बिहार में लौट आई है : 'देख लो, हमें इस सरकार से अलग हुए कुछ सप्ताह भी नहीं बीते हैं और अराजकता वापस आ गई है, देख लो, हमारे रहते स्थिति क्या थी और अब क्या है!'

इस कटाक्ष का भी नीतीश पर इतना असर नहीं पड़ा कि वह अभयानंद के बिहार का डी.जी.पी. बनाए रखने या उसकी जगह किसी और को देने के बारे में कुछ कदम उठाने की सोचते। मुख्यमंत्री के निजी दरबार में प्रायः मौजूद रहनेवाले एक व्यक्ति के मुँह से एक ऐसी बात निकल ही गई जिसमें प्रपंच की गंध थी। आप जानते हैं, उसने अपने अनुमान से कहा, नीतीश भूमिहारों के दबदबे में रहते हैं। वह कहते रहते हैं कि भूमिहार बिहार की सर्वाधिक उद्यमशील बिरादरी है। मुझे संदेह है कि वह शायद इसी कारण से अभयानंद को छूने से हिचकते हैं, इस बात को भली-भाँति समझने के बावजूद कि उसने ठीक से काम नहीं किया है।

दबदबे में? या भय में? या थोड़ा-थोड़ा दोनों में? सन् 2013 के आरंभिक दिनों में, पटना में खान-पान के लिए अत्यंत लोकप्रिय स्थान, 'मेनलैंड चाइना' में एक गोपनीय लंच पर यही चर्चा चल रही थी कि जिस तरह नीतीश ने अभयानंद जैसे ही एक भूमिहार लल्लन सिंह के साथ समझौता किया, कहीं वैसी ही असुरक्षा की भावना अभयानंद को लेकर तो नहीं है नीतीश के मन में?

भूमिहार परंपरागत रूप से बी.जे.पी. के मतदाता थे। वे सामाजिक रूप से प्रभावशाली और राजनीतिक रूप से धौंस दिखानेवाले भी थे। लेकिन बी.जे.पी. को अलग करके, नीतीश क्या भूमिहारों की हमदर्दी बनाए रखने के लिए पीछे झुक रहे थे, भले ही उनका इरादा भूमिहारों का चुनाव संबंधी समर्थन प्राप्त करना न रहा हो, तब भी? क्या वह बौखलाहट में संयम खो बैठने, घेराबंदी के लिए आतुर बी.जे.पी. को उत्पन्न असली चेहरा दिखाने की कोशिश कर रहे थे, क्योंकि बी.जे.पी. ने अब मित्रता का भाव छोड़कर लड़ाकू तेवर दिखलाने शुरू कर दिए थे? अभयानंद एक शांतचित्त, बहुत पढ़ा-लिखा और कुलीन पुलिस अधिकारी था। उसका पिता जगतानंद भी बिहार का पुलिस प्रमुख रह चुका था। पुत्र की पृष्ठभूमि अच्छी थी, वह सूझ-बूझ से काम लेनेवाला पुलिसकर्मी था। जो नई-नई रणनीति बनाने, पुलिसबल को पुनर्गठित करने तथा दंड और अपराध प्रक्रिया संहिताओं की धाराओं के बारे में सोच-विचार

करने में लगा रहता था कि उन धाराओं को कहाँ-कहाँ लागू किया जा सकता है। उसने पुलिस विभाग के बाहर भी नाम कमाया था, अभयानंद अपने खाली समय में अल्पसुविधा प्राप्त परिवारों से आए युवा छात्रों को आई.आई.टी. तथा अन्य तकनीकी संस्थानों में प्रवेश हेतु परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की तैयारी कराया करता था। लेकिन अग्रपंक्ति के एक सिपाही के रूप में, उसके अंदर कुछ ज्वलंत खामियाँ थीं। मुखिया के अंतिम संस्कार पर भड़की अराजकता का सामना करने के लिए उसने कोई कड़ी कारवाई करने के बजाय इतना ही किया कि भूमिहारों द्वारा किए जा रहे उल्लंघनों की वीडियो फिल्म बनवा ली। उसने स्थिति को नियंत्रण में करने की कोई इच्छाशक्ति या दृढ़ता नहीं दिखाई । जुलाई 2013 में छपरा के निकट मशरख में जब तेईस स्कूली बच्चों की कीटनाशक पदार्थ मिश्रित मुफ्त मध्याह्न भोजन खाने से मृत्यु हो गई, तब नीतीश ने अपना संयम तो खोया लेकिन कोई गंभीर कदम नहीं उठाया। जिस व्यक्ति को सर्वत्र सर्वश्रेष्ठ मुख्यमंत्री, आर्थिक नवयुगप्रवर्तक और एक सराहना योग्य भारतीय राजनीतिज्ञ कहा लाने लगा था, लोगों की नजर में अब उसकी यह छवि धूमिल होने लगी थी। बच्चे जब मौत से संघर्ष कर रहे थे और सारा देश देख रहा था, नीतीश ने इस भयावह घटना को एक साजिश करार दे डाला। पश्चात्ताप जाहिर करने या सुधारात्मक कारवाई करने के पहले ही नीतीश ने ऐलान कर दिया कि हमारे शत्रुओं ने हमें बदनाम करने के इरादे से यह घृणित कार्य किया है, हम उनका पर्दाफाश करेंगे। जाँच करने पर पता चला कि यह त्रासद घटना एक घोर लापरवाही का मामला था। खाना कीटनाशकों वाले कनस्तरों में भरकर रखे गए तेल में पकाया गया था, जाँच होने तक इस मामले की जिम्मेदारी सरकार को अपने ऊपर लेनी चाहिए थी। इसके बजाय, मानव संसाधन मंत्री, पी.के. शाही ने बार-बार षड्यंत्र की बात को दोहराया और ऐसा करने में वह पीड़ितों के प्रति झूठी सहानुभूति जताना भी भूल गया। ''हमने पता लगा लिया है कि इस घटना के पीछे लालू के लोगों का हाथ है;'' उसने मीडिया के सामने कहा, ''स्कूल की प्रधानाचार्य का पति एक आर.जे.डी. कार्यकर्ता है। हम जाँच कर रहे हैं, लेकिन आप अपना काम करें और आप जान जाएँगे कि कौन जिम्मेदार हैं।'' ऐसा बेतुका बयान देकर शाही ने सरकार की छवि का कुछ भला नहीं किया।

नीतीश का दूसरा कार्यकाल अच्छा नहीं गया। इसका एक कारण तो यह था कि उनकी तुलना अब उनके परित्यक्त पूर्वाधिकारी लालू यादव से नहीं की जा रही थी। उनके कार्य को उन कसौटियों एवं उन प्रत्याशाओं के अनुसार परखा जा रहा था जो उन्होंने स्वयं निर्धारित की थी। सड़कों का निर्माण किए जाने, शासन की मूल संस्थाओं को पुनर्जीवित करने, कानून का पालन करने की भावना को कुछ हद तक पुन: स्थापित करने, कुछ कल्याणकारी योजनाओं को आरंभ करने के परे, बिहार आगे नहीं बढ़ा था। बड़े उद्योग नहीं आए और छोटे एवं मझोले उद्योगों का आना अप्रैल में बरसात के छींटें पड़ने जैसा था : अर्थात् इनकी गिनती भी नाममात्र थी। निवेश सिर्फ वादे तक सीमित रहा। मुकेश अंबानी (रिलायंस इंडस्ट्रीज के मालिक) पटना आए थे, रुग्ण चीनी मिलों को भविष्य में पुन: चालू करने हेतु 5 करोड़ रुपए का प्रोनोट लिखा और लौट गए, फिर कभी पटना की ओर मुड़कर न देखने के लिए। टाटा गुरप के रतन टाटा ने नीतीश के साथ नाश्ता किया था, उद्योग लगाने की संभावना जताई थी और चले गए; फिर कभी उन्हें बिहार की याद नहीं आई। सन् 2012 तक 96,754 करोड़ रुपए की 172 प्रस्तावित परियोजनाओं में से केवल पंद्रह परियोजनाओं में करीब 700 करोड़ रुपए का निवेश हो पाया था।

उद्योगों के न आने का सबसे बड़ा कारण था बिहार में पर्याप्त बिजली आपूर्ति की गारंटी न मिलना। बड़े उद्योगों के बिना भी, बिहार को कम-से-कम 2,800 मेगावाट बिजली की आवश्यकता थी। बिहार अधिक-से-अधिक 1,300 मेगावाट बिजली दे सकने की क्षमता की तुलना में बहुत कम थी। विद्युत् संयंत्र कभी भी पूरी क्षमता, जो 1855 मेगावाट थी, उस स्थापित क्षमता तक काम नहीं करते थे। राष्ट्रीय सरकारी-क्षेत्र ग्रिडों से जितने वाट बिजली मिलने

का वादा था उसमें आम तौर पर कमी रहती थी। बिजली वितरण के नेटवर्क का बहुत बुरा हाल था। बिजली की आपूर्ति में अधिकतम कमी 50 प्रतिशत तक पहुँच जाती थी। बिहार ठहराव के एक दुश्चक्र में फँसकर रह गया था। उद्योग के बिना बिहार की उन्नति संभव नहीं थी, और बिजली के बिना उद्योगों का आना संभव नहीं था।

नीतीश को अंतत: मतदाताओं से यह दुस्साहसी वादा करना पड़ा कि अगर वह प्रत्येक घर को बिजली मुहैया कराने में नाकाम रहे, तो वह सन् 2015 में उनसे जनादेश माँगने के लिए वापस नहीं आएँगे। सन् 2013 तक उनके अधिकारी-वर्ग तथा राजनीतिक प्रबंधकों को इस निश्चय से कोई हिला नहीं सकता था कि नीतीश अपना वादा पूरा करके रहेंगे, भले ही उन्हें बिजली खरीदने के लिए मंडी में क्यों न जाना पड़े। लेकिन निर्णायक-मंडल को फिलहाल संदेह बना हुआ है कि क्या बिहार इस दशक के मध्य तक भी रोशनी से पूरी तरह जगमगा सकेगा। छठ पर्व बिहारियों का सबसे बड़ा त्योहार कहलाता है और सन् 2013 में इस अवसर पर, बिहार में विद्युत् उत्पादन ने 2,300 मेगावाट के उच्चतम स्तर को छूकर सबको हैरान कर दिया, और सरकार ने अपने इस वादे को दोहराया कि बिजली का पर्याप्त उत्पादन सुनिश्चित करने का लक्ष्य सन् 2015 के विधानसभा चुनावों से काफी पहले हासिल कर लिया जाएगा। बिजली की स्थिति पूरे राज्य में बहुत बेहतर हो गई थी, लेकिन सवाल रह जाता है कि क्या इस स्थिति को आगे भी बनाए रखा जा सकेगा।

इस बीच, होशियार एवं फूँक-फूँककर कदम रखनेवाले, नीतीश ने अपने लिए एक रक्षा कवच गढ़ने का पक्का इरादा कर लिया, ताकि जरूरत पड़ने पर उसकी आड़ ली जा सके। यह था उनका बिहार के लिए विशेष दरजे की माँग को लेकर आरंभ किया गया अधिकार यात्रा आंदोलन; बिहार को यह विशेष दरजा नई दिल्ली से लेना है।

मामला इस प्रकार है : बिहार को सन् 1952 की मालभाड़ा-समकरण नीति के अंतर्गत चालीस साल तक उपनिवेशीय लूट-खसोट जैसा अन्याय सहन करना पड़ा, क्योंकि उक्त नीति के तहत इस तरह की व्यवस्था थी कि राज्य की नैसर्गिक धन-संपत्ति को केंद्रीकृत घटी दरों पर भारत के अन्य भागों में फल-फूल रहे उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ले जाया जा सकता है; सन् 2000 में झारखंड को एक पृथक राज्य बना दिए जाने के कारण बिहार पूर्णतया प्राकृतिक संसाधन-विहीन हो गया; बिहार जनसंख्या की अत्यधिक सघनता तथा अल्प प्रति व्यक्ति आय के बीच दबा हुआ है; बिहार को लगातार बाढ़ एवं अकाल का प्रकोप सहना पड़ता है; बिहार चारों ओर भूमि से घिरा प्रदेश है; बिहार में बिजली की बहुत कमी है; बिहार में उद्योगों का अभाव है। इन सब प्रतिकूल कारणों के बावजूद बिहार ने देश भर में उच्चतम विकास दर हासिल की है, लेकिन इस राज्य का विकास बढ़ते जा रहे ऋणों के बोझ तले इस कदर अवरुद्ध हो गया है कि इसे अपनी वृद्धि दर को आगे भी दो अंकों में बनाए रखने के बावजूद राष्ट्रीय औसत की बराबरी करने के लिए अगले पच्चीस वर्ष तक और संघर्ष करना पड़ेगा। नीतीश ने अधिकार यात्रा के बाद आयोजित सभा में माँग की कि बिहार की शानदार वर्तमान उपलब्धियों का सम्मान किया जाना चाहिए, विगत में बिहार के साथ हुए भेदभाव की क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। बिहार की उपेक्षा आपको महँगी पड़ेगी, क्योंकि अगर पिछड़े प्रदेशों के अपने पाँव पर खड़े होने में मदद नहीं की गई, तो भारत अपनी आर्थिक प्रगति की रफ्तार को बनाए नहीं रख सकेगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि नीतीश ने चीख-चीख कर बता दिया है कि वह बिहार को यहाँ तक तो ले आए हैं लेकिन इससे आगे नहीं ले जा सकते। इसके आगे उन्हें मदद की जरूरत है, जो बिहार का हक है और बहुत समय से बिहार को नहीं मिला है। मदद आती है, तो इसे वह अपनी जीत समझेंगे। अगर नहीं, तो वह निस्सहाय होकर अपने हाथ उठा लेंगे, बिहार के साथ अन्याय होने का शोर मचाएँगे और चुनाव के दौरान में देख लेने की चुनौती उछालेंगे।

ऐसा नहीं है कि विशेष दरजा मिल जाने से बिहार की या नीतीश की सारी समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी, लेकिन कहते हैं न 'कि डूबते को तिनके का सहारा चाहिए,' नीतीश वही कर रहे हैं।

❑

11

बड़ी लड़ाई

शासन करने का सपना भी उखड़ी-उखड़ी नींद के कारण बीच-बीच में टूट-टूट गया। बिहार के एन.डी.ए. साझेदारों के बीच में अविश्वास पसर गया था। प्रेम की संधि में तीन पक्ष शामिल थे; यह संधि अव्यवहार्य साबित हुई। क्योंकि नीतीश को नरेंद्र मोदी का नाम लेने से भी चिढ़ थी, वह उसे 'थर्ड पार्टी यानी तृतीय पक्ष' कहते थे। ''हम इतने वर्ष बहुत अच्छे जोड़ीदार बने रहे, हमारे मध्य कोई समस्या नहीं थी। जैसे ही थर्ड पार्टी ने हस्तक्षेप करना शुरू किया, हम अलग-अलग हो गए।'' उनके विचार में, मोदी का साया बिहार में जे.डी.यू.-बी.जे.पी. गठबंधन का एक अवैध उल्लंघन था।

सन् 2012 के मध्य में एक दिन गया के निकट एक रैली में, नरेंद्र मोदी के पोस्टर नीतीश के मंच के नीचे लगे हुए नजर आए जिन पर लिखा था : 'देश का नेता कैसा हो? नरेंद्र मोदी जैसा हो!' यह देख नीतीश स्तब्ध रह गए और गुस्से से तमतमा गए। वह अब तक यही प्रकट करते आ रहे थे कि सब कुछ ठीक है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि सब कुछ ठीक नहीं है। दिनों-दिन मोदी के ऊपर बहस अधिक तीखी और पैनी हो रही थी, जाहिर होने लगी थी। मंत्रिगण कैबिनेट की बैठक छोड़कर बाहर निकल आते और नरेंद्र मोदी का विरोध करने के लिए अपने मुख्यमंत्री की खिल्ली उड़ाने लगते। दो पार्टियों के प्रवक्ता टेलीविजन बहस में एक-दूसरे से भिड़ गए। लोक दृष्टि में नीतीश की सरकार समाधान निकालने लायक नहीं रही, सरकार खुद ही एक समस्या नजर आने लगी।

लकिन नीतीश को ऐसी स्थिति आने की शंका पहले से थी। जे.डी.यू. में संघ परिवार को जितनी अच्छी तरह वह पहचानते थे, कोई और नहीं पहचानता था। वह समझ गए कि फूट के आसार पक्के हो गए हैं और अब इसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा। वह समझ गए कि मोदी की लहर बी.जे.पी. के ऊपर इस कदर छा गई है कि अब उसके कम होने की कोई गुंजाइश नहीं है। फूट पड़ने से एक वर्ष से भी अधिक समय पहले आरंभ की गई अधिकार यात्रा से उन्होंने बी.जे.पी. को यूँ ही बाहर नहीं रखा था; यह उनका दूसरे कार्यकाल का लोक हस्ताक्षर अभियान था। वह चाहते तो इसे एन.डी.ए. मंच बना सकते थे, लेकिन वह नहीं चाहते थे कि श्रेय बी.जे.पी. को जाए। अपनी अधिकार-यात्रा के जरिए उन्होंने राज्य भर के जे.डी.यू. कार्यकर्ताओं को जोड़ा, उन्हें एक उद्देश्य दिया और बी.जे.पी. तथा एन.डी.ए. से अलग एक पहचान दी। वह उन्हें अलग होने के लिए तैयार कर रहे थे।

सन् 2005 में, नीतीश ने चुनाव-प्रचार में सहायता करने हेतु नरेंद्र मोदी को बिहार आने से मना कर दिया था; उस समय भी मोदी की मदद लेने से इनकार कर दिया था जब उस साल आयोजित पहले दो विधानसभा चुनावों में नीतीश को पर्याप्त सीटें नहीं मिली थीं। पराजय के बावजूद उन्हें गुजरात के उभरते सितारे को बिहार बुलाने का लालच लुभा नहीं पाया, भले ही मोदी के आने से एन.डी.ए. के खाते में सीटों की संख्या बढ़ने की संभावना कितनी भी रही हो। बी.जे.पी. के अंदर कुछ लोगों ने यह सुझाव दिया भी था, लेकिन नीतीश ने उस सुझाव को सिरे से खारिज कर दिया। नीतीश का मानना था कि सन् 2002 में मोदी के रहते गुजरात में मुसलिम-विरोधी हिंसा का भड़कना और बाद में उसके बचाव में इस प्रकार की दलील पेश करना—''यह तो गोधरा में हिंदू तीर्थयात्रियों से भरे रेल के डिब्बे को जला डालने के विरोध में भड़की एक 'स्वाभाविक प्रतिक्रिया' थी।''—सन् 2004 में वाजेपेयी के हाथों से सत्ता निकल जाने का कारण बना। नीतीश 2000 में वाजपेयी की एन.डी.ए. सरकार में एक कैबिनेट मंत्री थे, लेकिन उन्होंने गुजरात की उस घटना पर अपने पद से इस्तीफा नहीं दिया। उन्होंने केवल अपनी आपत्तियों से

वाजपेयी को अवगत कराया था, और उस पर वाजपेयी द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया बेहद कमजोर थी, स्थिति सुधारने हेतु किया गया इशारा भी स्पष्ट नहीं था। वाजपेयी ने मोदी को उस 'राजधर्म' निभाने की याद दिलाई थी, जिसके उल्लेख महान् हिंदू वीरगाथाओं में मिलते हैं। तो भी, बी.जे.पी. ने मोदी की भर्त्सना करना तो दूर, उलटे मोदी का समर्थन किया और गुजरात में उसकी फूट डालने की राजनीति का उत्सव मनाया। सन् 2004 के राष्ट्रीय चुनावों में हार के बाद नीतीश ने एकांत में तर्क कि या कि मोदी ने उस ढाँचे को बुरी तरह बिखेर दिया है जो वाजपेयी ने बड़े मनोयोग एवं परिश्रम से बनाया था—एक उदार, धर्मनिरपेक्ष शासन का ढाँचा। ''पूरे हिंदुस्तान के मुसलमान और धर्मनिरपेक्ष तबकों में भय और असुरक्षा का मेसेज चला गया मोदी की वजह से, एन.डी.ए. को हानि हुई, डिवाइसिव नेता इस देश को एक्सेप्टेबॅल नहीं है।''

सत्ता में आने से पहले उन्होंने एक बात का निश्चय कर लिया था कि वह मोदी को बिहार के आस-पास भी कभी नहीं आने देंगे। नीतीश की इस बारे में बिलकुल अलग सोच थी कि मौका मिलने पर उन्हें राज्य को किस तरह चलाना है। नवंबर 2005 में जब उन्हें अवसर प्राप्त हुआ उन्होंने गठबंधन संबंधी मानदंड बी.जे.पी. को पेश कर दिया। गठबंधन एक विशेष व्यवस्था के तहत चलेगा : यह गठबंधन धर्मनिरपेक्ष विचारों और लोहिया के समर्थक समाजवादियों द्वारा अपनाई गई नीतियों से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा; अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करना और उनको प्रोत्साहन देना इसके नीति-निदेशक सिद्धांतों में शामिल रहेगा; बी.जे.पी. या संघ हिंदुत्व एजेंडा पर जोर नहीं देगा; बिहार नरेंद्र मोदी की राजनीति से दूर रहेगा।

नि:संदेह, इसमें से कुछ भी लिखा नहीं गया था; राजनीतिक पार्टियों के बीच ऐसे समझौते विरले ही लिखित होते हैं। ये विश्वास पत्र होते हैं जिन पर जनता की अदालत मुहर लगाती है। अरुण जेटली और सुशील मोदी, जो विश्वविद्यालय के दिनों से नीतीश के मित्र रहे हैं और जिसने वित्त-विभाग के साथ उप मुख्यमंत्री पद को सुशोभित किया, बी.जे.पी. की ओर से इस गठबंधन करार के निष्पादक होंगे। नीतीश खुद एन.डी.ए. के छोटे भाई की भूमिका निभाने के करार पर पहले ही हस्ताक्षर कर चुके थे, उन्होंने साथ में यह भी वचन दिया कि केंद्र में सत्ता पुन: प्राप्त करने के लिए बी.जे.पी. की राष्ट्रीय अभिलाषा को पूरा करने में वह उसका साथ निभाएँगे। नीतीश और जेटली के बीच संजय झा मध्यस्थ का रोल अदा कर रहा था, संदेश इधर से उधर पहुँचाने और मतभेदों को दूर करने में मददगार बना हुआ था।

नीतीश के पहले कार्यकाल में कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। जेटली और सुशील मोदी गठबंधन के अलिखित समझौते के प्रति ईमानदार बने रहे, हालाँकि कुछ ऐसे अवसर भी उपस्थित हुए जब वे झिकझिक कर सकते थे। नीतीश ने सन् 1989 में भागलपुर में मुसलिम-विरोधी हिंसा के दोषी लोगों के विरुद्ध काररवाई का पिटारा खोल दिया, क्योंकि भागलपुर में जो हुआ वह बी.जे.पी. के अयोध्या मंदिर आंदोलन का परिणाम था। अपराधियों को खोज निकाला गया और उन्हें दंड दिया गया। भयत्रस्त मुसलमानों द्वारा बेची गई संपत्ति उन्हें वापस दिलाई गई या उसके बदले नकद मुआवजा उन्हें दिया गया। सरकार ने अल्पसंख्यक कल्याण कार्यक्रमों के लिए भी अपना बटुआ ढीला छोड़ दिया। वित्त मंत्री के रूप में सुशील मोदी ने चेकों पर दस्तख्त किए : बी.जे.पी. के इतिहास में, सुशील मोदी का नाम उस व्यक्ति के रूप में सबसे ऊपर होगा जिसने मुसलमानों को सबसे अधिक आर्थिक सहायता राशि का वितरण किया। और यह काम उन्होंने किसी भी प्रकार की शिकायत के बगैर किया, हालाँकि अकसर उन्हें पार्टी के लोगों से झिड़कियाँ भी सहनी पड़ीं।

वे झिड़कियाँ धीरे-धीरे डाँट-फटकार में बदल गईं। सन् 2008 में दिल्ली में नेतृत्व संबंधी एक बैठक के दौरान, कुछ सहयोगियों ने सुशील मोदी को पार्टी के उद्देश्यों की अपेक्षा नीतीश की 'चापलूसी का साधन' बना देने के

लिए बहुत बुरा-भला कहा। मुख्यमंत्री अपने राजनीतिक कार्यक्रमों और उद्‌देश्य को आगे बढ़ाने में लगा हुआ है, उन्होंने शिकायत की, और बी.जे.पी. मूकदर्शक बनी खड़ी है, न कुछ कहने योग्य रह गई है और न अपना विस्तार करने योग्य, इसे नीतीश की 'बी' टीम बनाकर रख दिया गया है। इनमें से कुछ आवाजें बिहार के पार्टी नेताओं की थीं, जैसे कि भागलपुर के सांसद शाहनवाज हुसैन और राजीव प्रताप रूडी। सुशील मोदी ने उनकी ओर पलटकर देखा और संदेह व्यक्त किया कि पार्टी बिहार गठबंधन का हिस्सा बने रहना चाहती है या नहीं? उन्होंने स्पष्ट किया कि किस व्यवस्था एवं समझौते के तहत सरकार को चलाया जा रहा है और उन्होंने अपने सहयोगियों से यहाँ तक कह दिया कि वह उन शर्तों के बारे में उनके विचार जानना चाहेंगे, वे शर्तें उन्हें उचित प्रतीत होती हैं या नहीं। उनके आलोचक चुप हो गए, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि वे खुश थे। वे नीतीश के नियंत्रण में रहने के बजाय नीतीश को नियंत्रण में रखना चाहते थे, बिहार के निर्णयन कार्य, उसके राजनीतिक व्याख्यान में अहम् भूमिका चाहते थे। नीतीश उनसे परामर्श करने की भी परवाह नहीं करते थे, सरकार और शासन संबंधी मसलों पर उनकी बात सुनना तो दूर की बात थी। वह बिहार में सुशील मोदी, और दिल्ली में अरुण जेटली के साथ विचार-विमर्श करके काम चलाने में ही खुश थे। ''बिहार में एक सत्तारूढ़ गठबंधन का हिस्सा होने का अर्थ ही क्या रह गया है,'' उस दौरान बी.जे.पी. के एक सांसद ने अकेले में शिकायत के लहजे में मुझसे कहा, ''जब मैं एक मामूली नौकरी के लिए किसी की सिफारिश नहीं कर सकता, एक छोटा-मोटा ठेका किसी को नहीं दिला सकता, परेशान करनेवाले किसी अधिकारी का तबादला नहीं करा सकता, तो यह गठबंधन किस काम का? नीतीश ने इस गठबंधन का अपहरण कर लिया है और हमारे नेताओं ने नीतीश को ऐसा करने दिया है।''

इनके साथी पटना में भी थे, इतने ही चिढ़े हुए, लेकिन शिकायत करने का उनका अपना ही एक विशेष मजेदार लहजा था : हम लोग इस सरकार के नपुंसक दूल्हा हैं। दो विधायक—रामेश्वर चौरसिया और नितिन नवीन तथा नीतीश सरकार में मंत्री, गिरिराज सिंह जैसे कुछ लोगों ने गुजरात सरकार के मेहमानों के रूप में गांधीनगर और अहमदाबाद में समय बिताना शुरू कर दिया था। नीतीश को अच्छी तरह समझ रहे थे कि वे इतनी लंबी उड़ान क्यों भर रहे हैं और क्या संदेश लेकर लौट रहे हैं। नरेंद्र मोदी का खेल चल रहा था, और नीतीश को इसके बारे में सोचना भी पसंद नहीं था। लेकिन उन्होंने अपना संयम बनाए रखा, यह सोचकर कि जब तक गुजरात के मुख्यमंत्री की ओर से सीधे तौर पर कोई छेड़छाड़ नहीं की जाती, उन्हें परेशान होने की क्या आवश्यकता है। लेकिन 10 मई, 2009 को स्थिति पलट गई।

एन.डी.ए. द्वारा एल.के. आडवाणी को प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में पेश किए जाने का प्रयास जोरों पर था और इसी सिलसिले में लोकसभा के लिए प्रचार अभियान के दौरान सन् 2009 में लुधियाना में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया था। सभी घटक दलों के प्रमुख नेताओं तथा एन.डी.ए. मुख्यमंत्रियों को नियंत्रण-पत्र भेजे गए थे। तेलंगाना राष्ट्र समिति के.के. चंद्रशेखर राव ने, यू.पी.ए. से अलग होने के बाद उस सभा में भाग लेने का फैसला किया। इसके कारण एन.डी.ए. की समग्र मंडली में नया जोश भर गया था।

नीतीश को इस रैली में शामिल होने से हिचकिचाहट हो रही थी, क्योंकि वह नरेंद्र मोदी के साथ मंच साझा करने के खिलाफ थे। उन्होंने जे.डी.यू. अध्यक्ष शरद यादव को जाने के लिए अनुरोध किया। रैली से दो दिन पहले, जेटली ने नीतीश को फोन करके बताया कि आडवाणी की तीव्र इच्छा है कि 'आप जरूर आएँ'। नीतीश ने तत्काल कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। तत्पश्चात्, जेटली ने संजय झा को इस काम पर लगा दिया और संजय झा अंततः नीतीश को मनाने में कामयाब हो गया। उसने नीतीश को सुझाव दिया कि वे चार्टर्ड फ्लाइट से जाएँगे, रैली में हिस्सा लेंगे और उसी शाम वापस आ जाएँगे। बस, इतनी सी बात है। आडवाणीजी खुश हो जाएँगे।

नीतीश और संजय झा विमान से चंडीगढ़ गए, वहाँ से उन्होंने सड़क के रास्ते रैली मैदान के लिए प्रस्थान किया। अकाली मेजबानों ने लुधियाना रैली का आयोजन पंजाबी-शैली में किया था। यह एक बड़ा और बहुत शोर-शराबे वाला कार्यक्रम था—ढोल बज रहे थे, तलवारें चमक रही थीं, भाँगड़ा नर्तक पूरा जोश दिखा रहे थे। नीतीश ने तेजी से चलकर, भीड़ भरे मंच पर मुश्किल से कदम रखा ही था कि नरेंद्र मोदी दूसरी ओर से फुरती से आए, उनका हाथ पकड़ा और ऊपर उठा दिया, ताकि सब देख सकें। भीड़ में खुशी की लहर दौड़ गई, तालियों की गड़गड़ाहट का शोर नीतीश को ऐसा लगा होगा जैसे कोई मक्खी कान में घुसकर फड़फड़ा रही हो। कैमरे निकल आए, तसवीरें खिंची और नीतीश को माहौल अवश्य ही ऐसा महसूस हुआ होगा जैसे उन पर निशाना साधा जा रहा है। सबकुछ क्षण भर में हो गया। इससे पहले कि नीतीश अपना होश सँभाल पाते, मोदी ने उन्हें छोड़ दिया और मंच पर अपने निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गए।

रैली के बाद नीतीश जब संजय झा के साथ वापस कार में जाकर बैठे, उन्होंने संजय झा को लताड़ लगाना शुरू कर दिया। उनका गुस्सा फूट पड़ रहा था। उन्होंने कहा, ''इसीलिए यहाँ लाए थे? आप जानते थे क्या होने वाला है, प्रोवोक किया गया है मुझे और आपने मुझे फँसाया।'' संजय झा ने नीतीश को शांत करने का प्रयास किया, लेकिन नीतीश कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थे। ''सब डेलिबरेट है, डिजाइन है, कल अखबार में वही फोटो छपेगा, जो उस आदमी ने मेरा हाथ पकड़ के जबरदस्ती खिंचवाया। इस तरह की राजनीति के मैं सख्त खिलाफ हूँ।''

अब संजय झा के चौंकने की बारी थी। उसको नरेंद्र मोदी के प्रति नीतीश की गहरी नफरत का अंदाजा नहीं था; उनके गुस्से से घृणा टपक रही थी।

पटना पहुँचने तक दोनों के बीच फिर कोई बात नहीं हुई। अगली सुबह, जब संजय झा ने सभी अखबारों में छपी उस तसवीर को देखा, तब उसे महसूस हुआ कि नीतीश को जाल में फँसाने के लिए उसका इस्तेमाल किया गया है। उस तसवीर में नीतीश हाथ लहराते हुए दिख रहे थे। मोदी का लुधियाना में नीतीश का हाथ पकड़ना नीतीश पर प्रेत-छाया की तरह मँडराता रहेगा और बहुत जल्दी गठबंधन पर उसका असर दिखाई देगा।

जून 2010 में, बी.जे.पी. की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की पटना में होनेवाली बैठक से कुछ ही दिन पहले, शहर की दीवारों पर पोस्टर लगने शुरू हो गए जिनमें नरेंद्र मोदी के प्रति आभार प्रकट किया गया था, क्योंकि मोदी ने कोसी बाढ़ पीड़ितों की राहत के लिए 5 करोड़ रुपए का महादान देने का ऐलान किया था। सत्र की पूर्व संध्या पर, पटना के महत्त्वपूर्ण चौराहों पर बिहार की जनता की ओर से मोदी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने हेतु बड़े-बड़े विज्ञापन-पट्ट खड़े कर दिए गए। इनमें से अनेक होर्डिंग स्थानीय बी.जे.पी. यूनिट से संबद्ध रामेश्वर चौरसिया तथा नितिन नवीन जैसे छोटे नेताओं द्वारा प्रायोजित थे। बहुत वर्षों में मोदी पहली बार पटना आ रहे थे; मोदी ने गुजरात में लगातार चुनाव जीते थे, और पार्टी के सभी लोग उनके अभिनंदन का आयोजन कर रहे थे। उत्साह का समंदर उमड़ पड़ रहा था।

बी.जे.पी. का सत्र आरंभ होने के समय नीतीश पटना में नहीं थे, वह अपनी विकास यात्रा के लंबे चरण पर उत्तर बिहार गए हुए थे, क्योंकि विधानसभा चुनाव कुछ ही माह के अंदर होने थे और उसके लिए जमीन तैयार करनी थी। नीतीश ने सुशील मोदी को आश्वासन दिया था कि वह वापस आने पर बी.जे.पी. नेताओं को पटना से जाने से पहले डिनर पर आमंत्रित करेंगे। सुशील मोदी ने डिनर के आयोजन हेतु चाणक्य होटल का सुझाव दिया था, जहाँ बी.जे.पी. के अनेक नेता ठहरे हुए थे। नीतीश ने सुझाव नहीं माना, और कहा कि वह उन्हें घर पर भोजन कराएँगे, होटल निर्वैयक्तिक होते हैं, वहाँ अपनेपन के साथ चर्चा नहीं हो पाती है। 1, अणे मार्ग के हरे-भरे मैदान पर एक शामियाना लगवाया गया था; किचन के लिए पीछे की जगह दी गई थी और ठेठ बिहारी पकवानों की एक सूची—

बालूशाही, बेलग्रामी, खाजा, मालपुआ; और बेशक, लिट्टी तथा चोखा भी। मौर्य होटल के फुर्तीले सर्वकार्य-प्रभारी, बी.डी. सिंह को एक पाँच-सितारा मीनू तथा सर्विस की जिम्मेदारी सौंप दी गई थी और बता दिया गया था कि पटना लौटने के बाद, मुख्यमंत्री खुद सारी तैयारियों का मुआयना करेंगे।

निमंत्रण-पत्र छपकर आ गए थे, और बी.जे.पी. राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रत्येक सदस्य और स्तरीय नेताओं के नाम व्यक्तिगत रूप से लिखे गए थे। डिनर से एक शाम पहले, सभी निमंत्रण-पत्र एक पुराने बी.जे.पी. कार्यकर्ता, श्याम जाजू को वितरण हेतु थमा दिए गए थे।

जब अगले दिन, प्रात:कालीन समाचार-पत्र नीतीश के सामने लाए गए, तो उनकी नजर जिस पर पड़ी उसके कारण उन्हें इतना गुस्सा आया कि वह हाथ में चाय का प्याला सीधा नहीं पकड़ सके। पटना के दो सर्वाधिक प्रचलित हिंदी समाचार-पत्र दैनिक-जागरण और हिंदुस्तान में पूरे-पूरे पृष्ठ के विज्ञापन छापकर बाढ़ राहत कोष में 5 करेड़ रुपए की राशि दान करने हेतु नरेंद्र मोदी को धन्यवाद ज्ञापित किया गया था। विज्ञापन देने वालों का नाम नहीं छपा था, नाम के स्थान पर 'बिहार के मित्र' अंकित था। विज्ञापन जारी करनेवाली एजेंसी का नाम एक्सप्रेशन ऐड्स था जो पटना में थी और जिसका मालिक अरिंदम गुहा था, वह जनसंपर्क का काम करता था और मीडिया एवं सरकारी महकमों में वह एक सुपरिचित नाम था। कोई भी उस विज्ञापन देनेवाले का चेहरा छिपा नहीं सकता था। उस पर शब्दों में जो कुछ छपा था अप्रासंगिक था—नीतीश के दिल को सबसे ज्यादा चोट उस तसवीर को देखकर पहुँची जिसमें नरेंद्र मोदी और नीतीश कुमार को एक-दूसरे की हथेली जकड़े ऊपर उठाए दिखाया गया था।

नीतीश के विचार में यह एक निहायत घटिया और आक्रामक व्यंग्य था; एक उजड्ड मजाक से भी बुरा, एक मखौल। नरेंद्र मोदी पटना आया था और एक ही बार में नीतीश पर दो निशाने साधकर चला गया। मोदी ने उस तसवीर को छपवाने के लिए पैसे दिए थे, जिसमें नीतीश को जबरदस्ती घसीटा गया और जिसे वह अपनी स्मृति से हमेशा के लिए मिटा देना चाहते थे। मोदी ने बाढ़ राहत की खातिर दिए चंदे का एक उपकार के रूप में प्रचार करके बिहार का अनादर किया था।

अपने क्र ोधावेश से बाहर निकलने के बाद नीतीश ने सबसे पहला काम यह किया कि संजय झा को बुलवाया और उससे कहा कि अब डिनर नहीं होगा, निमंत्रण-पत्र वापस ले लो। नीतीश के सुर से संजय झा समझ गया कि यह बहस करने या कारण जानने का समय नहीं है। मुख्यमंत्री ने अपने घरेलू स्टाफ को आशियाना उखड़वाने और रसोई बंद कर देने का आदेश दे दिया।

सुशील मोदी को पता लग गया कि बी.जे.पी. की कार्यकारिणी का सत्र चलते नीतीश ने डिनर का कार्यक्रम रद्द कर दिया है। समाचार-पत्रों में छपे विज्ञापन को देखकर और उस पर अपनी टिप्पणी देने के बाद, उन्हें नीतीश के इस कदम से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उनकी सबसे बुरी आशंकाएँ सही साबित होने जा रही थीं, वह भी चुनाव से कुछ ही समय पहले। वह समझ गए कि गठबंधन साझेदारों के बीच घमासान की तैयारी हो चुकी है। उन्होंने तो सच में पार्टी नेताओं को सलाह दी थी कि सत्र का आयोजन पटना में किया जाए, वह नहीं चाहते थे कि चुनाव सिर पर आ जाने और सारा ध्यान उधर लगा होने के दौरान उन्हें गठबंधन के अंदर कलह और क्लेश से निपटना पड़े। बी.जे.पी. ने इसी कारण पटना को चुना था—चुनाव से पहले एक सत्र का आयोजन पार्टी के कार्यकर्ताओं का उत्साहवर्धक सिद्ध होगा। सुशील मोदी ने मध्यस्थों के जरिए नीतीश को मनाने का प्रयास किया, लेकिन प्रयास निष्फल रहा। गलत मेसेज चला जाएगा चुनाव से पहले, उन्होंने तर्क किया। उपमुख्यमंत्री को मालूम था कि कोई लाभ नहीं होगा। वह जानते थे कि उनका बॉस एक जिद्दी इनसान है, अब जबकि उन्होंने एक निश्चय कर लिया है, तो उससे वह पीछे नहीं हटेंगे। नीतीश अक्खड़ और अचल थे। ''गलत मेसेज चला गया है, आप लोगों ने भेजा

है, मेरी जानकारी के बिना यह सब छपा कैसे?''

उस दुपहरी नीतीश ने बी.जे.पी. सत्र के बारे में समाचार देने के वास्ते दिल्ली से आए पत्रकारों को आकस्मिक बातचीत के लिए चाणक्य होटल में लंच पर बुलाया। वह जब आए तो खिन्न और चिंतित लग रहे थे, आते ही उन्होंने बता दिया कि बी.जे.पी. नेताओं को डिनर का निमंत्रण उन्होंने वापस ले लिया है और वह इस बात की जाँच कराएँगे कि उक्त विज्ञापन प्रकाशित कैसे हुआ। ''सीरियस मामला है, इसकी तहकीकात होगी।''

नीतीश ने इस प्रकरण में राजनीतिक अनैतिकता के परे, एक हलका सा, कानूनी उल्लंघनों का मामला भी बनता देखा। भुगतान के आधार पर कोई भी सामग्री, मुख्यमंत्री के चित्र सहित, तब तक प्रकाशित नहीं की जानी चाहिए जब तक कि उसे सरकार के सूचना विभाग की मंजूरी न मिली हो। मध्य-स्तर के एक पुलिस अधिकारी, राकेश दुबे को यह पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गई कि उस विज्ञापन के प्रकाशन के पीछे किन लोगों का हाथ है। दुबे को इस छानबीन के पीछे सूरत तक जाना पड़ा लेकिन सभी रास्ते पूरी तरह बंद कर दिए गए थे। दुबे को इतनी जानकारी मिल सकी कि अब से पहले कभी सुनने में नहीं आए 'बिहार के मित्र' (फ्रेंड्स ऑफ बिहार) नामक संगठन के समर्थकों में नवसारी से बी.जे.पी. सासंद, सी.आर. पाटिल शामिल था और ऐक्सप्रेसन एड्स के जरिए, फीस के रूप में, 30 लाख रुपए की रकम चुकाई गई थी।

इस मोड़ पर नीतीश ने बी.जे.पी. के साथ संबंध-विच्छेद के साथ समझौता कर लिया। उन्होंने अपने विश्वासपात्रों को बताया कि उन्हें चुनाव लड़ने की तैयारी अपने बूते पर करनी होगी। बी.जे.पी. खेमे पर निराशा के बादल उतर आए थे; तत्कालीन पार्टी अध्यक्ष नितिन गडकरी, एल.के. आडवाणी और अरुण जेटली समेत अनेक शीर्षस्थ नेताओं के विचार में, नरेंद्र मोदी ने अनावश्यक भड़काऊ काम किया था, गठबंधन को आघात पहुँचाया था। यह अच्छी खबर नहीं थी। वे सन् 2009 में लगातार दूसरी बार केंद्र में कांग्रेस से मात खा गए थे। नरेंद्र मोदी के इस आपत्तिजनक आचरण के फलस्वरूप एक और महत्त्वपूर्ण राज्य उनके हाथ से जा सकता था।

लेकिन नरेंद्र मोदी नहीं समझ सके कि उस विज्ञापन के ऊपर इतना बवाल उठने का कारण क्या है। मोदी ने नीतीश के अशिष्ट आचरण पर अपनी खीझ उतारी—उस रात मोदी ने अपने कुछ वफादार कार्यकर्ताओं के सामने कहा कि डिनर का निमंत्रण वापस लेना एक बहुत घटिया सोच और असभ्यता का व्यवहार नहीं तो क्या है, और यह भी, कि मैं एन.डी.ए. के शासनाधीन एक राज्य में क्यों नहीं आ सकता हूँ? इन सवालों को उठाने का यही उचित समय है। अगले दिन मोदी ने गांधी मैदान में पार्टी की एक रैली को संबोधित करते हुए गुजरात-बिहार की एक तुलना में कहा, ''आप लोग बिहार में अभी उस खंदक से निकल नहीं पाए हैं जिसमें आप अब तक पड़े रहे हैं। गुजरात आएँ और देखें, हमने गुजरात को कितना समृद्ध बना दिया है...।'' वह नीतीश कोनीचा दिखाने की कोशिश कर रहे थे। मोदी ने नीतीश का नाम लिये बिना अपना भाषण समाप्त कर दिया।

अगले कुछ दिनों तक यही लगता रहा कि अब अलगाव अथवा विभाजन को टालना असंभव है। नीतीश ने घोषणा कर दी कि 5 करोड़ रुपए का चेक उन्होंने गुजरात को वापस भेज दिया है। बी.जे.पी. नेतृत्व को यह बात चुभ गई, उनकी ओर से प्रतिक्रिया आई : यह कोई व्यक्तिगत चेक नहीं था, गडकरी ने जे.डी.यू. अध्यक्ष शरद यादव के साथ दिल्ली में एक मुलाकात के दौरान जवाब में कहा, ''यह चेक बिहार की जनता के लिए था, नीतीश हमें अपमानित कर रहा है।'' शरद यादव गंभीर और शांत बने रहे, नीतीश की ओर से बोलने का उन्हें अधिकार नहीं था। उन्होंने बी.जे.पी. अध्यक्ष से सिर्फ इतना कहा, ''आपका गुस्सा कुछ अनुचित प्रतीत होता है, क्योंकि गुजरात सरकार ने उस चेक को उस दिन ही अपने खाते में जमा करा दिया जिस दिन चेक वापस आया था।''

नीतीश पटना के निकट अपनी विकास यात्रा निकालने का प्रचार पहले से कर चुके थे और इस विकास यात्रा में

वह अपने दो कैबिनेट सहयोगियों—बी.जे.पी. के सुशील मोदी और नंद किशोर यादव को अपने साथ ले जानेवाले थे। पार्टी ने उन दोनों को सलाह दी कि जब तक झगड़ा निपट नहीं जाता, उन्हें नहीं जाना चाहिए। सुशील मोदी बीमार पड़ गए और नंद किशोर को अचानक कोई जरूरी व्यक्तिगत काम निकल आया। दोनों में से कोई नहीं गया। संकट काबू से बाहर हो रहा था। सरकार ठहरी हुई थी। कोई भी हल निकालने के लिए तैयार नहीं था। एक व्यक्ति जो दोनों पक्षों के बीच शांति बहाल करने की पहल कर सकता था, वह व्यक्ति अरुण जेटली अधिवेशन के तत्काल बाद अपने परिवार के साथ छुट्टी मनाने क्रूज पर बहुत दूर गया हुआ था।

संजय झा ने स्वयं को निरुपाय और दुविधाग्रस्त पाया। नेताओं के बीच इस तरह की खुंदक उसने पहली बार देखी थी, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। बहुत कोशिश करने के बाद, नीतीश द्वारा नरेंद्र मोदी का चेक लौटाने का निर्णय किए जाने के बाद स्थिति बहुत बिगड़ गई है। छोटी-मोटी बात पर हुए झगड़े के बारे में सुनकर अरुण जेटली का मन खट्टा हो गया और उनके अवकाश के आनंद में खलल पड़ गया—दो व्यक्तियों के आपसी दंभ के बीच टक्कर के कारण सफल गठबंधन को टूटने के कारगार पर क्यों पहुँचना चाहिए, लोग एन.डी.ए. की हँसी उड़ाएँगे, बिहार हमारे हाथ से निकल जाएगा, कुछ करो, मैं समझता हूँ कि अभी भी कुछ किया जा सकता है, कुछ दिनों तक रुके रहो। फोन काटने से पहले, जेटली ने संजय झा के कानों में एक मंत्र छोड़ दिया : जो भी तुम्हारे वश में है करो, लेकिन जब तक मैं वापस नहीं आ जाता, नीतीश का पक्ष मत छोड़ना, उसकी बात सुनो, उसे उलझाए रखो, पटना छोड़कर मत जाना।

जेटली ने उनके बाद फोन घुमाए होंगे। जब दो-चार दिन के बाद बिहार के बी.जे.पी. नेता दिल्ली में गडकरी के फीरोजशाह रोड स्थित निवास पर इकठ्ठा हुए, उस समय मिजाज कुछ नरम था। उनमें से कुछ—शाहनवाज, रूडी, गिरिराज सिंह—अभी भी अलग होने पर जोर दे रहे थे : हम देखेंगे, क्या होता है, नीतीश को गठबंधन को इस तरह बंदी बनाकर रखने की इजाजत नहीं दी जा सकती, नीतीश को हमें यह कहने का क्या अधिकार है कि बिहार कौन जाएगा और कौन नहीं जाएगा। सुशील ने जमकर उनके साथ बहस की। गठबंधन बी.जे.पी. के लिए बहुत महत्त्व रखता है, और नीतीश इस गठबंधन का अभिषिक्त नेता है, हमें उनकी आपत्तियों के लिए गुंजाइश रखनी होगी। वह दिन सुशील मोदी के नाम रहा। पटना लौटने पर, सुशील मोदी ने तत्काल बी.जे.पी. अध्यक्ष, सी.पी. ठाकुर के घर पर एक बैठक बुलाई। अनंत कुमार और धर्मेंद्र प्रधान दिल्ली से आए, बिहार बी.जे.पी. के कई शीर्षस्थ नेताओं को भी बुलाया गया। जे.डी.यू. की ओर से केवल नीतीश मौजूद थे, लेकिन वह अकेले ही कई के बराबर थे। ''दीवार की लिखावट पढ़ लीजिए, आप लोग जमीन की राजनीति करते हैं तो समझ लीजिए कि बिहार का इतिहास बदलने जा रहा है और आप लोग उसको बरबाद करने पर तुले हैं। अगर यह अलायंस रहा तो 180-200 सीट आएँगी चुनाव में, और आप इस गठबंधन को तोड़ के वह मौका गँवा भी सकते हैं।''

बी.जे.पी. ने कुछ नहीं कहा। गठबंधन और सरकार दोनों बच गए। उसके बाद से नरेंद्र मोदी की बिहार में कोई भी राजनीतिक भूमिका नहीं रही। बैठक से वापस आने के बाद, नीतीश ने उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे अपने सहयोगियों से भेंट की और लजाते हुए उनसे कहा, ''मैं उम्मीद करता हूँ मैंने कुछ ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बोला कि हमें 180-200 के करीब सीटें मिलेंगी। ऐसे दावे करना मेरे स्वभाव में नहीं है, लेकिन मैं रोष में था, और मैं उनको चेता देना चाहता था कि वे क्या दाँव पर लगा रहे हैं।''

कुछ दिन बाद जब एक पत्रकार ने उनको यह बताने के लिए उकसाया कि क्या वह आगामी चुनाव में प्रचार के वास्ते नरेंद्र मोदी को आमंत्रित करेंगे, तो इस सवाल के जवाब में नीतीश ने नरेंद्र मोदी पर तिरछा निशाना साधते हुए कहा, ''बिहार में एक ही मोदी काफी है।'' उनका तात्पर्य उपमुख्यमंत्री सुशील मोदी से था।

चुनाव में गठबंधन को 206 सीटें प्राप्त हुईं। यह एक बहुत भारी जीत थी। जे.डी.यू. को 115 सीटें मिलीं, यह संख्या अकेले जे.डी.यू. के बहुमत के बहुत करीब थी। नीतीश की कुरसी पहले से भी अधिक सुरक्षित हो गई। लेकिन जब नरेंद्र मोदी ने दो साल बाद गुजरात में लगातार तीसरी बार चुनाव जीता, मोदी के तेवर अचानक बहुत आक्रामक हो गए और उन्होंने दूर से ही नीतीश की आराम-कुरसी की तरफ तीर चलाने शुरू कर दिए।

सत्रह वर्ष से चले आ रहे गठबंधन से जून 2013 में रिश्ता तोड़ देने और बी.जे.पी. को उसके सबसे बड़े राजनीतिक साझेदार से अलग कर देने के करीब एक माह पहले, मैं नीतीश से मिलने 1, अणे मार्ग गया था। हरे-भरे मैदान पर उनके मनपसंद बुर्ज के नीचे हमने करीब दो घंटे बातचीत में बिताए। यह एक गरमी-भरी दोपहर थी, लेकिन कुमार को यही अड्डा अधिक पसंद था। सिर के ऊपर रिवॉल्विंग पंखे चल रहे थे। बीच में पड़ी मेज पर चीनी-मिट्टी के कटोरों में चटपटी मसालेदार चीजें रखी हुई थीं—सरसों के तेल में झटपट तैयार करके गरमागरम लाए मुरमुरे, साथ में प्याज और हरी मिर्च, भुने हुए चने, उबली मटर। उनके दो सबसे विश्वसनीय राजनीतिक सहायक—आर.सी.पी. सिंह और संजय झा—और एक वरिष्ठ पदाधिकारी नीतीश के साथ बैठे हुए थे और जब मैं पहुँचा तथा मैंने उनकी बगल में कुरसी ली, हम लोगों का एक अर्ध-वृत्त बन गया।

नीतीश आराम के मूड में थे और खुलकर बात कर रहे थे, फिर भी यह बताना नहीं भूले कि इस बातचीत को अनौपचारिक रखा जाए, तत्काल छापने के लिए नहीं है यह बातचीत। चाय? जवाब का इंतजार किए बिना ही उन्होंने एक वरदीधारी सेवक को ताजा चाय लाने का इशारा कर दिया।

बातचीत का दौर जल्दी ही नरेंद्र मोदी की तरफ मुड़ गया। अगर मोदी का नाम नेतृत्व के लिए प्रस्तावित होता है, तब भी क्या आप गठबंधन बनाए रखना चाहेंगे? मोदी का नाम लेते ही नीतीश की भंगिमा बदल गई। उनकी भौंह में बल पड़ गए। उनकी दाढ़ी के बाल काँटों की तरह खड़े हो गए। उनके होंठ कस गए। आँखें चश्मे के शीशों से बाहर निकलने जैसी हो गईं। उन्होंने अपनी कुरसी की बाँहों को पकड़ा, इरादतन कुछ सोच-विचार किया, फिर एक साधारण घोषणापरक वाक्य में अपनी बात को इस तरह समेटा, ''उस व्यक्ति पर कोई कंप्रोमाइज नहीं होगा। जो व्यक्ति देश के लोगों में भय पैदा करता हो, उसकी महत्त्वाकांक्षा के लिए अपने उसूलों को सती नहीं कर सकता। आप किसी भ्रम में मत रहिए।''

सन् 2009 में एन.डी.ए. की पराजय से नीतीश पूरी तरह आश्वस्त हो गए थे कि नरेंद्र मोदी जिस प्रकार की राजनीति करता है उसका परिणाम नुकसानदेह होता है; लोगों ने, कुल मिलाकर, संप्रदायवादी भावनाओं को भड़कानेवाली राजनीति के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया। उन्होंने वरुण गांधी को उन लोगों की सूची में जोड़ दिया, जिन्होंने अल्पसंख्यकों के प्रति आक्रामक रुख अपनाकर एन.डी.ए. को क्षति पहुँचाई थी। नीतीश का कहना था कि उत्तर प्रदेश में वरुण द्वारा पीलीभीत प्रचार अभियान में दिए गए जहरीले भाषणों के कारण ही मुसलमान मतदाता कांग्रेस की तरफ चले गए थे जिसका नतीजा यह हुआ कि सारी संभावनाओं के विपरीत उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को बाईस लोकसभा सीटें मिल गईं। नीतीश किसी भी तरह बिहार में इस प्रकार का जहर उगलने की इजाजत देने के लिए तैयार नहीं थे। नीतीश ने एक के बाद एक शर्त रखी, एक के बाद एक आखिरी तारीख निश्चित की, और मोदी का नाम लिये बगैर मोदी की संप्रदायवादी छवि पर तीखे तीर छोड़े। वह लगातार अपने गुजराती 'हेय व्यक्ति' के चारों तरफ हॉफ्ब्रोहॉस का खेल रचते रहे। जो भी व्यक्ति म्यूनिख के मेरीनप्लाटज शहरी चौक के आस-पास बंद गलियों में हॉफ्ब्रोहॉस की तलाश में जाता है वह निश्चित रूप से उसके बदनाम इतिहास से प्रेरित होकर वहाँ जाता है। हॉफ्ब्रोहॉस वह बीयरहॉल है जहाँ एडोल्फ हिटलर ने 1920 में नात्शी पार्टी का गठन किया था। हॉफ्ब्रोहॉस के विशाल बवेरियन आर्केड्स और ओक उद्यानों का उपयोग 1930 व 1940 के दशक के

दौरान बिजली की रफ्तार से गुजरे बारह-चौदह वर्ष तक नात्शी तौर-तरीकों और मूल्यों का जश्न मनाने के लिए किया जाता रहा; यही वह समय था जिसने दुनिया का चेहरा बदल डाला। आज भी लोग वहाँ खाने-पीने और मजा उठाने के लिए जाते हैं। ऊँची-ऊँची मेहराबदार दीवारों के घेरे में वाद्यवृंदों का जीवंत स्वर गूँजता है और लोग उन्मत्त होकर नृत्य करते हैं, झूमते हैं, बीयर सर्व करनेवाली सेविकाएँ बेंचों के बीच से लहराते हुए निकलती हैं और पीनेवालों के मगों में बीयर उड़ेलती हैं। फिर भी, वहाँ मौजूद कोई भी आदमी आज हिटलर के बारे में बात करना तो क्या, चुपके से भी 'एडोल्फ' का नाम नहीं लेता है, जिसके कारण इस प्रतिष्ठित भवन को भारी बदनामी मिली।

यह एक अजीब आत्म-अस्वीकरण है, सजगता और ज्ञान के बीच जन्मा एक विचित्र ढोंग। हॉफ्ब्रोहॉस, अपने पर थोपे गए तमाम स्मृति लोक के बावजूद, हिटलर के प्रति एक स्मारक जैसा है लेकिन कोई भी वहाँ उसका नाम नहीं लेता है। नरेंद्र मोदी के लिए कितने भी सर्वनामों और विशेषणों का प्रयोग क्यों न किया गया हो, फिर भी यही व्यक्ति था जिसका विरोध हमेशा नीतीश की जुबान पर रहता था, लेकिन उन्होंने कभी उसका नाम अपने होंठों पर नहीं आने दिया। अकेले में, उन्होंने बी.जे.पी. नेताओं पर जरूर अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया था, ताकि वे सब मिलकर मोदी को मंच के केंद्र में आने से रोक सकें। करीब एक वर्ष पहले, गडकरी ने नीतीश को आश्वासन दिया था कि बी.जे.पी. उनसे परामर्श किए बिना कुछ नहीं करेगी, बल्कि यहाँ तक विश्वास दिलाया था कि एन.डी.ए. के किसी भी भावी नेता का चयन गठबंधन में सर्वसम्मति से ही किया जाएगा। लेकिन कुछ ही समय बाद गडकरी को अध्यक्ष पद से मुक्त कर दिया गया और इसके साथ ही उनके आश्वासन का भी अस्तित्व समाप्त हो गया ।

मुश्किल से एक माह पहले ही, अप्रैल में, नीतीश ने दिल्ली में अपनी पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के एक सत्र में मोदी के विरुद्ध आवाज उठाई थी : ''यह देश एक मॉडल से नहीं चलनेवाला, इस देश में बहुत सारे लोगों को, बहुत मॉडल्स के, साथ लेके चलना पड़ेगा।'' उन्होंने बी.जे.पी. को एक अंतिम समय-सीमा दी : दिसंबर 2013 तक पी.एम. के लिए अपने आदमी का नाम बताएँ।

मैंने नीतीश को सन् 2011 के शरदकाल की याद दिलाई जब सहरसा में हमारी भेंट हुई थी। क्या नरेंद्र मोदी को लेकर उनकी चिंताएँ तभी पुनर्प्रकट नहीं होने लगी थीं? उन्होंने 'दि टेलिग्राफ' के लिए एक भेंटवार्त्ता में मुझे बताया था : ''एन.डी.ए. का नेता साफ-सुथरी और धर्मनिरपेक्ष छविवाला कोई व्यक्ति होना चाहिए, बल्कि वह साथ चलनेवाले लोगों के स्वीकार्य होना चाहिए; हम एक बहुलवादी देश में रहते हैं और हम उन मान्यताओं, मूल्यों का सम्मान करते हैं।'' तब वह पहली बार बोले थे कि उनके विचार में आदर्श क्या है, वह क्या चाहते हैं, क्या होना चाहिए, बजाय इसके कि क्या नहीं होना चाहिए। मेरे यह पूछने पर कि क्या वह नरेंद्र मोदी को खारिज कर रहे हैं, उनका जबाव था कि वह किसी का नाम लेना नहीं चाहते, : मैंने कभी किसी का नाम नहीं लिया, व्यक्तियों पर मत जाओ, यह देखो कि उनका महत्त्व क्या है और वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं। हम सर्किट हाउस में डिनर टेबल चले गए, और मैंने इस बार, अनौपचारिक रूप से, दोबारा पूछा कि क्या उनका इशारा मोदी की तरफ था। उन्होंने फिर कहा कि वह नाम नहीं लेंगे, साथ में यह भी जोड़ दिया, बुद्धिमान को इशारा काफी है। मुझे आभास हो गया, उनका संकेत साफ तौर पर वर्तमान संगत की तरफ नहीं था जब उन्होंने वह बात कही; वह बी.जे.पी. के शीर्षस्थ नेताओं को एक संदेश भेज रहे थे।

कुछ माह उपरांत, जून 2012 में 'दि इकोनॉमिक टाइम्स' के पी.आर. रमेश और अशोक के. मिश्र को दिए एक इंटरव्यू में नीतीश ने सहरसा में रखी गई अपनी शर्तों के साथ एक और महत्त्वपूर्ण शर्त जोड़ दी : सन् 2014 के आम चुनावों के पहले बी.जे.पी. को एन.डी.ए. साझेदारों के साथ परामर्श करना चाहिए और प्रधानमंत्री पद के लिए अपने प्रत्याशी का नाम घोषित करना चाहिए। उनका संदेश स्पष्ट था : वह बी.जे.पी. के साथ लटके रहने, और

जब समय न बचे तब, अंतिम क्षणों में नरेंद्र मोदी को एन.डी.ए. साझेदारों पर थोप दिए जाने के खिलाफ थे। उनको एक नया सिर दर्द सताने लगा था। नीतीश ने नरेंद्र मोदी को बिहार से तो परे कर दिया था, लेकिन अगर वह दिल्ली में उनका बड़ा साहब बन गया तब क्या होगा? उसे भावी प्रधानमंत्री कहलाने, या फिर एन.डी.ए. की ओर से प्रधानमंत्री पद के लिए नामजद किए जाने की स्थिति में क्या होगा?

वह उस स्थिति में नहीं पड़ना चाहेंगे। डेढ़ दशक से भी अधिक समय तक करीबी मित्र बने रहकर, नीतीश इतना तो अच्छी तरह समझ ही गए थे कि बी.जे.पी. और संघ किस तरह काम करते हैं। वाजपेयी सरकार में वर्षों तक मंत्री रहने के दौरान, उनको संघ परिवार के मुखियाओं-निष्क्रिय परिचितों, जानकारों, मित्रों, एल.के. आडवाणी, अरुण जेटली, नितिन गडकरी जैसे महानुभावों के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ था। कुछ ही समय पहले, उन्होंने जेटली के विश्वासपात्र और गठबंधन के महत्त्वपूर्ण मध्यस्थ, संजय झा को भी अपनी तरफ खींच लिया था। सुशील मोदी और सरजू राय को वह तब से जानते थे जब वे विश्वविद्यालय के छात्र थे। राय ने राँची को अपना अड्डा बना लिया था। और वह अब झारखंड में बी.जे.पी. के लिए काम कर रहे थे, लेकिन वह बीच-बीच में उनसे संपर्क करते रहते थे। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि राय कभी भी बी.जे.पी. के उद्देश्यों के प्रति निष्ठावान न रहे हों, किंतु वह एक बहुत ही भद्र किस्म के इनसान थे, एक ऐसे व्यक्ति थे जो मित्रों और मित्रता का सम्मान करना जानता है। राय ने जे.डी.यू.-बी.जे.पी. गठबंधन पर खुशी मनाई और माँगे जाने पर दोनों पक्षों को सलाह भी दी। उसने कठोर परिश्रम किया था, और प्राय: अकेले ही, लालू यादव के खिलाफ चारा घोटाले का मामला खड़ा किया था और लालू राज को हटाकर आई सरकार को शुभकामनाएँ अर्पित की थीं। गठबंधन के टूट जाने का उसे दुख हुआ था। लेकिन एक मितभाषी होने के नाते, इसके बारे में उसने खुलकर कभी कुछ नहीं कहा। अत:, बी.जे.पी. के अंदर के घटनाक्रम के बारे में नीतीश को बहुत कुछ जानकारी थी। जितनी जानकारी वह रखते थे उतनी जानकारी तो बी.जे.पी. के अनेक नेताओं को भी नहीं थी कि अंदर जाने क्या हो रहा है। सूचना, औपचारिक, अनौपचारिक, सिर्फ-आप-और-मेरे-बीच चुपके-चुपके और थोड़ा-थोड़ा करके लगातार उनके पास पहुँचती रहती थी और वह उस टुकड़ा-टुकड़ा सूचना को जोड़कर आनेवाली परिस्थितियों का अनुमान लगा लेते थे। उभरती हुई तसवीर के संबंध में उनके मन में कोई भ्रम नहीं था : यह उस आदमी की तसवीर थी जिसका नाम भी लेना उन्हें गवारा न था।

नीतीश ने जमीन पर बी.जे.पी. के बदले सुर के संकेतों को चुनना शुरू कर दिया था। सन् 2010 में जीत हासिल होने के कुछ समय बाद ही बी.जे.पी. कार्यकर्ताओं ने संयुक्त उद्यम से सस्ता काट दिया था और जे.डी.यू. के मुख्य मताधार-दलितों और अपेक्षाकृत कम पिछड़े वर्गों के बीच घुसपैठ करना शुरू कर दिया था। आर.एस.एस. सर संघचालक मोहन भागवत ने बिहार में अधिक समय बिताना आरंभ कर दिया था। वह इस बात से अप्रसन्न थे कि संघ ने पाँच वर्ष तक सत्ता में रहने के बावजूद अपने पंख फैलाने के लिए समय का उपयोग नहीं किया था। संघ ने नीतीश कुमार और जे.डी.यू. के प्रति बहुत अधिक निष्ठा दिखाने का व्यवहार किया था। भागवत द्वारा लगाम कसे जाने के फलस्वरूप, आर.एस.एस. और बी.जे.पी. कार्यकर्ताओं ने राज्य भर में जाति-केंद्रित कार्यक्रमों का आयोजन करना आरंभ कर दिया था, जैसे कि, महादलितों के लिए सामूहिक भोज, धनुकों और केवटों का सम्मेलन, मल्लाहों एवं तांतियों के लिए अधिकार जागरूकता शिविर, कोइरियों के लिए बधाई समारोह का आयोजन। नीतीश ने कुछ समय तक तो इन गतिविधियों को नजरअंदाज किया, फिर अपने गुस्से पर मजाकिया मुखौटा चढ़ाकर सुशील मोदी से शिकायत की, ''यह क्या कर रहे हैं आप लोग? हमारी कांस्टीट्वेंसी और आपकी कांस्टीट्वेंसी का फर्क तो मालूम है, भीतरघात की कोशिश है क्या?''

मोदी ने मजाक में कही गई बात की गंभीरता को हलका करते हुए कहा, ''सिर्फ 'स्थानीय कार्यकर्ताओं का अत्युत्साह' है, और कुछ नहीं।'' किंतु नीतीश का संदेह बना रहा, कुछ तो जरूर पक रहा है- लगता है, नरेंद्र मोदी ने दूर से अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है, प्रॉक्सी एजेंटों के जरिए नीतीश को उकसाने के लिए।

सबसे ज्यादा भड़काऊ भाषा गिरिराज सिंह की थी जो मत्स्य-पालन मंत्री था और अकसर नीतीश का मजाक उड़ाता था तथा नरेंद्र मोदी की बार-बार इतनी अधिक तारीफ किया करता था कि पटना के पत्रकारों ने अब उसकी तरफ ध्यान देना ही बंद कर दिया था। उन्हें संदेह होता था कि नीतीश ऐसे आदमी को अपने कैबिनेट में सहन कैसे कर रहे हैं। लेकिन गिरिराज को बाहर करने का काम नीतीश का नहीं था; उसका चयन बी.जे.पी. ने किया था। ''रोज बेकार बक-बक करता है''... नीतीश उसे गंभीरता से न लेते हुए कहते, लेकिन गिरिराज तो आगे आनेवाली चुनौती का संकेत मात्र था।

नरेंद्र मोदी दिल्ली की ओर बढ़ रहा था और बी.जे.पी. में किसी को उसको रोकने की सामर्थ्य नहीं थी, वे चाहकर भी उसे रोक नहीं सकते थे। घटनाएँ अपने समय से आगे चल रही थीं। नरेंद्र मोदी ने किसी औपचारिक निर्णय से पहले स्वयं को सन् 2014 के लिए बी.जे.पी. का आदमी घोषित कर दिया प्रतीत होता था। वह देश भर में अपना संदेश फैला रहा था; बुद्धिजीवियों, छात्रों और कारोबारी लोगों की विशेष बैठकों को संबोधित कर रहा था। वह राष्ट्रीय अनिवार्यताओं का बखान कर रहा था, यू.पी.ए. की कटु भर्त्सना कर रहा था, देश की सारी बीमारियों के उपचार के लिए गुजरात मॉडल की दुहाई दे रहा था। उसने खुद को मसीहा घोषित कर दिया था।

नीतीश ने बी.जे.पी. से आश्वासन माँगा कि वह, तथा अन्य बहुत से लोग, मोदी के नए रुख का जो अर्थ लगा रहे हैं गलत है, और यह भी कि पार्टी मोदी को अपना चहेता आदमी घोषित करने नहीं जा रही है। वह मध्य अप्रैल में अरुण जेटली से मिले, जेटली के घर में डिनर पर। उन्होंने बी.जे.पी. के नए अध्यक्ष राजनाथ सिंह से भी भेंट की। राजनाथ सिंह ने बस यही कहा कि बी.जे.पी. ने अभी कोई निर्णय नहीं लिया है। जब भी कोई निर्णय लेना होगा, बी.जे.पी. अपने मित्रों से परामर्श करेगी। नीतीश इस धारणा के साथ पटना लौट आए कि बी.जे.पी. के नेतागण उन्हें धोखे में रख रहे हैं।

उन दो मुलाकातों के बाद नीतीश को सबसे ज्यादा जेटली के व्यवहार से ठेस लगी, जो निश्चित रूप से कुछ भी कहने को तैयार नहीं थे, बल्कि उनका जवाब अपारदर्शी एवं समझ के परे था; यह वही इनसान था जिसने गठबंधन को बचाने की खातिर कभी कड़ा संघर्ष किया था, और अब एक निजी आश्वासन देने से भी कतरा रहा था। बिहार के अलिखित समझौते के दूसरे गारंटीकर्ता, सुशील मोदी बी.जे.पी. के प्रति अपनी निष्ठा का वचन दोहराने के लिए अंदर से इतने दबाव में थे कि वह स्वयं बेहद शर्मिंदगी की स्थिति में फँसा हुआ महसूस कर रहे थे। जे.डी.यू. की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक के बाद ही उन्होंने बिहार बी.जे.पी. के एक शीर्षस्थ नेता से कहा, ''इस बात में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, मैं हमेशा संघ में रहा हूँ और संघ से और इस पार्टी से मेरा शव ही बाहर जाएगा।''

सुशील मोदी थोड़े समय में ही लंबा सफर तय कर चुके थे; उस अत्यंत निराशाजनक प्रतिज्ञा के कुछ ही माह पहले, मोदी प्रत्येक अवसर पर नीतीश की तरफ से बचाव में यह कहने से कभी नहीं चूकते थे कि एन.डी.ए. में अनेक नेता हैं जो प्रधानमंत्री बनने की क्षमता रखते हैं और उन दमदार, शीर्षस्थ दावेदारों में नीतीश भी शामिल हैं —''एक अच्छा प्रधानमंत्री बनने की सारी योग्यताएँ उनके पास हैं, इनमें संदेह है?'' अब अचानक उन्हीं के गुजराती नामराशि ने उन्हें सीधे रास्ते पर आ जाने, और नीतीश की योग्यताओं के बारे में चुप्पी साध लेने के लिए विवश कर दिया था।

दिल्ली में उन मुलाकातों के बाद नीतीश ने एक करीबी सहयोगी को बताया कि वह समझ गए थे कि वह जबरदस्ती रास्ता चीरकर सबसे ऊपर की सीढ़ी की ओर बढ़ना चाह रहा है। इस प्रकार की काना-फूसी भी हो रही थी कि नरेंद्र मोदी, इससे पहले कि नीतीश कोई कदम उठाएँ, बिहार में एक हड़ताल कराने की योजना बना रहा है—बी.जे.पी. तब नीतीश को नरेंद्र मोदी का सामना करने की चुनौती देगी और बिहार सरकार से समर्थन वापस खींच लेगी; पहल करने का मौका नीतीश को क्यों दिया जाए, अलग हो जाओ, पहल का मौका छीन लो। मित्र दल हवा के रुख के साथ जा रहे हैं, बहाव को दूसरे से पहले पकड़ने की होड़ लगा रहे हैं। ''मैंने जो सोचा था, हमें उसके पहले ही अपनी योजना के बारे में निर्णय करना होगा,'' नीतीश ने अपने सहायक से कहा, ''परिस्थितियाँ बहुत तेजी से चल रही हैं और हम पीछे छूटना नहीं चाहते।''

जब मैंने मई 2013 में उस शाम उनसे भेंट की, नीतीश उस समय बहुत जल्दी में थे। लेकिन उन्होंने चेहरे पर शांति और संयम का भाव बनाए रखा। मैं कुछ पूछता, उसके पहले ही वह शायद यह भी समझ गए कि मुझे संदेह हो रहा है कि क्या वह हिचक रहे हैं या हिम्मत हार चुके हैं कि वह अपनी धमकी को कुछ दूरी तक तो खींच ले जाएँगे, लेकिन उसके आगे नहीं, क्योंकि बी.जे.पी. से अलग होने की स्थिति में उनकी सरकार कमजोर हो जाएगी और उस विजेता सामाजिक गठबंधन के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे जिसे उन्होंने बड़ी मेहनत से बनाया था। ''ज्यादा मत सोचिए,'' उन्होंने एक असुविधाजनक खामोशी को तोड़ते हुए कहा, ''पत्रकार और विश्लेषक बहुत तरह की अटकल लगाते हैं। कोई अटकल, कोई कैलकुलेशन नहीं है, कुछ मूल्य हैं जिनके सहारे मैं रहा हूँ और जिनको छोड़ूँगा नहीं।...आप देखेंगे'' उन्होंने आगे जोड़ा, ''जब समय आएगा निर्णय आपके सामने होगा।'' वह कोई तारीख या समय-सीमा बताने के लिए तैयार नहीं थे। शायद उन्हें खुद ही अभी तक पता नहीं था।

9 जून की शाम को उन्हें पता चल गया। नरेंद्र मोदी को उस दिन गोवा में सन् 2014 के लिए बी.जे.पी. की प्रचार समिति का अध्यक्ष घोषित कर दिया गया, और राजनाथ सिंह ने उसके बाद एक आम सभा में बताया कि उनकी पार्टी और देश दोनों बहुत 'उत्सुकता से' मोदी के नेतृत्व की ओर देख रहे हैं। नीतीश ने इसे मोदी की ताजपोशी बतलाया।

एक माह के अंदर उन्होंने रिश्ता तोड़ दिया, बी.जे.पी. को दी गई दिसंबर तक की समय-सीमा के छह माह पहले, तब तक पार्टी ने सर्वोच्च ऐलान नहीं किया था। एल.के. आडवाणी ने जिस ढंग से बी.जे.पी. नेताओं को लताड़ लगाई उससे पार्टी सकते में आ गई थी। आडवाणी गोवा नहीं गए; उनके कार्यालय ने सूचित किया कि वह अस्वस्थ हैं और कमजोरी के कारण यात्रा करने में असमर्थ हैं। हो सकता है आडवाणी की ओर से यात्रा रद्द करने का कोई और कारण रहा हो। उनकी नाराजगी का सुराग तब मिला जब उन्होंने मोदी को प्रचार-अभियान समिति का अध्यक्ष चुने जाने के बाद पार्टी के सभी पदों से इस्तीफा देने का पत्र राजनाथ सिंह को भेज दिया और उस पत्र में यह भी लिखा कि पार्टी के नेतागण 'व्यक्तिगत एजेंडा' चला रहे हैं। अगर आडवाणी की तुनकमिजाजी का निशाना नरेंद्र मोदी पर साधा गया था, तो वह काम नहीं आया। असल में, वह निशाना बुरी तरह विफल हो गया। अगर आडवाणी को नई मोदी व्यवस्थानुसार इतने प्रकट रूप से चुप कराया जा सकता था, तो नीतीश किस तरह उसकी तरक्की को रोकने की उम्मीद कर सकते थे।

नीतीश ने 16 जून को बहुत अधिक औपचारिकता का निर्वाह किए बिना गठबंधन तोड़ दिया। वह 1, अणे मार्ग से निकलकर, उस चक्करदार रास्ते से होते हुए, जहाँ डॉ. राजेंद्र प्रसाद की मूर्ति स्थापित है, पटना के राजभवन पहुँचे, और उन्होंने बिहार के राज्यपाल डी.वाई. पाटिल को बता दिया कि वह 19 जून को नया विश्वासमत प्राप्त करेंगे, क्योंकि उन्होंने सभी बी.जे.पी. मंत्रियों को अपनी सरकार से बरखास्त करने और उस पार्टी को विपक्ष की कुरसियों

की तरफ भेजने का निर्णय कर लिया है। आधा घंटे बाद जब वह राजभवन से निकले, उनकी मोटर-गाड़ियों का काफिला समर्थकों की भीड़ के बीच इस कदर घिर गया कि निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा था; उन्होंने बी.जे.पी. को ललकारा कि 'सांप्रदायिक और फूट डालनेवाले' मोदी के नेतृत्व में यह पार्टी सन् 2014 में एक संसदीय बहुमत जीतकर दिखाए। उन्होंने हमें सुहावने सपने दिखाए, वे सोचते हैं हम मूर्ख हैं, हम देख नहीं सकते कि क्या हो रहा है, वे जिसे चाहे नेता बनाकर ले आएँ, मैं उन्हें सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि 272 एक बड़ी संख्या है और वे इस देश पर राज्य करना चाहते हैं।

नीतीश ने इस संकेत को रुखाई से दर-किनार कर दिया कि उन्होंने बी.जे.पी. के साथ 'विश्वासघात' किया है, जिस पार्टी ने अभी तक मोदी का नाम प्रधानमंत्री पद के प्रत्याशी के रूप में घोषित नहीं किया था। ''बी.जे.पी. ने हमें धोखा दिया है,'' उन्होंने कुरद्ध होकर जवाब दिया।

''ताजपोशी हो चुकी है, क्या आप चाहते हैं कि उस घोषणा की तीन सत्य प्रमाणित प्रतियाँ आने तक मैं इंतजार करूँ?'' 19 जून को जब बिहार विधानसभा का सत्र सरकार की शक्ति-परीक्षा हेतु बुलाया गया, नीतीश का संदेह सही साबित हो गया। सदन की काररवाई शुरू होने के पहले ही, बी.जे.पी. बेंचों से 'नरेंद्र मोदी जिंदाबाद, जिंदाबाद, जिंदाबाद' के नारे लगने शुरू हो गए। नीतीश उनके सामने बैठे हुए मुसकरा रहे थे, और जब उनके बोलने की बारी आई, नीतीश ने अपना संदेह सही साबित करने के लिए अपने नए विरोधियों को धन्यवाद दिया।

एन.के. सिंह, जे.डी.यू. सांसद और विश्वासनीय सलाहकार ने पिछले दिन नीतीश को एक रोचक किस्सा सुनाया था और सिंह का कहना था कि उसे तभी विश्वास हो गया था कि गठबंधन का औपचारिक निधन से बहुत पहले ही अंत हो चुका है। गठबंधन भंग होने के तीन रात पहले, सिंह ने कैंब्रिज में विशिष्ट सम्मानित एवं ख्याति-प्राप्त व्यक्तियों के लिए एक डिनर का आयोजन किया था और इस दौरान वह मन में उठ रहा एक घरेलू प्रश्न अमर्त्य सेन से पूछे बिना नहीं रह सके : ''सर, आपके विचारानुसार, नीतीश कुमार के सामने कौन-कौन से विकल्प हैं?''

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित श्री सेन (जो बिहार की नालंदा वर्ल्ड यूनिवर्सिटी परियोजना के भी अनुभवी परामर्शदाता हैं) ने क्षण भर के लिए चिंतन किया, फिर किसी संतवाणी जैसा यह उत्तर दिया : ''सही, नीतीश कुमार के पास कई विकल्प हैं, लेकिन माननीय विकल्प केवल एक है।''

सिंह इंग्लैंड से जब लौटा, उसे पक्का यकीन हो गया था कि अब उसे सत्रह वर्ष पुराने गठबंधन की अंत्येष्टि में हाजिरी लगानी होगी, जो संभवतया सबसे अधिक टिकाऊ और स्थिर समकालीन राजनीतिक गठबंधन था। बिहार गठबंधन के निर्माता और संरक्षक, अरुण जेटली ने कैंब्रिज में आयोजित इसी डिनर में सिंह को एक रहस्यमय विदाई देते हुए, कुछ-कुछ परिहास के लहजे में कहा था, ''हैप्पी डिवोर्स।'' जेटली अन्य बहुत लोगों की अपेक्षा बेहतर जानते थे कि नरेंद्र मोदी और नीतीश कुमार एक ही तालाब की मछलियाँ नहीं हैं।

सच कहें तो, नीतीश कुमार और नरेंद्र मोदी के बीच एक विलक्षण समानता देखी जा सकती है। दोनों ने 1970 के दशक के मध्य में इंदिरा गांधी की सत्तावादी राजनीति के विरोध में जन्मे आंदोलन से प्रेरित होकर राजनीति में कदम रखा और अपनी मेहनत के बल पर धीरे-धीरे आगे बढ़े। दोनों योग्य प्रशासक हैं और उच्चतम स्तर पर दोनों के कार्य की तुलना की जाती है। दोनों को भारत की वेस्टमिंस्टर-शैली की संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपतीय रंग-ढंग के साथ मंच पर अपना प्रभुत्व जमाना अच्छा लगता है; दोनों का प्रदर्शन एकांकी होता है, हालाँकि नीतीश की तुलना में मोदी के तेवर बहुत अधिक धाँसू और आक्रामक होते हैं। व्यक्तिगत रूप से, उन्होंने स्वयं को वस्तुत: भारत की वित्तीय ईमानदारी के निचले स्तर से ऊपर बनाए रखा है। नीतीश अपनी मेज को एक पवित्र स्थान की तरह स्वच्छ रखना पसंद करते हैं। उन्होंने जब सन् 2010 के लिए चुनाव-प्रचार अभियान शुरू किया था, तभी उन्होंने तय कर

लिया था कि वह अपने भ्रमण के लिए मुख्यमंत्री को दी गई किसी भी गाड़ी का इस्तेमाल नहीं करेंगे। एक मिलनसार एवं सफल व्यवसायी तथा नीतीश की पहली सरकार में मंत्री रह चुके, देवेश चंद्र ठाकुर ने नीतीश को एक एस.यू.वी. भेंट करने का फैसला किया, जिसे श्री ठाकुर ने दिल्ली में एक पेशेवर गराज में भेजकर सुसज्जित और बुलेट-प्रूफ करा लिया था। नीतीश ने प्रचार-अभियान के दौरान इस गाड़ी का इस्तेमाल किया। दूसरी बार मुख्यमंत्री पद ग्रहण करने के दिन ही, उन्होंने वह एस.यू.वी. ठाकुर के पोर्टिको में वापस भेज़दी।

जिस देश में वंशवाद और राजनीतिक भाई-भतीजावाद को आगे बढ़ाने का सिलसिला अब केवल नेहरू-गांधी कुटुंब तक ही सीमित नहीं रह गया है, वहाँ इन दोनों व्यक्तियों ने सार्वजनिक क्रिया-कलापों में परिवार से स्वयं को सर्वथा अलग रखा है। दोनों साधारण अर्ध-शहरी पृष्ठभूमि से निकलकर आए हैं, लेकिन दोनों में से किसी ने भी अपने नाते-रिश्तेदारों को आगे बढ़ाने या संरक्षण प्रदान करने हेतु अपनी सफलता का दुरुपयोग नहीं किया है।

लेकिन उनके बीच जो अंतर हैं वे भी बहुत गहरे और दोषदर्शी हैं। मोदी की राजनीति के स्तर अखेदसूचक होते हैं और उनमें प्राय: हिंदू राष्ट्रवाद की आक्रामकता प्रकट होती है जो भारत के 13 प्रतिशत मुसलिम अल्पसंख्यक-वर्ग को आतंकित करती है तथा भारतीय धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था की मौजूदा धारणाओं पर व्यंग्य-बाण छोड़ती है। मोदी को धार्मिक अल्पसंख्यक की धारणा स्वीकार्य नहीं होगी और उनका व्यवहार भारतीय संविधान के उन उपदेशों, नीति-वचनों के विरोध की एक नई व्यवस्था भी प्रस्तुत करता है। मोदी ने सन् 2002 में हिंदू तीर्थ-यात्रियों से भरे एक रेल-डिब्बे को गोधरा रेलवे स्टेशन को फँूक डालने के परिणामस्वरूप भड़के व्यापक उपद्रव में एक हजार से भी अधिक मुसलमानों के मारे जाने के लिए खेद व्यक्त करने से मना कर दिया। दो साल पहले, मोदी ने मुसलमानी टोपी (स्कॅल कैप) पहनने से इनकार कर दिया था, जो एक मुसलिम मौलवी ने बड़े पैमाने पर आयोजित सद्‍भावना कार्यक्रम के दौरान मोदी को पहनने के लिए पेश की थी।

मोदी के बहुमतवाद का व्यापक प्रचार एक ऐसे सम्राट् की छवि के रूप में किया गया है, जो काम करने में विश्वास करता है और जो अपने शासन के उद्‍देश्य के बीच न तो राजनीतिक रोड़ों को सहन कर सकते हैं और न लाल-फीताशाही को। उन्होंने गुजरात की पहले से बनी हुई शानदार छवि को एक व्यवसाय केंद्र के रूप में आगे बढ़ाया है, भारत के अत्यधिक धनी उद्योग-मालिकों को आकृष्ट किया है, और पश्चिमी राष्ट्रों को उन्होंने अपने विवादास्पद मानव अधिकार संबंधी रिकॉर्ड पर उठाई आपत्तियों में ढील देने के लिए बाध्य कर दिया। इस प्रक्रिया में मोदी ने स्वयं को एक राष्ट्रीय विकल्प के रूप में बखूबी प्रस्तुत किया है, और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की जर्जर गठबंधन सरकार के कार्यकाल में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं नीति-गतिरोध को अपनी छवि की तुलना में बहुत उछाला है, ताकि राजनीतिक टक्कर में उससे अधिकतम फायदा उठाया जा सके।

इसके विपरीत, नीतीश राजनीतिक मंच पर मर्यादित तथा कहीं अधिक समावेशित वचनबद्‍धताओं को सबसे आगे रखते हैं। मोदी जहाँ इसलामी टोपी सबके सामने पहनने से इनकार कर देते हैं, वहीं नीतीश अपना भाषण बीच में ही कुछ देर के लिए रोक देते हैं यदि उस समय आस-पड़ोस में कोई मुअज्जिन नमाज के लिए पुकार लगाता है। वह न केवल भारत के मजहबी अल्पसंख्यकों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का समर्थन करते हैं, बल्कि उन अनेक अल्पसुविधा-प्राप्त वर्गों तथा जातीय समूहों के अधिकारों का भी समर्थन करते हैं, जिन्होंने भारत के विकास के लाभों में अपना हिस्सा पाने के लिए संघर्ष किया है। नीतीश के सैद्‍धांतिक गुरु रहे हैं लोहिया और जे.पी., दोनों अधीनस्थ-समर्थक और धर्मनिरपेक्ष समाजवादी।

भारत की आर्थिक विषमता एक चीज है, जो नीतीश को मोदी की देश को नेतृत्व प्रदान करने की उपयुक्तता—या स्वीकार्यता पर भी सवाल उठाने के लिए उकसाती है। नीतीश जब भारत को एक 'अत्यधिक जटिल' उपक्रम कहते

हैं तो कोई नई बात नहीं कहते हैं, लेकिन वह मोदी के दृष्टिकोण से भिन्न एक विकल्प की बात अवश्य कहते हैं जब वह एक ऐसे निर्धनताग्रस्त और अल्प-विकसित देश की चुनौतियों पर बोलना शुरू करते हैं जिस पर बहुत लोगों ने जल्दबाजी में एशियाई महाशक्ति का ठप्पा लगा दिया है। ''जो भी व्यक्ति भारत को एक बहुत गरीब देश नहीं मानता है, या गरीब जनता के बारे में सहानुभूति नहीं रखता है, वह भारत का नेतृत्व नहीं कर सकता,'' नीतीश ने बहुधा मुझसे कहा है, ''गुजरात सरीखे परंपरागत रूप से समृद्ध राज्य में विकास को आगे बढ़ाने के लिए धक्का लगाना एक बात है, और जिस क्षेत्र में लोगों के वास्ते आधारभूत सुविधाओं एवं मूलभूत आर्थिक मान-मर्यादा का नितांत अभाव हो वहाँ तीव्र विकास के सपने दिखाना बिलकुल दूसरी बात है। गुजरात मॉडल कॉरपोरेट इंडिया का मॉडल है, जो पहले ही उछाल पर है और अपने लिए अधिक-से-अधिक की माँग करता है। वह मॉडल इस देश के विशाल बहुमत के लिए काम नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ हमारे देश में यह तेजी से पनप रहा, समृद्धि की ओर बढ़ रहा। एक स्वार्थी मध्य-वर्ग है, लेकिन वह भारत का मात्र एक छोटा हिस्सा है, भारत नहीं है। फेसबुक और ट्विटर पर बी.जे.पी. का हठी वफादार मतदाता-वर्ग एक पी.आर. कवायद है जो वास्तव में भारत संबंधी प्रवचन के लिए खतरनाक है, यह वास्तविकता से भिन्न एक असंवेदनशील तसवीर पेश करता है।'' वास्तव में, गुजरात के बारे में देख-सुनकर नीतीश को यह सोचने पर विवश होना पड़ता है कि भारत के आर्थिक ढाँचे में ऐसी क्या खराबी है। सापेक्षत:, खुशहाल राज्य बड़ा भारी-भरकम पूँजी-निवेश शीघ्रतर प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, शेष राज्य पीछे रह जाते हैं।

नीतीश की मोदी के साथ दूसरी, तथा अधिक उग्र लड़ाई उनके परस्पर विरोधी सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण के बारे में है। मोदी 'अल्पसंख्यक (अभिप्राय मुसलमानों से है) तुष्टीकरण' का अंत करना चाहते हैं और मोदी की राजनीति उनकी कीमत पर अपने प्रयास में सफल होना चाहती है। नीतीश का खुला मत है कि वह मुसलमानों, तथा अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों को साथ लेकर चलना चाहते हैं, उन्हें राजनीतिक आश्वासन तथा राज्य सहायता दिलाने के पक्षधर हैं। एक समुदाय के रूप में, मुसलमानों ने सबसे ज्यादा कष्ट सहा है, और स्वतंत्र भारत में बार-बार भड़की सांप्रदायिक हिंसा में सबसे ज्यादा नुकसान मुसलमानों का ही हुआ है। एक संसद् सदस्य की हैसियत से, नीतीश ने उस सांप्रदायिक बवंडर का विरोध किया जिसने सन् 1992 में अंतत: अयोध्या में मध्ययुगीन बाबरी मसजिद को चपेट में ले लिया और उसे ध्वस्त करके ही माना। मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने भागलपुर में मुसलिम-विरोधी मार-काट एवं अत्याचार के दोषियों को जल्दी सजा दिलाने के लिए कदम उठाए; यह मामला बहुत समय से लटका हुआ था। ''कुछ इस प्रकार की वचनबद्धताएँ हैं, जिनसे हम मुँह नहीं मोड़ सकते, हम एक बहुलवादी देश में रहते हैं, और सिर्फ धार्मिक अल्पसंख्यक-वर्ग को ही नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से अत्यंत दयनीय स्थिति में जी रहे वर्गों सहित, सभी प्रकार के अल्पसंख्यकों के लिए विशेष सुरक्षा-कवच की गारंटी होनी चाहिए। बड़ों की तरह, बहुसंख्यकों की भी जिम्मेवारी बनती है कि वे अल्पसंख्यकों का ध्यान रखें।

''...भारत के किसी भी नेता के लिए भारत के समस्त वर्गों की स्वीकार्यता प्राप्त करना अनिवार्य है, अन्यथा वह, पुरुष हो या महिला, इस देश की उस धारणा को लेकर नहीं चल पाएगा और विफल हो जाएगा जिसे हम भारत कहते हैं। मैं किसी भी ऐसे आदमी के साथ काम नहीं कर सकता जो उस धारणा को चुनौती देता है, मैं उस व्यक्ति से संघर्ष करूँगा, मैं ऐसी किसी भी धारणा का मुकाबला करूँगा। मैं जो कह रहा हूँ, उसका अभिप्राय केवल सत्ता में बने रहने से नहीं है या केवल बिहार से नहीं है, हमें इस अभिप्राय को भारतीय संस्कारों के संदर्भ में समझना होगा और इस संदर्भ में भी, कि हमारी संस्कृति क्या है, हम किस प्रकार के लोग हैं।'' लेकिन उनके सामने नई चुनौतियाँ हैं, उनकी अपनी चुनौतियाँ, अपने ही घर में—बिहार में।

नीतीश ने बी.जे.पी. को ठुकरा देने के बाद, हो सकता है, महसूस किया हो कि धर्मनिरपेक्षता का एक नया ज्योति-चक्र उनके पीछे चमकने लगा है, लेकिन अपने पाँव के नीचे उनको बर्फ की पतली परत से हो रही बेचैनी भी अवश्य महसूस हुई होगी। यदि बी.जे.पी. से रिश्ता तोड़ना उनके लिए सैद्धांतिक वचनबद्धता का तकाजा था, तो दूसरी तरफ यह अनिश्चितता के भँवर में छलाँग लगाने जैसा भी था। उन्होंने अपने लिए बड़ी ऊँची कसौटी तय की थी, अगर वह कोई खतरनाक सवारी नहीं थी, तो। उन्होंने बिहार विधानसभा में आराम से बैठने का दो-तिहाई आधार खो दिया था और एक ऐसी बड़ी मुसीबत मोल ले ली थी जो मोदी के कंधों पर चढ़ उनके ऊपर धावा बोलने के लिए तेजी से आनेवाली थी। उनके अपने ही जे.डी.यू. गुट को बार-बार और धैर्यपूर्वक यह भरोसा दिलाने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी कि पूरा गुट अपने बूते पर टिका रह सकता है।

नीतीश के सामने पहली चुनौती बिहार विधानसभा में विश्वास प्रस्ताव प्राप्त करने की थी, लेकिन इस कसौटी को पार करना शायद आगे आनेवाली चुनौतियों की तुलना में सबसे आसान था। इसके आगे, नीतीश को अकेले ही विभिन्न मोरचों पर मुकाबला करना था। जे.डी.यू. अब तक पूरी तरह नीतीश के सहारे था, लेकिन अब उसका एक व्यवस्थित ढाँचा तैयार करने तथा उसके अंदर विभिन्न खंडों के बीच समन्वय स्थापित करने की बहुत आवश्यकता थी। प्रशासनिक शिथिलता और व्यापक भ्रष्टाचार का संकट झेल रही सरकार को चुस्त करना तथा कड़वी दवा की तगड़ी खुराक पिलाना जरूरी हो गया था। इस तरह की धारणा पनप रही थी कि नीतीश ने पहले कार्यकाल में जितना अच्छा काम किया था उसकी तुलना में दूसरे कार्यकाल में उनका काम उतना अच्छा नहीं रहा है। उनके मुख्य सलाहकार जोर दे रहे थे कि उन्हें अपना ध्यान पुन: शासन चलाने पर केंद्रित करना चाहिए। अब उन पर दबाव बढ़ जाएगा क्योंकि उन्हें अपने ही दम पर काम करना है और साथ में दिमाग पर यह भी जोर है कि बदले की भावना से भरा बैठा एक शत्रु सबक सिखाने के मौके की तलाश में निकल पड़ा है।

बी.जे.पी. के निष्कासन के बाद बिहार में सांप्रदायिक झड़पों में आई अचानक तेजी शायद इस बात का संकेत था कि बिहार को अब ऐसी घटनाओं का सामना करने के लिए कमर कस लेनी चाहिए। अगस्त के शुरू-शुरू में बेतिया में घटी घटना इशारा कर रही थी कि सांप्रदायिक ताकतें किस प्रकार माहौल बिगाड़ने के इरादे से चिनगारी को पुन: हवा देने के प्रयास में जुट गई हैं। स्थानीय परंपरा के अनुसार सावन माह के आस-पास एक धार्मिक-सांस्कृतिक शोभा-यात्रा निकालने का चलन बीसियों सालों से चला आ रहा था, इस बार वही शोभा-यात्रा अथवा जुलूस अचानक दंगों का कारण कैसे बन गया? बेतिया शोभा-यात्रा में जिस प्रकार की एक फूहड़ झाँकी प्रांतीय व्यंग्य-चित्रण के रूप में इस बार निकाली गई, वैसी मिसाल हाल के वर्षों में बिहार में कभी देखी या सुनी नहीं गई थी। नीतीश कुमार की खिल्ली उड़ाने के इरादे से नीतीश का एक पुतला बनाया गया था और उसके हाथ में एक इश्तहार था जिस पर लिखा गया था : 'अल्पसंख्यक वोटरों को हम अपना दामाद भी बनाने को तैयार हैं।' उसकी बगल में, अल्पसंख्यक वर्ग के मतदाता का एक पुतला खड़ा था। दूसरा पुतला कांग्रेस का प्रतिनिधित्व कर रहा था और उसके इश्तहार में लिखा था : कांग्रेस 'अल्पसंख्यक वोटों की खातिर राष्ट्र को दाँव पर लगाने के लिए' तैयार है।' ऐसी भद्दी झाँकी और ऐसे बेहद घटिया कटाक्ष के पृष्ठपट पर नरेंद्र मोदी को सिंहासन पर बैठे दिखाया गया था जिसका आशय स्पष्ट था : समाधान।

सार्वजनिक रूप से इस प्रकार की भद्दी झाँकियों के प्रदर्शन और व्यंग्य-चित्रण के कारण ही बेतिया की मिली-जुली बस्तियों में सांप्रदायिक झगड़ों को भड़कने का मौका मिला। बेतिया में हुए दंगों के कुछ ही दिन पूर्व कटिहार में मुरदा दफनाने के अधिकारों को लेकर एक झगड़ा हो गया था। बेतिया की घटना के कुछ दिन बाद नवादा के निकट एक ढाबा मीनू (व्यंजन-सूची) के ऊपर छिड़ी बहस के कारण निराधार अफवाह फैल गई, जिसकी वजह से

भड़के आपराधिक एवं हिंसक उन्माद में दो लोगों की जान चली गई।

सांप्रदायिक समझौता हुए करीब एक चौथाई सदी बीत जाने के बाद, सांप्रदायिक लड़ाई-झगड़ों का सिलसिला पूरे बिहार में अचानक शुरू हो गया। दर्जन-भर से ज्यादा जगहों पर बड़े और छोटे झगड़ों की घटनाएँ सामने आई थीं। यह सिर्फ एक संयोग नहीं हो सकता था कि नीतीश ने जब से बी.जे.पी. से नाता तोड़ा था उसी अवधि में ये घटनाएँ हुई थीं।

द्वेष-भाव एवं शत्रुता की लगभग विस्मृत घटनाओं में अचानक आई तेजी का एक कारण नीतीश के दरवाजे के निकट ही अड्डा जमाए हुए था : एन.डी.ए. शासन के आठ वर्षों के दौरान जब सरकार में नीतीश को बी.जे.पी. का समर्थन प्राप्त था, उसी अवधि में धीरे-धीरे वहाँ आर.ए.एस. और उससे परोक्षरूप में संबद्ध संगठनों की गतिविधियों में वृद्धि होने लगी थी जिसकी सार्वजनिक रूप से कोई चर्चा नहीं होती थी। बेतिया में निकाली गई झाँकी के पीछे ऐसे ही किसी व्यक्ति-समूह, किसी स्थानीय 'अखाड़े' या युद्ध कला प्रशिक्षण क्लब का हाथ था। 'अखाड़ा' किसी राजनीति दल से संबद्ध होने का दावा नहीं करता था, इसके कारण बी.जे.पी. और संघ पर कोई आँच नहीं आती थी, लेकिन इसकी राजभक्ति अथवा निष्ठा का उद्देश्य स्पष्ट था : नरेंद्र मोदी।

एक ऐसा सामाजिक-राजनीतिक गठबंधन तैयार करना मोदी के दुस्साहस का मुकाबला करने से कम दुष्कर कार्य नहीं था, जो इतना मजबूत हो कि बी.जे.पी और पुराने दुश्मन लालू यादव के आर.जे.डी., दोनों को उखाड़ फेंक सके। उनके वैचारिक तुरंग—'सम्माननीय विकल्प'—को मैदान पर दौड़ने के लिए मजबूत टाँगों की आवश्यकता है। बी.जे.पी से संबंध तोड़ लेने के कारण नीतीश के बाजुओं पर एक गहरा छेद हो गया है। सरकार के जातिगत गठन या केवल पार्टी के पुनर्विन्यास से वह घाव ठीक नहीं होगा; राजनीतिक के रंग में अत्यधिक रँगे, और अधिकतर विभिन्न प्रकार के, मतदाताओं को भरोसा दिलाना होगा कि नीतीश अभी भी एकमात्र आदमी है, जो सरकार के दृढ़ सिद्धांतों पर चलकर बिहार के भाग्य को बदल सकने की क्षमता रखता है : और उनका सूक्ति-वाक्य है—सामाजिक समरसता के साथ प्रगति। सीधी-सरल भाषा में कहा जाए तो इसका मतलब होता है बिहार के गाँव-गाँव में जाकर भाषण देना, लोगों को समझाना और उन मतदाताओं को अपने पक्ष में करना, जो अब तक जे.डी.यू. के मतदाता नहीं रहे हैं। उदाहरण के लिए, नीतीश और जे.डी.यू. के कट्टर समर्थक भी यह विश्वास करने में हिचक रहे थे कि बिहार के 17 प्रतिशत मुसलमान नीतीश को सिर्फ इसलिए अपना लेंगे कि नीतीश ने बी.जे.पी. से रिश्ता तोड़ लिया है।

क्या जे.डी.यू. अपने ही बल जीत हासिल करने का कोई फॉर्मूला बना सकता है या उसे युद्ध में मित्रों की जरूरत होगी? इतने कम लोगों के साथ मैदान में कौन हो सकता है? नीतीश और लालू यादव के बीच संबंध इतने तीखे और कड़वे हो चुके थे कि कोई भी गठबंधन के बारे में सोच भी नहीं सकता था, हालाँकि इस संभावना से पूर्णतया इनकार नहीं किया जा सकता कि वे दोनों नई दिल्ली की गद्दी पर नजर गड़ाने की मोदी की पेशकश को रोकने के लिए हाथ मिला सकते हैं। अकसर अटकलें ऐसी भी लगाई जाती रही हैं कि कांग्रेस जैसी महान् पुरानी पार्टी वोटों के लिए बिहार की हाथापाई में ताकत आजमाने के लिए स्वयं को अक्षम समझती है। लेकिन कांग्रेस, सन् 2014 के चुनावों के लिए पूरी तैयारी के प्रयास में मित्र दलों और संख्या की अत्यधिक आवश्यकता महसूस करते हुए कठोर विकल्प के लिए हाथ बढ़ा सकती है और भरोसा करने योग्य हो सकती है : लालू यादव, भ्रष्ट, सजायाफ्ता, लोकसभा में अपनी सीट से वंचित, चुनाव लड़ने से वर्जित, लेकिन फिर भी लालू। क्योंकि लालू के पास संख्या के हिसाब से अभी भी एक अधिक मजबूत मतदाता-वर्ग हो सकता है—यादवों और मुसलमानों को मिलाकर बिहार में करीब 35 प्रतिशत वोट बनता है।

कांग्रेस के साथ, घोषित या सांकेतिक गठबंधन का प्रस्ताव यदि आता है तो नीतीश उसे जल्दबाजी में ठुकरा नहीं पाएँगे। लोहियावादी विचारधारा के अनुयायी होने के बावजूद। लेकिन वह फिर भी इसके लिए एक कीमत की माँग करेंगे। नीतीश ने यह बात बहुत साफ शब्दों में यू.पी.ए. के बड़े नेताओं के सामने रखी जब जुलाई में उन्हें सी.एन.एन.-आई.बी.एन. द्वारा सीधे प्रसारित भेंटवार्त्ता कार्यक्रम में आमंत्रित किया गया था : वह बिहार के लिए विशेष श्रेणी का दरजा चाहते थे। ''हमारा राज्य एक गरीब राज्य है, हम सीधे-सादे लोग हैं, और आभार माननेवाले लोग हैं। हम वह दिखला देंगे, लेकिन खाली हाथ नहीं। हमें विशेष श्रेणी का दरजा दें, जिसकी बहुत आवश्यकता है, और हम अपनी कृतज्ञता दिखला देंगे।'' लेकिन नए खिलवाड़ की दिशा में वह शुरुआती कदम नहीं था। कांग्रेस और जे.डी.यू. पहले से ही उस ओर धीर-धीरे पींग बढ़ा रहे थे, भले ही अंत में उसका कोई नतीजा न निकला हो। यू.पी.ए. ने बिहार के लिए बड़ी संख्या में वित्तीय तोहफों का ऐलान किया था। इसने आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों के लिए विशेष श्रेणी दरजा मंजूर करने हेतु मानदंड की समीक्षा करने के प्रयोजन से भावी रिजर्व बैंक गवर्नर रघुराम राजन के अधीन एक समिति का गठन किया था। समिति ने अंतत: ऐसे प्रावधानों की सिफारिश की कि बिहार औपचारिक रूप से विशेष श्रेणी का दरजा मिले बिना लाभान्वित हो सके। जे.डी.यू. ने बदले में मनमोहन सरकार के लिए मुद्दों पर आधारित समर्थन की घोषणा कर दी; इसने संसद् में अपने-आपको विरोध-पक्ष से अलग कर लिया और खाद्य सुरक्षा तथा भूमि सुधार बिलों के समर्थन में अपने हाथ उठाने का वादा किया, क्योंकि ये दोनों बिल, यू.पी.ए. की दृष्टि में, सन् 2014 में तीसरी बार सत्ता में आने के उद्देश्य से बहुत महत्त्वपूर्ण थे। बात चल रही थी, साझेदारों को इसे एक औपचारिक गठबंधन का रूप देने के लिए कुछ शर्तें रखना अभी शेष था : बिहार के लिए विशेष श्रेणी का दरजा बिहार में जे.डी.यू. और कांग्रेस के बीच एक विशेष नई व्यवस्था कायम करेगा। लेकिन क्या यह होगा? क्या लालू असल-राजनीति खेलने के कारणों से कांग्रेस को लुभाकर दूर नहीं ले जाएगा?

किसी भी सूरत में, नीतीश का जून 2013 में बी.जे.पी. से नाता तोड़ने का जोखिम उठाने का फैसला करना कांग्रेस या नए साझेदारों पर निर्भर नहीं था। यह जोखिम उनकी अपनी पार्टी का था। उन्होंने पुन: अकेला होने का फैसला कर लिया था, सड़क के खुरदुरे किनारे पर अकेले चलने का फैसला, हालाँकि अब वह कोई घुमक्कड़ नहीं रह गए थे।

❑

उपसंहार

अप्पन माथ के टेटर कक्रो सुझई छई?

(क्या कोई अपने माथे पर पड़ा गुमड़ा कभी देखता है?)

— मैथिली कहावत

किसी दिन यह इनसान इन पृष्ठों से बाहर निकल जाएगा और उसका कद अधिक बड़ा या और छोटा हो जाएगा। किसी की जिंदगी के बारे में अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता; उनके नाम के आगे या तो शब्द लोप हो जाता है, या प्राय: एक प्रश्न-चिह्न लग जाता है। इस पुस्तक के नायक पर अभी काम चल रहा है; जब अंतिम शब्द लिखा जा चुका होगा, उसमें से कोई लीक पहले से छिटक चुकी होगी। बताने-सुनाने के लिए और भी कुछ होगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए इधर-उधर दौड़ना, नायक का पीछा करना और कई चुनौतियों का सामना करना अपने-आप में एक मजेदार किस्सा है।

वास्तव में यह कहानी समकालीन बिहार के बारे में पहले लिखी जा चुकी कहानी का ही अविच्छिन्न हिस्सा है। यह कहानी बिहार की धरती के दो महान् पुत्रों की है, जिन्होंने सहस्राब्दि के दोनों तरफ अपनी छाप छोड़ी है : लालू यादव और नीतीश कुमार। एक ने आशाओं के सपने दिखाए और फिर खुद ही अपने बेलगाम व्यवहार से उन सपनों को झुठला दिया, दूसरे ने सामूहिक स्वार्थवाद और आत्मोत्सर्ग के दलदल में आशाओं की चिनगारी सुलगाने का असंभव-सा प्रयास किया। वे दोनों एक ही चित्र के दो विचित्र पहलू प्रतीत होते हैं, एक ही हड्डी के दो टुकड़े, दोनों मूलभूत परिवर्तन की महत्त्वाकांक्षा लेकर विपरीत दिशा में जाने वाले, फिर भी एक असहज समानता लिये एक ही धुरी पर आस-पास खड़े। नीतीश को समझने के लिए, अनेकानेक कारणों से, लालू को समझना अत्यावश्यक है, क्योंकि तभी समझ में आ सकेगा कि नीतीश होने का मतलब क्या होता है और उन्हें उसी अर्थ में क्यों लिया जाता है जो अर्थ वह रखते हैं।

जब मैंने सन् 2000 में 'दि मेकिंग ऑफ लालू यादव : दि अन्मेकिंग ऑफ बिहार' नामक पुस्तक लिखी थी, उस समय नीतीश कुमार के बारे में विस्तारपूर्वक लिखना किंचित ही आवश्यक था; यदा-कदा पाद टिप्पणी में ही उनको जगह मिली। जब तक उस पुस्तक का संशोधित संस्करण निकालने का समय आया और सन् 2006 में उसे नया शीर्षक 'सबॉल्टर्न साहेब : बिहार ऐंड मेकिंग ऑफ लालू यादव' दिया गया, तब तक नीतीश का महत्त्व इतना बढ़ गया था कि दो नए अध्यायों में अधिक स्थान नीतीश को देना पड़ा। सन् 2006 में, अपूर्ण आकांक्षाओं का बाँध टूट जाने से आई बाढ़ लालू को बहा ले गई। नीतीश के कदम आगे बढ़ने लगे थे और लालू को उन्होंने बिहार की नई कहानी के पाद टिप्पणी में समेट दिया था।

लेकिन क्या हम उसे अभी यह नाम दे सकते हैं—नए बिहार की कहानी? मेरे अंदर का एक इनसान झिझक रहा है, तो दूसरा खुशी मनाना चाहता है। मुझे बिहार की कहानी से बहुत लगाव है, क्योंकि मेरा जन्म बिहार में हुआ, मैं बिहारी हूँ और मुझे बिहारी होने का गर्व है। मैं उस अनिर्वचनीय रचना का हिस्सा हूँ, जिससे बिहारी होने का महत्त्व पता चलता है। मैं छोटी-छोटी बातों का जिक्र कर सकता हूँ, जिनको देखकर बिहारी खुशी से फूला नहीं समाता है —एक पक्की सड़क, एक निश्चित समय के लिए बिजली की अखंड आपूर्ति, विद्यार्थियों और अध्यापकों से भरा-पूरा एक स्कूल, एक स्वास्थ्य केंद्र जिस पर ताला न लगा हो। लेकिन खुशी के पीछे हमेशा चिंता लगी होती है।

बिहार के अंधकारमय और अछूते कोनों में नई सड़क कितनी दूर तक जाएगी? इनमें से कोई भी खुशी कितनी टिकाऊ है?

मैं दिसंबर 2013 की कुहासे भरी सर्दी में सिंहवाड़ा में अपने घर के अंदर इस पुस्तक को समाप्त करने में लगा हूँ। बिहार में जमीन का पहले ही बदला हुआ रंग फिर से बदल रहा है। नीतीश फिर अकेले हो गए हैं और एक अनिश्चित राह पर चल पड़े हैं; बी.जे.पी., नरेंद्र मोदी के अधीन, अभूतपूर्व अभिलाषा पर सवार होकर निकल पड़ी है; जमानत पर रिहा हुए, लालू यादव को लग रहा है कि वह बी.जे.पी.-जे.डी.यू. के बीच पड़ी दरार से लाभ उठाने का एक मौका चुरा सकते हैं, जिसमें शायद कांग्रेस से उन्हें बढ़ावा और पैसा भी मिल रहा है। इन सब बातों या इनमें से किसी भी बात का बिहार के लिए क्या महत्त्व हो सकता है? एक बड़ा सवाल सिर के ऊपर हवा में तैर रहा है।

मैंने स्वयं को अकसर बिहार और बिहार की जनता के प्रति कठोर पाया है, क्योंकि मैंने निर्वासन का लाभ उन विकृतियों की जाँच-पड़ताल करने और उनका भेद खोलने के लिए उठाया, जिन्हें पीछे छोड़ने की विशेष सुविधा मुझे प्राप्त हुई थी। बिहार छोड़ना, जैसा कि मैंने प्रारंभिक अध्याय में कहा, बहु-वैभवशाली उपहार सिद्‌ध हुआ। लेकिन यह दु:खदायी भी था, जैसा दु:ख घर छोड़कर जानेवाले हर व्यक्ति को होता है। मेरे रास्ते में आए छिद्रान्वेषण में से कुछ में अच्छाई हो सकती है। मैं अपने आलोचकों की जानकारी के लिए प्राय: उस एक भाषण के कुछ अंशों को उद्‌धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पाया हूँ, जो भाषण नाइजीरिया के नोबेल पुरस्कार विजेता चिनुआ अचेबे ने पेरिस में पश्चिमी श्रोताओं के सामने दिया था। इस व्याख्यान का शीर्षक था 'अफ्रीका इज पीपॅल', और हमारे संसार की जटिलताओं को समझने के लिए हर किसी को इसे आवश्यक रूप से पढ़ना चाहिए। मैं उस भाषण से केवल इतना अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ : ''मैं अफ्रीका की अनेक विफलताओं एवं कमजोरियों के लिए कोई खेद जतानेवाला नहीं हूँ। और मैं यह समझने योग्य पर्याप्त व्यवहारशील नहीं हूँ कि हमें उन पर नरम नहीं होना चाहिए, हमें उनको कभी उचित ठहराने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। लेकिन मैं इतना समझने योग्य बुद्‌धि भी अवश्य रखता हूँ कि हमें अपनी विफलताओं को निष्पक्ष भाव से समझने की कोशिश करनी चाहिए और जिन लोगों के सद्‌भाव पर संदेह करने के अनेक कारण हमारे पास हैं उनके द्‌वारा फैलाई गई बहकावे की बातों और पौराणिक कथाओं को सिर्फ यूँ ही गले नहीं उतार लेना चाहिए। मैं इस तर्क को समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि यदि कोई देश अपने संसाधनों को ठीक से सँभाल नहीं पाता अथवा संसाधनों की दुर्व्यवस्था करता है, तो उसे कठिन समय की सजा भुगतने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।'' बिहार को बहुत कुछ सीखना है, एक लंबा रास्ता तय करना है। बिहार के नेता अकेले ही उस सफर का बोझ नहीं ढो सकते, बिहार की जनता को वह बोझ उठाने में भागीदार बनना होगा।

इसकी शुरुआत संभवत: इस बात से करना बेहतर होगा कि यह सोचना बंद किया जाए कि दुनिया की शक्ल एक थूकदान जैसी होनी चाहिए। मुँह भरकर पान चबानेवाले बिहारी कहीं भी और सब जगह पीक देने में अभ्यस्त हैं और सोचते हैं कि इस तरह की असभ्यता का प्रदर्शन करने की उन्हें खुली छूट है। बिहार में दोहरी सड़क का मतलब है एकतरफा मार्ग का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन करना, एक ओर से आ रहे ट्रैफिक के सामने अपनी गाड़ी—चौपहिया, दुपहिया, बाइक या बैलगाड़ी—अड़ाकर खुद निकलने की कोशिश में पूरा ट्रैफिक अस्त-व्यस्त कर देना, जबकि सड़क टोल-मुक्त है। बसों के अंदर कोई भी गद्‌दीदार सीट मिलने का मतलब होता है गद्‌दी को चीर-फाड़ देना और उसका फोम चिथड़े कर देना। भूल-सुधार : कुँवारी गद्‌दीवार सीट के साथ बलात्कार करने का अधिकार उन्हीं लोगों के लिए आरक्षित है, जो बस में ठूँसकर बैठने की हिम्मत कर सकते हैं; सबसे बढ़िया सीटें

चालक की केबिन में होती हैं, भले ही उसके अंदर सवारियाँ ठसाठस भरी हों अथवा नहीं। नए बिहार की कहानी को बिहार की जनता से सामान्य शिष्टाचार की प्रतीक्षा है।

जो कुछ नया है अभी लोगों से संबंध नहीं रखता है, उसका संबंध केवल एक व्यक्ति से है। नीतीश कुमार लालू युग की कहानी बदलने चले थे, लेकिन वह कहानी केवल उनकी बनकर रह गई, बिहार की कहानी नहीं बन पाई। इसमें कैमलॉट कहीं नजर नहीं आता है और आर्थर के बारे में केवल हलका सा एक संकेत है। यह देखकर बड़ी चिंता हो सकती है कि नीतीश कुमार राजनीतिक गोलमेज पर अकेले हैं या अकेले ही रहना चाहते हैं। यह सोचकर चिंता हो सकती है कि जो चाल उन्होंने चली है उसे वह पूरी तरह अपने संभावित चमत्कार से कैसे नियंत्रित कर पाते हैं। अगर नीतीश इस पर या उस कारण से चले गए होते, तो उनका किया-धरा मिटने में एक क्षण भी नहीं लगता। बिहार में जितने भी बदलाव हुए हैं उनका अधिक सरोकार एक व्यक्ति से है, संस्थाओं से उतना नहीं है; नीतीश अपने शासन में एक नई कौशलपूर्ण शैली की शुरुआत लेकिन जरूरी नहीं है कि यह एक ऐसी नीति, ऐसे नैतिक-सिद्धांत में बदल जाए, जो उनके बाद भी कायम रह सके। समकालीन राजनीति के अत्यंत प्रखर अंतरंग-व्याख्याकारों में से एक, एन.सी.पी. महासचिव देवी प्रसाद त्रिपाठी, अथवा डी.पी.टी. ने मुझे नीतीश कुमार के महत्त्व के बारे में सारगर्भित जानकारी दी और उनकी व्यक्तिगत कमजोरियों की तरफ भी इशारा किया। ''नीतीश कुमार उत्तर भारत के एकमात्र आधुनिक नेता हैं और जिस मुकाम पर वह आ चुके हैं अगर वह उसके आगे नहीं जा सके तो यह एक बड़ी क्षति होगी,'' डी.पी.टी. ने कहा, ''लेकिन कुछ बातें हैं, जो उन्हें परेशान करती हैं। एक जन-नेता के लिए इतना अधिक अंतर्मुखी होना उचित नहीं है, वह बहुत ज्यादा मिलते-जुलते नहीं हैं, कुछ समय से तो वह प्रतिकूल सुझाव या आलोचना के प्रति, यदि असहिष्णु नहीं तो, विमुख अवश्य हो गए हैं; वह स्वयं को चापलूसों से घिरा रखने लगे हैं। मैं नीतीश कुमार जैसे सशक्त, समर्थ व्यक्ति के लिए सदैव शुभकामना करूँगा, लेकिन उन्हें खुद को सँभालना चाहिए, अगर वह आधुनिक निर्माता बनना चाहते हैं, तो उन्हें अपना कद और अधिक बड़ा करना चाहिए।''

सत्ता में रहने पर भी, जे.डी.यू. में स्थिरता नहीं है, यह पार्टी तदर्थ आधार पर चल रही है और इसका उद्देश्य नीतीश कुमार के लिए रोजाना एक जनमत-संग्रह हासिल करना रह गया है। जे.डी.यू. अध्यक्ष, शरद यादव दिल्ली में बैठते हैं और उनके हाथ में न कमान है और न नियंत्रण; वह अध्यक्ष सिर्फ इसलिए हैं कि हर पार्टी का एक अध्यक्ष होना आवश्यक है। सब जानते हैं कि शरद यादव विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण के सख्त खिलाफ हैं। यह नफरत व्याधि-विज्ञान की दृष्टि से एक प्रकार का रोग है। लेकिन जब वही विधेयक अर्थात् बिल सन् 2011 में दोबारा संसद् में आया, नीतीश ने शरद यादव के निर्णय को रद्द कर दिया और अपनी पार्टी के सांसदों को बिल का समर्थन करने का आदेश दिया। शरद यादव पार्टी के इंजन नहीं हैं; अधिक-से-अधिक उन्हें इंजन के सामने जुड़नेवाला डिब्बा माना जा सकता है। जब महत्त्वपूर्ण निर्णयों की बात आती है, जे.डी.यू. में नीतीश कुमार की चलती है। बिहार के स्थानीय निकायों में, नीतीश कुमार ने महिलाओं के लिए, कानून के तहत, 50 प्रतिशत आरक्षण को पहले ही मंजूरी दे दी थी। संसद् में महिलाओं के लिए आरक्षण हेतु वह क्या सिर्फ इसलिए 'न' कहते क्योंकि वह विपक्ष में बैठे हुए थे, या केवल इसलिए कि उनकी पार्टी के अध्यक्ष, शरद यादव की महिला आरक्षण के प्रति नफरत जगजाहिर है।

जे.डी.यू. के नामोद्दिष्ट प्रवक्ता महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर समकालीन जानकारी से प्राय: इतने अनभिज्ञ होते हैं कि उनके बयानों से ऐसा लगता है जैसे वे पार्टी के नीति-निर्देशों के विपरीत जा रहे हों। पार्टी की लकीर कोई नहीं है, नीतीश जहाँ लकीर खींच देते हैं, पार्टी को वहीं तक जाना होता है। नीतीश ने जब बी.जे.पी. से नाता तोड़ा और सन्

2012 में राष्ट्रपति पद के लिए वित्त मंत्री, प्रणव मुखर्जी का समर्थन करने का निर्णय किया, उसके कुछ ही समय के बाद, जे.डी.यू. के तत्कालीन मुख्य प्रवक्ता, शिवानंद तिवारी ने मुखर्जी के वित्त मंत्री रहते हुए उनकी निगरानी में उत्पन्न मुद्रास्फीतिकारी स्थितियों के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण वक्तव्य जारी किया। नीतीश को कहना पड़ा कि वह अपना मुँह बंद रखें। नीतीश ने मुखर्जी का समर्थन राष्ट्रपति पद हेतु किया था, न कि उनकी आर्थिक नीतियों का। नीतीश की तरफ से यदि वास्तव में कोई बोलता है, तो वह स्वयं नीतीश बोलता है, और बहुत दफा वह उन प्रश्नों पर न बोलने का विकल्प चुन लेता है, जो प्रश्न उत्तरों की अपेक्षा रखते हैं। नीतीश अपने कैबिनेट में निकम्मे, बेकार लोगों को क्यों रखते हैं? लालू राज के बचे-खुचे बेकार लोगों में से उठाए गए रमई राम और श्याम रजक जैसे लोग, जो लालू यादव के परित्यक्त शासन के प्रतीक हैं और प्रतिभा-विरोध के जीते-जागते सबूत? गोल मेज के लिए वह विलक्षण प्रतिभा-संपन्न व्यक्तियों की एक टोली क्यों नहीं चुनते हैं, क्यों अकेले ही एक प्रकाश-स्तंभ बने रहना चाहते हैं? उनके मंत्रिमंडल में मुश्किल से कोई मंत्री होगा, जो नीतीश की मौजूदगी में अपने विचार प्रकट करने की हिम्मत रखता है; यह मंत्रिमंडल 'हाँ में हाँ' मिलानेवालों का एक महासंघ है, अधिकतर सदस्य केवल खी-खी करते हैं या दाँत निपोरते हैं।

नीतीश का एक पुराना मित्र होने के नाते मैंने उनसे अपनी चिंता इन शब्दों में उनके सामने व्यक्त की : बिहार परियोजना क्या कोई एक-सदस्यीय छलयुक्त उद्यम है, जो उनके जाते ही ढह जाएगा? पहले-पहल तो इस सवाल ने उन्हें भी चिंता में डाल दिया; उन्होंने पलटकर मुझे देखा पर कहा कुछ नहीं। मुझे लगता है वह जानते थे कि उनके मन में क्या है लेकिन बोलना नहीं चाह रहे थे। मैंने सवाल को अधिक सरल बनाने की कोशिश की। मैंने उनसे पूछा कि उनके विचार में, नीतीश किस प्रकार की विरासत पीछे छोड़ जाना चाहते हैं। तत्क्षण उन्होंने जवाब दिया, ''ऐसा कुछ करना चाहते हैं कि सौ साल, दो सौ साल बाद भी लोग याद करें...।''

ऐसा क्या, मैंने जोर दिया, ऐसा क्या? जैसे कोई उल्का, जो बिहार के ऊपर से दहकती हुई गुजरी, क्षण भर के लिए बिहार के आकाश को प्रकाशित किया और विलुप्त हो गई, या कोई ऐसा व्यक्ति जिसने सदा के लिए एक चमक पीछे छोड़ी? वह कुछ हतप्रभ दिखे, कुछ देर बोले कुछ नहीं। उन्होंने चाय मँगवाई, फिर इरादतन अपने कप में गौर से देखा और अंततः यह कहा, ''पूछना पड़ेगा।'' शब्द दौड़ते हैं और दबे शब्द ज्यादा तेजी से दौड़ते हैं, क्योंकि ऐसे शब्दों को ले जानेवाले प्रायः मिल जाते हैं। वह कोई जोखिम लेना नहीं चाह रहे थे। ''पूछ के कहते हैं,'' उन्होंने दोबारा आश्वस्त करते हुए कहा, ''मैं उनसे पूछूँगा और आपको बता दूँगा।'' उन्होंने कभी नहीं बताया, शायद वह नीतीश से कभी पूछने की हिम्मत नहीं कर पाए।

मैंने ही, सन् 2009 के जाड़े के मौसम में, 1, अणे मार्ग के पिछले पोर्च में एक लंबी बातचीत के दौरान, हिम्मत जुटाकर नीतीश कुमार से पूछा कि उन्होंने अपने लिए किस दिशा में जाना तय किया है, वह क्या हासिल करना चाहते हैं। किसी दिन भारत का प्रधानमंत्री बनने की इच्छा रखते हैं? ''छोड़िए'' उन्होंने मुझसे कहा, ''बड़ी-बड़ी बातें हैं, यह अटकल आप लोग लगाते रहिए। बहुत काम पड़ा है, मुझे कुछ नहीं बनना, बिहार को बनाना है।''

बिहार को कभी ऐसे लोगों का अभाव नहीं रहा, जो बिहार को बनाने चले थे। बिहारी चेतना के संकीर्ण आकाश में स्वप्नद्रष्टाओं तथा निर्माताओं, सुधारवादियों और क्रांतिकारियों, दान-धर्मशील-कृपालु व्यक्तियों तथा मसीहाओं का एक घनीभूत तारामंडल बना हुआ है। श्रीकृष्ण सिन्हा और अनुग्रह नारायण सिन्हा, जे.पी. और कर्पूरी ठाकुर, रामलखन यादव और जगन्नाथ मिश्र। उन्हें या तो भुला दिया गया है, कुछ को करुणापूर्वक या फिर उन्हें धूल भरे स्मारक भवनों में जगह दे दी गई है तथा उनकी जयंती तथा पुण्य- तिथि के अवसर पर भीड़ के दर्शनार्थ रख दिया गया है। या शहर के उपेक्षित चौक-चौराहों पर उनकी आवक्ष प्रतिमाएँ स्थापित हैं, जिसके ऊपर पक्षी मजे से

बैठकर मलमूत्र त्याग करते हैं। विगत में उन्होंने चाहे जितनी प्रतिष्ठा अर्जित की हो, फिर भी बिहार के इन महापुरुषों के समूह को यथा-योग्य महत्त्व नहीं दिया गया है।

अस्सी प्रतिशत बिहारियों के पास शौचालय नहीं हैं। मात्र 16 प्रतिशत और कुछ दशमलव ऊपर बिहारियों के घर में बिजली आती है, लेकिन कब आती है यह सप्लाई पर निर्भर करता है। तैंतालीस प्रतिशत ग्रामीण बिहार आज भी सड़कों से जुड़ा हुआ नहीं है। 10 प्रतिशत से भी कम लोग आधुनिक बैंकिंग का उपयोग कर पाते हैं, और इंटरनेट का प्रयोग करनेवालों की संख्या तो मुश्किल से एक प्रतिशत होगी। मात्र 7 प्रतिशत लोग पक्के मकानों में रहते हैं। साठ प्रतिशत के पास मोबाइल फोन हैं। विकास की यह कैसी उलट-पुलट, असंतुलित तसवीर है? ऐसा लगता है जैसे हम हेती के बारे में बात कर रहे हों जहाँ, सन् 2012 में, केवल 10 प्रतिशत लोगों के पास बैंक खाता था और 80 प्रतिशत लोग सेल फोन का इस्तेमाल करते हैं।

निर्धनता के इन सूचकांकों की गहराई का पता तब चलता है, जब हम इनकी तुलना कुछेक वर्ष पहले के आँकड़ों से करते हैं। नीतीश के शासनकाल में दोहरे अंकों में हुई वृद्धि के प्रभाव से, इन आँकड़ों में बहुत सुधार हुआ है। सन् 2011-12 में बिहार ने 11.3 प्रतिशत की वृद्धि के साथ राष्ट्रीय स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद में उच्चतम स्थान प्राप्त किया और फिर भी गुजारे लायक हालात के साथ इसका गहरा रिश्ता बना रहा। दिसंबर 2012 में बारहवीं पंचवर्षीय योजना की घोषणा के समय, बिहार ने 10.9 प्रतिशत की विकास दर के साथ सभी भारतीय राज्यों को पीछे छोड़ते हुए पहला स्थान प्राप्त किया, सन् 2005 में राज्य की 2.6 प्रतिशत की विकास दर के मुकाबले यह बड़ी शानदार उपलब्धि थी। लेकिन क्रम-निर्धारण में अग्रणी रहने के बावजूद भी, बिहार को बराबरी पर आने के लिए संघर्ष करना पड़ा; नीतीश के पूर्वाधिकारियों ने बीसियों वर्षों से घाटे का पहाड़ खड़ा करके छोड़ दिया था।

उनमें से, केवल लालू यादव टिका रहता है। लालू बहुत बड़े-बड़े, जादुई वादों पर सवार होकर आया और उसने नरक को जन्म दिया। बिहार का बिगाड़ करने में, यद्यपि अकेले लालू का हाथ नहीं था। लालू से पहले दुष्ट और निकम्मे लोगों की पूरी एक जमात के सदस्य अपनी-अपनी पारी खेलकर जा चुके थे। लेकिन यदि लालू को सन् 1990 में एक विकृत एवं बीमार व्यवस्था विरासत में मिली, तो लालू ने भी उसे और खराब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, जैसे भूकंप से हुई तबाही से मिलने किसी प्रचंड आँधी-तूफान का आना और बचे-खुचे को भी नष्ट कर जाना। यदि इतिहास में उसका नाम अत्यधिक विनाशकारी के रूप में दर्ज होगा, तो इसलिए कि वह बड़े लंबे समय तक विनाश करने में लगा रहा। पंद्रह वर्ष। रोम का निर्माण करने के लिए यह अवधि भले ही पर्याप्त न हो, लेकिन पहले से ही जर्जर हुई इमारत को ध्वस्त करने के लिए काफी है। लेकिन लालू का आगमन, याद रखें, एक रक्षक-मसीहा के रूप में हुआ था! 1990 के दशक के आरंभिक काल में, आशा की लहर उसकी परिक्रमा करती रही, जब तक कि वह भयभीत नहीं हुआ और अपने दायित्वों को छोड़कर उसने सत्ता के अपने महल, 1, अणे मार्ग में खुद को पिंजड़े में बंद नहीं कर लिया, यह समझकर कि अब तो यह उसकी अपनी जागीर है और वह जिसे चाहे उसमें रहने दे सकता है।

पाँच एकड़ की जागीर में ट्यूडॅर काल का दो मंजिला बना हुआ यह बँगला बिहार के दूसरे राज्यपाल माधव श्रीहरि अणे के नाम पर है। सन् 1949 में बिहार के पहले मुख्यमंत्री, श्रीकृष्ण सिन्हा ने रहने के लिए, जब इस बँगले का चयन किया और इसे राज्य के मुख्य प्रशासक का आधिकारिक निवास घोषित किया, उससे पहले मेरे दादा, पुष्कर ठाकुर वहाँ रहते थे। पुष्कर ठाकुर उस समय राज्य के तत्कालीन कल्याण सचिव थे और ग्राउंड फ्लोर पर रहते थे। पटना उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति अभय पद मुखर्जी पहली मंजिल पर थे। परिवार की फोटो अलबमों में उस समय की तसवीरें बताती हैं कि वहाँ फूलों की लहरदार क्यारियाँ थीं और हरियाले घास के गोल मैदान में

बेंत की कुरसियाँ पड़ी रहती थीं। सन् 1992 में जब मैंने पहली बार 1, अणे मार्ग के अंदर कदम रखा—इस बात से बेखबर कि मेरे पूर्वजों का भी उस जगह से कोई नाता रह चुका है—तब तक लालू ने फूलों की क्यारियों का नामो-निशान मिटा दिया था और वहाँ एक पशुशाला बना दी थी, लालू की गायें वहाँ घास चर रही थीं।

नीतीश ने मतदाता-वर्ग अथवा चुनाव क्षेत्र का निर्माण करने में अधिकतर चेंपा-चेपी करने, यानी इधर-उधर थिगली लगाने का ही काम किया है, कुल मिलाकर जो तसवीर उभरती है, उसमें कुछ खास परिमार्जन नहीं है। राजनीतिक अदला-बदली का अनिवार्य तरीका अभी भी वही बना हुआ है, बिगाड़ने और फायदा उठाने का सामंतवादी खेल। इससे पता चलता है कि लालू और नीतीश का टिकट बाँटने का ढंग क्या रहा है। बहुत हद तक समान आधार, समान विश्लेषण : किन-किन जातियों पर आँख गड़ानी है, कौन-सा मेल या संयोजन श्रेष्ठ है, कौन निष्ठावान है, कौन जीत सकता है। वास्तव में, दोनों के बीच अंतर उनके अपने-अपने व्यक्तित्व का है, उससे अधिक कुछ नहीं। इन दोनों के अधीन काम कर चुके एक वरिष्ठ अधिकारी ने परिवर्तन के ढुलमुल रवैए के बारे में कहा, ''जमीन वही है और मिट्टी-गारा भी वही है, जिससे वह इमारत बनाना चाह रहे हैं, वही राजनीति, वही राजनीतिज्ञ, और सामान्यत: लोकसेवक भी वही हैं। विरोधाभास दृष्टिकोण और उद्देश्य में झलकता है। नीतीश ने जो बनाया है, कल लालू जैसा कोई व्यक्ति उसे आसानी से विकृत कर सकता है।

तीस वर्ष से भी कुछ अधिक समय तक, नीतीश लालू की छाया में बहते रहे। जब सफलता से उनकी भेंट हुई, नीतीश को बस यही करना था कि उस पुरस्कार को छीन लें, जिसे बनाने में लालू की कारीगरी का हाथ था; पिछड़ों, दलितों और मुसलमानों का अजेय गणित। आज नीतीश के कब्जे में जो वोट हैं, उसका अस्सी प्रतिशत से भी अधिक—जे.डी.यू. वोट में से बी.जे.पी. का उच्च जाति मतदाता-वर्ग को निकालकर—वही है जिसे सबसे पहले लालू ने समेकित किया था। नीतीश ने सिर्फ इतना किया है कि उस भेंट को लुइस अरगॅन की अतियथार्थवादी सूक्ति की सच्चाई से जोड़कर पेश किया है—वास्तविक के अंदर अंतर्विरोध का विस्फोट बहुत खूबसूरत होता है। नीतीश ने लालू के सशक्तीकरण संबंधी स्रोत में अंतर्विरोधों को छुआ, व्याख्यान मंच से जनवाद का गला दबाया, और शासन के गुणसूत्र को प्रोत्साहन दिया। लालू जहाँ मंच से अपना महारूप दिखाकर ही खुश था, वहीं नीतीश ने नीचे बैठकर बिल खोदना शुरू कर दिया था। नीतीश के कार्यकाल के दौरान बिहार की वार्षिक वृद्धि के आँकड़ों में ऊँची उछाल का इससे बेहतर दूसरा उदाहरण नहीं है।

लालू इससे सहमत नहीं, उसने अकसर पूछा है, नीतीश और शासन, कब से? शासन के नाम पर वह केवल अपनी उन्नति कर रहा है—अत्यंत पिछड़ी जातियों और पिछड़े मुसलमानों में से कुछ हिस्सों को तोड़कर अलग कर रहा है, दलितों के अंदर 'महादलितों' का एक विशेष नया वर्ग बना रहा है, और-तो-और प्रशासनिक कुतर्किता से बी.जे.पी. के उच्च-जाति मतदाता-वर्ग को भी कुतरने में लगा हुआ है। बिहार में विपक्ष का नेता होने के नाते, लालू यादव यह आरोप मढ़ने से खुद को रोक नहीं पाता है। नीतीश इस आरोप को खुशी से स्वीकार कर लेंगे—कौन सा राजनेता अपने लिए एक मतदाता-वर्ग तैयार नहीं करता है? सन् 1995 में, नीतीश ने जब सी.पी.आई. (एम.एल.) के साथ घातक गठजोड़ करके, पहली खुली चुनौती लालू को दी थी, उसके फलस्वरूप बिहार का 4 प्रतिशत से भी कम वोट उनके हिस्से में आया था; आज उनके पास अपनी मेहनत से कमाया हुआ 25 प्रतिशत से अधिक वोट है। बहुत हद तक, लालू की भाँति, वह भी राजनीतिक अखाड़े के एक अनुभवी और पके हुए खिलाड़ी बनकर आए हैं।

लेकिन नीतीश ने बिहार में वे सुधार भी किए जिनकी बहुत समय से प्रतीक्षा थी। बिहार को बहुत लंबे समय से, राष्ट्रीय स्तर पर, लाक्षणिक रूप में सिर्फ टोकरी बुनने योग्य माना जा रहा है। मानचित्र के बाहर, बिहार का कोई

वजूद ही नहीं रह गया था। अगर आप बिहारी हैं, तो आपके दिल को बहुत चोट लगनी चाहिए, जब बिहारी कहकर आपकी खिल्ली उड़ाई जाती है। बिहार में निर्मित का मतलब, एकदम बेकार। 1970 के दशक के आरंभ में, लंदन से प्रकाशित 'दि टाइम्स' में बिहार के बारे में छपी ट्रेवॅर फिश्लॉक की एक रिपोर्ट मैं आज तक भूल नहीं पाया हूँ। उसने बिहार को 'भारत का सीवर' (गंदी नाली) बतलाया। उसकी दुर्गंध मेरे अंदर अभी तक कहीं मौजूद है।

बिहार को बहुत लंबे समय से सभी प्रकार की भारतीय व्याधियों का प्रतीक माना जाता रहा है, जैसे कि—विषमता और बीमारी, कुशासन, संस्थागत गड़बड़ी, सामंतवाद, जातिवाद, निरंकुश अपराध, स्थानिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक दुराचार, सार्वजनिक स्वार्थवाद। यदि कोई भारत के निकृष्टतम हिस्से का भ्रमण करना चाहता, तो वह बिहार की तरफ दौड़ जाता। भारतीय एवं विदेशी पत्रकारों की पीढ़ियों ने भारत की ऊँचे दरजे की अकुशलताओं के बारे में अपनी रिपोर्टों को पूरी चमक-दमक के साथ प्रस्तुत करने के लिए बिहार की यात्रा करने का बीड़ा उठाया। मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश के प्रथम कार्यकाल के दौरान किसी समय, बिहार की सूरत-शक्ल में धीरे-धीरे बदलाव दिखना शुरू हुआ। सत्ता में एक वर्ष पूरा करने के बाद, कई टी.वी. चैनलों, समाचार-पत्रों और समाज के प्रहरियों ने उन्हें 'वर्ष का राजनीतिज्ञ' घोषित किया; फिर तो, हर साल यह पुरस्कार वह जीतते रहे, जब तक कि इनाम जीतने का यह सिलसिला खास से आम नहीं हो गया। 'दि इकोनॉमिस्ट' नाम के जिस अखबार ने बिहार को एक बार भारत की काँख कहा था, उसी अखबार ने एक रिपोर्ट में नीतीश को बिहार का कर्णधार बताकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस रिपोर्ट का धृष्ट शीर्षक अंग्रेजी में इस प्रकार था : 'The Bihar Enlightenment : India's most notorious state is failing to live up to its reputation. (बिहारी आत्मज्ञान : भारत का सबसे बदनाम राज्य अपनी नेकनामी के अनुसार चलने में हो रहा विफल।)' तब से, फिश्लॉक की उस बुरी रिपोर्ट का असर कुछ कम हो गया, हालाँकि तीन दशक पहले की वह रिपोर्ट बहुत सही थी।

बिहार पर बड़ी उत्सुक दृष्टि लगी रहेगी, सिर्फ इसलिए नहीं कि यह राज्य लोकसभा में अपने चालीस नुमाइंदे भेजता है। बिहार को इस कारण से देखा जाएगा कि नीतीश कुमार का क्या बनता है, जिसने पिछले एक दशक में राजनीतिक हस्तियों में सबसे ज्यादा ध्यान अपनी ओर खींचा है।

नीतीश का राजनीतिक रंग-ढंग, व्यवहार और झुकाव बहुत हद तक अल्पसंख्यकों तथा अल्प सुविधा प्राप्त वर्गों की तरफ है, जिनके बारे में वर्तमान भाषणों में राजनीतिक दल अकसर अपने दावे बदलते रहते हैं, और अकसर आक्रामक बहस-मुबाहसे करते हैं। नीतीश की दलील है कि शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के लिए भूमि अधिग्रहण के संबंध में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए तथा बड़ी रकम की खातिर सरकार को इसमें दखल नहीं देना चाहिए। वामपंथी उग्रवाद या नक्सलवाद से निपटने के बारे में उनका अपना ही एक विशिष्ट और सूक्ष्म रूप से सोचा-विचारा नजरिया है; इस उग्रवाद ने भारत के एक-तिहाई से अधिक क्षेत्र को धमकाना शुरू कर दिया है और मनमोहन सिंह सरकार ने इसे सबसे बड़ा आंतरिक खतरा बतलाया है। नीतीश इसे केवल एक आंतरिक सुरक्षा संबंधी समस्या के रूप में नहीं देखते हैं। नई दिल्ली में राजनीतिक नेताओं के साथ आनुक्रमिक चर्चाओं में उन्होंने बहस की है कि पुलिस काररवाई इस समस्या का समाधान नहीं है। कानून और व्यवस्था का भंग होना वामपंथी उग्रवाद का एक लक्षण हो सकता है, यह बीमारी नहीं है। इसका उपचार राजनीतिज्ञों के पास है, पुलिसकर्मियों के पास नहीं; सामाजिक-आर्थिक पुनर्रूपण में हो सकता है, न कि पुलिस-बलों को बेहतर शस्त्र-सज्जित करने में। उनकी राजनीति और उनकी मानसिकता को देखते हुए, वह भारत में आतंकवाद के कारणों और उनके समाधान पर भी एक भिन्न नजरिया प्रस्तुत कर सकते हैं और हो सकता है, भारत के अनेक कष्टदायक पड़ोसियों के बारे में भी वह अधिक नरम रुख अपनाएँ।

नीतीश, स्वभाव से, एक राजनीतिक बिचौलिए हैं, कोई उग्र विवादी या मुकाबला करने को उद्यत व्यक्ति नहीं। वह अपनी वचनबद्धताओं के बारे में पक्के हो सकते हैं, लेकिन सैद्धांतिक रूप से आदर्शवादी नहीं हैं। मल्टी-ब्रांड रिटेल सेक्टर में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ.डी.आई.) का वह विरोध करते हैं, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि यह उनकी अंगद प्रतिज्ञा हो। सितंबर 2012 में जिस दिन तृणमूल कांग्रेस की ममता बनर्जी ने एफ.डी.आई. के मुद्दे पर मनमोहन सरकार का साथ छोड़ा, उसी दिन नीतीश ने उत्तर बिहार में एक रैली में ऐलान किया कि वह किसी भी ऐसी सरकार का समर्थन करेंगे जो बिहार को एक विशेष श्रेणी वाले राज्य के आर्थिक लाभ मुहैया कराने को तत्पर हो, एफ.डी.आई. को मंजूरी या नामंजूरी का उससे कोई लेना-देना नहीं है। नीतीश किसी निर्धारित सूत्र का अनुसरण नहीं करते हैं, वह अपना घोषण-पत्र चलते-चलते बना लेते हैं, हालात की अपेक्षानुसार। उस रैली के कुछ माह बाद, बी.जे.पी. से अलग होने पर, नीतीश ने यू.पी.ए. को 'मुद्दों पर आधारित समर्थन' देने का ऐलान कर दिया और कांग्रेस के एक अलग से जोड़े गए मित्र बन गए। उनके इस फैसले पर बहुतों ने भौंहें चढ़ाईं : लोहिया का भक्त होकर राजवंशीय कांग्रेस का हाथ पकड़ रहा है? लेकिन कांग्रेस ने बिहार को विशेष श्रेणी राज्य को उपलब्ध लाभों एवं सुविधाओं के अधिक निकट ले जाने का वादा किया था; और नीतीश को भी चुनाव प्रचार में किसी मित्र का साथ चाहिए था। अशक्त हो जाने के बावजूद, कांग्रेस बिहार में कुछ प्रतिशत मत तो हासिल कर ही सकती थी, जो महत्त्वपूर्ण साबित हो सकते थे, कौन जानता है? क्या वह अपने पिता के राजनीतिक गुरुकुल, कांग्रेस को, अधिक निकट आने के लिए फुसला रहे थे? या उस खेल में लालू उन्हें शिकस्त देनेवाला था?

बिहार की ही तरह भारत, अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। इन समस्याओं से निपटने में सफलता या विफलता तय करेगी कि यह देश एक विश्व-स्तरीय खिलाड़ी बनने की राह में कितना अच्छा प्रदर्शन कर पाता है। अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से भारत से बड़ी संभावनाएँ जुड़ी हैं, किंतु उछाल भरने को तत्पर इस देश के पाँव गिरफ्त में हैं। इसे अभी और बहुत सी चुनौतियों की आँखों में आँखें डालकर तय करना होगा कि क्या यह देश उन संभावनाओं, उन आदर्शों के साथ जी सकता है और नए विश्व में अपना स्थान हासिल कर सकता है। बढ़ती हुई प्रचंड विषमता की खाई को पाटने का प्रयास करना, नई सामाजिक एवं राजनीतिक आकांक्षाओं के लिए जगह बनाना, विकास संबंधी अनिवार्यताओं और मानवीय तथा परिस्थिति-जन्य अपेक्षाओं के बीच संतुलन स्थापित करना, अंतरदेशीय और विदेशी सुरक्षा के सुरंग-क्षेत्र से एक रास्ता निकालना, भारत के विचित्र विरोधाभासों और विडंबनाओं को वैश्विक प्रवृत्तियों की सीध में लाना, अर्थात् उनके अनुकूल बनाना। देश के भावी नेतृत्व को इन सभी तथा इनके अलावा भी कुछ चुनौतियों का सामना करना होगा।

सन् 1985 और 1988 के बीच थोड़े समय के लिए शासनारूढ़ बिंदेश्वरी दुबे के अलावा, नीतीश कुमार बिहार के इकलौता मुख्यमंत्री हैं, जिन्होंने केंद्र सरकारों में काम करने का प्रशासनिक अनुभव प्राप्त किया—सड़क परिवहन मंत्री, रेल मंत्री, कृषि मंत्री के रूप में। ऐसा भी प्रमाण है, जो इंगित करता है कि वह किसी बड़ी भूमिका के लिए स्वयं को तैयार कर रहे हैं, यद्यपि वह ऐसी किसी भी बात को स्वीकार करने में शरमाते हैं। वह पहले बिहारी नेता हैं जिसने प्रतिष्ठित पदचिह्नों का अनुसरण अपने व्यवहार में किया है और उन्हें अंगीकार करने की तात्कालिकता दरशाई है। सन् 2011 में उन्होंने व्यापार के संबंध में चीन की यात्रा की, पाकिस्तान से आए एक संसदीय प्रतिनिधि-मंडल का बिहार में स्वागत किया और फिर खुद भी पाकिस्तान की यात्रा पर गए, जो किसी भारतीय मुख्यमंत्री के लिए साधारण बात नहीं है; इस यात्रा के दौरान सर्वत्र उनका एक मिसाल कायम करनेवाले उपमहाद्वीपीय प्रशासक के रूप में स्वागत हुआ। देश-विभाजन के बाद से अब तक वह पहले भारतीय राजनेता हैं, जिन्होंने उसी यात्रा के दौरान पाकिस्तान का भ्रमण करते हुए, कराची से तक्षशिला तक का सफर किया और एक सप्ताह से भी अधिक

समय पड़ोसी देश में बिताया।

वह अपनी उड़ान को विस्तार दे रहे हैं। उन्होंने बिहार में कई विशिष्ट सम्मेलनों का आयोजन किया और विकास संबंधी अर्थशास्त्र पर विशेषज्ञता प्राप्त अनेक विश्व- प्रसिद्ध विद्वानों को अपने विचार व्यक्त करने हेतु आमंत्रित किया, जैसे अमर्त्य सेन, मेघनाद देसाई, ब्रिटिश अकादमी के अध्यक्ष निकोलस स्टर्न, सिंगापुर के राजनीतिक-राजनयिक जॉर्ज येव। अन्य संकेत भी मिले हैं, जो उनकी बृहत्तर अभिलाषा, बिहार को सीमाओं से बाहर पाँव पसारने की महत्त्वाकांक्षा की ओर इंगित करते हैं। शनै:-शनै: किंतु सावधानी से कदम बढ़ाते हुए, नीतीश ने बिहार के किसी भी मुख्यमंत्री की तुलना में कहीं अधिक अपनी बहुमुखी प्रतिभा प्रदर्शित की है और खुद को उस योग्य सिद्ध भी किया है। इस कार्य में उन्होंने एन.के. सिंह और राजदूत पवन वर्मा जैसे व्यक्तियों का सहयोग लिया है, जिन्होंने नीतीश का सांस्कृतिक सलाहकार और वस्तुत: प्रवक्ता बनने के लिए विदेश सेवा से समय-पूर्व सेवानिवृत्ति लेने का निर्णय किया। वर्मा तब भूटान में भारत के राजदूत नियुक्त थे, जब सन् 2012 में नीतीश भूटान की यात्रा पर गए थे। बिहार के नेता ने उसी समय उन्हें अपने पास बुलाने का मन बना लिया। ''मैं जितने भी राजनीतिज्ञों के संपर्क में रहा हूँ, नीतीश को मैंने उन सबसे अलग पाया'', वर्मा ने मुझे बताया, ''एक कुशाग्र-बुद्धि, गंभीर इनसान, जो कुछ काम करने का जोश रखता है और जो भी करना चाहता है सही ढंग से करना चाहता है। उनके पास विचारों का भंडार था, एक दृष्टि थी, और सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि वह सोचे हुए को चरितार्थ करने का पक्का, एक बहुत मजबूत इरादा रखते थे। मैं भारत के लिए एक नवीन घोषणा-पत्र की शक्ल में एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहा था, तभी मुझे विचार आया कि एक आधुनिक भारतीय नेता के रूप में जिस व्यक्ति को मैं देखना चाहता हूँ, नीतीश उस कल्पना में एकदम सही बैठते हैं।''

विविध विषयों के विद्वान् लोग हैं और एक-दूसरे से भली-भाँति जुड़े हुए हैं; वे नीतीश के सामने उद्योग से लेकर विभिन्न कलाओं, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण से लेकर भू-राजनीति एवं विदेश नीति से संबंधित विषयों का इंद्रधनुषी चित्र प्रस्तुत करते हैं। नीतीश के मन में जो कुछ चल रहा है और जिसे वह इन विद्वानों की मंत्रणा से वास्तविक रूप देना चाहते हैं, उस दिशा में इसे एक अच्छी शुरुआत कहा जा सकता है। वह आपको विश्वास दिलाएँगे, चाहेंगे कि आप विश्वास करें कि उनका एक ही इरादा है—बिहार के लिए काम करना। बिहार एक विविधतापूर्ण राज्य है लेकिन वह न केवल बिहार की समस्याओं बल्कि वैश्विक स्तर पर प्रभावित करनेवाली समस्याओं के बारे में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए भी स्वयं को तैयार कर रहे हैं, ताकि आनेवाले दिनों में उन्हें भी अपने विचार रखने के लिए बुलाया जा सके : विश्वव्यापी आतंकवाद, ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरण, कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय राजनयिक आचार-संहिता की विभिन्न अपेक्षाएँ। वह एक प्रवर्तक हैं और एक होशियार, गुप्त रूप से चाल चलनेवाले राजनेता हैं। जब कभी ऐसा भी लगा कि उनके आगे गतिरोध है, लालू यादव की छाया में बँधा एक अदृश्य दाग राहु की तरह उनकी कुंडली में बैठा है, उस समय भी वह इसी चिंतन में रहते कि इससे वह कब और कैसे निकल पाएँगे और अपना रास्ता खुद बनाकर चल सकेंगे।

मोदी के सवाल पर बी.जे.पी. से रिश्ता तोड़ देने के लिए नीतीश के निर्णय को बहुत से लोग नीतीश की भारत का प्रधानमंत्री बनने की महत्त्वाकांक्षा से जोड़कर देखते हैं। उनका ऐसा सोचना शायद सही है—हालाँकि नीतीश ने ऐसी किसी धारणा या विचार से बार-बार इनकार किया है—लेकिन हो सकता है उनसे यह समझने में गलती हो गई हो कि नीतीश और मोदी एक ही समय-रेखा के साथ-साथ दौड़ लगा रहे हैं।

मोदी सन् 2014 के जनादेश के लिए बाजी लगा रहे हैं लेकिन नीतीश नहीं। चुनाव के मैदान में जब वह नए-नए उतरे थे, वह एक के बाद एक चुनाव हार गए, लेकिन अड़े रहे जब तक उन्हें सफलता नहीं मिली और फिर कभी

नहीं हारे। लालू यादव से बिहार छीनने में उन्हें दस साल का समय लगा, चार चुनावों का सामना करना पड़ा और सैद्धांतिक रूप से विरोधी बी.जे.पी. के साथ एक गठबंधन करना पड़ा। उनके अंदर कमाल का धैर्य है और अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए दिन-रात लगन से काम करते रहने की अदम्य क्षमता है।

नीतीश ने पुन: केवल अपनी सामर्थ्य पर जंग जीतने का संकल्प किया है और उनके इस संकल्प ने उन्हें जीवन के सबसे अधिक चुनौती भरे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। उनके पास बिहार में अभी तक ऐसा कोई सामाजिक गठबंधन नहीं है, जो उनकी जीत सुनिश्चित कर सके। उनके प्रांतीय दल, जे.डी.यू. का आधार सीमित है, जबकि नरेंद्र मोदी के पीछे बी.जे.पी. की व्यापक संगठनात्मक शक्ति है। गुजरात के मुख्यमंत्री ने इस प्रकार का आक्रामक प्रचार करना शुरू कर दिया है कि बिहार के नेता के पास न तो कोई मजबूत आधार है और न इतने साधन हैं जिनके बल पर वह मुकाबला करने के लिए मैदान में उतर सकें। मोदी राष्ट्रीय मंच से गरज रहे हैं, जबकि नीतीश बहुत दूर की किसी सीमा-चौकी से अपने तर्क-बाण चला रहे हैं। हो सकता है, फिलहाल, वह उस चींटी की भूमिका से ही संतुष्ट हों जो धीरे-धीरे हाथी की नाक में चढ़कर ऐसा धमाल मचाती है कि हाथी लड़खड़ा जाता है। फिर भी, नीतीश ने सन् 2014 के चुनावी मुकाबले के परे अपने लिए संघर्ष का जो रास्ता चुना है उस रास्ते पर वह इस पक्के विश्वास के साथ अग्रसर होने का इरादा रखते हैं कि जिस भारत की व्याख्या वह करते हैं, जिस भारत की कल्पना उनके मन में है और जिसकी तुलना वह भारतीय संविधान की एक प्रतिध्वनि से करते हैं, उस भारत की आयु अपेक्षाकृत उस भारत की आयु से अधिक लंबी होगी, जिसका बेसुरा राग मोदी ने अलापना आरंभ किया है।

❑❑❑